है और इनमें भारतीय समाज और वर्तमान स्वच्छन्द कवि की आदर्शवादी और अतीत गौरव के प्रति आस्था लक्षित होती है। परन्तु प्रतिपादन की प्रणाली, शैली और कल्पनाओं की दृष्टि से ये स्वच्छन्दतावादी रचनाओं के ही अधिक निकट हैं। 'जूही की कली', 'प्रेयसी', 'रेखा', 'जागो फिर एक बार', 'वसंत', 'बादल', 'यमुना की परी के प्रति' आदि कविताओं में तथा 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा', 'प्रभावती', आदि उपन्यासों में विषय के चुनाव और प्रतिपादन की प्रणाली, दोनों में कवि की स्वच्छन्दता और परम्परागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। इनमें अतिशय भावुकता और तीव्र अनुभूतियाँ हैं, मानिक कल्पनाएँ हैं, नाटकीय प्रसंग और वैचित्र्यपूर्ण घटनाएँ हैं और विषय शृंगार, प्रेम और विवाह से सम्बन्धित हैं। उपन्यासों की नायिकाएँ कनक (अप्सरा), शोभा (अलका), निरुपमा (निरुपमा), प्रभावती (प्रभावती), सभी सुकुमार संवेदना, प्रेम और सौन्दर्य की देवियाँ हैं और इन कल्पना-प्रसूत नारियों का वर्णन कवि ने कवित्वपूर्ण ढंग से किया है। 'अप्सरा' की किशोरी कनक का वर्णन इस प्रकार है —'अपनी देह के वृन्त पर अकलुष खिली हुई ज्योत्स्ना के चन्द्र पुष्प की तरह, सौंदर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु से डोल उठती है।' उपर्युक्त कविताएँ और उपन्यास स्वच्छन्दतावादी रचनाओं के उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' की बहुत सी कविताएँ 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़' आदि उपन्यास और 'चतुरी चमार', 'देवी', आदि कहानियाँ प्रगतिवादी समझी जाती हैं। परन्तु इनकी सृष्टि की प्रेरक शक्तियों और मूल प्रवृत्तियों का सम्बन्ध मार्क्सवादी विचारधारा से नहीं है और इनमें आर्थिक असमानताओं पर अधिष्ठित समाज-व्यवस्था का अन्त करने तथा एक वर्गहीन, श्रेणी रहित समाज की स्थापना करने की इच्छा का नितान्त अभाव है। त्रस्त मानवता के प्रति करुणा और उत्पीड़कों से विद्रोह कलाकार में ये भाव अत्यन्त तीव्र हुआ करते हैं और निराला की इन रचनाओं की तह में करुणा और विद्रोह के ही भाव वर्तमान हैं। इन भावों के अधिकारी पात्र समाज के विभिन्न स्तरों और श्रेणियों के हैं और इनके चुनाव में लेखक का आश्रय कोई सिद्धान्त या मतवाद न होकर मात्र अपनी अनुभूति है।

टूटे तरु की छुटी लता सी दीन विधवा (विधवा), इलाहाबाद के पथ पर झुलसाती हुई लू में पत्थर तोड़नेवाली मजदूरिन (तोड़ती पत्थर), मुँह-फटी पुरानी झोली को फैलाकर दर्दनाक शब्दों में मुट्ठी भर दाने की याचना करने वाला लाचार दीनता सा भिक्षुक (भिक्षुक), बकरी पालने वाला ब्राह्मण बकरिहा बिल्लेसुर (बिल्लेसुर बकरिहा), अत्यन्त दयनीय परिस्थितियों में अंग-अंग गलकर मिटनेवाला समाज सेवी कुल्ली भाट, पटवारी दीन भट्ट (कुल्लीभाट) चमार चतुरी (चतुरी चमार), गूंगी बहरी और मातृत्व भार से भरी उन्मत्त भिखारिणी (देवी) —कवि की करुणा और सहानुभूति के पात्र थे। व्यक्ति विभिन्न जातियों और समाज विभिन्न स्तरों के हैं और इनमें समान रूप से वर्तमान एकमात्र प्रवृत्ति दीनता है। यद्यपि इन पात्रों में वर्गगत विशेषताएँ हैं तो भी इनके चरित्र और व्यक्तित्व इतने असाधारण हैं कि ये अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते, ये मात्र व्यक्ति ही बन रहते हैं। दीनता के प्रति कवि के मन में

जितनी तीव्र करूणा है, उत्पीड़न और शोषण के प्रति उतनी ही तीव्र विद्रोह की भावना भी है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए कवि ने व्यंग्य का आश्रय लिया है। स्वार्थ, अर्थलोलुपता, अंध धर्मानुराग, अनैतिकता, पाखण्ड, ढोंग, राजनीतिक ढकोसले...सभी पर उनका व्यंग्य इतना अधिक मार्मिक है कि अत्यंत तीव्र आलोचना या भर्त्सना से भी अधिक गहरा असर इसका पड़ता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

दौड़ते हैं ये बादल काले काले
हाईकोर्ट के वकले मतवाले
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे

(खजोहरा)

'मासको डायलाग्स' की पुरानी किन्तु अब अप्राप्य प्रति और अपना उपन्यास बगल में थाम कर कवि के पास आए हुए स्वार्थी और मूर्ख साहित्यिक गिडवानी का वर्णन इस प्रकार है :—

देखा उपन्यास मैंने,
श्री गणेश मे मिला—
प्रिय स्नेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है
इसको फिर रख दिया,
देखा मासको डायलाग्स
देखा गिडवानी को।

(मासको डायलाग्स)

"श्रीमान शास्त्री जी ने श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी के साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैतालीस वर्ष का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किए शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने साथ शास्त्रिणी का साइन बोर्ड टांगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चलीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है धर्म की रक्षा के लिए।'

(श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी)

स्वस्थ सामाजिक संबंध स्थापित करने में अथवा वैयक्तिक जीवन को शिथिल होने से बचाने में कलाकार प्रायः असमर्थ रहता है। व्यवहारिक और सामाजिक जीवन में इसी कारण से वह असफल रहता है। अपनी अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण वह इस स्थिति को समझ नहीं पाता और वह अधिकाधिक मात्रा में अपने में ही सिमटने लगता है। यह स्थिति सचमुच दयनीय है और कलाकार ऐसे अवसरो पर या तो अपनी पराजय या दीनता का वर्णन करता है या बड़े गर्व के साथ त्याग और साधना की गाथा गाता है जो असल में अपने आहत अहं को आश्वासन देने का यत्न मात्र है। वेनेडेटो क्रोचे ने कलाकार की इस मानसिक स्थिति का अत्यन्त मार्मिक

विवेचन किया है। निराला ने अपनी अनेक कविताओं में दीनता और गम के भाव प्रकट किये हैं जो असल में कुंठित मानसिक स्थिति की ओर ही संकेत है—

जला है जीवन यह
आतप में दीर्घ काल
(उक्ति)

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे यद्यपि
मैं ही वसंत का अग्रदूत,
ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।
(हिन्दी के सुमनों के प्रति)

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।
तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में व्यर्थ व्यस्त
(सरोज-स्मृति)

निराला विराट से लघु की ओर

श्री चन्द्रबली सिंह

निराला की अस्थियाँ त्रिवेणी में प्रवाहित कर दी गयीं । वे अस्थियाँ जो चिता पर चढ़ाने के पहले जिन्दगी की आँच में तप चुकी थीं। वैज्ञानिक युग है, नयी पुराण कथाओं की रचना नहीं होती। लेकिन दधीचि की कथा और निराला के जीवन में साम्य स्पष्ट है। दधीचि की अस्थियों के स्थान पर निराला का सारा साहित्य है, जो आसुरी शक्तियों के विरुद्ध जीवन की नयी आस्थाओं की रक्षा में लगे हुए प्रत्येक व्यक्ति को उत्तराधिकार के रूप मे मिला है। इसलिए निराला के भौतिक जीवन की कथा का अन्त नही। निराला उन साहित्यकारों में हैं जिसके कृतित्व में समय नये अर्थ जोड़ता जाता है। एक अन्य सन्दर्भ में कही गयी उनकी पक्तियों से यह सत्य व्यंजित होता है।

अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी अभी ही तो आया है?
मरे वन में मृदुल वसन्त—

मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,
इसमें कहाँ मृत्यु
है जीवन ही जीवन

निराला भक्तिकाल के बाद भारतीय जीवन में सबसे बड़े राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उन्मेष के युग में पैदा हुए और उनके व्यक्तित्व और साहित्य में उसकी सारी शक्ति सीमाएं और सम्भावनाएँ उभर कर व्यक्त हुई छायावाद को उन्होने उस जागरण के साथ जोड़ा। 'परिमल' की भूमिका में उन्होने छायावाद के आलोचकों को उत्तर देते हुए लिखा साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पडती हैं। इस तरह जाति मुक्ति प्रयास का पता चलता है। धीरे-धीरे चित्रप्रियता छूटने लगती है। मन एक खुली प्रशस्त भूमि में विहार करता है। और यही जाति के मस्तिष्क में विराट दृश्यों के समावेश के साथ ही साथ स्वतंत्रता की प्यास को भी प्रखरतर करते जा रहे हैं। यहाँ तक कि उन्होंने अपने मुक्तछन्द को भी उसी जागरण का अंग कहा "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।"

(परिमल की भूमिका)

छायावाद के सभी कवि उस उन्मेष की देन थे और कुछ हद तक सभी में उसकी विविध और अन्तर्विरोधी प्रवृत्तियों के चित्र मिलते हैं, लेकिन उस युग के कवियों में जितना आत्ममन्थन, जितना अन्तर्द्वन्द्व निराला के व्यक्तित्व और साहित्य में है उतना और किसी में नहीं।

निराला की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का गठन जिन तत्वों से हुआ था उनमें प्रमुख ये हैं—भारत का राष्ट्रीय आंदोलन, बंगाल का सांस्कृतिक जागरण और रामकृष्ण-मिशन के वेदांत में विराट की उपासना के साथ साथ मानव सेवा का भाव। निराला जी की प्रारम्भिक कविताओं में भी ये तत्त्व कहीं रूप रंग के उन्माद और स्वप्न-भंग के क्षेम के समानान्तर और कहीं उनमें सूक्ष्म रूप से संश्लिष्ट होकर मौजूद हैं। इसलिए निराला की प्रेम की कविताओं में अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा आध्यात्मिकता का पुट कम है और सहज मानवीय अनुभूतियों और उनके अन्तर्द्वन्द्वों के स्तर पर उतरने की प्रवृत्ति अधिक है। स्वच्छन्द किन्तु स्वस्थ प्रेम पर लगे हुए अंकुशों से लड़ने भी निराला की कवितायें लौकिक और अलौकिक प्रेम के प्रतीकों की संश्लिष्टता या उनके अप्रत्याशित विपर्यय से उत्पन्न अभिव्यक्ति की गूढ़ लाक्षणिकता और विराट की उपासना के बीच उठने वाला व्यक्ति की मुक्ति और विद्रोह का स्वर रूढ़िवादी आलोचकों की समझ और सहन शक्ति दोनों के बाहर था। लेकिन विराट और लघु के इसी अन्तर्द्वन्द्व में लघु की विजय के साथ निराला के साहित्य में यथार्थवादी चिंतन और शैली का विकास हुआ।

इस विजय में रवीन्द्रनाथ के मानवतावादी दृष्टिकोण और रामकृष्ण मिशन के स्वामियों के सेवा भाव का बहुत बड़ा हाथ था। पत्नी और पुत्री जैसे प्रियजनों की मृत्यु और जीवन के कठिन संघर्षों, महिषादल और बैसवाड़े के साधारणजन और किसानों के जीवन की निर्मम वास्तविकताओं और विदेशी शासन और घरेलू सामन्त वर्ग के मिले-जुले प्रभुत्व से पैदा होने वाली दासता, वाह्याडम्बर, सामाजिक अन्याय, नैतिक अनाचार के कटु-बोध ने निराला के मन में विराट उपासना के स्थान पर सामाजिक क्रांति और मानवीय करुणा की कितनी बड़ी भूमिका है इसका स्पष्ट संकेत स्वयं निराला ने 'परिमल' की कविता में किया है। विराट का उपासक कवि समझता है कि उसका अधिवास वहाँ है जहाँ गति रुक जाती है, लेकिन उसी के भीतर से एक दूसरी आवाज उठती है।

> भला इस गति का शेष
> सम्भव है क्या
> करुण स्वर का जब तक मुझमें
> रहता है आवेश !

एक दुखी भाई को देखकर उसके हृदय में वेदना उमड़ जाती है और अहं के भीतर बन्द रहकर विराट की उपासना का दम्भ टूट जाता है, निर्वेद जन्य स्थिर प्रशंता की स्थिति असम्भव हो जाती है, कवि संसार की माया में फँस जाता है।

प्रगति का हर कदम विराट पर लघु की, वेदांत के ब्रह्म और मायावाद पर जड़ता की विजय थी। रास्ता आसान नहीं। इस पर चलने का अर्थ खुली चुनौती देकर समाज के साथ-साथ सौंदर्य और विलास की मनोवृत्ति और अन्य छायावादी संस्कारों से मुक्ति पाने के लिए अपने से ही जूझना था। इस सदी के चौथे दशक के उत्तरार्द्ध में आत्म-मंथन की यह प्रक्रिया सभी छायावादी कवियों में तेज हो गयी, लेकिन उसके घुमाव और काँटे दार रास्ते पर चलते हुए स्वेद

श्रौर रक्त से श्रभिविप्र कवि का जो उन्नत वत्त किन्तु करूणामय रूप निराला में व्यक्त हुश्रा वह श्राधुनिक युग के किसी भी कवि में दुर्लभ है। 'देवी' श्रौर 'कुल्ली भाट' में निराला ने विराटता के स्वप्नभंग का वड़ा सुन्दर संकेत किया है। देवी के जीवन की लघुता की महानता देखकर वड़प्पन के भाव से कवि की तनी नसें श्रौर सीधी रीढ़ में ढ़ीलापन श्रा गया "पगली" का ध्यान ही मेरा ज्ञान हो गया। उसे देखकर मुझे वार-वार महाशक्ति की याद श्राने लगी। महाशक्ति का प्रत्यत्त रूप, संसार को इससे वढ़कर ज्ञान देनेवाला श्रौर कौन होगा? राम, श्याम श्रौर संसार के वड़े बड़े लोगो का स्वप्न सव इस प्रभात की किरणो में दूर हो गया था। वड़ी-वड़ी सभ्यता, वड़े-वड़े शिन्नालय चूर्ण हो गये, मस्तिष्क को घेरकर केवल यही महाशक्ति श्रपनी महत्ता में स्थिति हो गयी। उसके वच्चे में भारत का सच्चा रूप देखा, श्रौर उसमें—क्या कहूँ, क्या देखा।' इसी तरह कुल्लीभाट श्रौर उसके समाज लाञ्छित साथियों के सामने सौन्दर्य, विलास श्रौर विराटता के स्वप्न में पड़े कवि की श्राँखे खुल गयीं।

छायावाद के जमाने में ही उन्होंने परिमल की भूमिका में छायावाद की सीमाश्रो को तोड़कर श्राने वाले एक नये जमाने का जिक्र किया था। उन्होंने लिखा था—"छायावाद में श्रभी कर्म की श्रविराम धारा वहती हुई नहीं दीख पड़ती।... ...."

"परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इस नवीन जीवन के भीतर से शीघ्र ही एक ऐसा श्रावर्त वंधकर उठने वाला है जिसके साथ साहित्य के श्रगणित जलकण उस एक ही चक्र की प्रदत्तिणा करते हुए उनके साथ एक ही प्रवाह में वह जायेंगे श्रौर लत्य भ्रष्ट या शुष्क न हो, एक ही जीवन के उदार महासागर मे विलीन होंगे। यह नवीन साहित्य के क्रियाकाल मे संभव होगा।" निराला की वाद की यथार्थवादी रचनाश्रों ने इस क्रियाकाल को श्रस्तित्व में लाने श्रौर उसकी दिशाएँ निर्धारित करने का साधारण कार्य किया। उन्होंने हिन्दी साहित्यिकों की नयी पीढी के लिए जिन्दगी के नये नये श्रनुभवों को श्रभिव्यक्ति के सधे हुए साँचो में ढाल श्रौर संवारकर प्रस्तुत किया। निराला की कविता ने श्रोज, व्यंग्य, करूणा, विषाद श्रादि जैसे विविध श्रौंर परस्पर भिन्न-स्वरों को वाँधने की श्रपूर्व क्षमता विकसित कर उन्हे नयी पीढ़ी के कवियो के शिल्प गुरू के रूप में प्रतिष्ठित किया। समसामयिक प्रगतिशील श्रौर प्रयोगवादी कविता पर निराला के शिल्प की गहरी छाप साहित्य मे वस्तु श्रौर शिल्पी-रूढ़ियों के विरुद्ध नयी पीढ़ी की वहुत सी लड़ाइयाँ निराला ने ही जीती। यह नयी पीढ़ी का सौभाग्य था कि निराला में श्रदभुत काव्य प्रतिभा के साथ-साथ महान् शिल्पी श्रौर श्रालोचक की सूत्म श्रर्न्तदृष्टि थी।

निराला का यथार्थवादी गद्य-साहित्य उनकी कविता की तरह ही संघर्षों के वीच उनके उपराजेय व्यक्तित्व का प्रतिविम्व है। कुल्लीभाट, चतुरी-चमार, विल्लेसुर वकरिहा श्रपने नाम से लेकर चरित तक में वास्तविक हैं श्रौर उनके साथ निराला का सम्पर्क भी वास्तविक है। उन पर होनेवाले सामाजिक श्रत्याचारों ने निराला की श्रदम्य मानवता को क्रियाशील वनाकर उनके व्यक्तित्व को श्रौर भी श्रालोकित किया। इन रेखाचित्रों से स्पष्ट है कि निराला श्रपनी सामाजिक, राजनीतिक श्रौर सास्कृतिक चेतना में हमारे राष्ट्रीय श्रान्दोलन श्रौर उसके उच्च या मध्यवर्गीय नेताश्रो से वहुत श्रागे थे। इसीलिए राजनीतिक नेताश्रों से मुठभेड़ होने पर निराला में हीनता के स्थान पर दर्प के भाव जगते थे। 'प्रवंध-प्रतिमा' निबन्ध-संग्रह में महात्मा गांधी श्रौर पंडित जवा-

हरलाल नेहरू से हुई उनकी बातचीत या हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में साहित्यकों पर राजनीतिक नेताओं द्वारा प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध उनकी विद्रोह पूर्ण प्रतिक्रियाओं में इसके स्पष्ट प्रमाण है। निराला का गद्य साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, हर तरह के गुरूडम के विरुद्ध चुनौती भरी आवाज है। उसमें निराला की तेजस्विता और दर्प है जिसने केवल सहज निश्छल मानवता के सामने, दलित और लांछित लघुता के बीच सहसा विद्युत सी चमक जाने वाली महानता के सामने पिघलना सीखा था। निराला ने जिस तरह आखिरी साँस तक तपाकर, उसकी आहुती देकर, लघुता के बीच पायी जाने वाली महानता के मान की रक्षा की, उसे समझने में निराला के गद्यसाहित्य से बहुत मदद मिलती है।

निराला के इस नये कथा साहित्य के क्रान्तिकारी यथार्थ के महत्व की समझ लोगों में है। प्रेमचन्द्र ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की आवश्यकता बतलायी थी। निराला ने उससे आगे के यथार्थ की बात सोची। 'प्रबंध-प्रतिमा' में 'सामाजिक पराधीनता' लेख में उन्होंने लिखा, 'समाज की भूत दशा है, रहस्य नहीं। उसका सुधार भूत या जड़-सुधार है। दुनिया भर के पौराणिक खुराफात लोग मानते हैं, पर जीवन के सत्य को नहीं मानते। इसकी क्या दवा है? यह मानते हुए, संस्कार-जन्य कमजोरी है, प्रेमचन्द्र कहानियों में आदर्श की पुष्टि करते हैं। लिखते हुए आदर्श को बड़ा सत्य बतलाते हैं। मैं कहता हूँ यह आदर्श वैसा ही सत्य है, जैसा सूर्य का वंश चला और रघु, दशरथ, रामचन्द्र पैदा हुए, चन्द्र का वंश चला वसुदेव, कृष्ण पैदा हुए। लेकिन यह कितना बड़ा प्राकृतिक सत्य है? इसमें जड़-बोध की मात्रा कितनी है? अविवाहिता कुन्ती से सूर्य के रमण द्वारा कर्ण पैदा हुए। सब लोग मानते हैं। रोज महाभारत पढ़ते हैं। पूछिये, यह कैसे हुआ? फिर उत्तर कौन देता है। रहस्यवाद के भीतर से यह सब गद्य-पद्यों द्वारा सिद्ध करने का वायु विकार मुझसे बहुत ज्यादा है, अतएव उत्तर माँगे हुए तरीके पर सत्य साबित करते हुए दीजिए। हमारे साहित्य में प्रेमचन्द जी रुनाम धन्य साहित्यिक हैं। वह आदर्श का पक्ष लेते हैं। मैं समझता हूँ, यदि उनकी अनमोल कृतियाँ वास्तव सत्य (यद्यपि उनके आदर्शवाद में यथार्थ ही प्रधान है) को लेकर समाज के दुष्परिणाम के रूप में रगकर चलती, तो साहित्य तथा समाज की और बड़ी-वस्तुएँ मिली होतीं। एक अन्य लेख 'हिन्दी साहित्य में उपन्यास', में उन्होंने नये यथार्थ की आवश्यकता पर जोर देते हुए लिखा—'राजनीतिक मैदान में जिस तरह बड़ी-बड़ी लड़ाइयों के लिए सिर उठाना आवश्यक है, उसी तरह साहित्य के मैदान में भी।' आदर्शवादी समाधान पेश करने वाला पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा—'आदर्श की पराकाष्ठा पर काष्ठ की तरह बैठे हुए हिन्दू समाज को हिला देना मेरा उद्देश्य नहीं, कारण मैं किसी का घोसला नहीं छीनता, इतना ही कहूँगा, घोंसले वाल घोंसले वाले ही हैं और उनके चित्रण, चरित्र वर्तमान उन्नत समाजों के मुकाबले में वैसे ही धर्म।' ऐसे लोग 'शक्ति संयुक्त भाषा नहीं लिख सकते, पुष्ट चित्र नहीं खोल सकते।' इस सन्दर्भ में निराला के यथार्थवादी कथा-साहित्य की क्रान्तिकारी देने का समझा जा सकता है। निराला सत्य की रक्षा के लिए दूसरों से ज्यादा निमम स्वय अपने साथ हो सकते थे। अपनी रूग्णावस्था के विक्षिप्त क्षण में वे

निराला की मनोविश्लेषणवादी व्याख्या

डाक्टर हरद्वारी लाल शर्मा

मनोविज्ञान का आधुनिकतम चरण मनोविश्लेषणवाद है, जिसके अनुसार किसी भी क्षेत्र में 'सृजन' चेतना के सीमित प्रयत्नों से नहीं, बल्कि इसकी सीमा के पार, 'अचेतन' की अभिव्यक्ति से सम्पन्न होता है। निराला के काव्य का मनोविश्लेषणवादी दृष्टिकोण भी इसी लिये उचित है कि वह कवि के अचेतन।मन की सुव्यवस्त सृष्टि है। और भी, मनोविज्ञान के इस नूतन वाद ने मन की अद्भुत सृष्टियों को अपने अध्ययन का विषय बनाया है जिनकी व्याख्या सामान्य वैज्ञानिक स्थापनाओं के आधार पर सम्भव नहीं, जैसे स्वप्न, भ्रान्ति, विक्षिप्तता, आदि ऐसा प्रतीत होता है मानों 'निराला' की व्याख्या और विश्लेषण केवल कवि होने के नाते ही नहीं, अपितु 'निरालापन' के कारण, केवल मनोविश्लेषण विज्ञान से ही सम्भव है अन्यथा नहीं।

निराला की काव्य-कृतियाँ मन के अचेतन गर्भ से निसृत कलात्मक प्रसूतियाँ हैं जिन्हें कल, के चेतन, सीमित और रूढ़िग्रस्त मानदण्डों से समझने का प्रयत्न दुराग्रह मात्र है।

निराला का 'तुलसी दास' एक कवि द्वारा कवि को समझने का प्रयास है। फल यह हुआ है कि दोनों की आत्माएँ एकमएक, परस्पर अनुस्यूत और 'येगनद्ध' की भाँति समरस हो गई हैं। दोनों के व्यक्तित्व को अलग रखना सम्भव नहीं प्रतीत होता। निराला ने तुलसी के जीवन-वृत्त और उसकी अन्तर्निहित भावनाओं को अपनी अचेतन आकांक्षाओं के अनुसार मरोड़ दिया है। परिणामतः तुलसी 'राम' नाममय सब जग जानी वाली भावना से प्रेरित होकर अपना कलिमल धोने के लिये रामचरितमानस का सृजन नहीं करते, वरन उस युग के आक्रान्त और आहत हिन्दू भारतवर्ष के पुनरुद्धार के आदर्शवादी उद्देश्य को लेकर खड़े होते हैं। निराला के 'तुलसी दास' उसी ऐतिहासिक 'मिशन' की ज्वाला से जलते हैं जिसकी चेतना ने निराला को अन्त तक न छोड़ा, जन्म भर जिससे वे जूझते रहे, जिसके कारण उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में तपस्वी, त्यागी और क्रान्तिकारी का 'पार्ट' ग्रहण किया।

'तुलसीदास' के सौ छंदों में से पहले दस केवल भारत वर्ष की दुरवस्था के वर्णन में लगाये गये हैं। इनमें अभिव्यक्ति का साधन वे मनोमूर्तियां हैं जिनसे 'जलन' 'अन्धकार,' 'तीव्रगति' आदि भयावह तथा दुःखद अनुभूतियों की उद्भावना होती है, जैसे, 'तमस्तूर्य दिगमंडल,' 'शत शत शब्दों का सान्ध्यकाल', मोगल दल बल के जलद यान .... छाया ऊपर घन ऊपर-अन्धकार-टूटता वज्र दह दुर्निवार, नीचे प्लावन की प्रलय धार, ध्वनि हर हर। 'इत्यादि।

दसवें पद में मानो निराला कहते हैं——ये सब लोग छलना में भूले हुए हैं। इन्हें जग जाना चाहिये।

> मोचना कर्नीं र, किधर कूल
> बहता तरंग का प्रमूट फूल।

यों इस प्रवाह में देश मूल खो वहता,
'छल-छल-छल' कहता यद्यपि जल,
वह मंत्र-मुग्ध सुनता 'कल-कल,'
निष्क्रिय, शोभा-प्रिय कूलोपल ज्यों रहता।

निराला ने कभी 'कूलोपल,' किनारे पर पड़ा हुआ पत्थर, वनना न चाहा। वे तैरकर 'कूल' पाना चाहते थे। मनोविश्लेषण विज्ञान के विद्वान जानते हैं कि 'कूल', 'वहना' 'तैर कर पार करना' अचेतन मन के प्रतीक हैं जो मदन किये गये दुर्दान्त 'काम' को प्रकट करते हैं। सारे काव्य में 'पार' करना अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। कवि स्वयं भारत-संस्कृति पर फैली हुई मानस-तरंग को पार कर 'ज्योतिर्मय' देश को पहुँचना चाहता है——

सोचा कवि ने, मानस-तरंग,
वह भारत-संस्कृत पर सभंग
फैली जो, लेती संग-संग जन-गण को,
इस अनिल-वाह के पार प्रखर
किरणों का वह ज्योतिर्मय भर,
रविकुल जीवन-चुंवनकर मानस-धन जो ॥

स्पष्ट ही, इस काव्य में उद्दाम काम ने दीप्त प्रतीकों की सृष्टि की है जो चेतन द्वारा दवाये जाने पर भी अचेतन की ज्वाला से 'ज्योतिर्मय हो उठा है। निराला के अनुसार तुलसीदास की सम्पूर्ण जीवनी-शक्ति चोट खाये हुये 'काम' के प्रशमन से और भी अधिक प्रखर 'ज्योति' तक पहुँचने में लगी रही। अपने अन्तिम (१००वें) पद्य में घर छोड़ कर वन को चलते हुए उन्होंने रत्नावली को 'प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा' के रूप में देखा:—

चल मन्द चरण आये वाहर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुधर
जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा—
संकुचित, खोलती श्वेत पटल
वदली, कमला तिरती सुख-जल,
प्राची-दिगन्त-उर में पुष्कल रवि-रेखा

निराला का 'पुरषत्व' और 'ओज' जिसके लिये उनके काव्य की प्रख्याति है, मनोविज्ञान की भाषा में, 'तम' और 'ज्योति' इन दो प्रतीकों के संघर्ष से प्राप्त होते हैं। तम जड़ है, ज्योति चेतन है। रत्नावली की भर्त्सना से जब 'रे गया काम तत्क्षण वह जल' और 'वीती अंध रात' उस समय 'झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल' तथा तुलसी को सुनाई पड़ा—

वांधो, वांधो किरणें चेतन
तेजस्वी हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्घन महिमा वल

तुलसी और निराला दोनों में जड़ और चेतन, तम और ज्योति का 'दुर्धर समर' जीवन भर चलता रहा, चेतन की चिनगारियाँ इसी अन्धकार छेद कर निकलती रहीं। तुलसी ने स्पष्ट किया—

"होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशि वासर
कवि का प्रति छवि से जीवन हर, जीवन भर

स्यात् आश्चर्य हो कि निराला ने 'तुलसीदास' में मनोविश्लेषण विज्ञान के स्वीकृत लैंगिक प्रतीकों का जैसे नदी, सर्प, पार करना, ऊपर चढ़ना, आदि का उपयोग यथावृत्त में नहीं किया जो वह प्रसिद्ध किंवदन्तियों के अनुसार कर सकते थे। प्रेमोन्मत्त तुलसी ने नदी पार की और रात्रि में कोई मार्ग न पाकर साँप को पकड़ कर रत्नावली से मिलने के लिए ऊपर चढ़ गये। यहाँ घटना की ऐतिहासिकता का प्रश्न नहीं। कलात्मक सत्य यह है कि राम के प्रति इतना उत्कट और अनन्य प्रेम करने की शक्ति उसी में सम्भाव्य है जो अपनी प्रियतमा से उतना पागल प्रेम कर सकता है। इतिहास की अपेक्षा जनश्रुति इस बात में सत्य के अधिक समीप है। जो कुछ हो निराला के इस सत्य को प्रयुक्त नहीं किया। सम्भव यह प्रतीत होता है कि अपनी रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने उपयुक्त प्रतीकों को छोड़ दिया। किन्तु यह रहस्यवाद भी प्रतीकात्मकता से अछूता नहीं है।

सामान्यतया 'रहस्य' का अर्थ वह सत्य जो हमारे जानने के साधारण साधनों से न जाना जाय, इन्द्रियों के द्वारा अथवा बौद्धिक युक्तियों द्वारा अथवा किसी के बताने से जो न समझा जाये। 'समझ में न आना' रहस्य का प्राण है। अतएव रहस्य अज्ञात, अतीन्द्रिय, अतिबुद्धि, अमेय आदि समानार्थक हो गये हैं। उपनिषद् और सन्तों की वाणी के अनुसार, रहस्य आत्म तत्व है, परमात्मा है जिसे अभ्यास और साधना के बल से समाधि के द्वारा जाना जाता है। परन्तु इस जानने और साधारण समझने में अन्तर है। समाधि में ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं—साधारण दशा में भेद बुद्धि बनी रहती है। आधुनिक मनोविज्ञान ने 'रहस्य' की विवेचना करते हुए बताया है कि रहस्य अचेतन मन की घटना है जिसे चेतन मन अपने परिमित साधनों से नहीं जानता। जब चेतन मन सोता है तो स्वप्न और सुषुप्ति में अचेतन का उद्घाटन होता है। अचेतन में दिक्, काल अथवा कार्य कारण के सामान्य नियम लागू नहीं होते, न वहाँ समाज नीति, धर्म आदि की मान्यताएँ काम करती हैं। अचेतन में जीवन निर्बन्ध, उन्मुक्त नियम मर्यादा हीन स्थिति में रहता है। स्वप्न की धूमिल अनुभूति में रहस्य खुलता है, जागृति की चेतना में नहीं। मन अनेकों रूप रख कर उड़ानें भरता है, अम्बर के ऊपर और ऊपर आकाश में तैरता है, कभी चमकदार तो कभी काले बादलों को पार करता है। निराला का रहस्यवाद उपनिषद् और सन्तों के रहस्यवाद की अपेक्षा मनोविश्लेषण विज्ञान के समीपतर मालूम देता है।

एक दिन तुलसीदास सखाओं के साथ चित्रकूट गिरि पर आये, 'देखा पावन वन नव प्रकाश मन आया'। बिना किसी प्रयत्न के भी पावन वन देखने से जो नव प्रकाश मन में

आया, चेतना के पार से अचेतन के प्रकाश की झाँकी थी। अचेतन के पास 'भाषा' नहीं है, वह कुहरे के अथवा धुएँ के उठते कुण्डलों की भाँति कुछ छिपती कुछ खुलती छवि से भावों को प्रकट करता है—

एक दिन, सखागण संग, पास,
चल चित्रकूट गिरि, सहोच्छ्वास,
देखा पावन वन, नव प्रकाश मन आया,
वह भाषा-छिपती छवि सुन्दर
कुछ खुलती आभा में रंग कर,
वह भाव कुरल-कुहरे-सा भर कर भाया ॥

अचेतन का स्वरूप स्वप्न में मिलता है। वहाँ चेतन मन 'विस्मित' हो जाता है। आँखे कुछ देख नहीं पातीं, कुछ परिचित, कुछ भूली स्मृतियाँ 'ज्यों दूर दृष्टि को धूमिल-तन तट-रेखा' सी प्रतीत होती है। अचेतन को विज्ञान वेलाओं ने 'तरंगाकुल सागर' की तरह माना है। अनेक स्वप्नों की अस्फुट छायाएँ तैरती रहती हैं। तुलसीदास ने चित्रकूट पर सखाओं के साथ जो देखा वह 'स्वप्न' था, और अचेतन की झाँकी—

केवल विस्मित मन, चिन्त्य नयन,
परिचित कुछ, भूला ज्यों प्रिय जन—
ज्यों दूर दृष्टि को धूमिल-तन तट-रेखा,
हो मध्य तरंगाकुल सागर,
निःशब्द स्वप्न संस्कारागर,
जल में अस्फुट छवि छायाधर, यों देखा ॥

स्मरण रहे की समुद्र, तरंग, शब्द, तट, जल आदि का प्रयोग इस पद्य में प्रतीकात्मक हुआ है। कवि की सर्जना का उद्गम उसके अचेतन की गहराई में है। साधारण मनुष्य चेतन के ऊपरी स्तर पर मानों दौड़ता है। उसमें अपने में डूबने की शक्ति नहीं होती, वह 'खो' नहीं सकता, चिन्ता अथवा भय के सिवा स्यात् वह 'गंभीर' नहीं हो सकता। फलतः उसमें सृजन की शक्ति नहीं मिलती। मनो-विश्लेषण-विज्ञान की यह सम्मानित स्थापना है कि जो 'खो' नहीं सकता वह 'पा' नहीं सकता। इस लिए 'समुद्र' 'नद' 'नदी' 'जल' 'तैरना', 'डूबना', आदि अचेतन मन की घटनाओं के प्रतीक है।

उपर्युक्त प्रतीकों के अतिरिक्त, निराला एक विशिष्ट प्रतीक को काम में लाते हैं जो सम्भवतः उनके विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचायक है, यह है ऊपर उठना या उड़ना। तुलसीदास में 'ऊपर उठना' 'नीचे उतरना' का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। 'समुद्र' के पश्चात् 'आकाश' निराला की अचेतन आकाक्षाओं का उन्नित वाहन प्रतीत होता है, क्योंकि आकाश स्वछन्द गति और अनन्त अवकाश प्रदान करता है। आकाश में बादल उसके लिये 'जलद-यान' का काम देते हैं। इससे भी अधिक आकाश मे 'विहगा' को उन्मुक्त उडान और मुक्तकण्ठगान का अवसर मिलता है। जब तुलसी, ने चित्रकूट-शिखर पर सृजनोन्मुख अचेतन प्रतिभा के दर्शन किये तो उन्हें सन्देश मिला—

इस जग से मग के मुक्त प्राण।
गाओ विहग! सद्ध्वनित गान,
त्यागोज्जीवित, वह ऊर्ध्व ध्यान, धारा-स्तव॥

अथवा, इस समय कवि से चेतन स्तर पर व्याकुलता हुई, मन उन्मन हो गया, क्योंकि चेतन के विस्फोट के बिना अचेतन का आविर्भाव कैसे सम्भव है? हमारे सामने साधारण अनुभव में भी सुख की अपेक्षा दुःख हमें अधिक अन्तर्मुखी बना देता है। तुलसी के उन्मन 'कवि' निस्तरंग नभ पर उड़ गया। जीवन और रंगों का उद्घाटन इसी अवसर पर होता है—

वह कर समीर ज्यों पुष्पाकुल
वन को कर जाती है व्याकुल,
हो गया चित्त कवि का त्यों तुल कर उन्मन,
वह उस शाखा का वन विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन॥

मन को अपने अचेतन स्वरूप की झाँकी तभी मिल सकती है जब वह नभ के दूर, दूर तर, दूरतम प्रदेश में उड़ कर स्वप्न सा धूमिल, 'सान्ध्य ज्योति' सा दिखाई पड़े, क्योंकि वहीं तो 'उड़ती तरंग ऊपर अपार', नीचे वह अपार जीवन की तरंग नहीं मिल सकती। अपार नभ ही अपार मन को ग्रहण कर सकता है। अतएव कवि के मन का प्रतीक ऊपर का अपार नभ प्रदेश ही हो सकता है—

दूर दूरतर, दूरतम, शेष
कर रहा पार मन नभोदेश'
सजता सुवेश, फिर फिर सुवेश जीवन पर,
छोड़ता रंग, फिर-फिर सँवार
उड़ती तरंग ऊपर अपार
सन्ध्या-ज्योतिः ज्यों सुविस्तार अम्बरतर॥

ऐसा प्रतीत होता है तम को पार कर ज्योति तक पहुँचने की भाँति अथवा चेतन और जड़ के संघर्ष की भाँति, निराला के जीवन में नभ प्रदेश में ऊपर चढ़ना नीचे उतरना, इनमें जीवन भर संघर्ष बना रहा। अपनी सृजन प्रतिभा के कारण उनका मन 'दूर, दूरतर, दूरतम नभोदेश पार करता रहा, और धूमिल 'सन्ध्या-ज्योति' में खो गया, इतना कि वह फिर नीचे उतरा नहीं, और, लोग खोजते ही रह गये।

तुलसीदास का मन चित्रकूट में किसी अदृश्य सन्देश को पाकर धीरे धीरे नीचे उतरा—

उसके अदृश्य होते ही रे,
उतरा वह मन धीरे धीरे,

मन के धरातल पर उतर आने के बाद पुनः 'अनल प्रतिभा' वामा के रूप में अपनी प्रसुप्त प्रतिभा की झाँकी मिली, और, पुनः मन ऊपर को उड़ान भरने लगा—

दृष्टि से भारती से बंध कर
कवि उठता हुआ चला ऊपर,
केवल अंबर केवल अंबर फिर देखा
धुमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र, शशि ताराहर,
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर क्षर देखा

स्पष्ट है कि आकाश, विहंग और उसका स्वच्छन्दगान निराला की गम्भीरतम अन्तर चेतना के प्रतीक हैं। उनकी कथित विक्षिप्त अवस्था आकाश के सुदूर, धूमिल अन्तरालों में खोये हुए की अवस्था है जिससे नीचे उतरना निराला ने स्वीकार ही नहीं किया।

तब निराला के रहस्यवाद का क्या रहस्य है? निराला का रहस्यवाद चेतन मन और अचेतन के अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न साम्ध्य-ज्योति सी धूमिल अनुभूति का नाम है। जिन प्रतीकों द्वारा यह अन्तर्द्वंद्व प्रतिलक्षित होता है वे हैं तम और तेज, जड़ और चेतन, आकाश आर समुद्र तथा इन में उड़ना, तैरना पार करना, डूबना इत्यादि। प्रभात, किरण पर्वत, नद-नदी, विहंग, गान इत्यादि इन्हीं प्रतीकों के पोषक हैं। कवि की अचेतन आकांक्षा, उसका उद्दाम काम जो जल कर भस्म तो हुआ, किन्तु प्रभाव अन्तर में व्याप्त हो गया, और अन्त में कवि को इतिहास द्वारा दिया गया 'मिशन', ये सभी जग-वीणा के स्वर के वहार' और 'देदीप्यमान गीत' के रूप में प्रकट हो गये।

तम के अमार्ज्य रे तार तार
जो, उन पर पड़ी प्रकाश धार
जग वीणा के स्वर के वहार रे, जागो,
इस कर अपने कारुणिक प्राण
कर लो सक्षम देदीप्यमान—
दे गीत विश्व को रुको, दान फिर मांगो

कविता निराला के कवि-मन को किस रूप में प्रस्तुत करती है? सारी कविता 'स्वप्न' सी प्रतीत होती है जिसमें प्रतीकों की धुंधली छायाएं बादल के खन्डों की भाँति उड़ती हैं। कहीं आकाश की उड़ान है तो कहीं पाताल में प्रवेश। निरभ्र नभ में ज्योति की अग्नि फैलती है तो यदा-कदा तम वितान तन जाता है। गति सदैव स्वछंद रहती है, यहाँ तक कि भाषा, भाव या छन्दों की मर्यादा उसे रोक नहीं सकते। प्रकाश के साथ कभी कभी वीणा, विहंग के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। संक्षेप मे, 'तुलसीदास' निराला के मन की स्वप्न-सृष्टि है जिसमें चेतन जीवन की सीमाओं के पार स्वर और ज्योति से निर्मित एक आलौकिक लोक का आविर्भाव हुआ है।

—

महाकवि निराला और उनका साहित्य-सर्जन

श्री शिवनारायण खन्ना

युग-कवि जिस समय नवीन काव्य सृजन के लिए लालायित था, उसी समय निराला क्रान्तिकारी भावनाएँ और निराले गीत गाते हुए प्रकट हुए। रूढ़िग्रस्त छंद के बंध को तोड़कर मुक्त छन्दों का निर्बाध प्रयोग देख कर हिंदी जगत् स्तंभित रह गया। बंधी-बँधाई धारा में बहने वाले कवियों ने कोपदृष्टि से देखा। आलोचकों ने आलोचना की और आचार्यों ने भर्त्सना। पर निराला पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा, वे अपने पथ पर हिमालय की तरह अडिग डटे रहे।

यह भ्रम कि काव्य सृजन छंद के बंधन में ही हो सकता है, निराला ने दूर किया। भावाभिव्यक्ति छंद के शरीर में ही फिट करने की मान्यता और आस्था दूर हुई। निराला ने भावों के अनुरूप, उन्हीं के संकेत पर छंदों का सृजन किया और उन्हें सजोया सँवारा। निराला की यह भावाभिव्यक्ति संगीत के स्वर में स्वर मिलाकर चली है।

सन् १८९६ की वसंत पंचमी के दिन निराला का जन्म हुआ था। इनका बचपन का नाम सूर्य कुमार है। बाद में इन्हें सूर्यकान्त कहा जाने लगा। पिता बंगाल के महिषदल राज्य में नौकरी करते थे। तीन वर्ष की अवस्था में ही माँ का स्वर्गवास होगया। छोटे-छोटे अपराधों पर भी पिता इन्हें कठोर दण्ड देने से न चूकते थे। बंगाल में रहने के कारण निराला ने बंगाली का अध्ययन किया। पिता के असमय निधन के कारण पढ़ना छोड़कर नौकरी करने लगे।

, पत्नी मनोहरा देवी के हिन्दी ज्ञान से प्रभावित हो, हिन्दी अध्ययन में जुट गए। रामायण बड़ी रुचि और लगन के साथ पढ़ते थे। इसका उल्लेख निराला ने 'गीतिका' के समर्पण में किया है —"जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय मैं आँख नहीं मिला सका——लजा कर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश पिता के पास चला गया था और उस दीन हिन्दी प्रान्त में बिना शिक्षक के सरस्वती की प्रतियाँ लेकर पद साधना की और हिन्दी सीखी थी। जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रूक्षता को देख कर मुस्करा देती थी, जिसने अंत में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण परिणीता की तरह मिला कर मेरे जड़ को अपने चेतन हाथ से उठा कर दिव्य शृंगार की पूर्ति की उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया प्रकृति श्रीमती मनोहरा देवी को सादर प्रणाम।" विवाह के कुछ दिनों बाद ही पत्नी का स्वर्गवास हो गया।

निराला की प्रथम प्रौढ़ रचना 'जूही की कली' है। १९१६ ई० में रची 'जूही की कली' मुक्त छंद प्रकरण की प्रथम कड़ी है। 'जूही की कली' का मानवीकरण करते हुए कवि ने उसे प्रोषित-पति के रूप में चित्रित किया है। प्रारम्भिक पंक्तियों में सोती हुई कली का चित्र बड़ा सजीव और स्वाभाविक है——

विजन-वन-वल्लर पर
सोती थी सोहाग भरी, स्नेह-स्वप्न-मगन
अमल कोमल तनु तरुणी, जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल पत्रांक मे
वासन्ती निशा थी।

विजन-वन-वल्लरी पर पत्रों के अंक मे सोती हुई जुही की कली किसी तरुणी से कहीं अधिक आकर्षक है। पत्रांक शयन-स्थल होने से कली और भी सुकोमल हो उठी है और प्रियतम मलयानिल।

विरह-विधुर-प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।

इस कविता में रूपकों के साथ बनावटी कारीगरी अथवा खिलवाड़ नही किया गया है। स्वाभाविक रूप से शृंगार-रस की निष्पत्ति होती है। रस के सभी अवयव विभाव, अनुभाव और संचारी आवश्यकतानुसार स्वयं उपस्थित हैं। कविता की सरसता, सहज-सरल प्रवाह और सौन्दर्य दर्शनीय हैं।

कवि ने यह रचना आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के पास 'सरस्वती' मे प्रकाशनार्थ भेजी थी। छन्द-मुक्त होने के कारण द्विवेदी जी इसे स्वीकार न कर सके और लौटा दिया। सूर्यकान्त को दुख तो बहुत हुआ पर आप निराश न हुए। कवि को चिढ़ाने के लिए इनसे एक साहित्यकार ने पूछा कि इनकी 'जुही की कली' किस वाद के अन्तर्गत है। कवि का मजाक भरा उत्तर था कि छायावाद है। इस कविता मे नायक-नायिका की छाया पवन और कली के रूप में हैं, तभी से इस भाव धारा का नाम छायावाद पड गया।

'अधिवास' भी १९१६ ई० की रचना है। इसमें कवि ने प्रश्न उठाया है कि मनुष्य के कर्मों की समाप्ति भी क्या सम्भव है?

फँसा माया मे हूँ निरुपाय,
कहो फिर कैसे गति रुक जाय!

जब तक मनुष्य में सहानुभूति, करुणा और पर दुःखकातरता है, तब तक भावुक व्यक्ति हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठ सकता।

'हिन्दी बंगला का तुलनात्मक व्याकरण, १९१९ मे सरस्वती के लिए प्रकाशनार्थ भेजा। द्विवेदी जी ने इसे शीघ्र ही प्रकाशित कर दिया। 'कविवर श्री चण्डीदास' प्रबन्ध १९२० मे लिखा गया। रविन्द्रनाथ ठाकुर और विवेकानन्द की रचनाओं का छन्दबद्ध अनुवाद इन्ही दिनों किया। 'रवीन्द्र कविता-कानन' के अधिकतर प्रबन्ध इन्ही दिनो मे लिखे गये। 'अध्यात्मबल' कविता कानपुर की 'प्रभा' में प्रकाशित हुई।

स्वभाव से मेल न खाने के कारण सूर्यकान्त ने महिषादल राज्य की नौकरी छोड दी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिलने वे प्रायः कानपुर जाने लगे। द्विवेदी जी ने

इनकी आर्थिक कठिनाइयाँ देख बाबू शिव प्रसाद गुप्त को परिचयात्मक पत्र लिखा कि वे 'ज्ञान मण्डल' में इन्हें कुछ काम दे दें पर कुछ कारणों से सूर्यकान्त इसका प्रयोग न कर सके। १६२१ में प्रताप प्रेस, कानपुर की बात चली, मालिक लोग २० रुपये प्रतिमाह देना चाहते थे, अतएव यहाँ भी कुछ न हो सका।

रामकृष्ण मिशन, अल्मोड़ा के अध्यक्ष हिन्दी में एक पत्रिका निकालना चाहते थे। द्विवेदी जी ने प्रभा में प्रकाशित 'आध्यात्मबल' के आधार पर ही उन्हें सूर्यकान्त का नाम सुझाया। पर तब तक अन्य सपादक मिल जाने से 'समन्वय' प्रकाशित होने लगा। निराला पुन महिषादल वापस आ गए। इन्होंने 'समन्वय' में 'युगावतार श्री रामकृष्ण' लेख भेजा। 'समन्वय' के मैनेजर स्वामी आत्मबोधानन्द के अनुरोध पर १६२२ में ये कलकत्ते आ गए और लगभग एक वर्ष 'समन्वय' का सपादन किया।

इस समय कलकत्ते मे रामकृष्ण तथा विवेकानन्द साहित्य का मनन किया। दार्शनिक तथा आध्यात्म विषयक लेख लिखे। तुलसी के रामचरित मानस पर प्रबन्ध लिखा। यह दार्शनिक चेतना काव्य के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

कलकत्ते में सूर्यकान्त का परिचय महादेव प्रसाद सेठ से हुआ। सेठ जी ने १६२३ में 'मतवाला' निकालना प्रारभ किया। निराला के साहित्यिक कार्यों से वे बहुत प्रभावित हुए। इस समय सूर्यकान्त की प्रतिभा को सबसे अधिक महादेव बाबू ने ही पहचाना। सूर्यकान्त को इनसे बड़ा उत्साह मिला। 'कुल्ली भाट' में इसका स्पष्ट निर्देश है—

"बहुत दिनों की बात है, तब मैं लगातार साहित्य समुद्र मन्थन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल, पान करने वाले अकेले महादेव 'मतवाला' सम्पादक। शीघ्र रत्न और रम्भा निकलने की आशा से अविराम मुझे मथने जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी। फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है। इसी पर वेदान्त विषयक नीरस एव साम्प्रदायिक पत्र का सम्पादन-भार छोड़कर मनसा वाचा कर्मणा भरसक कविता कुमारी की उपासना में लगा।"

इन दिनों प्राय अन्य पत्र पत्रिकाओं से इनकी रचनाएँ वापस लौट आती थीं। महादेव बाबू ने, जिससे यह निराश न हों इस लिए, १६२३ में 'मतवाला' में बुला लिया। 'मतवाला' के अनुप्रास पर इनका 'निराला' नामकरण हुआ। निराला जी स्वय लिखते हैं—"वे (महादेव बाबू) चाहते थे, इसका उल्लेख असम्भव है, और यह ध्रुव सत्य है कि वे न होते तो निराला भी न आया होता।"

लगभग एक वर्ष निराला 'मतवाला' में रहे। इनकी मुक्त छद की रचनाएँ मतवाला के प्रमुख पृष्ठों पर छपने लगीं। 'मतवाला' की तीसरी सख्या में १७ वें पृष्ठ पर प्रथम बार इसका 'निराला' नाम प्रकाशित हुआ। अठारहवें अक में 'जुही की कली' प्रकाशित हुई। यहाँ प्रथम बार पूरा नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला छपा। छद्म नामों से हिन्दी आचार्यों की व्याकरण और मुहावरों सबधी भूलें दिखाईं। गरगज सिंह वर्मा 'साहित्य शार्दूल' नाम से 'चाबुक' स्तभ

में लिख रहे। इसके कुछ लेख 'चाबुक' में संग्रहीत हैं। कहानियाँ 'जनावग्राली' नाम से भी लिखी। 'मतवाला' के बाद निराला की रचनाएँ यत्र-तत्र प्रकाशित होने लगीं।

मुशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव ने १६२३ मे कलकत्ते से कुछ प्रारम्भिक कविताओं का सकलन 'अनामिका' शीर्षक से निकाला। 'अनामिका' की, 'प्रगल्भ प्रेम' कविता मे छन्द के बंधन मुक्त होने की आवश्यकता पर जोर दिया।

> आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
> अर्ध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
> प्रिया छोड़ बन्धनमय छन्दों की छोटी राह
> गजगामिनी, वह पथ तेरा संकीर्ण कंटकाकीर्ण
> कैसे होगी उससे पार।"

प्राचीन भारतीय सस्कृति का दिग्दर्शन इस संग्रह में बड़े अच्छे रूप में हुआ है। 'यमुना के प्रति', 'दिल्ली', 'खण्डहर के प्रति' इसी प्रकार की अतीत-गौरव संबंधी रचनाएँ हैं। कवि खण्डहर से पूछता है कि क्या तुम जानते हो—

> "अति भारत जनक हूँ मैं
> जैमिनि-पंतजलि-व्यास ऋषियों का
> मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर
> तेरा है बढ़ाया मान
> राम-कृष्ण-भीमार्जुन-भीष्म नर देवों ने।
> भूले वे मुक्त मान, साम-गान, सुधा-पान।

दिल्ली में देश की अन्वति का बड़ा करुण वर्णन है—

> "क्या यही वह देश है ?
> पृथ्वी की चिता पर
> नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
> किया आहरत जहाँ विजित स्वजातियों को
> आत्म बलिदान से।

'अनामिका' की कुछ कविताओं में वर्तमान सामाजिक स्थिति का चुटीला वर्णन तथा कुछ में शुद्ध व्यंग्य भी है।

उस युग में साहित्य को आजीविका का साधन बनाना सरल न था। फिर कलकत्ते का जीवन। अगले पाँच वर्ष आर्थिक चिन्ता, शारीरिक और मानसिक रोग तथा अस्थिरता में व्यतीत हुए। 'सरोज-स्मृति' मे कवि स्वयं कहता है—

> दुख ही जीवन की कथा रही
> क्या कहूँ आज, जो नही कही।

आर्थिक कठिनाइयो को दूर करने के लिए निराला ने जीवनी तथा प्रवन्ध आदि लिखने का निश्चय किया। भक्त ध्रुव, भक्त प्रहलाद, भीष्म तथा महाराणा प्रताप इन्हीं दिनों

की रचनाएँ हैं। दि पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी कलकत्ता ने इन्हें १६२६-२७ में प्रकाशित किया। यह सभी जीवनियाँ १०० पृष्ठों के आस पास और १२ सेन्टीमीटर लम्बे आकार की हैं। १६२५ में कलकत्ते के 'श्रीकृष्ण सन्देश' में 'चरखा' प्रबन्ध प्रकाशित हुआ। यह लेख रवीन्द्रनाथ और गांधी जी के चरखे संबंधी विवाद पर है। इसमें भोजन, वस्त्र तथा रोजी जैसी समस्याओं पर विचार किया गया है। १६२६-२८ के बीच निराला जी बराबर बीमार से ही रहे।

निहालचन्द एण्ड कम्पनी, कलकत्ता ने रवीन्द्र संबंधी सामग्री का संग्रह 'रवीन्द्र कविता कानन' शीर्षक से प्रकाशित किया। इस 'कानन' में रवीन्द्र की कुछ चुनी हुई कविताओं को आलोचना सहित हिन्दी पाठकों के सामने रखा गया है। गद्य का सतर्क, सचेतन तथा मार्जित रूप है। 'रवीन्द्र कविता कानन' में कवि का परिचय यों दिया गया है "जागरण के प्रथम प्रभात मे आवेश भरी भैरवी बंगालियों ने सुनी, वह संगीत, वह ताल, वह स्वर, बस जैसा चाहिए वैसा ही। प्रकृति का अभाव पूरा कर दिया। ये सौभाग्यवान पुरुष बंगाल के जातीय महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं।"

'हिन्दी बंगला शिक्षक' तथा 'रामकृष्ण वचनामृत'—(अनुवाद) इन्हीं दिनों की रचनाएँ हैं। श्री गुलाबरायजी के आमन्त्रण पर चण्डीदास के ग्रन्थों के अनुवाद के सिलसिले में छतरपुर गये, पर स्वास्थ्य बिगड़ने तथा अन्य कारणों से शीघ्र ही वापस आ गए। तुलसी के रामचरित मानस की टीका लिखने का विचार किया, पर बाबू शिवपूजन सहाय ने कहा कि हिन्दी में अभी ऐसा कार्य करने से अधिक पैसा न मिल सकेगा। अतएव यह कार्य स्थगित कर दिया गया।

कलकत्ता में निराला के जामाता पं० शिवशेखर द्विवेदी ने 'रंगीला' मासिक पत्र निकाला। इसका सम्पादन कुछ दिनों तक निराला जी ने किया। पर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण १६२७ में यह कलकत्ते से काशी चले आए। यहाँ कुछ दिनों प्रसाद जी के यहाँ भी ठहरे। १६२६ से गंगा पुस्तक माला का सम्पादन प्रारम्भ किया। कोई बन्धन न होने के कारण इन्हें यह कार्य पसन्द था। 'सुधा' का सम्पादकीय भी लिखा करते थे।

इन दिनों की रचनाएँ गंगा पुस्तक माला से ही प्रकाशित हुई। इन दिनों की प्रमुख रचनाएँ 'अप्सरा' और 'अलका' उपन्यास तथा 'लिली' संग्रह की कहानियां हैं। गंगा पुस्तक माला से प्रकाशित होनेवाली रचनाओं में प्रथम 'परिमल' काव्य संग्रह १६३० मे प्रकाशित हुआ। अधिकतर कविताएँ समन्वय और मतवाला काल की हैं। 'परिमल' पर रामकृष्ण मिशन के अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा है। 'भिक्षुक' और 'दीन' आदि कविताओं में करुणा को उभारते हुए विकसित किया है। अनेक कविताओं में वेदना है। कहीं थके हुए पथिक की तरह विश्राम की कामना की है तो कहीं प्रकृति ही विश्राम के लिए प्रेरित करती है। 'परिमल' का कवि प्रेम और सौन्दर्य का भी कवि है।

'परिमल' की प्रथम कविता 'जुही की कली' है। जागृति में सुप्ति में कवि अपने पिछले स्वप्न भूलने के साथ साथ नये की कल्पना करता है। पंचवटी में सूपनखा अन्य किसी पर विश्वास न करके स्वयं अपनी प्रशंसा करती है। उसे लगता है कि संसार भर का सौन्दर्य ब्रह्मा ने उसी के अंगों में भर दिया है। प्रकृति भी उसका सौन्दर्य देखकर लज्जित हो उठती है—

"देख यह कपोल कंठ
बाहु कल्ली कर सरोज
उन्नत उरोज पीन-क्षीण-कटि—
नितम्ब-भार चरण सुकुमार—
गति मन्द-मन्द,
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।"

काल की दृष्टि से 'परिमल' के द्वितीय खण्ड की कविताएँ प्रथम खंड से पहले की हैं। सौन्दर्य की अपेक्षा कवि का ध्यान प्रेम और परिणति की ओर अधिक है। 'परिमल' के कुछ प्रकृति-चित्रण हिन्दी कविता में बिलकुल नए हैं। निराला बरसते हुए मूसलाधार पानी में बहुत भीगे। अतः इस संग्रह में बादलों पर कई कविताएँ हैं। बादल को आकाश का चंचल शिशु, समुद्र का आँसू, खिन्न दिवस का राहू, सूर्य का चुना हुआ फूल और स्वर्ग को सोखने वाला आदि बनाया है। कलेजे के दो टूक करने वाला भिक्षुक भी इसी संग्रह में है। भिक्षुक का लकुटिया टेक कर चलना, फटी-पुरानी झोली का मुँह फैलाना, साथ के बच्चों का पेट मलना और फैलाना और कुछ न मिलने पर आँसुओं के घूँट पीकर रह जाना, बड़े सजीव चित्र हैं।

'हमें जाना है जग के पार' जैसी कविताएँ पलायनवादी कही जा सकती है। रहस्यवादी कविताओं में रवीन्द्र और विवेकानन्द का पर्याप्त प्रभाव है। 'देवि तुम्हें मैं क्या दूँ', 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' आदि रचनाएँ ऐसी ही हैं। पर इन रहस्यवादी कविताओं में कवि अपनी व्यथा नहीं भूला है। 'यमुना' और 'पंचवटी प्रसग' पौराणिक, 'शिवाजी का पत्र' और 'जागो फिर एक बार,' राष्ट्रीय गीत हैं। भाषा और छन्द की दृष्टि से बहुत कुछ अलग हैं।

सन् १९३१ के प्रारम्भ में गगा पुस्तक-माला से प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' प्रकाशित हुआ। भूमिका में हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों पर व्यंग्य किया गया है। कथानक प्रेम के साथ साथ राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी भावनाओ से ओतप्रोत है। देशसेवा के साथ-साथ रोमान्स भी चलता है। सम्पूर्ण रूप से उपन्यास घटना प्रधान कहा जा सकता है। विरोधियों ने इस उपन्यास पर अनेक आक्षेप किए, पर इसके पाठक काफी रहे और इसने अच्छी लोकप्रियता प्राप्त की।

'अप्सरा' के बाद 'अलका' लिखा गया। गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ से यह उपन्यास १९३३ में प्रकाशित हुआ। कथानक ग्रामीण-जीवन पर आधारित है।

'अलका' निराला के संक्रमण-काल की रचना है कला-विकास के लिये रोमान्स के साथ-साथ जनसाधारण का दुःख-दर्द भी है। ताल्लुकदार मुरलीधर के संबंध में निराला कहते हैं —'जब से मुरलीधर पैतृक सिंहासन पर अपने नाम की मुरली धारण कर बैठे, बराबर सनातन प्रथा के अनुसार सरकारी अफसरो की सुहावनी छेड़ते जा रहे हैं।' पात्र अधिक होने के कारण सभी को विकसित होने का अवसर नहीं मिला सकता है। 'अलका' में शंकर और शोभा, अजित और वीणा और मुरलीधर तथा उसके साथियों के गुट हैं। यह एक दूसरे से मिलते-छूटते कथानक को आगे बढ़ाते हैं।

पहला कहानी संग्रह 'लिली' १६३३ में गंगा ग्रंथागार लखनऊ से प्रकाशित हुआ। 'लिली' की भूमिका में निराला जी कहते हैं—"मुझसे पहले वाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक इस कला को किस दूर उत्कर्ष तक पहुँचा चुके है, मैं पूरे मनोयोग से समझने का प्रयत्न करके भी नहीं समझ सका। समझता तो शायद उससे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता और पतन के भय से इतना न घबड़ाता।"

'लिली' में लिली, ज्योतिर्मयी, कमला श्यामा, अर्थ, प्रेमिका परिचय, परिवर्तन और हिरनी कहानियाँ संग्रहीत है। लिली के नायक नायिका जाति बन्धन के कारण परस्पर विवाह नहीं कर पाते और वे देश सेवा का व्रत ले लेते हैं। ज्योतिर्मयी में अन्तर्जातीय विवाह का अच्छा समाधान है। कमला और श्यामा में प्रतिशोध की भावना है। 'अर्थ' में अध्यात्म के सहारे आर्थिक समस्याएँ सुलझाई गई हैं। हिरनी में व्यंग्य के सहारे सामन्ती जीवन का चित्रण है। 'प्रेमिका परिचय' और परिवर्तन' यथा नाम तथा गुण हैं।

निराला की अधिकतर कहानियाँ 'अप्सरा' और 'अलका' का ही लघु चित्रण कही जा सकती हैं। कहानियों के नायक शिक्षित, बड़े बाप के बेटे, राजनीतिक और क्रान्तिकारी हैं। नायिकाएँ सोलह वर्ष की खिलती हुई कलियाँ है। कहानीकार के सामने देश की राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ है। इनका समाधान यथार्थ की भूमि पर अध्यात्म के भवन से किया गया है।

केवल कविता लिखने या गीत गाने से ही जीविका नहीं चल सकती। अतएव समय-समय पर निराला फुटकर लेख भी लिखते रहे थे। गंगा-ग्रन्थागार के दुलारे लाल भार्गव ने इनके कुछ निबन्धों का संग्रह 'प्रबन्ध पद्य' शीर्षक से १६३४ में प्रकाशित किया। यह निराला का प्रथम निबन्ध संग्रह है। इस संग्रह में साहित्य और भाषा, मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य, एक बात, पन्त और पल्लव, राष्ट्र और नारी, रूप और नारी हमारे साहित्य का ध्येय, काव्य मे रूप और अरूप और साहित्य का फूल, अपने ही वृन्त पर, निबन्ध संग्रहीत हैं।

'पन्त और पल्लव' लेख पहले एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका में भेजा था। पल्लव की भूमिका में कुछ आक्षेप होने के कारण यह वापस कर दिया गया। 'प्रबन्ध-पद्य' के निबन्ध गम्भीर तथा साहित्यिक है।

'सखी' कहानी संग्रह गङ्गा ग्रन्थागार ने १६३५ में लखनऊ से प्रकाशित किया। १६३६ के प्रारम्भ में पहला ऐतिहासिक उपन्यास समाप्त हुआ। 'प्रभावती' शीर्षक से गंगा-ग्रन्थागार ने इसे इसी वर्ष प्रकाशित किया। प्रारम्भिक वातावरण बैसवाड़े का है। बैसवाड़े के वन-उपवन नदी-नाले, रीति रिवाज आदि का बड़ा सजीव चित्र है। इस उपन्यास को आधुनिक आँचलिक कथाओं का प्रारम्भ कहा जा सकता है। प्रभावती की घटनाएँ बड़े चमत्कारिक ढंग से घटती हैं। कथानक कुछ उलझा हुआ सा आगे बढ़ता है। कथानक दुःखान्त हैं।

आदर्श पात्र यमुना कहती है—'वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा में बौद्धों पर विजय पाने वाले क्षत्रिय कदापि इस धर्म की रक्षा न कर सकेंगे क्योंकि साधारण जातियाँ इनके प्रति घृणा भावों से पीड़ित हैं। यह आपस में कटकर क्षीण हो जायगा।'

'निरूपमा' के दो अध्याय 'सुधा' में प्रकाशित हुए थे। पर 'सुधा' छोड़ने के कई वर्ष बाद यह उपन्यास पूर्ण हुआ। भारती-भंडार, इलाहाबाद ने इसे १६३६ में प्रकाशित किया। इस उपन्यास में निराला ने मुक्त-प्रेम (गम्भीर) का समर्थन किया है। विदेश जाने के कारण नायक कृष्णकुमार के परिवार की जातिच्युत कर दिया गया है। माँ और छोटे भाई के अनेक अत्याचार सहने पड़ते हैं। सारी जायदाद रेहन रख दी जाती है। नौकरी न मिलने के कारण कृष्णकुमार बूट पालिश करने लगता है। निरूपमा से प्रेम और फिर विवाह होने पर उसे जमीन जायदाद आदि सब कुछ मिल जाता है। वस्तुतः 'निरूपमा' एक यर्थवादी उपन्यास है।

'निरूपमा' का गद्य देखिए--"गुरूदीन तीन बिस्वेवाले तिवारी हैं, सीतल पाँच बिस्वे वाले पाठक, मुन्नी दो बिस्वे के सुकुल, ललई गोद लिए हुए मिसिर—

भारती भंडार, इलाहाबाद से 'गीतिका' १६३६ में प्रकाशित हुई। इसे इन्होंने अपनी प्रियतमा 'मनेहरा देवी' को समर्पित किया है। भूमिका प्रसाद जी ने लिखी हैं तथा परिचय श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का है। 'गीतिका' गीतात्मक तथा संगीतात्मक गीतों का संकल है।

हिन्दी संगीत की शब्दावली तथा गाने का ढंग निराला को खटका। खड़ी बोली में संगीत के लिए शब्दावली बदलना आवश्यक समझा। 'गीतिका' की भूमिका में निराला लिखते हैं......

"प्राचीन गवैयो की शब्दावली, संगति की रक्षा के लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिये उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। आज तक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से ही मुखर करने की कोशिश की है।"

निराला ने सगीत का ही ध्यान न रखकर काव्य की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया हैं। निराला के गीत उस्तादी गीतों की तरह रूढ़िग्रस्त राग-रागनियों से आवद्ध नहीं हैं। ये गीत एक अलग नींव पर ही बनाए गए हैं। निराला के गीतों का स्वर, लय और ताल बंगला तथा अंग्रेजी गीतों से प्रभावित हैं। अधिकतर गीतों में उद्‌बोधन तथा माधुर्य-भाव से आत्म-निवेदन है। मूल भावना शृंगारिक है। विषय की दृष्टि से गीतिका के गीत प्रार्थनाप्रधान, प्रकृतिचित्रण, राष्ट्रीय, दार्शनिक और नारी सौन्दर्य संबंधी हैं।

'गीतिका' का प्रथम गीत सर्वपरिचित हैं—

"वर दे, वीणावादनि वर दे।
प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मन्त्र नव भारत में भर दे।
कलुप-भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग वर दे।"

कवि की कामना है———

मेरे प्राणों के प्याले को भर दो,
प्रिये दृग के मद से मादक कर दो,
मेरी अखिल पुरातन-प्रियता हर दो,

मुझको एक अमर वर दो,
मैने जिसकी हठ ठानी।

कामना प्रधान गीतों में जागरण तथा सम्पूर्ण विश्व की मंगल कामना की है। प्रकृति वर्णन बिलकुल सहज और स्वाभाविक है——

'डूबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छल छल
स्निग्ध अंधकार सघन
मन्द गंध-भार पवन,
ध्यान-लगन नैश गगन
मूँदे दल नीलोत्पल,

नाना रूप जगत में ही ब्रह्म की सत्ता है——

जग का इक देखा तार
कंठ अगणित, देह सप्तक, मधुर स्वर झंकार।
बहु सुमन, बहुरंग, निर्मित एक सुन्दर हार।
एक ही कर से गुंथा, उर एक शोभा भार।

निराला कबीर के निर्गुण से भी प्रभावित हैं——

पास ही रे हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान?

नारी सौंदर्य का चित्रण बड़े मनोयोग से किया है। सोकर उठती हुई नायिका का चित्र है——

'हेर उर पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेह में प्रिया स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्त, मुक्ता त्याग में तानी।

नायिका अपने उर पर बिखरे अस्त व्यस्त बालों को देखती है, बिखरे बालों को हटाती है, फिर चारों ओर देखती है कि किसी ने उसे देखा तो नहीं। वासना से दूर कितना मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक चित्रण है।

संयोग शृंगार का वर्णन होली के रूपक में बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है

नयनों के डोरे लाल गुलाब भरे, खेली होली।
जागी रात सेज पति संग रति सनेह रंग घोली,
प्रिय कर कठिन-उरोज परस कस कसक मसक गई चोली
एक वसंत रह गई मन्द हँस अधर दसन अनबोली—
कली सी काँटे की तोली।"

निराला की राष्ट्रीय कविताएँ भी निराली ही है। निम्न भारत-वंदना बंगला से प्रभावित है—

> "भारति, जय, विजय करे।
> कनक शस्य कमल धरे।

'गीतिका' का शब्द चयन बड़ा ही उपयुक्त है, पर कहीं कहीं कला प्रवल होने से भावपक्ष दब गया है। अर्थ में दुरूहता तथा अनगढ़ शब्दों के प्रयोग का भी यही कारण है। पूर्ण साहित्यिक तथा दुरूहता के कारण निराला के गीत अधिक प्रचलित नही हो सके।

काव्य-ग्रन्थ 'तुलसीदास' इलाहाबाद के भारती-भन्डार ने १६३८ में प्रकाशित किया। इसका रचना-काल १६३५ और ३८ के बीच का है। आकार की दृष्टि से निराला की काव्य रचनाओं मे 'तुलसीदास' का प्रथम स्थान है। 'तुलसीदास' मे अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों का बहुत ही सुन्दर तथा स्पष्ट निरूपण हुआ है। वैराग्य-प्रवेश के प्रचलित कथानक में तुलसी का मानसिक द्वन्द्व, मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ और उनका उद्घाटन स्वाभाविक पर साहित्यिक रूप से बड़ा ही सुन्दर हुआ है।

आरम्भ मे कवि ने प्राचीन भारतीय सस्कृति के ह्रास और उनके कारणो का निर्देश किया है—

> "भारत के नभ का प्रभा सूर्य
> शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
> अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिमंडल
> उर के आसन पर शिरस्त्राण।
> शासन करते है मुसलमान।"

दासता स्वीकार करने वाले हिन्दुओं को कवि फटकारता है—

> भारत के उर के राजपूत,
> उड़ गए आज वे देवदूत,
> जो रहे शेष, नृपवेश सूत वंदीगण।

कवि कहता है—

> करना होगा यह तिमिर पार
> देखना सत्य का मिहिर द्वार।

पर रत्नावली-मिलन होने पर—

> यह वही प्रकृति, पर रूप अन्य,
> जगमग जगमग सब वेश वन्य।

तुलसी का सारा ज्ञान पत्नी के मोह मे बँध जाता है—

> रति रहित कहाँ सुख ?
> केवल क्षति केवल क्षति।

ससुराल पहुँचने पर रत्नावली धिक्कारती है—

धिक! धाये तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुलधर्म धूत,
राम के नहीं काम के सूत कहलाये।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़, चाम,
कैसी शिक्षा, कैसे विराम आये।

और तुलसी के जगने पर सारी प्रकृति जाग जाती है—

जागो, जागो, आया प्रभात
बीती वह, बीती अन्ध रात।

'तुलसीदास' में कहानी की अपेक्षा चिंतन अधिक है। तुलसी मानस उद्घाटन का ही प्रयत्न किया गया है। इस उद्देश्य में कवि को बहुत कुछ सफलता भी मिली है। भाषा संस्कृत बहुल तथा दुरूह है।

रेखाचित्र 'कुल्लीभाट' गंगा ग्रंथागार, लखनऊ से १६३६ में प्रकाशित हुआ। पहले यह धारावाहिक रूप में 'माधुरी' में निकलता रहा था। निराला जी यह कथा अपनी मित्र-मण्डली में बड़े मनोयोग और नाटकीय ढंग से सुनाया करते थे। इस रेखाचित्र में निराला ने दिखलाया है कि अनेक कमजोरियों के होते हुए भी साधारण जन समाज की भलाई कर सकते हैं। बने हुए महापुरुष समाज के सेवक भी नहीं बन सकते।

समर्पण में निराला लिखते हैं "इस पुस्तिका के समर्पण के योग्य कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्य में नहीं मिला, यद्यपि कुल्लीभाट के गुण बहुतों में हैं, पर गुण के प्रकाश से सब घबराए। इसलिए समर्पण स्थगित करता हूँ।"

भूमिका में 'कुल्लीभाट' का स्पष्टीकरण है 'पं० पथवारी दीनजी भट्ट (कुल्लीभाट) मेरे मित्र थे। उनका परिचय इस पुस्तिका में है। उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित भी आया है, और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है। रूढ़िवादियों के लिये यह दोष है पर साहित्यिकों के लिये, विशेषता मिलने पर, गुण होगा। पुस्तिका में हास्य रस की प्रधानता है इसलिये कोई नाराज होकर अपनी कमजोरी न साबित करें।

कुल्लीभट्ट हास्यरस की जीवनी ही नहीं वरन् एक सामाजिक व्यंग्य है। पुस्तक के प्रारम्भ में लेखक ने जीवनी लिखने वालों पर व्यंग्य किया है। निराला जी के मत से जीवनियों में जीवनी की अपेक्षा चरित अधिक रहता है। कुल्ली का चरित्र लिखकर निराला एक नवीन मार्ग प्रदर्शित किया है।

निराला जब १६ वर्ष के कुमार थे, उस समय से कुल्ली की कथा आरम्भ होती है। इस रेखाचित्र में निराला ने अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कहा है "संगीत और साहित्य पर उनका यह अधिकार देख, मेरा दम उखड़ गया।" अछूतों के सम्बन्ध में निराला लिखते हैं, इनकी ओर कभी किसी ने नहीं देखा है। ये पुश्त दर पुश्त से सम्मान देकर नतमस्तक ही

संसार से चले गये हैं। संसार की सभ्यता के इतिहास में इनका स्थान नहीं। ये नहीं कह सकते, कि हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणादि हैं।....फिर भी ये थे और हैं।"

कुल्ली भट्ट का व्यंग्य सम्पूर्ण युग पर है। इसमें निराला ने कुल्ली, सासुजी, चन्द्रिका, अपने पिता और अपना स्वयं का चित्रण तूलिका से किया है। भाषा सरल तथा प्रवाहवान है।

इन्हीं दिनों इंडियन प्रेस से वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों के अनुवाद के सम्बन्ध मे बात हुयी। निराला ने कार्य प्रारम्भ कर दिया। आनन्दमठ, कपाल कुण्डला, चन्द्रशेखर और राधारानी आदि अनुवाद १६३८-३६ में इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुये। संक्षिप्त महाभारत भी गंगा ग्रंथार ने १६३६ में लखनऊ से प्रकाशित किया।

निबध-संग्रह प्रबन्ध-प्रतिमा १६४० में भारती भन्डार, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। ये निवंध १६२५ और १६३८ के बीच लिखे गये थे। चरखा, गाँधी जी से बातचीत, नेहरू जी से दो बातें, महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर, नाटक समस्या, साहित्यिक सानिपात या वर्तमान धर्म, रचना सौष्ठव, भाषा विज्ञान, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ, सामाजिक पराधीनता, विद्यापति और चन्डीदास, कविवर श्री चण्डीदास, कवि गोविन्द दास की कुछ कवितायें, कला के विरह में जोशी बन्धु, हिन्दी साहित्य में उपन्यास, वर्तमान हिन्दू समाज, प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन, फैजाबाद, मेरे गीत और कला, बंगाल के वैष्णव कवियों का शृंगार वर्णन और हमारा समाज, प्रवन्ध इस संग्रह में हैं। प्रबन्ध-पद्म' के बाद यह निराला का दूसरा निबन्ध सग्रह है।

'वर्तमान धर्म' निबन्ध 'भारत' में प्रकाशित हुआ था। इसी लेख को श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'साहित्यिक सन्निपात' शीर्षक से कलकत्ते के 'विशाल भारत' में प्रकाशित किया। इस लेख पर काफी वादविवाद तथा पत्र-व्यवहार भी हुआ। इसकी प्रसिद्धि का श्रेय 'विशाल भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को है, वरना लोग इसे भूल जाते। निराला-चतुर्वेदी विरोध में इस निबन्ध का काफी हाथ है। 'मेरे गीत और कला' में निराला ने छायावादी कवितायें और अपने गीत को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। निराला-साहित्य को समझने की दृष्टि से यह लेख बड़ा उपयोगी है।

'बिल्लेसुर बकरिहा'-युग मन्दिर, उन्नाव से १६४१ में प्रकाशित हुआ। 'कुल्लीभाट' की तरह यह भी व्यंग्यात्मक रेखाचित्र है। इसी अवध के कृषक जीवन की झांकी है। उन्नाव का रहने वाला बिल्लेसुर बकरियाँ पालने के कारण 'बकरिहा' हो जाता है। बिल्लेसुर और उसके भाई मन्नी, ललई तथा दुलारे का चित्रण बड़ा रोचक तथा मनोरंजक है। मन्नी ने आधी रात को अपनी भावी पत्नी को गले लगाया। बिल्लेसुर का जीवन बड़े जीवट का जीवन है। सत्तीदीन की पत्नी से बचना उसके लिये सबसे अधिक टेढ़ी खीर होती है। फिर भी वह अपने सिद्धान्त पर अडिग रहता है। परिस्थितियाँ आस्तिक बिल्लेसुर को नास्तिक बना देती हैं।

विवाह की बात चलने पर, 'एक दफा भी बिल्लेसुर ने नहीं सोचा कि बकरी की लेंडियों की बदबू में ऐसी औरत एक दिन भी उस मकान में रह सकेगी। पर बिल्लेसुर की मेहनत और उसके धैर्य से अंत में उसे सफलता मिलती है। निराला ने इस रेखाचित्र में यथार्थवाद को नई दिशा दी है।

कहानी-संग्रह 'सुकुल की बीवी' १९४१ में भारती भण्डार, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में चार कहानियाँ हैं—सुकुल की बीवी, गजानन्द शास्त्रिणी, कला की रूपरेखा और क्या देखा। 'क्या देखा' निराला की पहली कहानी है। १९२३ में यह 'मतवाला' में छपी थी। इस संग्रह में यह कुछ परिवर्तन के साथ आई है। आरम्भ उत्तम पुरुष से होता है, फिर तृतीय पुरुष मे बदल जाता है। निराला के मतानुसार पाठक इसे गुण या दोष, जो चाहें, वह मान सकते हैं। कथानक विवाह-संबंध पर आधृत है। लेखक सम्भवत स्वय 'बिहारी' के रूप में है। कहानी में दिखाया है, कि वेश्यायें भी सच्चा प्रेम कर सकती हैं।

'सुकुल की बीवी' कहानी में हिंदू-मुसलमान के विवाह-संबंध की समस्या है। कहानी कवि के अपने अनुभवों पर आधारित कही जा सकती है। लेखक का अपना व्यक्तित्व उभर कर आया है। 'कला की रूप रेखा' व्यक्तिगत स्केच है। कहानी के माध्यम से लेखक ने कला की परिभाषा स्पष्ट करने की चेष्टा की है। श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी व्यंग्य प्रधान कहानी है। इसका स्थान निराला की श्रेष्ठ कहानियों में है। श्रीमती के सुझाव और उनकी मदद से शास्त्रिणी जी कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं। इस कहानी के सभी क्रिया कलाप 'धर्म की रक्षा के लिए' होते हैं। कहानी में बड़ा तीखा व्यंग्य है।

'रूपाभ' पत्रिका में 'चमेली' उपन्यास का प्रथम परिच्छेद १९४१ में प्रकाशित हुआ। बाद में यह पूर्ण न हो सका।

१९४२ में व्यंग्य काव्य 'कुकुरमुत्ता' युग मन्दिर, उन्नाव से प्रकाशित हुआ। काव्य के क्षेत्र में यह एक नवीन प्रयोग है। कहीं-कहीं प्रगतिवाद के विरोध मे ही तर्क उपस्थित किए गए हैं। पतितों का प्रतीक और कुकुरमुत्ता सर्वहारा का प्रतीक है। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है—

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट
रोज पड़ता रहा पानी,
तू हरामी खानदानी।

'कुकुरमुत्ते' के दूसरे भाग में समन्वयवादी सिद्धान्तों पर प्रहार किया गया है। बाग के मालिक की पुत्री गोली और नवाब की पुत्री बहार इसी के प्रतीक हैं।

साथ साथ ही रहती दोनों
अपनी अपनी कहती दोनों,
दोनों के थे दिल मिले,
आँखों के तारे खिले।

'गर्म पकौड़ी' और 'प्रेम-संगीत' रोमान्स विरोधी कविताएँ है। 'प्रेम-संगीत' में कवि पनिहारिन की कुरूप लड़की से प्यार करता है। 'रानी और कानी' यथार्थवादी कविता में कवि कहता है—

लेकिन था उल्टा रूप
चेचक मुंह दाग, काली, नाक चिपटी,
गंजासर, एक आँखकानी ।

'खजोहरा' टैगोर के 'विजयिनी' की पैरोडी है। 'मास्को डायलाग्ज' विनोदी तथा 'स्फटिक शिला' यथार्थवादी कविताएँ है।

'कुकुरमुत्ता' विशेषकर शैली की वस्तु है । 'तारसप्तक' और 'कुकुरमुत्ता' का रचना काल प्रायः एक ही है। 'कुकुरमुत्ता' में अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया गया है। मुहावरो का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में है।

काव्य संग्रह 'अणिमा' युग मन्दिर, उन्नाव से १६४३ में प्रकाशित हुआ। 'अणिमा' के गीत व्यंग्य की अपेक्षा शान्तिप्रद हैं। 'अणिमा' मे संसार के लिए सन्देश, आत्मनिवेदन, महा-पुरुष की वेदना है। इस प्रकार के गीतों में प्रार्थना अधिक और कवित्व कम है। प्रथम गीत की शब्द योजना और गाने की अनुकूलता वरवस ही मन को आकृष्ट कर लेती है—

नूपुर के सुर मन्द रहे

विपादमय गीत कवि के करूण हृदय के सच्चे उद्‌गार हैं।

"मैं अकेला,
देखता हूं, आ रही,
मेरे दिवस की सांध्य वेला।
पके आधे वाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही
हट रहा मेला ।

सूखी आम की डाल के माध्मम से कवि का अपना जीवन उभर आया है :—

"स्नेह निर्झर वह गया है,
रेत ज्यों तन रह गया है।

इस संग्रह में रवीन्द्रनाथ, आचार्य शुक्ल, प्रसाद तथा महादेवी पर भी कविताएँ हैं। 'प्रसाद के प्रति' में अन्य अनेक साहित्यिकों को स्मरण किया गया है। विजयलक्ष्मी पंडित पर भी दो कविताएँ हैं। 'भगवान बुद्ध के प्रति' में वौद्ध दर्शन के साथ-साथ गांधी-विचारधारा का भी समावेश है। भिखमंगों की ओर कवि कहता है :—

तुम्हें चढ़ाता वह भी सुन्दर
जो द्वार द्वार फिर कर
भीख माँगता कर फैलाकर।"

कवि ने आधुनिक भौतिकता का विरोध किया है—

आज लक्ष्य में मानव के, स्थल जल अम्बर
रक्त-धार बिजली, जहाज यानों में भर
दर्पपर रहे हैं मानव वर्ग से वर्ग गण
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण

इस प्रकार 'अणिमा' का विषय वस्तु मानव मानव की समता, जाति बन्धन, भावना रंगभेद में एकता आदि हैं। कुछ अन्तिम कविताओं में उर्दू शब्दों का प्रचुर प्रयोग है।

'चतुरी चमार' कहानी संग्रह १९४५ में किताब महल इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में चतुरी चमार, सखी, न्याय, राजा साहब को ठेंगा दिखाया, देवी, स्वामी सारदानन्द जी महाराज और सफलता तथा भक्त और भगवान कहानियाँ हैं। इनमें चतुरी चमार, देवी और सखी बहुत प्रसिद्ध हैं। चतुरी चमार और देवी कहानियाँ परस्पर बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। दोनों की शैली तथा रचनाक्रम लगभग एक ही है। लेखक स्वयं दोनों कहानियों में पात्र के रूप में आता है। व्यंग्य की विविधता चतुरी चमार में अधिक और देवी में कम है चतुरी चमार का ज्ञान देख सहसा कह उठता है—"तुम पढ़े लिखे होते तो पाँच सौ की जगह पाते।" चतुरी निम्न अछूत वर्ग का प्रतीक है।

देवी कहानी में लेखक ने स्वयं अपने ऊपर ही व्यंग्य किया है। देवी एक साधारण पागल सी स्त्री है। पर मातृत्व की भावना उसमें बहुत तीव्र है। कवि का अहंकार उसके सामने ठहर नहीं पाता। पगली का जीवन सम्पूर्ण समाज पर व्यंग्य है। सखी कहानी का नायक सरकारी अफसर है। लीला एम० ए० में पढ़ती है और ट्यूशन करके अपना खर्च चलाती है। गुन्डों के पीछा करने पर नायक अधिकारी उसकी रक्षा करता है। नायक एक घायल आदमी की मदद करने के कारण पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है। उसकी सहपाठिनी बुद्धियुक्त से उसे छुड़ा लेती है।

साहित्यिक नरेन्द्र सफलता का प्रधान पात्र है। गुजारे के लिए धन की व्यवस्था न होने के कारण आभा को साथ नहीं रख पाता। फिर आभा के सहयोग से फिल्मी दुनिया में प्रवेश कर कम्पनी का मालिक बन जाता है। अन्त में वह अपने पुराने प्रकाशक से बदला लेने में सफल होता है। 'भक्त और भगवान' में लेखक ने दिखाया है कि ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा होने पर भी जन साधारण की समस्यायें हल नहीं होतीं।

भारति जय विजय करे
कनक शस्य कमल धरे।

दूसरी 'बादल राग' कविता निराला का प्रसिद्ध क्रान्तिगीत है।

झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर।

'जाग्रति में सुप्त थी' शृंगारिक कविता है। निम्न पंक्तियों में सोई हुई प्रिया का चित्रण है—

जड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग से,
सो गया सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
क्षुब्ध एक कम्पन सा निद्रित सरोवर में।

प्रिया के मौन अधरों में उसकी मादक वाणी उसी प्रकार सो गयी है, जैसे निद्रित सरोवर में एक लहरी।

'जागो फिर एक बार' प्रसिद्ध जागरण-गीत है—

गाया दिन, आई रात
गई रात, खुला दिन
ऐसे ही संसार बीते दिन, पक्ष, मास,
वर्ष कितने ही हजार
जागो फिर एक बार।

जूठी पत्तलों के लिए मानव और कुत्तों की लड़ाई पर सर्वप्रथम निराला की ही दृष्टि गई—

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

'राम की शक्ति पूजा' में पौराणिक कथा को नवीन आधार पर प्रस्तुत किया है, पूजा में एक फूल कम होने पर—

यह है उपाय कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन—
कहती थीं माता मुझे सदा नयन।
दो नील कमल हैं शेष अभी पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।

नयन निकालने को उद्यत होते ही प्रकट हुई देवी—

साधु साधु साधक धीर, धर्म धन-धन्य राम।
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।

वरदान देती है—

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

सम्पूर्ण कविता में वीररस के अनुकूल शब्द-योजना है।

'सरोजस्मृति' हिन्दी का सर्वोत्तम शोकगीत कहा जा सकता है। कथानक पुत्री सरोज के निधन पर आधारित है। भावगहनता और अनुभूतियों की गहराई विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आर्थिक कठिनाइयों के संबध में कवि कहता है—

अस्तु, मै उपार्जन को अक्षम,
कर नहीं सका पोषण उत्तम।

पुत्री के बचपन को याद कर कवि कहता है—

खाई भाई की मार विकल
रोई उत्पल दल दृग छलछल।

समय व्यतीत होने पर—

धीरे धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रागण
कर पार, कुंज तारुण्य सुघर
आदि लावण्य भार थर-थर।

कान्यकुब्जों में विवाह के संबंध में कवि कहता है—

ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद।

और फिर—

ऐसे शिव से ही गिरिजा विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।

और अन्त में—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।

काव्य-संग्रह 'बेला' १९४६ में हिंदुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया। इसका रचनाकाल निराला की मानसिक अस्वस्थता तथा द्वितीय महायुद्ध का काल है। इसके विषय में निराला स्वयं कहते है—"बेला मेरे नये गीतों का संग्रह है। प्राय सभी तरह के गेय गीत इसमें हैं। भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं। देश भक्ति के गीत भी हैं।.... ..प्राय सभी दृष्टियों से फायदा पहुँचाने का विचार रखा गया है।"

'बेला' के गीत आध्यात्मिक राष्ट्रीय तथा साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।

आज अमीरों की हवेली, किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अंधेरे का ताला।

'नये पत्ते' भी १९४६ का हिंदुस्तानी पब्लिकेशन का ही प्रकाशन है। इस संग्रह में 'कुकुरमुत्ता' की भी कुछ कविताएँ संकलित हैं। वर्ग-संघर्ष तथा प्रगतिवाद का काफी प्रभाव है। मिलमालिकों, पूँजीपतियों और नेता बननेवालों पर कोर-दृष्टि रही है। 'खुजलाहट' में देश निर्वाह के साथ-साथ छिने प्रेमियों पर व्यंग्य किया है—

कैद पासपोर्ट की नहीं तो कभी
देश आधा खाली हो गया होता,

देवकारानी और उदयशंकर के
पीछे लगे लोग चले गये होते ।

'डिप्टी साहब आये हैं' में बेगार का बड़ा अच्छा चित्रण है । अन्त में कवि कहता है—

दगा की, इस सभ्यता ने दगी की ।

सम्पूर्ण रूप से व्यंग्य अधिक चुभते हुए न होकर मनोरंजक है ।

'चोटी की पकड़' उपन्यास का प्रथम भाग १६४७ मे किताब महल, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया । दूसरा भाग लिखा ही न जा सका ।

"देवी" कहानी-संग्रह राष्ट्रभाषा विद्यालय, बनारस ने १६४८ में प्रकाशित किया । इस संकलन में कुछ नई, कुछ पुरानी, कुल १० कहानियाँ हैं—देवी, भक्त और भगवान, चतुरी चमार, हिरनी, सुकुल की बीवी, श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, क्या देखा प्रेमिका-परिचय और जानकी ।

भारत में विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण आश्रम, धनतोली, नागपुर से १६४८ में प्रकाशित हुआ । विनय खण्ड इसी वर्ष बनारस के संस्कृत राष्ट्रीय विद्यालय ने प्रकाशित किया ।

गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ से १६४६ में "पंत और पल्लव" साहित्यिक समीक्षा प्रकाशित हुई । इस समीक्षात्मक प्रबन्ध में सुकुमार कवि पंत पर रोष और संत कवियों का समर्थन है ।

'अर्चना' काव्य-संग्रह कला मन्दिर, प्रयाग से १६५० में प्रकाशित हुआ । यह निराला के तत्कालीन लिखे गीतों का संग्रह है । कवि कहता है—"परीक्षण में उतीर्ण होने पर हम श्रम को सार्थक समझेंगे ।"...."अन्तरंग विषय यौवन से अति क्लान्त कवि के परलोक से सम्वद्ध है ।" गीतों के संबंध में कवि का विचार है—"खड़ी बोली की गाड़ी के और चलते रहने की आवश्यकता है, ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते हैं ।"

कवि भगवान् से विनती करता है—

दुरित करो नाथ,
अशरण हूँ, गहो हाथ ।

और फिर—

लगी लगन, जगे नयन,
हटे दोष, छुटा अयन ।

तत्पश्चात्—

नयन नहाए
जब से उसकी छवि में रूप बहाए ।
आँख लगाई
तुमसे जब हमने चैन न पाई ।"
दे न गये वचन की,
साँस, स ले न गये ।

'काले कारनामे' उपन्यास कल्याण साहित्य मन्दिर इलाहाबाद से १९५० में प्रकाशित हुआ। प्रारम्भ में प्रकृति का नजारा देखिए—"सावन का महीना आँख पर तरी बरसा रहा है। खेत लहालोट हैं, हरे-भरे। ज्वार, अरहर, उड़द, सन, मक्का और धान लहरा रहे हैं। आम, जामुन के दूर तक फैले हुए बागीचे फल दे चुके हैं, इस समय विश्राम की साँस ले रहे हैं। चिड़ियों के पर भीगे हुए हैं।"

इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन का विशुद्ध सजीव चित्रण है। यह चित्रण स्वाधीनता प्राप्ति के पहले का है। कथानक में जमीदारों की करतूतें, उनके घात-प्रतिघात और स्वार्थ तथा किसानों का धैर्य, पौरुष उभर कर आया है। भाषा सरल तथा मुहावरेदार है।

'चाबुक' अगला प्रबन्ध प्रकाशन है। कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग से १९५१ में यह प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में पत्नी के स्वर्गवास का उल्लेख है। मौन कवि कविवर बिहारी और रवीन्द्र, नन्ददुलारे वाजपेई, काव्य साहित्य कला और देवियाँ, वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति, बहता हुआ फूल, चरित्रहीन और चाबुक आदि प्रबन्ध इस संकलन में हैं।

'आराधना' काव्य-संग्रह १९५३ में साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया। इसकी भूमिका मे महादेवी ने कहा है——"जीवन में जो कुछ सत्य, सुन्दर और मंगलमय है। "वही निराला का आराध्य रहा है। आराध्य भी उसी जीवनव्यापी अर्चना की एक कड़ी है। "प्रथम कामना गीत है।

पद्मा के पद को पाकर हो
सविते, कविता को यह वर दो

× × ×

उठे उच्च मन से जो ओदे,
मिले मिलय मे एक प्रसार दो।

अब ऐसा समय आया कि——

आई कल जैसी पल
खिंचे खिंचे रहे सकल।

गीत-स्वर के फूटने के समय——

नहीं रहते हैं प्राणों में प्राण,
फूट पड़ते हैं निर्झर गान।

कवि की कामना है——

सुख का दिन डूबे डूब जाय।
तुमसे न सहज मन ऊब जाय।
दुख भी सुख का बन्धु बना—
पहले की बदली रचना—।

"गीतगुंज" १९५४ में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में १९५३-५४ में रचे गीतों का संकलन है। सीधी राह चलना ही निराला पसन्द करते हैं।

सीधी राह मुझे चलने दो।
अपने ही जीवन फलने दो।

'कवि' श्री साहित्य सदन, चिरगांव झांसी से १९५५ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में अब तक लिखी कवि की २२ कविताओं का संकलन है।

डा० शिवगोपाल मिश्र ने १९५७ में 'चयन' शीर्षक से कुछ प्रबन्धों का सम्पादन किया। बनारस के कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स ने इसका प्रकाशन इसी वर्ष किया। यह कवि का चौथा प्रबन्ध-ग्रन्थ है।

इस प्रकार निराला के १३ काव्य-ग्रन्थ, ९उपन्यास, ४ कहानी संग्रह २ रेखा चित्र, ४ जीवनियाँ, ४ प्रबन्ध-संग्रह,२ समीक्षात्मक पुस्तकें और १५ अनुवाद ग्रंथ तथा कुछ अन्य विविध विषयक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

समाज, शुकुन्तला, उषा-अनिरूद्ध नाटक अभी भी प्रकाशित न हो सके हैं। फुलवारी-लीला तथा सरकार की आँखें उपन्यास तथा कुछ लेख अभी प्रकाशित होने को बाकी हैं।

महाकवि निराला के काव्य में आत्म-व्यंजना

डाक्टर पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'

महाकवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी साहित्य की उन विरल विभूतियों में गणनीय हैं, जिन्होंने अपने जीवन का कण कण माँ भारती के पद-पद्मों में निष्काम भाव से समर्पित कर दिया। छायावादी युग के स्तम्भ होने पर भी निराला जी की आत्मा संतों जैसी थी। यदि विद्रोही और फक्कड़ स्वभाव की दृष्टि से उनकी समता किसी से की जा सकती है तो केवल कबीर से ही की जा सकती है। जैसे कबीर लकुटी हाथ में लेकर बाजार में खड़े हुए थे और अपने साथ चलने वालों से घर फूँकने की आशा रखते थे, वैसे ही निराला जी भी सामाजिक दृष्टि से विपन्न और सर्वहारा की कोटि के प्राणी थे। साहित्यिक दृष्टि से इतने महान व्यक्तित्व के धनी होने पर भी उनकी जो उपेक्षा हुई वह किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं कही जा सकती। उनके साहित्य विशेष रूप से काव्य के अध्ययन से उनकी जीवन-कथा के अनेक मार्मिक अंशों का उद्घाटन होता है।

किसी कवि के काव्य में आत्म-व्यंजना दो प्रकार से हो सकती है—एक प्रत्यक्ष और दूसरी अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष रूप से होनेवाली आत्म-व्यंजना में कवि अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का, रुचि अरुचि और आशा निराशा का चित्रण करता है। अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली आत्म-व्यंजना में वह अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं का परिचय देता है। उसका जीवन दर्शन अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली आत्म व्यंजना में ही प्रकट होता है।

प्रत्यक्ष रूप से निराला के जीवन की गतिविधि का दिग्दर्शन करानेवाली कविताओं में 'सरोज-स्मृति' का महत्वपूर्ण स्थान है। कवि की पुत्री उचित चिकित्सा के अभाव में मर जाती है। उसकी स्मृति को सजीव करने के लिए कवि ने जो कविता लिखी है, वह उसका 'आत्मचरित' बन गई है। इस कविता के प्रारम्भ में कवि को अपने पिता होने की निरर्थकता की अनुभूति होती है और वह पुत्री के लिये कुछ भी न कर पाने पर आत्मग्लानि के साथ लिखता है——

धन्य, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका।
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर।

अभिप्राय यह कि कवि जानता है, कि किस प्रकार अर्थ का संचय किया जाता है, पर वह अनर्थ से पूर्ण पथ है, अतः वह उस पर नहीं चल सकता। परिणामतः वह स्वार्थ-

समर में हारता रहा। न केवल एक बार वरन् जीवन भर वह ऐसा ही बना रहा। उसने कभी किसी क्षीण का अन्न न छीना और किसी के दृगों का विपन्न नहीं देखा। उसने दूसरों के आँसुओं में अपनी व्यथा का संधान पाया। ऐसे द्रवणशील कवि को कहाँ अवकाश मिलता, कि वह अपनी पुत्री का उत्तम रीति से पोषण भी कर पाता? केवल सवा साल तक वह कवि के साथ रही और माँ की मृत्यु होने पर नानी के गोद पलने चली गई। पुत्री अपने भाई के साथ ननिहाल में रही और कवि सरस्वती की आराधना में लीन रहा—

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त-छंद
पर सम्पादक गण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंक्ति दो उत्तर।

दो वर्ष बाद कवि अपनी पुत्री को देखने जाता है, जहाँ उसका (कवि का) दूसरा विवाह करने के लिये अनेक लोग आते हैं। तब कवि की उम्र छब्बीस की रहती है। वह विवाह टालने के लिये अपने को 'मंगली' बताता है। इस पर भी जब सासु जी आग्रह करती हैं तो कुण्डली ही फाड़ देता है। कारण यह है कि पुत्री को देख कर उसे विवाह बन्धन प्रतीत होता है। वह विवाह नहीं करता और पुत्री के बड़े होने पर उसे उसके विवाह की चिन्ता सताती है। विवाह करे तो कहाँ? अपनी कान्यकुब्ज जाति में अर्थ की माँग का भीषण रूप उसे खलता है। दहेज और रूढ़ि की दास अपनी जाति को वह किस आक्रोश-पूर्ण घृणा से देखता है, यह इन पंक्तियों में देखिये ——

ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद
इस विषम बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल

और वह निश्चय करता है कि इस रूढ़ि का पालन न करेगा। सौभाग्य से एक कान्यकुब्ज साहित्यिक युवक मिल जाता है। वह उसे अपनी स्थिति से अवगत करता है। न दहेज, न बारात, कुछ भी संभावना उसके लिए दुष्कर है। वह तो विवाह मंत्र भी स्वयं पढ़ने को उद्यत है। युवक राजी हो गया और विवाह हुआ। विवाह भी ऐसा कि जिसमें कोई स्वजन न था क्योंकि निमंत्रण ही नहीं भेजा गया था। कवि की मनोदशा का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि पुत्री को शिक्षा देने के लिए उसे स्वयं ही प्रस्तुत होना पड़ा। वह कहता है——

माँ की कुल शिक्षा मैंने दी
पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची

सोचा मन मे, वह शकुन्तला,
पर पाठ अन्य यह अन्य कला।

अपनी पुत्री को शकुन्तला की समता में रखकर कवि ने जो 'पर पाठ अन्य यह अन्य कला' कहा है उसमें उसके निविड़ एकाकीपन की कसक निहित है। यदि यह सौभाग्य भी कवि को प्राप्त होता तो बहुत था, किन्तु जिस पुत्री के लिए उसने विवाह नहीं किया वह भी न रही और कवि को लिखना पड़ा——

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही!

यह अनभ्र वज्रपात कवि ने सहा और मूक होकर सहा। किसलिये? मात्र साहित्य सेवा के लिये और एक क्षण को भी उसकी लेखनी ने विराम न लिया। पूरी कविता कवि की बेबसी और विद्रोह का ऐसा मिश्रण है कि रोमाच हुए बिना उसका पढना सभव नहीं।

'सरोज-स्मृति' के बाद 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' शीर्षक कविता में कवि ने अपने आलोचकों के अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया है। इस कविता के द्वारा सहज ही कवि के सहिष्णु व्यक्तित्व की झाकी मिल जाती है। इसमें भी उसके मन की व्यथा उभर उभर आती है और हम सोचते हैं कि इतने विरोध के बावजूद भी कवि आगे बढ़ता गया तो इसलिये कि उसे आत्म-विश्वास था। व्यग्यपूर्ण शैली में अपनी दृढता का परिचय देते हुए कवि ने लिखा है:—

मैं जीर्ण-साज बहु छिद्र आज
तुम सुदल सुरग सुवास सुमन
मैं हू केवल पद तल आसन
तुम सहज विराज महाराज।
ईर्ष्या नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसत का अग्रदूत
ब्राह्मण समाज मे ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि

यदि यह कहें कि अपने जीवन की उच्चस्तरीय तपस्या में निराला विद्यमान कवियों में सर्वाधिक श्रद्धा के पात्र रहे हैं तो अत्युक्ति न होगी। लेकिन जैसे कवि को वन्दना-अभिनन्दन से चिढ़ हो। प्रहार सहते-सहते उसका हृदय नितान्त निराश हो गया था, और वह अपनी व्यथा को स्वयं ही झेलना चाहता था। वह अपनी 'हताश' शीर्षक कविता में चुनौती के स्वर में कहता है —

जीवन चिर कालिक क्रन्दन।
मेरा अन्तर वज्र कठोर।
देना जी भरसक झकझोर

मेरे दुख की गहन अन्ध
तम-निशि का न कभी हो भोर
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता
इतना वन्दन-अभिनन्दन ।

यह सन् २२ की कविता है । कवि आशा और निराशा के झूले झूलता हुआ निरन्तर साहित्य-सर्जन में लीन रहा किन्तु कभी-कभी अब दूसरों से अपनी तुलना करता है तो उसे लगता है जैसे वह रण में हार गया हो—

हो गया व्यर्थ जीवन, मैं रण में गया हार
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी

कवि ने जो पथ चुना है वह सबसे भिन्न था । उसमें योगक्षेम की व्यवस्था की चिन्ता न थी, हिन्दी की समृद्ध का लक्ष्य पूरा करना था और वह भी मौलिक अवदान के साथ । लेकिन हिन्दी वालों ने उसे न समझा और कवि अकेला पड़ गया । 'मैं अकेला' कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—

देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती जा रही
हट रहा मेला
जानता हूँ नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूं, हंस रहा यह देख
कोई नहीं भोला ।

अब तक जिन कविताओं के उद्धरण दिये गये हैं, उनमें और उनसे मिलती-जुलती अन्य कविताओं में जो कवि-जीवन की झलक मिलती है, वह प्रत्यक्ष रूप से कवि की उसकी आत्म-व्यंजना का रूप प्रस्तुत करती है । अप्रत्यक्ष रूप से आत्मव्यंजना का आभास उसकी अन्य कविताओं में जो सबसे पहली बात लक्षित होती है वह है कवि की भक्ति-भावना । यह भक्ति-भावना किसी निष्क्रिय एकान्त सेवी-भक्त की बैठे ठाले का खिलवाड़ नहीं है । वह भक्ति-भावना, संघर्ष-पथ पर अन्धविश्वास के पाश छिन्न-भिन्न कर निरन्तर आगे बढ़ती जाने वाली है और उसमें राष्ट्रप्रेम भी मिला हुआ है । कवि नरजीवन के समस्त स्वार्थों और अपने श्रमार्जित फलों को भारत माँ के चरणों में चढ़ाने को प्रस्तुत होती है । उस बंदिनी माँ की अश्रु-जल-धौत विमल मूर्ति प्रेरणा लेकर वह क्रूर काल को चुनौती देते हुए बाधाओं की परवाह न करके अपने बलिदान का संकल्प करता है :—

बाधाएँ आए तन पर
देखूँ तुझे नयन निर्झर
मुझे देख तू सजल दृगों से
अपलक उर के शतदल पर
क्लेश-युक्त अपना तन दूँगा
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय श्रम-सिंचित फल।

इस कार्य के लिये वह किसी प्रकार के प्रलोभन में नहीं फँसना चाहता और सब कुछ सहने को उद्यत है। समस्त लाञ्छना और तिरस्कार को सहते हुए वह बाधाओं को पार कर जाना चाहता है—

लाञ्छन-इन्धन हृदय तल जले अनल
भक्ति नत-नयन मे चलूँ अविरत सबल
पार कर जीवन प्रलोभन समुपकरण।
प्राण संघात के सिन्धु को तीर मे
गिनता रहूँगा न, कितने तरंग हैं
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण।

'जननि' और 'माँ' के रूप में कवि ने चाहे भारत माता की वन्दना की हो या शक्ति की, या श्यामा की, वह सदैव क्लीवता और दैन्यता से मुक्ति का अभिलाषी रहा है। उसने अपने वन्दना गीतों में कभी व्यक्तिगत सुख की कामना नहीं की। समस्त दलित और पीड़ितों का सुख उसका लक्ष्य है। सन् १९४५ में जब इन पंक्तियों के लेखक को इस युग-पुरुष का अतिथि होने का सौभाग्य मिला था तब आधुनिक कविता मे प्रगतिवादी प्रवर्तन की चर्चा चलने पर उसने सहज भाव से कहा था—'यो प्रगतिवादी विचारधारा का सूत्रपात तो हिन्दी में हमने ही किया है, अब चाहे कोई माने या न माने।' और सचमुच 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'विधवा' आदि कविताओं मे दीन और दलित के प्रति कवि की जो सहानुभूति प्रवाहित हुई है उसका उनके समकालीन कवियों में कहीं पता भी नहीं है। बेला' 'नये पत्ते' और 'अणिमा' की अनेक रचनाओं में तो उन्होंने पूँजीवादी विकृति का खुले रूप में चित्रण किया है। लेकिन निराला का हृदय सदैव प्रार्थना-रत रहा है, यह ऐसा तत्व है, जिसको विस्मरण नहीं किया जा सकता। उनकी 'अर्चना' और 'आराधना' म संगृहीत रचनाएं, जो उनके रुग्णावस्था की है, इनका प्रमाण है। सचमुच उनमें भक्त कवि की आत्मा का निवास था। 'आराधना' की एक कविता है—

भग्न तन, रुग्ण मन
जीवन विपण्ण वन।
क्षीण क्षण क्षण देह
जीर्ण सज्जित गेह

घिर गये हैं मेह
प्रलय के प्रवर्षण
चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दो शरण।

(आराधाना पृष्ठ ६२)

इन पंक्तियों को पढ़कर लगता है जैसे कवि गोस्वामी तुलसीदास की भाँति रोग से विकल हो। अन्त में तो कवि का मन जैसे मोम हो गया था। 'आराधना' की ही चार पंक्तियाँ और उल्लेख्य हैं। इनमें कवि की अन्तरात्मा का दर्शन होता है। वे पंक्तियाँ है—

आँखों के तिल में दिखा गगन
वैसे कुल समा रहा है मन
तू छोटा बन, बस छोटा बन,
गागर में आयेगा सागर :

(आराधना पृष्ठ ८)

उनकी रचनाओं में ग्राम्यजीवन के प्रति उनकी तीव्र आसक्ति का भी दर्शन होता है। गाँव का मेला, गंगास्नान, जुते हुए खेत, लहलहाती फसलें, किसान-मजदूरों के आमोद प्रमोद आदि का चित्रण करने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था। छायावादी कवि होने पर भी उनमें गाँव के प्रति यह जो स्वाभाविक लगाव दिखाई देता है वह उनकी अपनी विशेषता है। हमें निराला के काव्य का अध्ययन करते समय ग्राम्यजीवन के जो बहुविध चित्र मिलते हैं उनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कथाकारों में यदि प्रेमचन्द्र ने ग्राम को अन्तर की आँखों से देखा है तो छायावादी कवियों में निराला ने। 'देवी सरस्वती' शीर्षक कविता इस दृष्टि से बड़ी महत्व की है। उसमें ऋतु के अनुसार ग्राम्यजीवन के विभिन्न चित्र हैं। उदाहरणार्थ शरद ऋतु में ग्राम का यह चित्र देखिये—

सिमटा पानी खेतों का, ओट पर चले हल
पांस खेत किये जो गये जोत कर मखमल
डाले बीज चने के, जव के और मटर के,
गेहूँ के, अलसी-राई सरसों के, कर से
ऐसे वाह-वाह की वीणा बजी सुहाई
पौधों की रागिनी सजीव सजी सुखदाई
सुख के आंसू दुखी किसानों की जाया के
भर आये आँखों में खेती की माया के।
हरी भरी खेतों की सरस्वती लहराई
मग्न किसानों के मन उन्मद बजी बधाई।

खुली चादनी मे डफ और मजीरे लेकर
बैठे गोल बाँधकर लोग बिछे खेतों पर
गाने लगे भजन कबीर के, तुलसीदास के
धनुष भग के और राम के बनोवास के
कतकी मे गगा-स्नान की बढी उमगे,
सजी गाडियाँ, चले लोग, मन चढती चगें।
मेले मे खेती के कुछ सामान खरीदे
देखें हाथी घोड़े रचे, लौटे सीधे।

'हरी भरी खेती की सरस्वती लहराई' कह कर कवि ने जैसे अपनी कविता का मूलमत्र ही हमारे समक्ष रख दिया है। जन-जीवन के प्रति निराला जी की यह आसक्ति ही उनके जीवन की वह आकर्षण कही जा सकती है, जिसने उनके व्यक्तित्व को तरलता दी थी।

कवि निराला भारतीय सस्कृति से ओत-प्रोत थे और अपने अतीत पर उन्हें बड़ा गर्व था। 'जागो फिर एक बार,' 'छत्रपति शिवा जी का पत्र', 'यमुना के प्रति', 'तुलसीदास', 'सहस्राब्दि' और 'भगवान-बुद्ध के प्रति' जैसी कृतियों में उन्होंने बारबार भारत के स्वर्णिम अतीत का चित्राकन किया है। इन कविताओं में उन्होंने भारतीय दर्शन और अध्यात्म की महत्ता को ओजपूर्ण शब्दो में व्यक्त करने के साथ-साथ जड़वाद पर घोर प्रहार किया है। 'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता में वे कहते हैं—

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिए खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन, केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं, मानव, स्थल-जल अम्बर
रेल तार बिजली-जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे मानव, वर्ग से वर्ग गण
भिडे राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण
हँसते हैं जड़वाद-ग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर
विकृत नयन मुख, कहते हुए, अतीत, भयकर
था मानव के लिए पतित था वहा निश्च मन
अपटु, अशिक्षित, धन्य हमारे रहे बन्धुगण
नहीं वहा था कहीं आज का मुक्त प्राण यह
तर्क सिद्ध है, स्वप्न एक है निर्वाण यह!

'जागो फिर एक बार' में सुप्त भारतवासियों को अपनी विस्मृत-वीरता का ज्ञान कराने और 'छत्रपति शिवा जी का पत्र' से जयसिंह जैसे औरगजेब के क्रीत दासों को कर्तव्य ज्ञान कराने में कवि का भाव यही था कि हिन्दू अपने गौरव को पहचान लें। 'सहस्राब्दि' इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसमें कवि ने भारत के पुरातन गौरव का पूरा इतिहास समाहित किया है। बुद्ध,

महावीर, शंकर, रामानुज आदि ने भारतीय जनता के जीवन को दर्शन की जिस श्री से विभूषित किया है, उसका परिचय प्राप्त कर कवि का दार्शनिक रूप समझने में सुविधा होती है।

सारांश यह है कि निराला के काव्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार आत्म-व्यंजना मिलती है। उसके आधार पर एक ओर हम उनकी उस जीवन-गाथा को जान सकते हैं, जिसमें समाज के प्रति विद्रोह के कारण उन्हें एकाकी ही परिस्थितियों से लड़ना पड़ा तो दूसरी ओर उनके देशभक्त, जन-दुख कातर, दार्शनिक और अध्यात्म-प्रिय व्यक्तित्व का भी आभास पा लेते हैं। वैसे निराला का जीवन पौरुष का पुँजीभूत रूप था। पौरुष भी ऐसा था जो साहित्य की वेदी पर चढ़कर बलिदान की अक्षय सुगंध बिखेर गया है। उनकी मृत्यु जिस करुण स्थिति में हुई उसमें उन्हीं की ये पंक्तियाँ कितनी सटीक बैठती हैं :—

> मरण को जिसने वरा है
> उसी ने जीवन भरा है।
> परा भी उसकी, उसी के
> अंक सत्य यशोधरा है।

निराला के काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति

श्री विश्वम्भर 'मानव'

प्रेम एक आदिम वृत्ति है। मनुष्य के प्रेम का संबंध इसीलिए किसी भी वस्तु से हो सकता है, जैसे पुस्तक, पुष्प और पशु पक्षी से, लेकिन यह भाव जड़ से चेतन की ओर विकसित होता है, वैसे ही वैसे वह जटिल और मधुरतर होता जाता है। राग अंतर प्रतिदान की सम्भावना पर निर्भर करता है। जड़ वस्तुओं से हम कितना ही प्रेम क्यों न करें, वह विशेष पूर्तिदायी नहीं होता। जड़ वस्तुएँ हमारे संबंध में क्या सोचती हैं, इसका पता हमें नहीं चलता, क्योंकि उनके हृदय नहीं होता। अन्य वस्तुएँ अपनी चेतना के अनुसार हमारी भावना का कुछ न कुछ प्रत्युत्तर देती ही रहती हैं। संसार के सभी देशों में ऐसे लोग रहे हैं, जिन्होंने कुत्ते घोड़े या बिल्ली को जीवन-व्यापी प्रेम दिया है, पर मनुष्य-मनुष्य के बीच की बात ही दूसरी है।

हिन्दी-काव्य में प्रेम अपने लौकिक रूप में भी पाया जाता है, और अलौकिक रूप में भी। लौकिक प्रेम में वीरगाथा काल का तीव्र भाव है, जिसकी पूर्ति के लिए नायक-नायिका जीवन के सभी संकटों को मोल लेने के लिए तत्पर रहते हैं और समय उपस्थित होने पर प्राणों की बाजी तक लगा देते हैं। खुली प्रकृति में उत्साह के इस परिचय के कारण रोमांस में एक विचित्र प्रकार की 'थ्रिल' की अनुभूति होती है। रीतिकालीन प्रेम का एक व्यक्तिगत रूप भी है जिसका आभास बोधा, ठाकुर, आलम, घनानंद आदि की कविता से मिलता है, दूसरा, रूढ़िबद्ध नायिका-भेद संबंधी स्वरूप है जो बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम आदि की रचनाओं में झलकता है। यहाँ नायिका विशिष्ट नहीं, सामान्य नारी है। नारी के यहाँ अलग अलग 'टाइप' हैं। उसे जो अनेक श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है, उसी के आधार पर वह पहचानी जाती है। आधुनिक काव्य में लौकिक प्रेम की स्वीकृति या 'बच्चन' जी से ही प्रारम्भ हो गयी थी, पर उसे ठीक से अभिव्यक्ति मिली 'अज्ञेय' के काव्य में। बच्चन' का प्रेम बहुत कुछ स्वकीय के प्रति है। उनका 'निशा निमंत्रण' हिन्दी की सबसे बड़ी शोक गीति है, पर है वह अपनी पत्नी के प्रति ही। विलास के क्षेत्र में यही दशा 'मिलन यामिनी' की है। रोमांस को एक स्वाभाविक वृत्ति के रूप में उत्तर छायावाद काल में ही स्वीकार किया गया और अब तो प्रेम एकदम व्यक्तिगत स्तर पर उतर आया है। अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति भक्ति काल में हुई। इसमें एक/ओर निर्गुण-काव्य है, दूसरी ओर सगुण-काव्य, एक ओर रहस्यवादी काव्य है दूसरी ओर भक्ति काव्य। इस काव्य की उच्चता, पवित्रता और मधुरता बेजोड़ है।

लौकिक और अलौकिक दोनों से भिन्न एक इस प्रकार का प्रेम-काव्य भी है, जिसे दोनों के मध्य रखा जा सकता है। राधा-कृष्ण के नाम की आड़ में व्यक्त होने वाला ढेर सारा रीतिकालीन काव्य ऐसा ही है। एक आड़ सिद्ध काव्य ने भी कभी ली थी, जिसमें नग्नता के ऊपर धर्म का झीना आवरण था। एक तीसरी कोटि में आधुनिक काव्य की वह धारा समझनी चाहिए जिसका प्रेम पात्र निर्दिष्ट नहीं है, जहाँ यह पता ही नहीं चलता कि भावना लौकिक के प्रति है

अथवा अलौकिक के प्रति छायावाद-युग में प्रेम की यही मिली-जुली अनुभूति पायी जाती है। केवल महादेवी जी का काव्य इसका अपवाद है।

प्रसाद, निराला, पंत तीनों कवियों की प्रेम-संबंधी परिस्थितियाँ भिन्न कोटि की रही हैं, यही कारण है, कि अभिव्यक्तियाँ भी भिन्न प्रकार की हैं, फिर व्यक्तिगत प्रेम के संबंध में इन कवियों ने बहुत कहा है। इस वर्णन में मासलता हैं; सबसे अधिक 'प्रसाद' में। प्रेम के ये वर्णन अतिशयोक्ति-पूर्ण हैं। 'प्रसाद' के 'आँसू' और पंत की 'ग्रन्थि' में विरह का दुःख अपने अतिरंजित रूप में ही पाया जाता है। लेकिन इन कवियों की ऐंद्रियता और अतिरंजना में भी एक प्रकार की गंभीरता है। उसका एक कारण तो यह है कि अपनी उद्दाम-भावना को ये धीरे-धीरे सूक्ष्मता की परिधि तक विस्तृत कर देते हैं, दूसरे सौन्दर्य के प्रति ललक को इन्होंने कल्पना के आवरण में ऐसा छिपा दिया है कि वह धीरे-धीरे धुँधली और अस्पष्ट हो उठती है। कहने का तात्पर्य यह कि मन की तीव्रता को एक ओर गंभीरता, दूसरी ओर सूक्ष्मता, तीसरी ओर कल्पना और चौथी ओर अस्पष्टता की दिशा में ले जाने से वह रहस्यमय हो उठी है। इसीसे छायावादी-युग का प्रेम भी बस छायावादी ही है।

'निराला' जी के संबंध में कछ लोगो ने जो यह प्रचारित करने का प्रयत्न किया है कि उनके प्रेम का लक्ष्य उनकी सुन्दर पत्नी ही थी, वह सत्य से बहुत दूर है। पत्नी के प्रति भी उनका भाव उमड़ कर बहा है—पर कम। जैसे सभी का, वैसे निराला। का अंतर भी स्वच्छन्द प्रेम के माधुर्य से परिपूरित रहा है, यह उनके वर्णनों से एकदम स्पष्ट हो जाता है।

ऐसा सुना जाता है कि 'निराला' की पत्नी सुन्दरी और गुणवती थीं और ये उनकी ओर आकर्षित भी बहुत थे। खड़ी बोली की कविता की ओर इनका झुकाव उन्हीं की प्रेरणा से हुआ। उनके आकर्षण के कारण ये प्रायः ससुराल चले जाते थे। कुछ दिन वे गढ़ाकोला और कलकत्ते में भी रहीं। 'गीतिका' का भावपूर्ण समर्पण उन्ही के लिए है। इस समर्पण के आधार पर कुछ लेखकों ने निराला जी की प्रेम-संबंधी रचनाओं के पीछे उनकी पत्नी के व्यक्तित्व के प्रभाव को मान्यता दी है। समर्पण की भाषा सामान्य रूप के उच्छ्वसित कोटि की होती है। उससे धोखे में आने की आवश्यकता नहीं है। विवाह के समय इनकी पत्नी की अवस्था बारह वर्ष की थी और अठारह वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हो गयी। वे एक गांव की रहने वाली थीं। निराला ने १९१६ में ही 'जुही की कली' जैसी रचना प्रस्तुत की थी, अतः संभव है प्रारंभ में उनकी कोई बात चुभ गई हो, लेकिन दोनों के व्यक्तित्व में बहुत अन्तर था। कुछ लोगो ने उनकी तुलना कालिदास की पत्नी विद्योत्तमा और तुलसी की सहधर्मिणी रत्नावली से जो की है, वह अतिशयोक्ति पूर्ण लगती है। फिर भी 'निराला' अपनी पत्नी को बहुत प्रेम करते थे; इसका आभास 'कुल्ली भाट' से लगता है।

'प्रिया के प्रति' एक रचना 'परिमल' में है। इसमे उनकी मृत्यु के उपरान्त वे उन्हें स्मरण करते हैं। जानना चाहते हैं, परलोक में वे सुख से हैं अथवा दुख में? इसमें मृत्यु के परे जीवन के प्रति जिज्ञासा के साथ वियोग की व्यथा का वर्णन बहुत मार्मिक बन पड़ा है। हृदय की उज्ज्वलता के आधार पर भावनाओं की पूरी उच्चता यहाँ प्रदर्शित हुई है। आत्म-

निवेदन की भाषा अत्यन्त संयमित है। कहने से अधिक यहाँ कुछ न कहना ही अधिक मर्मस्पर्शी हो उठा है—

एक बार भी यदि अजान के
अन्तर उठ आ जाती तुम,
एक बार भी प्राणों की
तम-छाया में आ कह जाती तुम,
सत्य हृदय का अपना हाल,
कैसा था अतीत वह, अब यह
बीत रहा है कैसा काल।
मैं न कभी कुछ कहता,
बस तुम्हें देखता रहता।
क्या तुम व्याकुल होतीं?
मेरे दुख पर रोतीं?
मेरे नयनों में न अश्रु प्रिय आता,
मौन दृष्टि का मेरा चिर अपनाव
अपना चिर निर्मल अन्तर दिखलाता।

'मरण दृश्य' शीर्षक रचना भी पत्नी से सम्बन्धित बतलाई जाती है। इसमें प्रिया की ओर से यह पश्चाताप प्रकट किया गया है कि उसने अपने प्रियतम को दुख ही दुख दिया। फिर भी उसकी इच्छा है कि वे नित्य नवीन गीतों का सृजन करें। जहाँ तक उसका सम्बन्ध है, वह मृत्यु को वरण कर उन्हें मुक्त कर जायगी। इस प्रकार अतीत की मधुरता से वर्तमान जीवन की कटुता की तुलना करते हुए कवि मृत्यु में भी एक अभिप्राय खोज लेता है—

दिये थे जो स्नेह-चुम्बन,
आज प्याले गरल के घन,
कह रही हो हँस पियो प्रिय,
पियो, प्रिय, निरुपाय।
मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में
आई हुई, न डरो।"

निराला की पत्नी की मृत्यु १८ वर्ष की अवस्था में ही अपने नैहर डलमऊ में हो गयी थी। उस समय वे कलकत्ते में थे। उन्हें तार से सूचना दी गयी थी, लेकिन उनके आने के पूर्व ही वे चल बसीं। अन्तिम भेंट उनसे नहीं हो पाई। कहने का तात्पर्य यह कि कवि अपनी पत्नी की रुग्णावस्था में अथवा उनकी मृत्यु शय्या के निकट नहीं था। अतः यह घटना तथ्य पर आधारित नहीं है। लेकिन काव्य का सत्य एक भिन्न ही प्रकार का होता है। इस विवशता की वेदना उन्हें बराबर कसकती रही होगी। इसी से सम्भव है, ऐसी कल्पना उन्होंने की हो कि यदि वे मृत्यु के समय उनके पास होते, तो वे क्या कहतीं। यह भाव बीज

युवक उसे पुकारता है। युवती उस पुकार को अनसुनी नहीं कर पाती। दोनों एक दूसरे का हाथ अपने हाथ में लेते हैं और पुरानी भूल का सुधार करते हैं। युवक उस रूप माधुरी का पान कर न जाने कितनी बार तृप्ति का अनुभव करता है। युवती को लगता है कि प्रेम से बड़ा और कुछ नहीं है, यहाँ तक कि उसके लिए जाति और धर्म के बंधन भी तोड़े जा सकते हैं——

दोनों हम भिन्न वर्ण,
भिन्न जाति, भिन्न रूप,
भिन्न धर्म भाव, पर
केवल अपनाव से, प्राणों मे एक थे।
किन्तु एक रात का।
जल और पृथ्वी का
भिन्न सौन्दर्य से बन्धन स्वर्गीय है।

"रेखा" में भी प्रेम के उदय, विकास और प्राप्ति की कहानी कही गयी है। यौवन के आगमन पर जैसे सभी एक प्रकार की विकलता का अनुभव करते हैं, जैसे सभी प्रतीक्षा करते हैं, जैसे सभी किसी से मिलन के लिये आतुर रहते हैं, यही दशा कवि की है। कवि के प्रति जो भी झुकाव का अनुभव करता है, उसका स्वागत वह करता है और एक दिन ऐसा भी आता है कि अपने प्रणय के लक्ष्य से उसकी भेंट होती है। उसका सामना होते ही भावों की सारी सम्पत्ति वह उसके चरणों पर उँड़ेल देता है और जीवन की सार्थकता का अनुभव करता है——

अंत मे
मेरी ध्रुवतारा तुम
प्रसरित दिगंत मे
अंत मे लाई मुझे
सीमा में देखी असीमता—
एक स्थिर ज्योति में
अपनी अबाधता——
परिजय निज पथ का स्थिर।

ये तीनों ही कविताएँ लंबी, वर्णनात्मक और अतीत की घटनाओं पर आश्रित हैं। तीनों में ही यौवन का वर्णन है, तीनों प्रेम भाव को प्रस्फुटित करती है, तीनों ही कामना से प्रणय की अनन्यता की ओर मुड़ जाती हैं। इन रचनाओं से कोई निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं होगा, पर इतना तो स्पष्ट ही है कि अतीत में कहीं कोई था जो कवि के दृष्टि-पथ में बार-बार उदित हो कर उनके भाव गत को आंदोलित कर जाता है। वर्णनों से यह भी स्पष्ट है कि वह कोई भी क्यों न हो, कवि की पत्नी नहीं है।

जहाँ तक प्रेम के व्यवहार-पक्ष का संबंध है, निराला के काव्य में कहना सुनना बहुत कम है। सम्पर्क स्थापित हो गया, दोनों आकर्षित हो कर एक दूसरे के निकट आ गए,

यही बहुत है। इससे अधिक और क्या चाहिए? यह मौन रहकर ही प्रेम की मधुरता का अनुभव करना चाहता है। वाचालता उसे पसंद नहीं, इसी से वह कहता है—

बैठ लें कुछ देर
आओ, एक पथ के पथिक से।
मौन मधु हो जाय
भाव मूकता की आड़ में
मन सरलता की बाढ़ में
जल-बिन्दु-सा वह जाय।

सभी कवियों की भाँति निराला ने अपनी प्रेमिका के अनुपम लावण्य का वर्णन किया है। लावण्यमयी होने के साथ वह लज्जावती है। इस लाज के कारण ही तो वह मिल नहीं पाती। लेकिन जब मिलन होता है तो यह कांति और यह लज्जा भोग की मनोवृत्तियां, क्रियाओं और चेष्टाओं की रसभीनी कलाकारिता प्रदान करती है। संयोग-काल के इस चित्र को देखिए—

स्पर्श से लाज लगी,
अलक-पलक में छिपी छलक
उर से नव राग जगी।
चुम्बन-चकित चकित चतुर्दिक चंनचल।
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख छल,
कभी हास, फिर त्रास, साँस बल
उर-सरिता उमागी।

लौकिक-प्रेम में एक ऐसी स्थिति आती है, जब प्रणयी लोग शरीर को बीच में डाल कर सुख का अनुभव करते हैं। किसी प्रकार की बाधा या विवशता हो तो दूसरी बात है, नहीं तो प्रेम में शरीर को बचाना बहुत कठिन काम है। निराला के होली वाले गीत में ऐसा वर्णन भी पाया जाता है, जहाँ हमारी सभी इंद्रियाँ तृप्ति का अनुभव करती हैं। सकोच के कारण हम उसे उद्धृत नहीं कर पा रहे हैं।

लेकिन जीवन में किसी को भी स्थायी रूप से बाँधकर नहीं रखा जा सकता। विरह की एक स्थिति वह है जो आशंका से उत्पन्न होती है। जब कोई व्यक्ति किसी के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो उठता है, तो पल भर के लिये भी उसका वियोग सहन नहीं किया जा सकता, यहाँ तक की संयोग-काल में भी वह डर लगा रहता है कि किसी दिन यह स्थिति बदल न जाय—यह व्यक्ति बदल न जाय। दूर तो होना ही है, लेकिन किसी दिन उसका प्रेमास्पद कितनी दूर हो जायगा, इसका अनुमान प्रेमी को प्रायः नहीं होता। ऐसी ही एक आशंका का वर्णन निराला जी ने 'परिमल' में किया है—

फिर किधर को हम बहेंगे,
तुम किधर होगे,
कौन जाने फिर सहारा

तुम किसे दोगे ?
हम अगर बहते मिले,
क्या कहोगे भी कि हाँ, पहचानते ?
या अपरिचित खोल प्रिय चितवन
मगन वह जाओगे पल में
परमप्रिय-संग अतल जल में ?

इनके काव्य में प्रेम कहीं पुरुष के माध्यम से व्यक्त हुआ है, कहीं नारी के माध्यम से। नारी की ओर से जो भाव व्यक्त किये गये हैं उनमें आकर्षण, अनुनय, अनन्यता, प्रतीक्षा और समर्पण का प्राधान्य है। पुरुष की ओर से जिन भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है उनमें एक ओर अगाध तृप्ति है, दूसरी ओर गहरा असंतोष, बीच में विरह है। अंत में स्मृति का आधार रह गया है। कुल मिलाकर प्रेम यहाँ एक महती प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया गया है।

निराला काव्य में प्रतीक-विधान

सुश्री सिन्दूर विरिक

जब अभिधा कवि के भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होती है, तब वह प्रतीकों का आश्रय लेता है। प्रतीकों का आश्रय पा कवि की भावनाये मुखरित हो उठती हैं। प्रतीकों के उचित उपयोग से वह अपने हृदय में उठती भाव लहरियों को रूप देने का प्रयास करता है; और प्रतीकों को अनुभूति प्रदान करने की क्षमता कवि की तीव्र संवेदन शीलता पर निर्भर है। प्रतीकों का चुनाव कवि के अनुभवों पर और उनकी सौन्दर्य-भावना पर निर्भर करता है। यों तो मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है पर कुछ प्रतीक परम्परागत होते हैं, जो हमारी संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ सार्वभौम। तिरंगा झंडा यदि हमारे राष्ट्र की एकता और गौरव का प्रतीक है तो सिंह वीरता का। श्वेत रग सौम्यता का विश्व-विख्यात प्रतीक है। 'जो जिज्ञासाएँ सनातन हैं, उनका निराकरण करने वाले प्रतीक भी सनातन हो जाते हैं। किन्तु समय के अनुरूप नये-नये प्रतीकों का भी निर्माण होता रहता है। हिन्दी साहित्य मे प्रतीकों का प्रयोग आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही किया जाता था जिसका स्वरूप हमें सिद्ध जैन, बौद्ध एवं संत साहित्य में देखने को मिलता है। साधनागत विचारों की अभिव्यक्ति के लिए वे लोग प्रतीको का प्रयोग करते थे, जो रहस्यात्मक ही होते थे।

आज के छायावादी एवं प्रयोगवादी काव्य में भी प्रतीकों की परम्परा अक्षुण्ण है, पर उनके रूप में परिवर्तन स्पष्ट है। प्रतीको के माध्यम से भावनाओं की अभिव्यक्ति सशक्त हो जाती है। 'प्रतीकों का लक्ष्य भावात्मक सवेदना की तीव्रता है। काव्य के प्रतीक भाव के चित्रो का पुनरुत्स करते हैं, और उस भाव के प्रेषण में सहायता करते हैं।, प्रतीको के प्रयोग से कवि मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का चित्र अंकित करने में समर्थ होता है। चित्रात्मकता प्रतीकों का विशेष गुण है। प्रतीक विधान का उत्कृष्ट रुप हमें छायावादी काव्य में देखने को मिलता है। छायावादी काव्य में प्रतीक-विधान का विशेष महत्व है, अथवा यों कहना अधिक उचित होगा कि प्रतीकात्मकता छायावाद का प्रमुख अंग है। छायावाद काव्य सौन्दर्य-भावना का स्तर साधारण नहीं। इसीलिए उसका प्रतीक-विधान विशिष्ट है। प्रतीक-विधान का उत्कृष्ट रूप प्रसादकाव्य मे द्रष्टव्य है। उनकी कामायनी का प्रतीक-विधान विश्व साहित्य में बेजोड है। महाकाव्य की रचना न करने पर भी निराला को हम इस क्षेत्र में विस्तृत नहीं कर सकते। प्रतीकों का उत्कृष्ट रूप निराला काव्य में अपनी मौलिकता में अद्वितीय है। निराला की लेखनी ने जीवन के हर पक्ष को छूने की चेष्टा की है। छायावादी काव्य का उत्कृष्ट रुप जहाँ एक ओर मिलता है, तो 'कुकुरमुत्ता', 'वेला जैसी प्रयोग-वादी रचनाओं में उनका जनवादी स्वर भी मुखरित हो उठा है। यदि एक ओर प्रतीकों के उपयोग द्वारा दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है तो दूसरी ओर समाज पर कड़े व्यंग्य और प्रहार भी किये है। प्रत्येक विचार की अभिव्यक्ति में इनके प्रतीक सार्थक हैं।

निराला के प्रकृति प्रतीक द्वारा आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट रूप हमें उनकी प्रारम्भिक रचना 'जूही की कली' में मिलता है। प्रेमी प्रमिका के रूप में मलयपवन कली के रहस्य प्रेम का चित्रण किया है, जिसे हम प्रकृति का सुंदर चित्र भी कह सकते हैं। किन्तु जब मर्मज्ञ हृदय गहरे पैठने का प्रयत्न करता है, तो कवि की प्रतीक योजना उसे अनायास ही मुग्ध कर लेती है। 'कली' और 'मलय' लौकिकता का आवरण उतार अलौकिक रूप धारण कर लेते हैं। मायापाश में बँधी व्याकुल आत्मा (कली) परमात्मा (मलय) की सहानुभूति एवं दया से माया के बन्धन से मुक्त हो उसमें लीन हो आनन्द का अनुभव करती है—

हेर प्यार को सेज पास
नम्रमुखी हँसी खिली,
खेल रंग प्यारे संग।

इन पंक्तियों में आत्मतल्लीनता का भाव मिलता है, और यह आत्मतल्लीनता कबीर की तल्लीनता एवं प्रसाद के आनन्द से कम नहीं। कली की सुप्त-अवस्था आत्मा की सुसुप्तावस्था है और मिलन के पश्चात आत्मा की जागृति की अवस्था का चित्र है। इसी प्रकार 'शेफालिका में भी माया ग्रस्त (कुच की बन्द) जीवात्मा (शेफालिका) परमात्मा के चुम्बन (शिशिर के बिन्दु-चुम्बन) का स्पर्श पा, सांसारिक शृंखलाओं से मुक्त हो परमसत्ता को प्राप्त होती है। जाग्रत में सुप्ति थी—में भी जागरण क्लान्ति का एवं स्वप्न आनद का प्रतीक माना जा सकता है—

लाज से सुहाग
मान से प्रगल्भ प्रिय प्रणय निवेदन का
मन्द हास मृदुल वह।

इन पंक्तियों में जीवात्मा की ब्रह्म लीनता और आध्यात्मिकता की ओर उन्मुखता का संकेत मिलता है—

हेर उर-पट फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग के तागी।

'प्रिय यामिनी जागी' की उपर्युक्त पंक्तियाँ मन की कामनाओं की मुक्ति एवं जागृति की पवित्रता की प्रतीक हैं।

प्रकृति के अनोखे चित्रों में बादलों पर निराला जी की अनेक कविताएँ हैं, जो निराला साहित्य में विशेष महत्त्व रखती हैं। वर्षा एवं बादलों का सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण ही नहीं किया वरन अनेक प्रतीकों के रूप में भी बादलों का उपयोग किया है—

तिरती हैं समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—

जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया ।

समीर के सागर पर तैरता हुआ 'बादल' अस्थिर सुख पर दुःख की छाया का प्रतीक है। ग्रीष्म से दग्ध संसार के हृदय पर विप्लव का प्रतीक यही बादल है, तो कहीं यह युद्ध की आकांक्षाओं से भरी नाव का प्रतीक है। अन्धकार के आँगन में खेलने वाला शिशु भी वही है। वह चंचल बालक भी है, जो किरण के सहारे आकाश पर चढ़ जाता है। बादल कहीं समुद्र का आँसू है, तो कहीं सूर्य का चुना हुआ फूल भी। बादल में युग का व्यक्तित्व प्रतीकों में मुखरित हो उठा है। ये बादल कवि की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं—

रुद्ध कोश है क्षुब्ध तोष,
आंगन-अंग से लिपटे भी
आंतक-अंग पर काँप रहे मैं
धनी, वज्रगर्जन से बादल
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण-बाहु है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर।
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र है उसका आधार,
ऐ जीवन के पारावार।

जिनका कोष रूद्ध और तोष क्षुब्ध है, वे विप्लव का भैरव नाद सुनकर अंगना-अंग से लिपटे हुए भी आंतक से काँप उठते हैं, पर शीर्ण शरीर और जीर्ण बाहु वाला किसान उसका आवाहन करता है। जन-संघर्ष की ओर निराला का संकेत अद्वितीय है।

निराला के प्रतीकों की विशिष्टता यही है कि कवि सदैव अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति पर बल देता है। चित्रात्मकता प्रतीकों का सहज गुण है; किन्तु चित्रण की प्रधानता न देकर, भावनाओं की सबल अभिव्यक्ति पर ही निराला जी का ध्यान केन्द्रित रहा है। महादेवी एवं सुमित्रानन्दन पंत की संध्या-सुन्दरी यदि चित्रात्मकता में अद्वितीय है तो निराला की 'सन्ध्या सुन्दरी' भावभिव्यक्ति में।

निराला जी के सम्बोधन गीत अधिक उदात्त एवं प्रेरणात्मक हैं। 'यमुना के प्रति', 'प्रभात के प्रति', 'प्रिया के प्रति' 'तरंगो के प्रति', 'जलद के प्रति' आदि अनेक सबोधन गीत अपने प्रतीक अर्थ में भी अद्वितीय हैं। यमुना के प्रति अतीत गौरव का प्रतीक है। अलंकृत प्रतीकात्मकता के साथ-साथ इसमें सांस्कृतिक पीठिका पर बुद्धि और भावना का सुन्दर समन्वय हुआ है। रीतिकालीन शृङ्गारिकता से मुक्त यमुना का उदात्त स्वरूप देखने को मिलता है। 'प्रपात के प्रति' में गतिशील प्रपात चेतन का जगम पर्वत जड़ का प्रतीक माना जा सकता है—

समझ जाते हो उस जड का सारा ज्ञान
फूट पडती है ओठों पर तब मृदु मुस्कान

यहाँ जड़ चेतन के संघर्ष में चेतन की जड़ पर विजय घोषणा है। 'खडहर के प्रति' भी अतीत के गौरव का प्रतीक है। भारतीय सांस्कृतिक गौरव की विस्मृति में खण्डर के आँसू मानों कवि की वेदना का प्रतीक है।

निराला ने अपने आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति में भी प्रतीकों का आश्रय लिया है। आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग अधिक सहाय होता है। रहस्यात्मक अनुभूतियाँ अभिधा में नहीं बाँधती, उसे आत्मसात या प्रेषित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग सहायक सिद्ध होता है। निराला की रहस्यवादी रचनाओं पर विवेकानन्द के दर्शन का प्रभाव है। मातृ रूप में इष्टदेवी की कल्पना भी उन्हीं की देन है। 'रवि तुम्हें क्या दूँ' में श्यामा क्रान्ति की प्रतीक है। अद्वैतवादी दर्शन से प्रभावित कविता 'तुम और मैं' में 'मैं' आत्मा का और 'तुम' परमात्मा का प्रतीक है। आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध अनेक रूपों से इसमें व्यक्त हुआ है। 'अनामिका' की प्रेयसी अद्वैतवादी दर्शन से अनुप्राणित है, जिसमें प्रेम का उद्दाम प्रवाह भी है। इस कविता में प्रेम की भावना का पूर्ण विकास हुआ है। प्रेयसी आत्मा का प्रतीक है, जो मायापाश से पंकिल होकर देह कलुषित करती है—

उतर कर पर्वत से निर्झर भूमि पर
पंकिल हुई, सलिल देह कलुषित हुआ।

पर्वत वह देश है जहाँ से आत्मा विलग हुई है, लेकिन 'जागा देह ज्ञान फिर याद गेह की हुई' में स्पष्ट ही उस गेह की ओर रहस्यात्मक संकेत हैं जहाँ आत्मा मायापाश से मुक्त हो जाती है।

प्रतीकों की सुंदर योजना हमें निराला की 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' मे देखने को मिलती है। इन रचनाओं की प्रतीक योजना महाकाव्योचित है। चित्रण के साथ साथ अपूर्व बन पड़ी है। भाव व्यंजना ही इनके प्रतीक का प्रधान लक्ष्य रहा है, चित्रात्मकता तो स्वत ही आ गई है—

दृढ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,

'राम की शक्ति पूजा' में राम निराशा से डूबे अपने दल के साथ अपने शिविर को लौटे हैं। आकाश से लेकर पृथ्वी तक विराट चित्र भी राम की निराशा का प्रतीक है। जटा मुकुट खुल कर पीठ पर बाहुओं और वक्ष पर इस प्रकार फैल गया है जैसे पर्वत पर रात्रि का अन्धकार फैल गया है और निराश मन पूर्व-स्मृतियों में समस्या का समाधान खोजता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मानसिक द्वंद्व पर व्यक्ति व की विजय का प्रतीक है जो कवि के जीवन का भी सत्य है।

'राम की शक्ति पूजा' मे शक्ति के स्वरूप की विराट कल्पना साहित्य मे वेजोड है। विवेकानन्द की कल्पना को कवि निराला ने काव्यात्मकता प्रदान की जो संसार-साहित्य की अमूल्य निधि है—

> देखो, बन्धुवर, सामने स्थिति जो यह भूधर
> शोभित-शत-हरित-गुल्म तृण से श्यामल सुन्दर
> पार्वती कल्पना है इसकी मकरन्द बिन्दु,
> गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह नहीं सिन्धु

पर्वत के रूप में शक्ति की कल्पना की गई है; और उसके चरणों पर गरजता हुआ समुद्र सिंह गर्जन की प्रतीक है। दशों दिशायें सिंह वाहिनी शक्ति के दस हाथ है। ऐसा विराट स्वरूप शक्ति का है।

प्रतीकों का लक्ष्य उन भावों की व्यंजना करना है जो साधारणतया व्यक्त नहीं किए जा सकते। निराला के प्रतीकों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति में सफल रहे हैं। 'तुलसीदास' का प्रतीक विधान भावाभिव्यजना में अधिक चमत्कारिक है।

'तुलसीदास' का प्रारंभ और अन्त प्रतीकार्थ में ही होता है। प्रतीको का चरम विकसित रूप हमें तुलसी और रत्नावली के रूप में मिलता है; जो साधारण पात्र न रह कर प्रतीकात्मक बन गये हैं। दोनों पात्र क्रियाशून्य होते हुये भी परिवर्तनशील हैं। इनके मानवीय सहज गुणों का चित्रण बहुत कम हुआ है। उनमें होने वाले मानसिक एवं आध्यात्मिक परिवर्तनो ने उन्हें प्रतीकात्मक बना दिया है। 'रत्नावली' में उनकी आसक्ति व्यक्तिगत कामुकता न होकर सामाजिक ह्रास का प्रतीक बन जाती है .....रत्नावली के शब्दों में तुलसीदास को नहीं वरन साहित्य और संस्कृति की समस्त रीतिकालीन परम्परा को धिक्कारा गया है। उसके योगिनी रूप में मध्य कालीन नारी का नायिका-भेद वाला रूप जल कर भस्म हो गया है। रत्नावली मानवीय पात्र न होकर प्रतिभा का प्रतीकार्थ बन जाती है :—

> दूर, दूरतर, दूरतम, शेष
> कर रहा पार मन न भी देश
> सुजता सुवेश, फिर फिर सुवेश जीवन पर
> छोड़ता रंग, फिर फिर सवार
> उड़ती तरंग ऊपर अपार
> संध्या-ज्योति : ज्यों सुविस्तार अंबरतर।

'यहाँ ऊर्ध्वगामी क्रिया का वर्णन है, साथ ही संध्या के अवसर पर आकाश में उठती हुई सूर्य की लालिमा का प्रतीक लेकर संस्कार की तहों को छोड़ते हुये ऊपर उठने के भावों की व्यंजना की गई है। आकाश में अनेकानेक चित्र उभरते-मिटते हैं और पश्चिम की लाली आकाश पर ऊपर उठती हुई ढाँपती जाती है। यह प्रतीक मन के संस्कार-परतों को छोड विस्तार में जाने के भाव को कुशलता से व्यजित कर रहा है। 'तुलसीदास' काव्य का कथानक प्रबध वक्रता के कारण प्रतीकात्मक बन गया है, जो हिन्दी साहित्य में वेजोड़ है।

इनकी रचनाओं में एक और स्वर जो मुखरित हुआ है, वह है सामाजिक चेतना का स्वर। इस प्रकार की रचनाओं में हम प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का रूप देखते हैं। इन रचनाओं में भी प्रतीकों की अपूर्व छटा मिलती है। निराला जी की प्राय सभी कविताएँ अन्ततोगत्वा प्रतीकात्मक हो जाती हैं। निराला जी जिसे कविता की परिणति कहा करते थे, वह प्रतीक योजना की अंतिम मरोड़ ही है। अन्तिम पंक्तियों में प्रतीकार्थ स्पष्ट हो जाता है। 'पत्थर तोड़ती' आदि रचनाएँ इसी प्रकार की हैं जिनके अन्त में जाकर प्रतीकार्थ स्पष्ट हो जाता है।

'कुकुरमुत्ता' एव 'नये पत्ते' एक ही धरातल की जनवादी रचनायें हैं। कुकुरमुत्ता' में कवि के प्रगतिशील विचारों का यथार्थ चित्रण है, जिसमें व्यंग्य की प्रधानता है। समाज के विविध पक्षों पर कटु एव कठोर व्यंग्य किया है, और उसके लिए प्रतीकों का आश्रय लिया है। 'कुकुरमुत्ता' में सामाजिक व्यंग्य मुखर हो उठा है। गुलाब उच्चवर्ग का एव कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग का प्रतीक है। गुलाब को देखकर कुकुरमुत्ता कहता है—

खून खींच खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।

कुकुरमुत्ता यहाँ शोषकों के विरुद्ध शोषितों की ललकार का प्रतीक है। गुलाब को कैपिटलिस्ट बता साम्राज्यवादी वर्ग का प्रतीक ठहराया है। गुलाब के बहाने पूंजीपतियों को हेय ठहरा सर्वहारा को श्रेष्ठता प्रदान की गई है। कुकुरमुत्ता उन साम्यवादी नेताओं का भी प्रतीक है जो अपने समर्थन में वेदों से लेकर आज की ज्ञान-राशि को अपने चश्मे से देखते हैं "नवाब साहब का कुकुरमुत्ता के प्रति आकस्मिक प्रेम उस उच्चवर्ग के बौद्धिक विलास का प्रतीक है जो हवा के साथ बदलने का अवसरवादी दृष्टिकोण रखते हैं। ठूँठ का वृद्ध विहग, समाजवादी नेता का प्रतीक है। युद्ध के समय साम्राज्यवादी एव पूंजीवादी शोषण का प्रतीक है। इनकी 'गरम पकौड़ी भी नय विचारों एव नई अवस्था का प्रतीक है। नये विचारों की ओर सहज आकर्षण 'गरम पकौड़ी' के लोभ से कम नहीं। 'गरम पकौड़ी, से जीभ का जल जाना, नये विचारों के ग्रहण मे बौद्धिकता के अभाव का ही प्रतीक है।

भावनाओं की तीव्रता को व्यक्त करने की जो सक्षमता निराला के प्रतीक में है, वही इनकी सफलता का मूलाधार है। प्रतीक निराला काव्य में सत्यान्वेषण का सबल साधन रहा है, जो हिन्दी छायावाद काव्य में अद्वितीय है।

निराला-काव्य का दार्शनिक अनुशीलन

सुश्री वीणारानी कंठ

आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में यदि कोई सर्वाधिक विवादास्पद कवि रहा है, तो निश्चित रूप से वह निराला है। मुक्त छन्दों का ही नहीं, मुक्त भावभूमियों का, मुक्त मानव मूल्यों का यह मसीहा आद्यन्त कटु आलोचनाओं--प्रत्यालोचनाओं की सूली पर चढ़ाया जाता रहा। किसी ने इनको संगीत—पारखी मानकर सूर और मीरा की कोटि में रखा, तो किसी ने दर्शन के गहन-गूढ़ तत्वों का मर्मज्ञ जानकर तुलसी की श्रेणी में ला बिठाया, तो किसी ने अति बौद्धिक कहकर इनके काव्य को ही भावना शून्यता के दोष से विद्ध रहे और जैसा कि श्री वाजपेयी जी ने कहा है, कि—'हमारे साहित्यिक महारथी सात अंधे भाइयों की तरह उस तथा-कथित हाथी की हास्य विस्मयभरी रेखाएँ ही बखानते रहे[१]। कोई इस विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व के दुःसह द्वारों से घिरे गुप्त ताख जैसे मन तक नहीं पैठ सका। उसके हृदय की भाँति, व्यक्तित्व की भाँति, उसका काव्य भी अनेकाधिक अर्थों में अव्याख्येय ही रह गया।

वस्तुतः निराला एक ऐसे केन्द्रविन्दु का नाम है, जिसमें भारतीय संस्कृति-वृत्त के नूतन और पुरातन सारे रूप, सारे रंग, सारे स्वर और सारे आकार तिरोभूत होते रहे हैं। वह युग का कवि नहीं, युग-युग का कवि है। उसने केवल तत्कालीन समस्याओं को ही अभिव्यक्ति नहीं दी, इस मनु-पुरातन संस्कृति की यह आस्था के सनातन उदात्त स्वर को भी झंकृत किया। उनका काव्य जीवन की साधना के विधि चित्रों का अलंबम है।[२] अतः जहाँ एक ओर उनकी कविताओं में तीव्र ऐतिहासिक बोध एवं जातीय अभिमान का स्वर है[३] शक्ति के ऊर्जस्वित हुँकार का ओज एव शौर्य का अनुलेख है[४]; वहीं इसकी एक दम उलटी विरोधी दिशा में इस पौरुष-दीप्त स्वर का परिवर्तित अवरोह अपार करुणा प्लावित विषादग्रस्त प्रार्थनाओं के रूप में दीख पड़ता है। जिस कवि ने जूही की कली, प्रेयसी, अप्सरा, शेफालिका जैसी शुद्ध सात्विक सौन्दर्य की अवतारणा की, पावस के उमड़ते-झरते घनो को देखकर जिसकी सहज संवेदना ने सैकड़ों कविताओं को सृजा, उसी कवि ने 'कुकुरमुत्ता' की तीखी व्यंग्य प्रधान कविताएं भी लिखी; जिन्हें देखकर बरबस लगता है, कि हृदय की वह अपार करुणा जिसमें तुलसी की निष्ठा, सूर की एकान्तिक विनम्रता, मीरा की रसमयी तनमयता है, अपने स्त्रोतोद्गम पर ही जैसे वज्र कठोर आक्रोश-शिला में जकड़ कर रह गई है।

१—हिन्दी साहित्य—बीसवी शताब्दी--नन्ददुलारे वाजपेयी

२—भूमिका, गीत-कुज-सुधाकर,पांडेय-पृष्ठ ३४

३---शिवाजी को पत्र, जागो फिर एक बार, यमुना के प्रति—आदि।

४—राम की शक्ति पूजा, बादल राग।

प्रश्न उठता है कि निराला के इन सारे वादी और प्रवादी स्वरों में सत्य कौन है, और असत्य कौन ? निश्चित रूप से निराला के ये सारे रूप, स्वर एक साथ ही सत्य भी हैं और प्रधान भी। वस्तुतः निराला विरोधाभासों के कवि हैं, विरोधों के नहीं। निराला-काव्य के सारे रूपों में प्रच्छन्न रूप से एक बुद्धि प्रधान करुणा की अस्पष्ट रेखा दिखाई देती है। यह करुणा भावावेश का आप्लावन नहीं, क्षणिक ज्वार नहीं, आत्मसाधनापरक विशाल भारतीय मान-भूमि प्रवाह मान धीरे शान्त, गुरु-गम्भीर स्रोतस्विनी है। वे भारतीय संस्कृति के व्याख्याता हैं। पुरातन काल से चली आती भारतीय साधना-परम्परा को उन्होंने अपनी सहज सम्प्रसारिणी बुद्धि एवं स्नेहाश्रित उन्नत प्रबुद्ध भावना के समन्वय से विकास की नई दिशा दी है।

'गीतिका' के समर्पण में उन्होंने लिखा था 'जिसकी मैत्री मेरी रूक्षता को देखकर मुस्करा देती थी, जिसने मेरे जड़ हाथों को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य शृंगार की पूर्ति की — उसी को ।" इस समर्पण का यदि विश्लेषण किया जाय तो सम्भवतः इस रहस्यमय व्यक्तित्व के गोपन, गहन रहस्य मन की अवस्था को समझा जा सकता है। रूक्षता के साथ संवेदनशील मुस्कान का मांसल आकर्षण और जड़ता के साथ चेतनता का अद्भुत संगम-सर्वोपरि दिव्य शृंगार का अनुष्ठान निराला काव्य की ये ही दिशाएं हैं जो ऊपर से असंतुलित विरोधी जान पड़ती हैं पर जिनके मूल में एक ही स्वर है—जीवन की सरस साधना का, ज्योतिर्मय जग की आकांक्षा का। उसने सतत् प्रयास किया है मुक्ति का, चाहे मुक्ति हो या छन्दों के बंधन की मुक्ति। भारतीय दर्शन की आधारभित्ति उपनिषदें कहती हैं—परमपिता की असीम अनुकम्पा पर आश्रित रहने में भी स्वाधीनता नहीं, दासता ही दासता है। जंजीर चाहे सोने की हो, उतनी ही लगाव है जितनी लोहे की। वस्तुतः इस प्रकार संसार में कोई बंधा हुआ नहीं, कोई खंडित नहीं, कहीं द्वित नहीं। मानव ईश्वर की उपासना करता है—भ्रमवश। क्योंकि 'मैं' और विश्व-प्रेम एक दूसरे में तिरोभूत हैं। चिंतन और रूढ़िगत विश्वासों के मोह-पाश से निस्तारण इस "मैं" की मुक्ति का पथ है। निराला उपनिषद् के इस तत्त्वदर्शन के जो मर्मज्ञ हैं। उन्होंने स्वीकार किया है—'कवि जग का मुक्त प्राणी है, ऊर्ध्व ध्यान के सम्भनित गान का आलाप ही कवि कर्म है।' मुक्ति केन्द्रस्थ आकांक्षा है, जिस तक पहुँचने के लिए कवि ने अनेक राहों का अवलंब ग्रहण किया है। इनमें से अनेक राहें ऐसी हैं जिनपर थोड़ी दूर चल कर ही वह पुनः वहीं जा खड़ा हुआ है जहां से चला था—और अनेक ऐसी हैं जो उसे इस केन्द्र के अत्यधिक निकट ला सकने में समर्थ हुई हैं।

निराला का काव्य मूलतः बुद्धिवादी है। बौद्धिक चिंतन क्रमशः भावना के धरातल पर उतरता गया है, और दार्शनिकता अन्ततः आध्यात्मिकता भक्ति के दाक्ष्य दैन्य में पर्यवसित हो गई है। यद्यपि काव्य का यह विकास प्रतीकरूप ही है पर निराला काव्य का सत्य यही है। माया-मरीचिका की छलना, मृग तृष्णा का भटकाव और दुःखमय संसार का हाहाकार इन सबकी प्रतिक्रिया स्वरूप उपजी करुणा निराला की एक मात्र पूँजी थी, किन्तु नियति-नटी का क्रीडा मदुक बनकर, संसार के असारत्व से परिचित होकर स्वामी रामकृष्ण के प्रभाव से विवेकानन्द के चिन्तनक्रम की ओर आकृष्ट हो, ब्रह्म के सत्य रूप पर पड़े माया के आवरण को भेद कर उन्होंने वेदान्त के मूलमंत्र 'अहंब्रह्मास्मि तत त्वमसि' को भी ग्रहण

किया था। अतः एक साथ ही उनमें करुणा की सलिला सरस्वती और दर्शन की गंभीर स्रोतस्विनी गंगा के दर्शन होते हैं। उनका यह द्वन्द्व अनेक कविताओं मे स्पष्ट दृष्टिगत् होता है।

यह द्वन्द्व ही उनकी काव्य-साधना के इस अस्वाभाविक प्रतीक पर्याय का कारण है। अनेक स्थलों पर वेदान्तिक ज्ञान एव दैन्य-भक्ति का समन्वय कर उन्होंने उन दोनों के पृथक अस्तित्व को ही भ्रम सिद्ध कर दिया है।

मूलतः निराला की समस्त दार्शनिक मान्यताओं. बौद्धिक चितनाओ के पीछे प्रत्यक्षतः वेदान्त का स्वर ही प्रवल रहा है। प्रारंभिक जीवन के कुट अनुभवों एवं दारुण दुःखो के पश्चात वे सहज ही विवेकानन्द की ओर आकृष्ट हुए।

निराला उस युग के प्रतिनिधि थे जो धार्मिक, सास्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक नवोत्थान के चौराहे पर खडा हुआ था। दयानन्द और राममोहनराय के तर्कों ने हिन्दुत्व का ही उत्थान नही किया था। उस युग की नवोदित मनीषाओ को भी अपनी ओर झुकने को वाध्य किया था। एक ओर तो निराला मे इस जाग्रत जातित्व का, हिन्दुत्व का, तीव्र उन्मेष था और दूसरी ओर विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त से स्वामी रामकृष्ण की भाववादी अद्वैत साधना से वल मिला। यह अद्वैत साधना सहजानुभूति और आध्यात्म पर आधारित थी। धर्म इनके लिए आनद था, समाधि उनकी पूजा, विश्वास और जाग्रत उसके सोपान थे, उत्थान और मुक्त चरम प्राप्त। उनकी कविताओं मे जो सतही विरोधाभास प्रतीक होता है उसके मूल्य मे निराला की यह द्वन्दात्मक मनःस्थिति ही सर्वोपरि है जिसमे वास्तविक रूप में कही कोई द्वन्द्व नही।

निराला ने स्वयम् स्वीकार किया है कि उन्हे कवि का हृदय और दार्शनिक का मस्तिष्क मिला है। अतः जहाँ एक ओर उनमे भावना का घोरतम आवेश है वही दूसरी ओर चिंतनजन्य गहन दार्शनिक ज्ञान भी। पर कवि की विशेषता दोनों के अद्भुत समन्वय में है। कविता दर्शन के ठंडे हाथो का स्पर्श पाकर न जड बनी है, न-आँखों से ओझल हुई है। काव्य ने दर्शन को स्निग्धता प्रदान की है और दर्शन ने काव्य को उदात्त बनाया है। ठीक वैसे ही वेदान्त में निहित दार्शनिक भाव काव्यात्मक सौन्दर्य से जगमगा उठे हैं। कहना न होगा कि वेदान्त का दर्शन कविता है और निराला की कविता का दर्शन वेदान्त।

यह तो स्पष्ट ही है। कि निराला के काव्य के उदात्त और स्थूल, व्यायहारिक यथार्थवादी और आध्यात्मिक भावनावादी दोनों ही स्वरूपों का मूलाधार वेदान्तीय दर्शन है। जो रामकृष्ण और विवेकानन्द के माध्यम से परिमार्जित, परिवर्द्धित और परिवर्त्तित रूप मे निराला तक पहुँचा है। इस दर्शन की चार स्थितियों है—(१) वेदान्तिक शुद्ध अद्वैतवादी (२) विवेकानन्दयी व्यावहारिक अद्वैतवादी (३) रहस्यवादी (४) विनमपरक भक्ति। इसे यो भी रखा जा सकता है—

'निराला जान मे कवि और अनजान में गत थे'। प्रारम से ही उन्होंने अपनी इस चित्तवृत्ति के कारण धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन किया था। वेदान्त के चिंतन ने ही उन्हें संसार के प्रति तीव्र उत्कृष्ट शृंगार की हो अथवा तीव्र विषाद की, सर्वत्र एक तटस्थता दृष्टिगत होती है। द्वन्द्व के क्षण आते हैं पर वर्षान्त के बादलों की भाँति ठहरते नहीं, उड़ते चले जाते हैं। जय हो अथवा पराजय सुख हो अथवा दुख आशा हो अथवा निराशा जीवन की हर स्थिति के प्रति उत्तरदायी वह अन्तर्भावित ब्रह्म है वही अन्तिम सत्य है शेष सब मिथ्या है। स्वयम् पर वश निश्वास खो देता है, बार बार हार मानता है। क्यों कि उस सर्वज्ञ, नित्य शुद्ध सतत जाग्रत और दयामय निराकार ब्रह्म का प्रकाश उसकी आत्मा उचित मात्रा में ग्रहण नहीं कर पाती। किन्तु उस अखंड अविनाशी परमात्मा के प्रति उसका विश्वास खंडित नहीं होता।

ब्रह्म अनश्वर है और मायाओं से परे हैं, स्रष्टा, भोक्ता एवम् द्रष्टा है और यह अहम् उसी की अनुकृति है। अत अहम् अगर ब्रह्म की तरह ही अपने को अनश्वर मान ले तो आत्मविश्वास के लिये और चाहिए भी क्या शक्ति और आकार के संघात से जिस नाम रूपधारी शरीर का निर्माण हुआ है वह नश्वर विघटित होगा पर आत्मा संघात नहीं, अत वह अनश्वर अविघटित है। मृत्यु तथा जीवन उसकी छायाएँ मात्र हैं।

'मतवाला' के संपादन-काल में ही निराला, रामकृष्ण मिशन के संपर्क में आए थे और वहीं विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त से उसका परिचय हुआ था। 'विवेकानन्द नवयुग के विश्वव्यापी विघटनशील वातावरण में उस आधारशिला की भाँति थे जिस पर धर्म दृढ़ रह सके, उस प्रमाणिक वाणी की तरह थे जिसमें मनुष्य अपने को पहचान सके। वेदान्त ने संसारिक असारता एवं नश्वरता का ज्ञान दिया था, आत्मा को अग्नि उदर्चिवत्' परमात्मा से अभिन्न माना था किन्तु साथ ही अज्ञान एवं माया की स्थिति भी स्वीकार की थी, जिसके परिणाम स्वरूप आत्मा अंधकार में भटकती है। अपनी मुक्ति एवं स्वाधीनता का विवेक खो देती है। विवेकानन्द ने इस व्याख्या को व्यावहारिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया। उस साधना का मार्गोद्‌घाटन किया, जिसमें विवेक का स्थान सर्वोपरि था। विमोक (इच्छाओं से मुक्ति) अभ्यास (परमात्मा की ओर मन की सतत गति) क्रिया (दूसरों का उपकार) कल्याण (सत्य आर्जव अहिंसा) और अवसाद (आंतरिक तेज, उल्लास) के विभिन्न सोपान थे। वे मूड़ मुड़ाकर संन्यासी बन जाने के कायल नहीं थे। परमात्मा की भक्ति करो, वह भक्ति जो तुम्हारी शक्ति का हनन न करे, प्रकृति के विरुद्ध न जाय, वरन आत्मा को अधिक उच्च एवं शक्तिशाली बनाए। उनके धर्म ने उस आदर्श की प्रतिष्ठा की जिसके प्रकाश में नैराश्य और अवसान के गहन अंधकार में गोते खाती युग चेतना आत्म विश्वास पूर्ण कर्म विन्यस्त उदात्त जीवन की भूमि पर प्रतिष्ठित हो सकी। निराला के काव्य में जो आस्था एवं विश्वास का स्वर सर्वत्र दीख पड़ता है उसके पीछे विवेकानन्द का वही व्यावहारिक वेदान्त है, जिसमें उन्होंने कहा था,—अपने ऊपर विश्वास न करना सबसे बड़ी नास्तिकता है। निराला को हम शक्ति एवं पौरुष का कवि मानते हैं, ऊर्ध्वगामी विकास का कवि जानते हैं, क्योंकि निराला ने विवेकानन्द के इस विश्वास को वाणी दी थी। उनकी कविताओं

में इसी विश्वास के कारण मानव के प्रति अटूट आस्था, सहृदयता और संवेदनशील तन्मयता है। अपने परवर्त्ती काव्य में उन्होंने युग की दलित-सत्रस्त मानवता से करुणार्द्र होकर कटु-व्यंग्य का संधान किया था किन्तु यदि इस भाव का भी विश्लेषण किया जाय तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उसमें भी व्यावहारिक वेदान्त ही पर्यवसित है। जिस आत्मा को सर्वज्ञाता अनश्वरता, बंधनमुक्तता में कवि की आस्था थी इसकी ऐसी दशा देखकर कवि उद्बोधन करना चाहता है किन्तु सीधे से नहीं उल्टा जाप करके।[१]

विवेक के द्वारा ही उन्होने प्रत्यक्ष जीवन के साथ आदर्शों का समन्वय करना चाहा था, वर्त्तमान जीवन की अनन्त के साथ एकरूपता स्थापित करनी चाही थी। विवेकानन्द ने कहा था—प्रत्येक मनुष्य कूदकर सर्वोच्च आदर्श पा लेना चाहता है.. कूदने का अंत गिरने से होता है। हम यहाँ बँधे हुए हैं। धीरे-धीरे ही अपनी जंजीरों को हमें तोड़ना है। यह ज्ञान ही विवेक है, निराला ने दुरागत कुहेलिका ग्रस्त भविष्य की कल्पना इसी विवेक द्वारा स्पष्ट अनावृत रूप में की थी। इसी विवेक के कारण उन्होंने जीवन को कर्मठता का पाठ पढाया था, बौद्धिकता के साथ पौरुष एवं शक्ति का समन्वय किया था। परिमल के प्रारंभिक प्रार्थना गीतों में कवि ने इस विवेक की विधायिका शक्ति का आवहन किया है।

तुम के साथ मैं के एकीकरण के मार्ग में बहुत सारी बाधाएँ और विक्तियाँ आती हैं, कुहेलिकाएँ आशा के आकाश पर छाकर दृष्टिपथ को ओझल कर देती हैं पर विवेक द्वारा कवि बार बार शक्ति प्राप्त कर आगे को बढता है, । यही विवेक उसे वेदान्तिक साम्यवाद की भूम पर प्रतिष्ठित करता है और यही विवेक उसकी कविताओं में क्रान्ति के शंखनाद के रूप में उभर कर आया है।

स्वामी विवेकानन्द का उत्कृष्ट कर्मयोग, रामकृष्ण के शक्ति-आवाहन के रूप में निराला में अभिव्यक्त हुआ है। सांसारिक द्वैतभाव के विनाश के लिए उन्होने मा रूप में उस अलौकिक सच्चिदानन्द ब्रह्म को ही नानारूपिणी बनाकर प्रतिष्ठत किया। शायद इसके पीछे रामकृष्ण के प्रभाव से अधिक मातृ-स्नेह वञ्चित किशोर की अचेतन लालसा ही अधिक हो। यह माँ भारती है, प्रकृति।

निराला के काव्य में अद्वैत-दर्शन ने एक अद्भुत अलौकिकता, रहस्यात्मकता एवं आध्यात्मिकता का स्वर भर दिया है। जिस ब्रह्म ने उसे कर्मवाद का संदेश देकर जीवन की कटु विभीषिकाओं से जूझने का बल दिया है उस परोक्ष ब्रह्म के प्रति अनेक स्थलों पर कवि के हृदय की अपार जिज्ञासा के साथ एक निष्टानुराग की भी व्यंजना हुई है।

निराला में बौद्धिकता और रागात्माकता के बीज सम भाव मे उपस्थित हैं। वेदान्त ने इन दोनों को ही पल्लवित किया है। बौद्धिकता ने विवेकानन्द से प्रभावित होकर व्यावहारिक वेदान्त के कर्मवादी सिद्धान्तो को जीवन में उतारा और रागात्मिकता वृत्ति ने अद्वैतवादी रहस्या-वाद के स्तर से चलती हुई अनुराग और करुणा की विदृस्त जल-धारा में अपनी परिणति ढूँढ

१—'भयो सिद्ध कर उल्टा जापू' अगर किसी पर खप सकता है तो हिन्दी के इतिहास मे एकमात्र मुझ पर।—मेरे गीत और कला-प्रबन्ध-प्रतिमा, निराला।

ली। विवेकानन्द ने स्वीकार किया था— प्रेम संश्लेषक शक्ति है और घृणा विघटनकारी अनेकत्व विधायिका शक्ति, अतः संसार के बहुत्व के मध्य यदि एकत्व की स्थापना प्रेम है तो, प्रेम ही स्वीकार्य है, सर्वोपरि है। वस्तु की लक्ष्य (नाम) घनीभूत (विचार) और अत्यंत घनीभूत (रूप) इन तीनों अवस्थाओं में ऊपर से जिस 'शिव' का बोध होता है, वस्तुतः वह 'एकत्व' है। परमात्मा की सूक्ष्म एवं आत्मा की अत्यंत घनीभूत अवस्था के बीच प्रेम शृंखला का कार्य करता है। निराला के प्रेम काव्य में प्रेम वस्तुतः अद्वैतवाद की एक अत्यंत स्वाभाविक परिणति है। यही प्रेम परोक्ष के प्रति अपार जिज्ञासाओं का संधान करता है, यहीं प्रेम अपनी भाव विह्वल व्याकुलता में दर्शन की भूमि पर रहस्यवाद का नियामक है और यही प्रेम निराला काव्य के साम्यवाद का पोषक है। इसी अर्थ में निराला के काव्य का मेरुदण्ड रहस्यवाद है। किन्तु निराला के रहस्यवाद में न तो मध्ययुगीन संतों की कुहेलिका है न रवीन्द्र की भावकुता, यहाँ न प्रसाद की उत्कृष्ट बौद्धिकता है न महादेवी का द्वैतवादी दुःखदर्शन। इस रहस्यवाद में निर्गुण संतों की साधना और सगुण भक्तों के प्रेम का समन्वय है। वे कहीं भी अपने प्राण-निवेदन में स्त्रैणता की हदतक नहीं पहुँचते हैं। उनमें रसता है, रसात्मकता है पर पौरुष की अनुगूँज भी है। उनके विरह में भी मिलन का अलक्ष्य भाव है, क्योंकि इस रहस्यवाद का आधार द्वैत नहीं अद्वैत है, अज्ञान नहीं वेदान्ती ज्ञानवाद है।

निराला के काव्य दर्शन का चौथा आयाम है—विह्वल विनय परक भक्ति का यह स्वर मध्ययुगीन संतों के अत्यधिक निकट है। क्रान्ति के गायक उद्धत पौरुष के प्रतीक निराला का यह अंतिम पर्यवसान बड़ा ही विलक्षण है। विवेकानन्द ने जिस कर्मवाद की प्रतिष्ठा की थी उसका अंतिम सोपान था 'मानववाद' किन्तु निराला के काव्य दर्शन के अंतिम आयाम में है। अवसाद पूर्ण मन स्थिति से उठी हुई करुणा, दया की साधना का स्वर, कवि ने आराधना में स्वयं जैसे स्वीकार कर लिया है—

अपना जपना रहा,
सत्य कल्पना रहा,
यौवन सपना रहा
ज्ञान वही धो गया।

(आराधना)

और वह जैसे पश्चाताप करता है—

ज्ञान की खोज मे कौन कुल खो दिया
सत्य की नित्य आराधना, अवमनन

(आराधना)

किन्तु सच तो यह है कि जीवन के आरंभ में कवि ने जिस दर्शन को जीवन की अंतिम वेला में श्रद्धा समन्वित करके अपनी भूल का संशोधन कर लिया। वेदान्त का मूलाधार था विश्वास, किन्तु श्रद्धा के अभाव में विश्वास मात्र एक छलना है। अर्चना, आराधना और गीतगुंज के गीतों में करुणा और भक्ति का जो स्वर है वह इस श्रद्धा समन्वित विश्वास की

ही अभिव्यक्ति है। अद्वैत-दर्शन का उत्कृष्ट बुद्धिवाद इस श्रद्धा-विश्वास और भक्ति की त्रिवेणी का अवगाहन कर सहज सुलभ और सर्वसम्मत हो गया है। संसार की वह वासना जिसे ज्ञान के हाथ निर्मल नहीं बना पाए थे, मुक्ति का वह इष्ट जो श्रद्धा के पाथेय के बिना सर्वदा आकाश कुसुम बना रहा था, अद्वैतवादी साम्य की वह आकांक्षा जो विश्वास के अभाव में अधूरी रह गई थी—इस नए भक्त्यात्मक स्वर से घुल-मिल कर सहज संवेद्य, सहज ग्राह्य, सहज प्राप्य बन गई। इस स्वर ने ही कवि को वह आस्था दी जिसके सहारे वह संसार को उदात्त भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित कर सकता था।

तो यह है निराला-काव्य दर्शन के चार आयामो का विश्लेषण। जिसकी मूलवर्त्तिनी धारा है वेदान्त और उसका परिष्कृत कर्मयोग। किन्तु इस विश्लेषण के बाद इतना ही कहा जा सकता है कि किसी भी कवि के काव्य का दर्शन मात्र दार्शनिक तत्त्वो की ज्ञानवाची अभिव्यक्ति नहीं होती, वरन उसकी अनुभूति का अंश होता है। दर्शन का कोरा ज्ञान चिंतन की भूमि पर भावनाओं का अंग बनाकर अभिव्यक्त होता है! निराला में बौद्धिकता सर्वोपरि है किन्तु भावना और कल्पना से निस्संग बौद्धिक दार्शनिकता उनके काव्य में विरल ही है। वे कवि दार्शनिक नहीं दार्शनिक कवि थे।

निराला की कविताओ की दार्शनिक पृष्ठभूमि

श्री कुन्नुकुषि कृष्णनकुट्टी

★

श्री रामकृष्ण के आत्मशिष्य नरेन ने एक दिन अतीव जिज्ञासा से अपने गुरूदेव के सामने यह प्रश्न रखा—'गुरूदेव ! आपको कभी ईश्वर के दर्शन प्राप्त हुए हैं ?' प्रश्न का स्रोत था निश्छल जिज्ञासा। आदर भाव से उत्तर की प्रतीक्षा में स्थित शिष्य की ओर देख रामकृष्ण देव मुस्कराने लगे। गुरू की मुस्कान देख शिष्य की जिज्ञासा बढ़ी। उस बढ़ती जिज्ञासा को आश्चर्य में परिणत करते हुए गुरूदेव ने कहा—'हाँ !' उन्होंने आगे कहा—जिस प्रकार तुम्हारे दर्शन मुझे प्राप्त हुए और हो रहे हैं उसी प्रकार मुझे भगवान के भी दर्शन प्राप्त हैं।'

श्री रामकृष्ण की इन वाणियों से यह व्यक्त हुआ कि ईश्वर और मनुष्य में अन्तर नहीं है। उपनिषद् आदि में पायी जानेवाली अद्वैत दर्शन की प्रमाणोक्तियाँ इस कथन से भिन्न नहीं हैं।

अयमात्मा ब्रह्म—मैं स्वयं ब्रह्म हूँ।[1]
ब्रह्मैवेदं विश्वम्—विश्व तो केवल ब्रह्म है।[2]
सर्वं खल्विदम् ब्रह्मम्—सभी कुछ ब्रह्म है।[3]
तत् त्वमसि—वह तू है।[4]

इन सभी उक्तियों से यही व्यक्त हो जाता है कि विश्व की प्राणियों में विराजमान शक्ति और ब्रह्म की शक्ति अभिन्न है। उपनिषदों का सारग्रंथ गीता में भी यही तत्व व्यक्त किया गया है।

मयि सर्वमिदम् प्रोतम्
सूत्रे मणि गणा इव ॥

(सूत्र में मणियों की तरह सब मुझमे पिरोये गये हैं।)

इस प्रकार उपनिषद और गीता में ये सब तत्व सन्निविष्ट किये गये थे तो भी ब्रह्म समाजवादी (तब नरेन ब्रह्म समाजी थे नरेन पहले इन बातों को स्वीकार कर न सका। इतना ही नहीं उनका यह मत था कि ब्रह्म को तथा जीव को अभिन्न मानना मूर्खता है। श्रीरामकृष्ण का शिष्यत्व स्वीकार करने के बाद भी कुछ काल तक नरेन की यह धारणा परिवर्तित नहीं हुई। 'शिष्य को परिचित कराने के उद्देश्य से गुरूदेव ने जब अष्टावक्र संहिता जैसे कुछ अद्वैतवादी ग्रंथों को उच्च स्वर में पढने को कहा तब उसका विरोध करते हुए उन्हों ने कहा—'यह ईश्वर

---

(१) बृहदारण्यकोपनिषद्
(२) मुण्डकोपनिषद
(३) छान्दग्योपनिषद
(४) वही

निन्दा है, क्यों कि इस प्रकार के दर्शन में और निरीश्वरवाद में कोई अन्तर है ही नहीं। जगत् में इस से बड़ा पाप हो ही नहीं सकता जब कि मैं अपने को और सृष्टि कर्ता को अभिन्न मानूँ। जिन ऋषियों ने ऐसी बातें लिखी है, शायद वे भ्रष्ट-बुद्धि रहे होंगे।' [१] लेकिन विवेकानन्द के इस मत मे अन्तर आने में देरी न लगी। सच्चे गुरू का कर्तव्य तो अपने शिष्य की गलत धारणाओं को शीघ्र मिटा देना है। जिज्ञासु विद्यार्थी के रूप में आये नरेन को जिन गुरूदेव ने स्वामी विवेकानन्द बनाया था, उनके लिए यह कार्य भी आभास रहित रहा" शिष्य के दृष्टिकोण में शीघ्र परिवर्तन आ गया। उन्होने अपनी ही आँखो से देख लिया कि जगत् मे ईश्वर को छोड दूसरा कुछ है ही नहीं। ....जब वे घर गये और भोजन के लिए बैठे तब देखा कि तश्तरी, भोजन और परोसने वाला सब के सब ईश्वर हैं; गलियों में जो गाडियाँ, घोड़े आदि दिखाई दिये, वे सब उसी तत्व के बने हुए हैं।"[२]

अद्वैतभाव पर अधिष्ठित श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द दर्शन ने भारत के ही नही विदेशों के भी असंख्य लोगों को आकर्षित किया था। विश्व भर दिखायी पडने वाले रामकृष्ण मिशन केन्द्र तथा उसके कार्यकर्ता इसके मूर्त प्रमाण है।

१९०२ में स्वामी विवेकानन्द की आत्मा विश्वात्मा में विलीन हो गयी। श्रीरामकृष्ण दर्शन विवेकानन्द के कर्मों तथा वाणियों द्वारा सर्वत्र व्याप्त हो गयी और कुछ ही काल में उसने भारत को प्रभावित किया। १९०० से प्रारम्भ कर कुछ वर्षों तक के हिन्दी साहित्य का अवलोकन करने पर यह पता लग जाएगा कि इस दर्शन धारा ने हिन्दी साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया था।

१८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का परिणाम जैसे विदेशी सत्ता के लिए अनुकूल निकला वैसे ही विदेशी सभ्यता के लिए भी अनुकूल रहा। भौतिकता पर अधिष्ठित पश्चिमी सभ्यता भारतीय सास्कृति को परिवर्तित करने लगी। इस काल में उच्छृखल सामन्ती सत्ता पर भी विदेशी दबाव पड़ा। इस परिस्थिति ने साहित्य को भी प्रभावित किया। उसके उपरान्त विश्व महायुद्ध की निर्ममता ने मनुष्यत्व को मूल्यहीन कर दिया और साहित्यकारों के व्याकुल हृदय को मन्थित किया। इस कथन के फलस्वरूप सुधा तथा गरल दोनों निकल आये। अनेकानेक कविताएँ नवीन रूपों तथा भावो में रची गयी।

यह काल अव्यवस्था का था। मार्क्सवादी विचारधारा, फ्रॉयड का मनोविज्ञान, भारतीयता एवं स्वतंत्रता का बोध आदि रह रहकर भारतीय बुद्धि मंडल को प्रभावित करते रहे। विविध प्रकार की विचारधाराएँ, विविध प्रकार के मार्ग, अनेकानेक आशा-अभिलाषाएँ — लेकिन इन सब मे एक सूक्ष्म सबध रहा जो था भारतीयता का भाव। तथाकथित विशुद्ध भौतिकवादी मार्क्सियन विचारधारा रखने वाले भी इस भारतीय भाव-बन्धन से मुक्त नही थे। इसके बीच लन्डन में प्रगतिवादी साहित्यकार संघ का आविर्भाव हुआ जिसने भी साहित्यकारों की विचारधारा को मथित किया। इस प्रकार साहित्य क्षेत्र मे एक प्रकार की उथलपुथल हो रही थी, यद्यपि साहित्यकारों की विचारधाराएँ, तत्व आदि विभिन्न रहे तो भी सब का लक्ष्य एक ही रहा—राष्ट्र की स्वतन्त्रता।

१—
२— } वेदान्त केसरी

निशृंखल भारतीयता को पुनः केन्द्रीकृत करने के उद्देश्य से जनता में सभी भारतीयता का भाव भरने के उद्देश्य से ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि संस्थाएँ कार्य करने लगीं और तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार के यत्न शुरू किये गये। इसके फलस्वरूप भौतिक विचार-धारा की नींव हिलने लगी थी।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर १९४७ तक की काव्यधारा पर दृष्टिपात करेंगे तो मालूम हो जाएगा कि आध्यात्मिकता का एक सूक्ष्म भाव सब में विद्यमान है। मैथिली शरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पन्त आदि की कविताओं में यह भाव लक्षित होता है। मानवता को देवत्व की जननी कहने के लिए भी राष्ट्रकवि तैयार हो जाते हैं, लेकिन वे मनुष्य को पशु कहना नहीं चाहते। मानवता के प्रति प्रेम का यह भाव प्रौढ़ भारतीय आध्यात्मिक तत्वों का सरलीकृत साहित्यिक रूप है। कठिन दार्शनिक तथा आध्यात्मिक तत्वों को सरल बनाने में और उन्हें साधारण जन जीवन में व्यवहार योग्य बनाने में श्रीरामकृष्ण तथा विवेकानन्द ने बहुत यत्न किये। उन्होंने मानवता की महत्ता को दिखाया—अपने ही जीवन में।

त्वम् स्त्री त्वम् पुमानसि
त्वम् कुमार उतवा कुमारी
त्वम् जीर्णो दण्डेन वचसि त्वम्
जातो भवसि विश्वतो मुख[1]

सैकड़ो वर्षों पहले बनाये गये इन उपनिषद् तत्वों के आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा यदि तुम भलाई चाहते हो तो अपने आडबरों को दूर फेंक दो। सजीव देवता की, मनुष्य देवता की, मानव रूप धारी सबकी आराधना करो। विवेकानन्द की ऐसी प्रेरणामयी वाणियों का प्रभाव भारत के ही नहीं बाहर के भी लोगों पर पड़ा। भारतीय कवियों में चिर-स्मरणीय महाप्राण निराला ही हैं जिन्होंने श्रीविवेकानन्द के शब्दों को हृदयस्थ करके साहित्य सेवा की थी। श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द के दर्शन से प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने का अवसर उन्हें मिला था। हिन्दी के कवि थे निराला, तो भी जन्मे और पले बंगाल में। बचपन से ही आध्यात्मिकाधिष्ठित वातावरण में रहने का भी मौका मिला। श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य का हिन्दी अनुवाद करना, श्रीरामकृष्ण आश्रम की पत्रिका 'समन्वय' का संपादन करना आदि कार्य निराला को इन दोनों महापुरुषों की विचार धाराओं से बांध रखने में सहायक रहे। 'निराला पर स्वामी विवेकानन्द की व्याख्या का (उपनिषदों के मन्त्रों की व्याख्या) विशेष प्रभाव है इसका परिणाम यही हुआ है कि विवेकानन्द की तरह निराला जागरण, पंचवटी आदि जैसी कविताओं को छोड़कर दार्शनिक ऊहापोह में नहीं पड़ते, उनका ध्यान बराबर जीवन और जगत् की स्थिति, उन्नति और अभ्युदय की ओर रहता है। जीवन की महानता के लिए आत्मवाद का सिद्धान्त उन्हें मान्य है किन्तु घोर पीड़ा और करुणापूर्ण क्षणों में वे विवेकानन्द के समान ही 'पहले रोटी पीछे धर्म' की घोषणा करने लगते हैं।''[2] यह ठीक है तो भी सब में निराला का व्यक्तित्व झलकता था, सब में निराला की अपनी निराली छाप लगी रहती थी। किसी भी बात को उसी रूप में अपनानेवाले नहीं थे निराला। रचना शिल्प में, भाव संयोजन में, काल्पनिक उड़ानों में सब में निरालापन यही निराला की विशेषता थी। निराला तो

(१) श्वेताश्वतर उपनिषद्
(२) निराला का साहित्य और साधना—डा॰ विश्वम्भर नाथ उपाध्याय

अद्वैतवादी विचारधारा से प्रभावित था। लेकिन प्रेम के स्वर्णिम धागों से निर्मित एक अत्याकर्षक अवगुंठन से उनका आध्यात्मिक तत्व आच्छादित रहा। उसका एक मोहक दृश्य देखे :—

भक्ति योग कर्म ज्ञान एक ही है
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है दूसरा नही है कुछ
द्वैत भाव ही है भ्रम
तो भी प्रिये
भ्रम के भीतर से भ्रम के पार जाना है।

(पंचवटी प्रसंग)

जिस प्रकृति का शब्द चित्र निराला ने खींचा है वह भी साधारण चित्रों से भिन्न ही लगता है। हम प्रकृति के प्रत्येक वस्तु में ब्रह्म की शक्ति विद्यमान है। पवन कहे तो वह ब्रह्म है, कभी कहे तो वह भी ब्रह्म के समान सहयोग एव सामीप्य में रहने वाली आत्मा है। भक्ति की बात कहे तो उसके बारे में कहना ही क्या :—

व्यष्टि और समष्टि में नही है भेद
भेद उपजाना भ्रम
जिस प्रकाश के बल से
सौर ब्रह्माण्ड को उद्‌भासमान देखते हो
उसमें नही वंचित है एक भी मनुष्य कोई
व्यष्टि और समष्टि में समाया वही एक रूप
चिद्‌घन आनन्द-कन्द।

(पंचवटी प्रसंग)

इन्हीं आधारों पर ही निराला के संबन्ध में कहा गया है—"निराला हिन्दी काव्य के प्रथम दार्शनिक कवि और सचेत कलाकार हैं।"[१]

इसके विपरीत निराला का एक निराला उग्ररूप भी था। प्रतिदिवस स्नान जप तर्पणादि के पश्चात् बन्दरो को खिलाने वाले पंडे के सामने भूख-प्यास से विह्वल होकर रहने वाले आर्त मनुष्य का दृश्य इलाहाबाद की एक सड़क के किनारे दुपहरी धूप में बैठकर पत्थर तोड़ने वाली महिला का दयनीय रूप, लकुटिया टेककर फटी झोली लटका कर आने वाले भिक्षुक की दुस्थिति आदि देखकर कवि उग्र रूप धारण करते हैं। उस समय उनके कोमल शब्द वज्रकठोर बन जाते हैं। इतने कि कठोर पाठक का मन तड़फड़ाने लगता है। एक क्षण हुए इस परिवर्तन के पीछे कौन-सा जादू था? वह जादू भी विवेकानन्द के मन्त्रों का। एक बार स्वामी ने शान्त स्वर में कहा था:—"हम लोगों के देश में अब ज्यादा रोने धोने का समय नहीं है, इस

(१) नन्द दुलारे बाजपेयी—हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी

समय कुछ बल पौरुष की आवश्यकता है, निर्गुण ब्रह्म में विश्वास होने, सब तरह के कुसंस्कारों से रहित होकर मैं ही निर्गुण ब्रह्म हूँ, इस ज्ञान की सहायता से खुद अपने पैरों पर खड़ा होने से हृदय में कैसी अपूर्व शक्ति का विकास होता है, कहा नहीं जा सकता।" जिस मुँह से आध्यात्मिकता के शब्द निकले थे उसी मुँह से घन गर्जन जैसे शब्द भी निकले थे—" हाय! देश के गरीबों की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। वे ही देश का मेरुदन्ड है। लेकिन कोई भी उनके प्रति सहानुभूति नहीं रखता, दुःख में उन्हें सान्त्वना देने वाला भी कोई नहीं।" निराला की वाणियों में भी जो भाव अन्तर्निहित है, वे क्या इन शब्दों से भिन्न हैं? उनकी विशिष्टता क्या इससे अलग है?

यह बात विचारणीय अवश्य है कि क्या निराला को प्रगतिवादी कवि कहना ठीक है? प्रगतिवादी कवियों की अपेक्षा कोसों दूर आगे वे पहुँच चुके थे। उसकी शक्ति उन्हें मिली थी—स्वामी विवेकानन्द की वाणियों से। इसलिये निराला को भारतीय आध्यात्मिकता का कवि कहना ही अधिक उचित होगा। क्योंकि भारतीय आध्यात्मिकता मूर्त रूप थे भी विवेकानन्द। मनुष्य मात्र की उन्नति करना स्वामी का लक्ष्य रहा। कर्म क्षेत्र से मुक्ति पाने के लिए वे विरक्त नहीं बने थे। स्वामी जी के ही समान मनुष्य मात्र की सेवा करना निराला का भी लक्ष्य रहा, उनका मार्ग साहित्य सर्जना रहा, क्योंकि वे थे एक साहित्य सेवी। स्वयं निराला ने इसको व्यक्त किया है। एक कवि सम्मेलन के सिलसिले में मैनपुरी के प्रासाद में पहुँचे निराला ने वहाँ के नौकरों को देख कर राजा और रानी से कहा—"इन नौकरों की उचित देखभाल रखना। ये भी इन्सान हैं और इन्सानों की सेवा ही मेरा सब कुछ है।"

सुसंस्कृत और सुगठित विचार धाराओं के आधार पर जब चारों ओर की प्रक्रियाओं को देखा जाता है और उनसे उद्भूत अनुभूतियों को निजी व्यक्तित्व के साथ अभिव्यक्त किया जाता है तब वह शाश्वत बन जाता है। निराला ने भी यही किया। उनका व्यक्तित्व भी इतना प्रौढ़ रहा और उनकी रचनाओं की गहराई भी इतनी अधिक रही कि दोनों दुरुह समझे गये। इसलिए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा —"यदि सामयिक हिन्दी में कोई ऐसा विषय है जो अन्य सब विषयों की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट और दुरुह समझा जा सके तो वह सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का विकास है।"[1]

---

(१) हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी

निराला की काव्य चेतना

श्री बुद्धि चन्द्र वर्मा

चेतना के विकास क्रम के अध्ययन की अपनी सीमाएँ हैं। जीवन की रेखायें और युग की परिस्थितियाँ अवश्य कवि को प्रभावित करती है इतना प्रभावित करती हैं कि वे उसकी अनुभूतियो का विषय ही बन जाती है। परन्तु किसी-कवि की चेतना का निर्माण या विकास जितनी वाह्य परिस्थितियाँ करती हैं उससे कहीं अधिक अन्तरंग परिस्थितियाँ। यही कारण है कि वाह्य परिस्थितियों की समानता होते हुए भी मानव चेतना में उसकी प्रतिक्रियाएँ भिन्न देखी जाती है।

'निराला की काव्य-चेतना' के विकास-क्रम के अध्ययन के सन्दर्भ में यह प्रश्न उठता है कि इस क्रम का किस आधार पर अध्ययन किया जाय ? निराला काव्य के कुछ शोधकर्त्ताओं और अध्येताओं ने साधारणतया उनकी दीर्घ कालीन काव्य साधना को इस प्रकार विभाजित किया है—

डा० बच्चन सिंह (क्रान्तिकारी कवि निराला पृ० ५) कवि की रचनाओं मे परिवर्तन विन्दुओं को लक्ष्यकर इस प्रकार चेतना-विकास का विभाजन करते है:—

(१) उनमेष	सन् १८६७ ई० से १६१४ तक
(२) साहित्य प्रवेश अध्ययन — और अनुभव	१६१५ से २० तक
(३) क्रान्तिकाल	१६२० से २७ तक
(४) प्रौढ सृष्टियाँ	१६३० से ३५ तक
(५) अवसाद का प्रारम्भ	१६३५ से ४० तक
(६) क्रान्ति और विक्षेपदशा	१६४० से मृत्यु पर्यन्त

श्री गिरिश चन्द्र तिवारी (कवि निराला और उनका काव्य साहित्य ५-४६) विकास क्रम की प्रवृत्तियो के आधार पर विभाजित करते है :—

(१) छायावादी रचनाएँ

(२) प्रगतिवादी रचनाएँ

(३) प्रयोगवादी रचनाएँ

श्री धनन्जय वर्मा (निराला काव्य और व्यक्तित्व" पृ० ५) में कलात्मक सौष्ठव का अध्ययन क्रम को लक्ष्य में रखकर समूचे काव्य को चार परिवर्तनो में विभाजित किया है।

उक्त प्रबन्ध के निर्देशक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी लिखते है 'निराला का काव्य विकास 'परिमल,' 'गीतिका तक एक विशेष दिशा का निर्देशक है। उनकी 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसी दास' आदि वृहत्तर काव्य रचनाएँ एक दूसरे उत्थान की प्रतिनिधि है। 'कुकुरमुत्ता' से लेकर 'वेला और 'नये-पत्ते' तक निराला जी का काव्य व्यंग्य हास्य

और प्रयोग की धाराओं में प्रवाहित हुआ है । उनका अन्तिम काव्य-निर्माण शान्त रस की भूमिका पर चल रहा है ।

इसी प्रकार श्री डा० रमेशचन्द्र मेहरा अपने प्रबन्ध 'निराला का परवर्ती काव्य' में उनके विकास क्रम को पूर्ववर्ती और परवर्ती से विशिष्ट विभिन्न धाराओं में बाटकर अपने विभाजन का औचित्य सिद्ध करते हुए लिखते हैं 'उनके काव्य का पूर्वार्द्ध सन् १९१६ से ३५ तक अबाध गति से चलता रहता है सन् ३६ से ४० तक का समय संक्रान्ति कालीन माना है । सन् १५ से ३५ तक निराला जी की कविता एक समतल भूमि पर खड़ी दिखाई देता है । सन् ३६ के बाद से निराला के काव्य की समतल भूमि खिसकती हुई प्रतीत होती है । उसके अनन्तर निराला जी का काव्य नैशागम की सूचना देती है ।" (पृष्ट ३८—३९

उपरोक्त विभाजन में निराला काव्य के उक्त आलोचक किसी न किसी रूप में निराला की काव्य साधना में विक्षेप मानते हैं । कवि एवं काव्य के सन्दर्भ में किसी कवि की आलोचना आधुनिक हिन्दी आलोचना की प्रमुख प्रवृत्ति रही है और यह स्वाभाविक ही है कि कवि के विविध आचारों में उसकी चेतना के विकास और कलात्मक परिणति का विश्लेषण किया जाय । लेकिन जहाँ तक किसी कवि की काव्य चेतना के विकास क्रम के अध्ययन का संबंध है, इस सम्बन्ध में उक्त प्रकार का विभाजन सहायता, नहीं पहुँचाता, उल्टे उससे कभी कभी भ्रान्तियाँ भी खड़ी हो जाती हैं । अभिव्यक्ति कला और चेतना के आपसी सम्बन्ध के बारे में कोई निश्चित सिद्धान्त निश्चित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह हो सकता है कि चेतना निरन्तर विकसित होती चली जाय और कला अपने मूल रूप में रहे । यह भी संभव है कि कला स्थिर रहे और चेतना विकासशील । चेतना विकास के सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि विकासशील चेतना का अभिप्राय क्या है ? जैसे वृक्ष बीज का पूर्ण विकास है, इस विकास में बीज में जो गुण धर्म होते हैं वही वृक्ष रूप में विकसित होते हैं । इस विकास के लिये अवश्य बीज प्रक्रिया बाह्य वातावरण और समय से प्रभावित होती है । दूसरा विकास परिवर्तन है, जिसमें वस्तु अपने मूल रूप से बदलकर किसी दूसरी वस्तु का स्वीकार करले । कवि की काव्य चेतना के विकास क्रम में बीज की विकास क्रिया की बहुत सी समानताएँ मिलती हैं । यद्यपि यह बताना कठिन है कि बीज की तरह किसी कवि चेतना के निश्चित गुणधर्म क्या है । यह भी कहना कठिन है कि कवि की चेतना बाह्य वातावरण से एक ही मात्रा या दिशा में प्रभावित होती है । चेतना के विकास-क्रम को समझने के लिए हमें वृक्ष से बीज की ओर बढ़ना होगा । किसी कवि का विकसित काव्यतरु किन चेतना किरणों से विकसित हुआ है और इतनी संवेदना आत्मसात कर सका है कि उसमें मानवता का फूल गमक उठा । इसलिए एक स्थूल आरोपित विभाजन की अपेक्षा समूची कृतियों का काल-क्रमानुसार एक क्रम से अध्ययन करना उचित होगा । निराला जी की प्रारम्भिक कृतियाँ विवेकानन्द दर्शन से मुखरित हैं, फिर विद्रोह का स्वर उनकी रचनाओं में गूँज उठता है तदनन्तर सामाजिक चेतना के रूप में परिणित होता है, उसके बाद अवसाद के स्वर मुखरित

हैं, विनय और भक्ति के माध्यम से । प्रश्न है ये तथाकथित चारों स्थितियाँ क्या एक दूसरे से अनमिल है या उसमें कोई अर्न्तनिहित एक रूपता है ? वे एक ही चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ है अथवा चेतना की अलग-अलग इकाइयो की अलग-अलग अभिव्यक्ति । वह सत का असत विकास है अथवा असत का सत विकास है ? अद्वैत मे विश्वासी कवि विद्रोही कैसे बन गया है ? और विद्रोही कवि जीवन के अन्तिम क्षणो मे इतना अवसन्न कैसे हो उठा ? क्या कवि की चेतना एक भूमिका से इतनी बदल सकती है कि उसमें कोई तारतम्य ही न हो ? जैसा कि विद्वान आलोचक श्री विश्वम्भर 'मानव' (काव्य का देवता निराला" पृ. २८६) निराला की काव्य चेतना के विकास क्रम मे आकाश पाताल का अन्तर देखते हुए लिखते हैं "' इन रचनाओ को (अर्चना, आराधना, गीत गुंज) को पढ़कर कभी कभी मन मे ऐसा संदेह उठता है कि ये निराला जी के हाथ की लिखी हुई है भी अथवा नही ? अन्त मे वे इस महान अन्तर को देखते हुए शोक के साथ कहते हैं 'निराला की अन्तिम तीन रचनाएँ प्रकाशित न होती, तो कितना अच्छा होता ।

इन प्रश्नों का उत्तर अपेक्षा रखता हैं, कि कवि की चेतना को कृतियों के क्रम मे तटस्थ भाव से देखा जाय कि काव्य में जो अनुभूतियाँ व्यक्त हुई उसकी प्रतिक्रिया वस्तुगत थी या आत्मगत । इसलिये उनके कवि की चेतना क्रम के विकास मे सही अध्ययन के लिए काल क्रमानुसार कृतियो का ही आधार लिया जाय और सक्षेप मे विकास की रेखाओं में चेतना विकास की विशिष्टता देखी जाय ।

महाप्राण निराला को कवि रूप मे प्रतिष्ठित करने वाली प्रथम कृति 'परिमल' है यद्यपि इसके पहले 'अनामिका' छप चुकी थी, जिसकी कविताएँ भी इसमे है । परिमल' शीर्षक के पीछे कवि की कोई निश्चित व्याख्या नही है । आलोचकों ने इस नाम से सार्थकता खोजने का प्रयास किया है । सग्रहीत कविताएँ तीन खडो मे है । 'परिमल' नाम से इन खडो के प्रति कोई व्याख्या नहीं बनाई जा सकती । इसमे कवि की चेतना का वह सामान्य रूप है जो साधारण रूप से अनुभूति के सभी विषयों का संस्पर्श करता है । कवि की चेतना सहज रूप में अभिव्यक्त हुई है जो जिज्ञासा आस्था, करुणा विद्रोह सास्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है । वस्तुतः 'परिमल' में कवि के काव्य सुमन का पूर्व विकास है । एक ओर उसमें अर्थ निकला है, दूसरी ओर मानवीय सौन्दर्य, एक ओर प्रकृतिका रम्य चित्रण है दूसरी ओर मानवीय करुणा और विषमता का स्वर । इन सबमें कवि की उन्मुक्त चेतना पूर्णता के प्रति आग्रह शील है । इनमे कवि चेतना के वे मूल भूत आन्तरिक तत्त्व झाँक रहे हैं जो क्रमशः कविता मे विकसित होते गये ।

यदि 'परिमल' अपने विविध वर्णो से कवि के काव्य-सुमन का पूर्ण परिचय देता है तो 'गीतिका' अपनी विविध झंकारो से उसकी हृदय वीणा का प्रेम सौदर्य और प्रकृति के तारों पर अलापे गये 'गीतिका' के गीतो में 'सब स्वरों का समारोह' है । गीतिका में भी विनय दर्शन उन्मुक्त प्रेम व शृंगार के साथ ही कवि की मानवतावादी चेतना का प्रसार है ।

'अनामिका' मे भी कवि की स्फुट रचनाओ का संकलन है । परिमल और गीतिका के बाद कवि इसका नामकरण 'अनामिका' करता है, यद्यपि अपने प्रथम (अब अप्राप्य) संग्रह

का नाम भी 'अनामिका' रखा था। 'परिमल' और 'गीतिका' के स्वर एवं शिल्प का प्रौढ़ निदर्शन इसमें है। इसमें कवि की सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित स्वर अपने पूर्व रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वस्तुतः 'अनामिका' में सभी प्रवृत्तियाँ है। वस्तु शिल्प और भावना की दृष्टि से भी इसे 'अनामिका' कहना ही सर्वथा उचित है। पंडितों ने अनामिका को महाकवि की प्रतिनिधि रचना माना है। यह प्रतिनिधित्व किन प्रवृत्तियों या शैलियों का है यह नहीं बताया है। जहाँ तक निराला का सम्बन्ध है उनकी किसी शैली या प्रवृत्ति विशेष का निश्चित प्रदर्शन इसमें नहीं है यदि होता तो अवश्य इसका नाम 'अनामिका' नहीं होता। अनामिका' में भी वही शैली और स्वर है जो पिछली रचनाओं में थे, उन्ही चेतना का स्वाभाविक विकास है इसमें, इसलिए विकास क्रम में इनकी सब रचनाएँ प्रतिनिधि हैं। कुछ पंडितों ने 'अनामिका' और 'तुलसीदास' को सक्रान्तिकाल की रचनाएं माना है। सक्रांति का अर्थ यदि गतिशीलता हो तो उनकी सभी रचनाएँ सक्रान्तिकाल की ही हैं और यदि सक्रान्तिकाल का अर्थ चेतनावस्था और विक्षिप्तावस्था (जैसा कि आलोचकों के विचार व धारणाएँ हैं) के बीच का समय हो तो यह कवि की चेतना को न समझने का प्रमाण है।

'तुलसीदास' में चेतना के स्वर वही हैं। शिल्प में प्रबन्ध की दिशा में नया प्रयोग है। यह एक कवि का कवि के द्वारा अनुभूति परक मूल्यांकन है—देश की सांस्कृतिक अवस्था के सन्दर्भ में। अपनी इस महती चेतना और शिल्प का परिचय कवि पूर्व रचनाओं 'राम की शक्तिपूजा' 'सरोज स्मृति' आदि में दे चुका है।

'अणिमा' में कवि का भक्ति स्वर आन्दोलित है। उसमें विषाद की छाया घनीभूत हो रही है जिसका प्रसार अर्चना', 'आराधना' और 'गीतगुंज' आदि में है। अणिमा व उसके बाद का काव्य आलोचकों ने 'परवर्ती काव्य' माना है। इसकी विशेष रचनाएँ है कुकुरमुत्ता' 'बेला' 'नये पत्ते,' 'अर्चना' आराधना' और 'गीतगुंज'। सन् १९४२ से ५४ तक के समय की रचनाएँ है। वस्तुतः इस काल की रचनाओं में कवि की चेतना का स्वर वही है। शिल्प में अवश्य उसकी प्रवृत्ति प्रयोग की ओर अधिक है लेकिन जिस प्रकार अनुभूति की मुक्ति के लिए छन्द की मुक्ति अनिवार्य है उसी प्रकार अभिव्यक्ति के लिए शिल्प की मुक्ति कवि के लिए अनिवार्य थी। अतः अपनी प्रारंभिक काव्य साधना में कवि जिन धारणाओं को लेकर चला है प्रस्तुत कृतियों में उन्हीं का विकास है। इस विकास को 'पूर्ववर्ती' और 'परवर्ती, में बाटना ठीक नहीं। जिस युग की ये रचनाएँ है उस युग की राष्ट्रीय प्रवृत्तियों से प्रभावित होना कवि के लिए स्वाभिक था। व्यंग्य, सामाजिक विद्रोह और प्रयोगशीलता की प्रचुरता इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। निराला जी आदर्शवादी कवि थे पर यथार्थ की सीमाओं से कभी अलग नहीं हुए। इन रचनाओं में न केवल समकालीन राष्ट्रीयता पर व्यंग्य है अपितु कवि अन्तराष्ट्रीय गतिविधियों पर भी व्यंग्य करता है। इस प्रकार समुचित सामाजिक चेतना व उसके अवरोधों के प्रति सजग होकर वह अपनी प्रतिक्रियाएँ अंकित करता है। राजनैतिक और सामाजिक व्यंग्य की प्रमुखता इसलिए अनिवार्य हो उठी कि वह युग राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना का युग था। 'नये-पत्ते' और 'कुकुरमुत्ता' की कविताओं में राष्ट्रीयता के प्रति उसकी सक्रिय सहानुभूति विद्रोह के रूप में व्यक्त है। 'बेला' में उर्दू काव्य-शैली का प्रभाव है। अतः उसकी

चेतना को पूर्ववर्ती और परवर्ती' दो विभिन्न धाराओं में देखना व्यर्थ है, चेतना वही है, उसी का स्वाभाविक विकास है। किसी बाह्य प्रभाव से थोपी हुई या परवर्ती धारा से उत्पन्न कोई नई नहीं है।

महाकवि निराला अपनी समस्त यथार्थ सीमाओं के बावजूद उन दार्शनिक महाकवियों मे आते हैं, जो समय की सत्ता की चुनौती को स्वीकार कर भी अपनी सीमाएँ जानते हैं। वह आस्तिक कवि है, जीवन की अवभंगुरता में उनका विश्वास है—अनुभव है। उनका यह दार्शनिक स्वर एक तटस्थ द्रष्टा का बनकर इन अन्तिम रचनाओं में मुखरित हुआ है। लेकिन यह स्वर उनकी प्रारंभिक रचनाओं में भी था। इतना अवश्य है कि उस समय उनकी साधना का प्रारम था और यह समाधान। वास्तव मे यह केवल जीवन सघर्षों से क्लान्त आत्मा की पुकार नहीं है अपितु उसमें दर्शनिक चिन्तन की एक निश्चित परिणिति है। निराला के आलोचक उनकी चेतना के विकास-क्रम को समझने में मूल भूत गलती यह करते हैं कि वे उनको एक ओर 'महाप्राण' आत्मवादी कवि मानते हैं और दूसरी ओर उनकी कविताओं को परिस्थिति की प्रतिक्रियाओं का रेखाचित्र। 'गीतिका' के गीतों में एक स्वर देखते हैं और 'अणिमा' में दूसरा। 'गीतिका' के गीतों में ज्योतिंमयता और उद्दाम वेग पाते हैं और इन व्यक्ति गीतो में उनके स्थान पर जीवन सघर्षो से सत्रस्त कवि का दैन्य और करुणा-विचलित स्वर सुनते हैं। फिर भी इन गीतों मे यह स्वर वैयक्तिक आकाक्षाओं से पीड़ित नहीं है।

इन संग्रहो मे (अर्चना, आराधना, गीतगुंज) भक्ति का स्वर प्रमुख है; पर दूसरे स्वर जहाँ तहाँ मुखरित हैं। यथा कवि क्रान्ति भावना इस रूप में व्यक्त करता है—

> नाचो रे रुद्रताल
> आँचो जग ऋजु अराल।
> करे जीव जीर्ण सीर्ष
> उद्भव हो नव प्रकीर्ण
> करने को पुनः तीर्ण
> हो गहरे अन्तराल।

> मां मानस के शतलज को,
> रेणु गंध के पंख खिला दो,
> जग को मंगल मंगल के पग,
> पर लगा दो प्राण मिला दो,
> तरु को तरुण पत्र झारि दो।

मानववादी चेतना से अनुप्राणित विषय सामाजिक जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति के स्वर भी हैं :—

> ऊँट बैल का साथ हुआ है,
> कुत्ता पकड़े हुए जुआं है,
> यह संसार सभी बदला है,
> फिर भी नीर वही गंदला है।

का नाम भी 'अनामिका' रखा था। 'परिमल' और 'गीतिका' के स्वर एवं शिल्प का प्रौढ़ निदर्शन इसमें है। इसमें कवि की सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित स्वर अपने पूर्व रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वस्तुत 'अनामिका' में सभी प्रवृत्तियाँ है। वस्तु शिल्प और भावना की दृष्टि से भी इसे 'अनामिका' कहना ही सर्वथा उचित है। पंडितों ने अनामिका को महाकवि की प्रतिनिधि रचना माना है। यह प्रतिनिधित्व किन प्रवृत्तियों या शैलियों का है यह नहीं बताया है। जहाँ तक निराला का सम्बन्ध है उनकी किसी शैली या प्रवृत्ति विशेष का निश्चित प्रदर्शन इसमें नहीं है यदि होता तो अवश्य इसका नाम 'अनामिका' नहीं होता। अनामिका' में भी वही शैली और स्वर है जो पिछली रचनाओं में थे, उन्हीं चेतना का स्वाभाविक विकास है इसमें, इसलिए विकास क्रम में इनकी सब रचनाएँ प्रतिनिधि हैं। कुछ पंडितो ने 'अनामिका' और 'तुलसीदास' को संक्रान्तिकाल की रचनाएं माना है। संक्रांति का अर्थ यदि गतिशीलता हो तो उनकी सभी रचनाएँ संक्रान्तिकाल की ही हैं और यदि संक्रान्तिकाल का अर्थ चेतनावस्था और विक्षिप्तावस्था (जैसा कि आलोचकों के विचार व धारणाएँ हैं) के बीच का समय हो तो यह कवि की चेतना को न समझने का प्रमाण है।

'तुलसीदास' में चेतना के स्वर वही हैं। शिल्प में प्रबन्ध की दिशा में नया प्रयोग है। वह एक कवि का कवि के द्वारा अनुभूति परक मूल्यांकन है—देश की सांस्कृतिक अवस्था के सन्दर्भ में। अपनी इस महती चेतना और शिल्प का परिचय कवि पूर्व रचनाओं 'राम की शक्तिपूजा' 'सरोज स्मृति' आदि में दे चुका है।

'अणिमा' में कवि का भक्ति स्वर आन्दोलित है। उसमें विषाद की छाया घनीभूत हो रही है जिसका प्रसार अर्चना', आराधना' और 'गीतगुंज' आदि में है। अणिमा व उसके बाद का काव्य आलोचकों ने 'परवर्ती काव्य' माना है। इसकी विशेष रचनाएँ है कुकुरमुत्ता' 'बेला' 'नये-पत्ते,' 'अर्चना' आराधना' और 'गीतगुंज'। सन् १६४२ से ५४ तक के समय की रचनाएँ है। वस्तुत इस काल की रचनाओं में कवि की चेतना का स्वर वही है। शिल्प में अवश्य उसकी प्रवृत्ति प्रयोग की ओर अधिक है लेकिन जिस प्रकार अनुभूति की मुक्ति के लिए छन्द की मुक्ति अनिवार्य है उसी प्रकार अभिव्यक्ति के लिए शिल्प की मुक्ति कवि के लिए अनिवार्य थी। अत अपनी प्रारम्भिक काव्य साधना में कवि जिन धारणाओं को लेकर चला है प्रस्तुत कृतियों में उन्हीं का विकास है। इस विकास को 'पूर्ववर्ती' और 'परवर्ती, में बाटना ठीक नहीं। जिस युग की ये रचनाएँ है उस युग की राष्ट्रीय प्रवृत्तियों से प्रभावित होना कवि के लिए स्वाभिक था। व्यंग्य, सामाजिक विद्रोह और प्रयोगशीलता की प्रचुरता इसी प्रवृति के परिणाम हैं। निराला जी आदर्शवादी कवि थे पर यथार्थ की सीमाओं से कभी अलग नहीं हुए। इन रचनाओं में न केवल समकालीन राष्ट्रीयता पर व्यंग्य है अपितु कवि अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों पर भी व्यंग्य करता है। इस प्रकार समुचित सामाजिक चेतना व उसके अवरोधों के प्रति सजग होकर वह अपनी प्रतिक्रियाएँ अंकित करता है। राजनैतिक और सामाजिक व्यंग्य की प्रमुखता इसलिए अनिवार्य हो उठी कि वह युग राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना का युग था। 'नये-पत्ते' और 'कुकुरमुत्ता' की कविताओं में राष्ट्रीयता के प्रति उसकी सक्रिय सहानुभूति विद्रोह के रूप में व्यक्त है। 'बेला' में उर्दू काव्य-शैली का प्रभाव है। अत उसकी

चेतना को पूर्ववर्ती और परवर्ती' दो विभिन्न धाराओं में देखना व्यर्थ है, ऐसा नहीं है, यही का स्वाभाविक विकास है। किसी बाह्य प्रभाव से थोपी हुई या परवर्ती धारा में अलग कोई नहीं नहीं है।

महाकवि निराला अपनी समस्त यथार्थ सीमाओं के बावजूद उन दार्शनिक महाकवियों में आते हैं, जो समय की सत्ता की चुनौती को स्वीकार कर भी अपनी सीमाएँ जानते हैं। वह आस्तिक कवि है, जीवन की अवमंगुरता में उनका विश्वास है—अनुभव है। उनका यह दार्शनिक स्वर एक तटस्थ द्रष्टा का बनकर इन अन्तिम रचनाओं में मुखरित हुआ है। लेकिन यह स्वर उनकी प्रारंभिक रचनाओं में भी था। इतना अवश्य है कि उस समय उनकी साधना का प्रारम था और यह समाधान। वास्तव में यह केवल जीवन संघर्षों से क्लान्त आत्मा की पुकार नहीं है अपितु उसमें दार्शनिक चिन्तन की एक निश्चित परिणिति है। निराला के आलोचक उनकी चेतना के विकास-क्रम को समझने में मूल भूत गलती यह करते हैं कि वे उनको एक ओर 'महाप्राण' आत्मवादी कवि मानते हैं और दूसरी ओर उनकी कविताओं को परिस्थिति की प्रतिक्रियाओं का रेखाचित्र। 'गीतिका' के गीतों में एक स्वर देखते हैं और 'अणिमा' में दूसरा। 'गीतिका' के गीतों में ज्योतिर्मयता और उद्दाम वेग पाते हैं और इन व्यक्ति गीतों में उनके स्थान पर जीवन संघर्षों से संत्रस्त कवि का दैन्य और करुणा-विगलित स्वर सुनते हैं। फिर भी इन गीतों में यह स्वर वैयक्तिक आकांक्षाओं से पीड़ित नहीं है।

इन संग्रहों में (अर्चना, आराधना, गीतगुंज) भक्ति का स्वर प्रमुख है; पर दूसरे स्वर जहाँ तहाँ मुखरित हैं। यथा कवि क्रान्ति भावना इस रूप में व्यक्त करता है—

> नाचो हे रुद्रताल
> आँचो जग ऋजु अराल।
> कर दो सब जीर्ण शीर्ण
> उद्भव हो नव अकीर्ण
> करने को पुनः तीर्ण
> हो गहन अन्तराल।
>
> भर मानस के गह्वर को,
> वेणु वन के रंध्र खिला दो,
> जग को मंगल मंगल के पथ,
> पर नया हो प्राण मिला दो,
> सब को नव पथ पार दो।

मानववादी चेतना से अनुप्राणित किन्तु यथार्थ से जीवन की आर्थिक आर्थिक स्वर भी हैं:—

> ठूँठ ठैर का खत्म हुआ है,
> कुत्ता पकड़े हुए जुआँ है,
> यह संसार बड़ा बदला है,
> फिर भी मैंने बड़ा पाया है।

जहाँ समाप्त हो जाती है उससे भी आगे निराला काव्य की पहुँच है। निराला जी के ये शब्द विशेष द्रष्टव्य है —'हमें हर तरह के कठोर साहित्य का निर्माण करना है। हम इतने सुखाशायी हो गये हैं कि दूसरों के दुःखों को भूल गये हैं। दूसरों के निर्वाह के लिए सुख के रास्ते निकालने का जो उपाय है वही प्रगतिवाद है।'—("निराला की याद"—शिवनाथ)

इसी मानववादी आधार भूमिपर उनकी काव्य चेतना की अप्रतिम देन है जिसके लिए श्री बचन सिंह ने कहा है, 'निराला अपनी जागरूक परम्पराओं और युग के ज्वलत प्रश्नों तथा समस्याओं के पूर्ण सकेत हैं। इसीलिए आधुनिक का समग्र प्रतिनिधित्व निराला ही कर पाते हैं।'

(क्रांतिकारी कवि निराला पृ० १६४)

इस प्रकार निराला की काव्य चेतना सामाजिक यथार्थ भूमि पर प्रगतिशील विचारणा के साथ मानवतावाद से समन्वित हो नये आयाम लेती हुई नये वादों एव प्रवृत्तियों को अपने में समेटे हुए जीवन के अन्तिम धरातल पर आती है जिसका परिणाम है 'अर्चना' 'आराधना" और गीतगुंज" जिसमें जीवन की करुण वाणी अपने आराध्य की भावना कुसुम अर्पित करता है। भक्ति कालीन गीत परम्परा की तरह इनमें भी सरल भक्त हृदय की तन्मय एव करुण आर्त पुकार है।

कतिपय समीक्षक उनके जीवन का यह विक्षेप काल मानते हैं और इन रचनाओं को विक्षिप्तावस्था की रचनाएँ जिसका मूल भूत कारण निराला के जीवन के वैयक्तिक सघर्ष और उसकी करुण परिणति व अवसाद को मानते हैं। लेकिन जैसा कि हम निराला काव्य और चेतना के क्रमिक विकास के समग्र आकलन से देखते हैं कि यह काफी भ्रम पूर्ण है। विभिन्न भावनाओं की उत्ताल तरगों से आन्दोलित महाप्राण निराला उस महासागर की तरह हैं जिसमें जीवन का विष भी है और अमृत भी। जहाँ हम यह कहते हैं कि निराला सघर्ष एव अभावों से जर्जर हो गये—विक्षिप्त हो गये, उस विद्रोह महान आत्मा के प्रति अन्याय करते हैं। क्योंकि उन्होंने व्यक्तिगत सुख और क्षुद्र स्वार्थ की भावना को अपने पर कभी हावी नहीं होने दिया जो कुछ आया मुक्त हस्त से बाँट दिया विष का स्वयपान किया और अमृत का जग को दान दिया।

वस्तुत उनकी वेदना व्यष्टि की वेदना न होकर समष्टिगत चेतना से अनुप्राणित है। समाज की विकट विषम परिस्थितियों को उन्होंने निकट से अनुभव किया और अपनी व्यक्तिगत वेदना को न देखते हुए उन्होंने समष्टि की वेदना को दूर करने का प्रयास किया —सतत प्रयास करते रहे, इसीलिए उनके सजग चिन्तक कवि ने सामाजिक क्रान्ति का आह्वान किया।

जीर्ण पुरातन के स्थान पर नवीनता का आग्रह किया और इस क्रांति साधना का माध्यम बनाया 'बादल' को। कवि की समूची काव्य साधना और आत्माभिव्यक्ति का माध्यम है, 'बादल'। एक पूर्ण विचारित दर्शन और निश्चित चेतना के साथ कवि ने बादल के माध्यम से विप्लव की कल्पना की है। वस्तुत जहाँ एक ओर निराला का सजग

चिन्तक कवि सामाजिक क्रान्ति और विद्रोह की ओर उन्मुख हुआ जिसमें उनकी राष्ट्रीय एवं सामाजिक रूप की निहित है, वहीं दूसरी ओर उनका कल्पना शील भाव प्रवण कवि का सरल हृदय इन विविध विनय एवं भक्ति गीतों में प्रवाहित हुआ है। ये प्रवृत्तियाँ उनके जीवन संघर्ष या अवसाद का परिणाम नहीं वरन् कवि चेतना के मूल में ही थी। रामकृष्ण दर्शन का निराला पर काफी प्रभाव है, जिसमे ज्ञान भक्ति और कर्म को परस्पर पूरक और अन्योन्याश्रित माना गया है। फलस्वरूप निराला काव्य मे भी ज्ञान भक्ति और कर्म की त्रिवेणी के दर्शन करते है। वस्तुतः प्रारम्भ में ज्ञान की जो धारा दार्शनिक चिन्तन और सामाजिक क्रान्ति में प्रमुख रूप से प्रवाहित हुई उसमे भक्ति की धारा प्रेम एव माधुर्य भाव से आवृत थी लेकिन क्रमशः वह जीवन विकास के साथ विकसित होती गई और अन्त मे वही विद्रोही कवि की साध्य जीवन वेला में प्रमुख धारा बन गई – इसी मे उनके सरल भावुक हृदय की अभिव्यक्ति हुई है।

वस्तुतः जो भी इस परिणति पर आश्चर्य करते है, आकाश-पाताल का अन्तर पाते है, इन्हें विक्षिप्तावस्था की रचना मानते हैं, वे समझने मे भूल करते हैं। निराला काव्य की ये सभी प्रवृत्तियाँ उनके काव्य विकास के मूल में थी और चेतना विकास के साथ क्रमशः विकसित होती गई। व्यष्टिगत एवं समष्टिगत संघर्षों तथा प्रभावों ने उसे प्रखरता प्रदान की न कि नई चेतना को जन्म दिया था। उनकी मूल चेतना को ही बदल दिया। निराला जी आजन्म अपनी आस्था एवं चेतना के प्रति सजग और अडिग रहे और प्रतिकूल परिस्थितियो से लोहा लेते रहे। इसलिए चेतना के विकास क्रम के अनुशीलन मे जो यह भक्ति और विनय परक धारा हम देखते हैं उसकी स्वाभाविक ही परिणति है न कि अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक।

इस प्रकार इनकी चेतना मे प्रारंभ से अंत तक एक तारतम्य और प्रवाह हम पाते है। इनकी वेदना का मूल है मंगल मयी असीम करुणा जो उन्हें परम आराध्य की ओर लेगई' इसमें महाप्राण का प्रकृत रूप कही भी विलुप्त या विकृत नही हुआ।

वस्तुतः निराला की काव्य चेतना बौद्धिक सहानुभूति के साथ ही दार्शनिक व सास्कृतिक महत जीवन दर्शन की विचारणा से अनुप्राणित हो युगानुरूप कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के साथ जीवन के विभिन्न परिपार्श्वों को स्पर्श करती हुई – –नये नये आयाम लेती हुई, अपने अजस्र प्रवाह से काव्य में प्रवाहित हुई है जो कवि की स्वतंत्र चेतना का ही परिणाम है, उसे किसी वाद के घेरे में आबद्ध नहीं किया जा सकता है और न खडो मे ही देखा जा सकता है। क्यो कि उसका मूल आधार और ध्येय है समग्र जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति। यही कारण है कि इतनी महनता व्यापकता और वैविध्य हिन्दी के अन्य कवियो में दुर्लभ है। आचार्य श्री वाजपेयी जी के शब्दों में "निराला पूरी शताब्दी (वरन आनेवाली शताब्दी भी) के कवि हैं जो उनकी काव्य चेतना से अनुप्राणित है।"

—:०:—

निराला काव्य मे भक्ति

श्री रामचन्द्र मिश्र 'अमर'

'निराला'-काव्य का अध्ययन जिन परिवेशों में हुआ है, उनमें भक्ति का स्थान प्राय गौण ही रहा है। मूलत 'निराला' जी का काव्य छायावादी, प्रगतिवादी, एवं उनके प्रचण्ड पौरुष का ऊर्जस्वत उद्घोषक आदि कहा गया है। परन्तु उनका काव्य यदि उसे वादों का ही शब्दावली दें तो न्यूनाधिक रूप मे भक्तिवादी भी है, ऐसा कम ही कहा गया है। वास्तव में भक्ति के परिवेश में उनके काव्य पर 'अर्चना' एव 'आराधना' के प्रकाशन के पश्चात् ही विचार हुआ। इसके पूर्व 'तुम और मैं' की कोटि की उनकी रचनाओ की दार्शनिकता ने ही साहित्यानुरागियों और आलोचकों को अधिक आकृष्ट किया। मुझे लगता है कि निराला जी की काव्य सृष्टि का वह परिवृत जिसमें भक्ति के स्वर है पर्याप्त अंश में भास्वर और मुखर है। एतदर्थ मेरा आग्रह है, जिसे स्यात् दुराग्रह नहीं कहा जा सकता, कि निराला जी के काव्य पुरुष का भक्त रूप देखा जाय।

जो प्रश्न 'साधनात्मक रहस्यवाद' को छायावादयुगीन 'काव्यगत रहस्वाद से पृथक् न कर पाने के कारण' उत्तर द्विवेदी कालीन कवियों एव उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में उठते हैं, निराला जी के काव्य में भी परा अपरा, वैधी-रागानुगा आदि भक्ति भेदो की अनुकूलता ढूढने की चेष्टा करने पर वैसे ही प्रश्नों का उठना स्वाभाविक है। निराला के काव्य में भक्ति खोजने के स्थान पर अनेक साहित्यिकों को निराला में भक्ति अथ च उनमें भक्तों का सम्प्रदाय विशेष विहित दैनंदिन व्यावहारिक जीवन ढूढने के कारण निराशा हाथ लगी है। रूढ अर्थ में निराला को भक्त न मानने पर भी प्रस्तुत लेख विषय मे किसी असगति की सम्भावना नहीं हैं। बीसवीं शताब्दी के इस "मस्तमौला" की दार्शनिकता अद्वैतवादी आधार भूमि विवेकानन्द के 'वर्ण को हज़म' कर लेने का परिणाम है और उनकी ऊर्जस्वित वाणी में उनका पौरुष और उनका स्वाभिमानी 'अह' अभिव्यक्त है एव उनकी भावुकतामूलक ज्ञानदशा श्री रामकृष्ण जी परम हस के जीवन से अनुप्रेरित सी होती है। यहा मैं पुन स्पष्ट कर दू कि मैं 'निराला" के भक्त को सूर्यकान्त त्रिपाठी से पृथक मानता हूँ। यह मेरी प्रस्तावित स्थापना है कि जिस क्षण कवि गीतिका के स्तवन, परिमल की प्रार्थनाए एव 'अर्चना' तथा 'आराधना' के भाव-शबल विनय के पुलक पूरित गीत लिखता है, उस समय वह क्रान्तिकारी छायावादी काव्य प्रणेता सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' नहीं है।

अति प्राचीन काल से भारत में भक्ति का प्रचार रहा है। यहाँ की मिट्टी में ही धर्म दर्शन व भक्ति है। जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने सबमें ही मूर्तिपूजक देखा है, वैसे ही यहाँ भक्ति भी सबमें दिखाई पड़ती है। वेदान्त अध्यात्म बीज रूप से यत्किंचित् सबको ज्ञात है।

ब्रह्म-जीव-सम्बन्ध, आत्मा का अमरत्व, शरीर की नश्वरता, किसी सगुण-निर्गुण निर्विशेष चिद्‌चिद्विशिष्ट सत्ता का किसको सामान्य निश्वास नहीं होता ? अधिक क्या ! घोर नास्तिकों में भी नास्तिकता के प्रति निष्ठा (भक्ति) दिखाई देती है। जब साधारण नरनारियों मे ऐसा है, तो वैदान्तिक अद्वैतवाद के सतत् मनन-चिन्तन और श्री रामकृष्ण परमहंस देव की भावविभोर तन्मयता एवं स्वामी विवेकानन्द के अन्तःस्फूर्त ज्ञान के उदात्त आकर्षण ने यदि निराला की भक्ति-भावना को विकास तथा गति प्रदन की तो यह स्वाभाविक ही था।

भगवदाराधन में, अभिव्यक्ति पक्ष में, निर्गुण का एकान्त ग्रहण सम्भव न होने के कारण जिस प्रकार 'कबीर' को भी 'हरि-जननी मैं बालक तोरा' के द्वारा ब्रह्म मे मातृ रूप का भाव करना पड़ा अथवा जैसे विरहिणी रूप मे अपने को चित्रित कर आत्मचिन्तन द्वारा कान्ताभाव का आधान करना पड़ा, वैसे ही निराला का वैदान्तिक अद्वैतवाद उन्हे श्यामा के पुत्र अथवा सरस्वती-सुत रूप मे अपने को उपस्थित करने में बाधक न हो सका। अवश्य ही इस तुलना के आधार पर उनमे कबीर को देखने की चेष्टा नहीं समझनी चाहिए। निराला का प्रारम्भिक जीवन उस भूमि में बीता जिसमें शक्ति-पूजा का प्रचार है। परम सत्ता के सर्जन, पलन और संहार के गुण शैव एवं शाक्त दोनो ही मतो में समान भाव से समाहित हुए है। भारतीय धर्म दर्शन मे पुरुष-प्रकृति, शिव-शक्ति, कृष्ण राधा आदि युग्मों में सरलता से पुरुष एव नारी भावों की स्थिति स्वीकृत कर ली गई है। यद्यपि शक्ति का ग्रहण नारीभाव मे हुआ है पर ऐसा सगुणता के आरोप के ही कारण है। वस्तुतः शक्ति भी शिव के समान ही परस्पर द्वन्द्वविमुक्त, निराकार, निरंजन और नित्य है। अभिव्यक्ति-बाधा ही उसे व्यक्त रूप में सगुण साकार रूप देती है। इस प्रकार शक्ति के दो रूप हैं। एक रूप में तो तह शिव से अभिन्न अतएव परब्रह्म है और दूसरे रूप मे है उसकी (शिव की) व्यक्त प्रकृति। यह व्यक्त प्रकृति भी शिव ही है पर नामरूपगुण युक्त। इसी व्यक्त प्रकृति के माध्यम से आराधक उस परम सत्ता तक (ज्ञान और भाव योग द्वारा) पहुँचने की वान्छा करते हैं, उससे एकीभाव प्राप्त करते हैं। कट्टर शाक्त मत शक्ति को ही एकान्त भाव से स्वीकार करता है। उसके रोम-रोम में त्रिदेवो का वास है। निराला मे शक्ति को इसी विराट् भाव रूप का ग्रहण है।

मातृरूप मे ब्रह्मशक्ति की कल्पना स्तोत्र और शक्ति साहित्य में प्रचुर रूप से मिलती है। दुर्गा सप्तशती के ११ वें अध्याय में देवी को जगत की आधारभूत महीस्वरूपा, अनन्तवीर्या, विश्वबीज परमा माया, भुक्तिमुक्ति-हेतु आदि कहा है। सप्तसती, आनन्द लहरी, देवीभागवत एव अन्य सम्प्रदाय ग्रन्थों में देवी को नारायणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, जयन्ती, मंगला, काली, कपालिनी, श्यामा, सरस्वती मृगेन्द्रपीठ संस्थिता भी कहा गया है। सरस्वती और नवदुर्गा में इस प्रकार अभेद सिद्ध होता है। निराला के काव्य में भी देवी को ही विश्वरूपा विराट-रुपिणी श्यामा सरस्वती आदि विविध नाम भेदो से देखा गया है। यद्यपि निराला काव्य किसी सम्प्रदाय विशेष का आग्रह नहीं रखता फिर भी उसमें मा के विविध रुपोवासना के सम्बद्ध स्तवन और गीत मिलते हैं। अनेक स्थलों पर निराला ने जन्म भूमि और सरस्वती कविता और सरस्वती में अभिन्नता देखी है।

उनका प्रसिद्ध गीत —

भारति जय विनय करे,
कनक शस्य कमल धर
लसा पल्लव शतदल
गर्जितोमि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तवकर बहु अर्थ भर

आदि इसी प्रकार का है। जैसा कहा जा चुका है, निराला जी के काव्य के विशाल परिवृत में मुझे प्रारम्भ से ही, उनकी छायावादी क्रान्तिकारी भावधारा की कविताओं के साथ ही साथ भक्ति परक कविताओं का भी परिवर्तन मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि अपने विराट काव्यसर्जन की उवरा भूमि पर मातृ भक्ति के पुष्प लगाता आया है, फिर चाहे वे मातभूमि भक्ति के हों, या मातृभाषा भक्ति के अथवा शुद्ध मातृस्वरूपिणी परासत्ता के प्रति निष्ठामयी अनुरक्ति के। निराला काव्य में यह भक्ति तीन प्रधान रूपों म परिलक्षित होती है (१) विवेकानन्द की ऊर्जस्वित ज्ञान-दीप्ति से प्रोद्भासित जागृतियुक्त वेगवती भावना समन्वित रूप में, (२) श्यामा, मातृभूमि या मातृरूपा सरस्वती की शुद्धाराधना से युक्त (३) विनय की भावशबल अश्रुविगलित भावुकता मूलक रूप म।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक व्याख्यान म कहा है, कि "लव नोज नो फियर"। आपने जज के बच्चे का उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि जिस प्रकार जज की सतति उसमें कठोर कारावास या मृत्युदण्ड देनेवाला दण्ड विधायक न्यायाधीश न देखकर वात्सल्य पूरित पिता देखती है, उसी प्रकार जब तक भक्त भी अपने आराध्य से दण्ड की आशंका से भरा रहेगा, तब तक शुद्ध प्रीति अथच' परानुरक्ति' सम्भव नहीं है' ईश्वर स्वर्ग म एक हाथ में पारितोषिक रिवार्ड) और दूसरे में दण्ड' लेकर नहीं बैठा है। निराला भी उस परमात्मतत्व के व्यापक भीम भाव से भय की प्राप्ति नहीं करते। कवि का 'भक्त' भी खड्ग खप्पर धारिणी, मुण्डमाल विभूषित, मा श्यामा की भीमा मूर्ति में वात्सल्य भावभरिता माँ की विमलता के दर्शन करता है। उसकी कामना है कि ससार के असुरों का मारने के लिये मा श्यामा के उस भयानक रूप में प्रकट होने पर वह उसके खप्पर में अजलि भरभर कर रुधिर भरे। उसे ज्ञात है कि मा की विविधरूपा प्रकटित आकृतियां 'दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय,' ही आयुधों को 'देवना हिताय' धारण करती हैं। कवि की दृष्टि से मा श्यामा के उस विराट नृत्य के मोहन अवसर पर कर-तल पल्लव दल-से निजन वन के सभी तमाल ताल दते दिखाई पड़ेंगे, 'छिन्नराग का आलाप होगा, उसकी उत्ताल तरगों की भगिमा से नि सृत थाप में 'मृदग के सुन्दर क्रिया कलाप' होंगे और मां 'निर्झर' के झर झर स्वर में 'सरगम' सुनायगी (दे०—एक बार बस नाच तू श्यामा)। कहना न होगा कि इसमें मा श्यामा की सूक्ष्म परन्तु विराट् रूप की कल्पना है और स्वामी विवेकानन्द की 'नाचुक ताहाते श्यामा' का रूपान्तर स्मरण होता है। स्वामी जी के 'काली भक्ति सम्बन्धी विचारों का बचा हुआ भाव इसमें स्पष्ट है।

इसी प्रकार 'अपरा' में संकलित 'देवी सरस्वती' नाम्नी कविता में कवि भावना की मधुमती भूमिका में से देवी सरस्वती को मूर्त करता तथा देवी सम्बन्धी अपने भावो को ज्ञान दशा में प्रकट करता है। इसमें—

> मानव का मन विश्व जलधि, आत्मा सित शतदल
> विकच दलों पर अधर सुहाये-सुधर चरण दल
> वीणा दो हाथों में, दो मे पुस्तक-नीरज
> जादू के जीवन के शोभन स्वर जैसे स्रज
> भील वसन शुभ्रतर ज्योति से खिला हुआ तन
> एक तार से मिला चराचर से शाश्वत मन

कहकर देवी सरस्वती की सूक्ष्म प्रतिमा की कल्पना की गयी है। इसी कविता मे कवि की विकसित मानस-भाव-लहरियाँ विविध ऋतुओ के अनुरुप अनूप रूप, धारण करके विभिन्न रूपों में प्रकट होती हुई सी पृथ्वी मे (भारत भूमि मे) सरस्वती का सजीव चित्राकन करने की श्रद्धा-संवलित-चेष्टा की है। कविता की सरस्वती के अनेक प्राचीन तथा मध्ययुगीन सारस्वत कृति कवियो द्वारा दृष्ट व प्रकटित रूपो का संकेत भी कवि ने किया हैं। कहीं-कहीं उपनिषदो के "मधु वाता ऋतायते। मधुक्षरन्तिसिन्धवः' के समान ही ज्ञानी भक्त की भाँति कवि-मानस सर्वत्र ज्योति ही ज्योति देखता है। यह 'ज्योति सरूप' ब्रह्म-शक्ति उसे सर्वत्र ही व्याप्त प्रतीत होती है। गीतिका (पृष्ठ ८३, १९३३) के एक स्वतन 'वन्दूँ पद सुन्दर तव' में जननी का सम्बोधन 'जनक-जननि-जननि' जन्मरभूमि-भाषे,' 'ज्योतिस्तरवास' आदि पदो द्वारा किया गया है और देवी से, जिसे कवि की सनयन कविता। अन्यत्र कहा गया है, निराला का भक्त 'दृग-दृग को जित कर अन्जन भर देने की प्रार्थना करता है। ऐसे स्थलों पर निराला का हृदय बुद्धि की मर्यादा से बोलता है।

शुद्ध रूप से मातृ भक्त निराला की भक्ति परक रचनाओं में उनका सात्विककामना-समन्वित-श्रद्धाभक्ति-समन्वित आदर्श पुत्र रूप मे प्रकटित हुआ है। उसमें कामना है, पर स्वयं-कलुषित नही, किन्तु परार्थ-परिपोषिणी है। संसार के दुःख दैन्य से पीडित भक्त मातृ चरणों, में विश्व हिताय नत है। 'नर जीवन के सकल स्वार्थ' 'जन्म श्रम संचित फल' सम्पूर्ण श्रेयता और प्रियता वह मातृ चरणों में समर्पित कर देने की घोषणा करता है तथा चाहता है कि उसके उर मे माँ की अश्रु धोत विमल मूर्ति जागे। उसकी प्रार्थना में विश्व मानस के अन्ध-उर बन्धन स्तर काटकर, कलुष भेदन करते हुए तम-हरण कर ज्ञान के ज्योतिर्मय निर्झर प्रवाहित करने और जग को जगमग कर देने की अनुकम्पा मा से याचित है। ऐसे गीतों में भक्त-पुरोधा रूप में निराला सामने आते है जिन्हें 'सर्व जन हित साधनाय' ही सब कुछ चाहिये स्वहित साधनार्थ कुछ नही।

निराला के काव्य में 'अर्चना' और आराधना का एक ऐतिहासिक मूल्य है। यह सत्य है कि इन कृतियों के कुछ विनय-गीतों में कवि के हतास और वृद्धावस्था के जर्जर रुग्ण तन मन की चर्चा आई है, और वे स्थल अधिक मुखर एवं प्रमुखता के अधिकारी हैं, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि विनय का भाव भी भक्ति परक रचनाओं में निराला ने प्रारम्भ से ही

अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार हिन्दी का 'भक्ति साहित्य' पूर्णत इतदर्प और विजित जाति के निराश जन मानस के दैन्य और विनम्र रुदन का परिणाम ही नहीं कुछ और भी है, वैसे ही निराला-काव्य में विनय और दैन्य भी उनकी रुग्णावस्था के रुदन मात्र ही नहीं है। वास्तव में 'अभी न होगा तेरा अन्त' कहने वाला दृढ क्रान्तिकारी निराला हताश होकर—

भग्न तन रुग्ण मन जीवन विषण्ण वन।
क्षीण क्षण क्षण देह, जीर्ण सज्जित गेह

'विनत माथ' की दुहाई देता और शरण की आकांक्षा करता किन्तु उसका भक्त भयभीत होने के स्थान पर 'चरण शरण' पाकर उल्लसित ही है। भक्ति के आवेश में 'नैश अन्ध पथ पाकर' 'उपल में उत्पल' तथा कण्टक-चुभन में जागरण देखता हुआ प्रात ही मातृ द्वार पर उपस्थित होकर अप्रसन्नता में भी प्रसन्नता प्राप्त करने वाले (अपरा पृष्ठ २५, १६३२, प्रात तव द्वार पर) भक्त को तो अन्त यही लगता है कि 'मरा हूँ हजार मरण, पाई तव चरण शरण' (आराधना) उसका तो जेठ में भी सावन (आराधना पृष्ठ १०) ही दिखाई पड़ता है। उसका मन वस्तुत खूब पावन हो गया है।

विनय की जो विवृत्ति निराला काव्य में प्रारम्भिक रचनाओं में मिलती है, कालक्रम से क्रमागत प्रौढ़ता प्राप्त करती हुई वही 'अर्चना' और 'आराधना' की स्थिति तक पहुँचकर सुस्पष्ट तथा सतुलित एव सहजता सयुक्त हो गयी है। इसी कारण हृदय की रमणीय सात्विक भावुकता और सहज भक्ति भाव इनमें अधिक पुष्ट प्रतीत होता है। 'आराधना' और 'अर्चना' के निराला म यद्यपि ज्ञान और भक्ति दोनों की स्थिति के गीत गाने की उल्लसित है और—

'तू दिगम्बर विश्व है घर,
ज्ञान तेरा सहज वर कर
शोक सारण करण कारण
तरण तारण विष्णु शकर'

आदि भी वे कहते हैं, परन्तु आज के वास्तविक 'निराला' की भावनाएँ,

कृष्ण कृष्ण राम राम
जपे हैं हजार नाम, (आराधना)
मन का समाहार, करो निराधार
कोई नहीं और, एक तुम हो ठौर
दूर सब जन पीर, भव से करो पार

आदि पक्तियों के भीतर से झाँक रही हैं।

निराला के काव्य में व्यंग्य विनोद

श्रीमती कुन्तल गोयल

निराला जी भारत के ऋषि-मुनियो की ही परम्परा मे एक सच्चे ऋषि और विद्रोही, क्रान्तिकारी तथा युग प्रवर्तक कवि थे। उनके काव्य में ऐसी मानवता के दर्शन होते हैं जो राष्ट्र की सीमाओ में वधी नही है। वह सत्य के पुजारी और धुन के पक्के थे। उन्होंने साहित्य की परम्पराओं मे नई शैलियों का समावेश किया तथा प्रजातन्त्र, मानवता एवं प्रगति के लिये अपना सारा जीवन लगा दिया।"[1] साहित्य को जिस प्रकार साहित्यकार से अलग करके नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार निराला के जीवन से विलग करके उनके साहित्य का सफल मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। निराला का साहित्य निराला के व्यक्तित्व की व्यंजना है। क्या कविता, क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या निवन्ध, क्या आलोचना; गर्ज कि साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं वची थी जिसमे उन्होंने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का चमत्कार न दिखलाया हों। व्यंग्य और हास्य लेखन में भी अद्‌भुत क्षमता रखते थे। वे जितने महान साहित्यकार थे उससे कहीं अधिक सवेदनशील मानव थे। उन्होंने कभी परिस्थितियों से समझौता नही किया। घोर से घोर संकट के समय भी वे हिमालय की तरह अडिग रहे।

निराला को प्रारम्भ से ही आर्थिक एव सामाजिक क्लेश सहने पड़े हैं। वे कभी भी आर्थिक विपमता से उवर नहीं पाये। उनकी सारी आशावादिता, सौन्दर्यानुराग तथा प्रखर पौरुष इन्हीं विपम परिस्थितियों से सदैव वाधित होता रहा है पर कहीं भी वे रुके नहीं। इससे तो वे एक नयी ही दिशा मे वढ़ने के लिये उत्प्रेरित होते गये। दैन्य और कष्टों को भोगकर वे उसी में खोकर नहीं रह गये वरन् उनका व्यक्तित्व और कवि एक उच्च ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित हो गया। वे सामाजिक विषमता का सारा विष विषपायी शिव की तरह हंसते-हंसते आत्मसात कर गये। फिर भी 'उनके चारों ओर दुःख की भूमि उत्पन्न नहीं हुई और न हो सकती थी। वेदना, अभाव वैयक्तिक नही था। सारे युग की वेदना-अभाव के वे प्रतीक थे और उसे माथे ओढ़ लिया था।'[2] युग जीवन का यही सारा उत्पीडन और आक्रोश निराला जी के काव्य में परिलक्षित हुआ। वस्तुतः निराला जी ने युग जीवन के सत्य को समझा और परखा था। अतएव उन्होने मानव और समाज की यथार्थता को एक नये परिप्रेक्ष्य में रखकर उसे एक नया दिशा वोध दिया। 'युग और देश की परिस्थितियों का भावात्मक प्रभाव सवसे अधिक निराला को ही पीड़ित करता रहा है। यही कारण है कि १९३९ के आसपास से ही निराला जी एक दम प्रजातांत्रिक भूमि पर आकार सामाजिक भूमि पर यथार्थ की काट छाट करने लगे। वंगाल का अकाल तथा उनकी आर्थिक विपमताओं ने जो स्थायी प्रभाव छोड़ा

१, राष्ट्रपति भवन मे दि० ६-२-१९६२ को आयोजित निराला जयती समारोह के अवसर पर राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन के उद्घाटन भाषण का अंश। २. दिनकर

उस से उनकी दृष्टि व्यगात्मक हो गई।'* इसी तारतम्य में डा० रामविलास शर्मा का यह कथन भी उल्लेखनीय है —"यहाँ हम रहस्यवादी कवि श्री निराला की प्रतिभा का एक दूसरा पहलू देखते हैं। कल्पना लोक के आदर्श के साथ एक बार जब वे देखने यथार्थ ससार का लगते हैं तो आदर्शवादी भावनाओं को कठोर धक्का लगता है। मनुष्य अभी इस आदर्श से कितनी दूर है। कम से कम देश के प्रचलित राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक विचार लेखक के व्यग्य का लक्ष्य होते है। समाज, देश या ससार सन्तोषजनक दशा कहीं नही है। फिर भी लोग अपनी क्षुद्रता को महत समझकर उस पर सन्तोष ही नहीं गर्व का भी अनुभव किये बैठे हैं। ऐसा शिष्ट व्यग्य, सच्ची अन्तर्व्यथा से निकला हुआ है, जो पढते ही सहृदय को प्रभावित कर सके—साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है।'[1]

इस तरह निराला जी में व्यग्य लिखने की प्रतिभा असाधारण रही है। 'कुकुरमुत्ता' उनकी सबसे प्रसिद्ध व्यग्य रचना है। 'कुकुरमुत्ता' के द्वारा उन्होंने समाज की पूंजीवादी व्यवस्था पर करारी चोट की है—

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाडा घाम।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के कथनानुसार 'कुकुरमुत्ता' में विनोद की सृष्टि अतिरंजित वर्णनों द्वारा की गई है।" इतना ही नही कुकुरमुत्ता का यह व्यग्य अपने आप मे इतना तीव्र है कि श्री धनन्जय वर्मा ने अपनी कृति निराला काव्य और व्यक्तित्व" में लिखा है—"कुकुरमुत्ता असफलता नहीं व्यग्य की सफलता है। मेरी दृष्टि में कुकुरमुत्ता का व्यग्य विविध क्षेत्रीय एव तीव्र है। जो भी वर्ग कुकुरमुत्ता के प्रति मोह दिखाकर अपना प्रतीक मानेगा—वही व्यग्य का शिकार होगा। इस रचना के पीछे कोई असाधारण प्रतिभा और लक्ष्य कार्य कर रहा है।"[2] निस्सन्देह कुकुरमुत्ता निराला के व्यग्य काव्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है। डा० भटनागर ने "कुकुरमुत्ता" की श्रेष्ठता बतलाते हुये कहा है 'यह नइ कविता का आदि काव्य है यह गद्यमय सजीव व्यग्य है। यह युग की नवीन भाषा में युग के अनुकूल विचार है। निराला का यह नया काव्य अपने ही काव्य पर एक तीखे व्यग्य के रूप में हमारे सामने आता है।[3]

निराला की अन्य कृति "अनामिका" में भी यत्र तत्र हास्य और व्यग्य की अनूठी धारा है। वन वेला, सराज की स्मृति, ठठ, हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र आदि कवितायें इसके प्रमाण है। 'अनामिका' की व्यगात्मक कविताओ के सबंध में डा० बच्चन सिंह का यह स्पष्ट मत है —'इनमें शुद्ध व्यग्य तथा सामाजिक दृश्यों का चुभता हुआ चित्रण हुआ है।'[4]

---

* श्री रमेशचन्द्र मेहरा निराला का परवर्ती काव्य, पृ० स० ८५
१ डा० रामविलास शर्मा स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० स० १२५
२ श्री धनन्जय वर्मा निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृ० स० १७८
३ डा० रामरतन भटनागर कवि निराला, एक अध्ययन, पृ० स० २१२
४ डा० बच्चन सिंह क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० स १४१०

"सरोज की स्मृति" में वे समाज से लोहा लेने के लिये विल्कुल तैयार हैं । अयोग्य पात्र से अपनी पुत्री का विवाह करने को वे कदापि तैयार नहीं । उन्होने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि समाज की इस अकल्याणकारी और रूढिवादी शृंखला को छोड़ कर ही वे अपनी बेटी का व्याह करेंगे । उनका यह व्यंग्य कितना तीखा है :—

ऐसे शिव से गिरिजा विवाह
ये कान्यकुब्ज कुल-कुलंगार
खा कर पत्तल में करें छेद
इनके घर कन्या अर्थ खेद

'वन वेला' में निराला जी ने मानवीय प्रवृत्तियों के यथार्थवादी रूप का विवेचन किया है । छल-कपट और निजी स्वार्थ का सहारा लेकर आगे बढ़ने वाले राजनीतिज्ञ जिनकी यश वृद्धि में पेशेवर कवि अपने गीत रचते हैं, जिनके लड़के विदेशों में शिक्षा पाते हैं, जो देशोद्धार के बहाने अपने ही उद्धार में लगे हुये हैं—उन पर-उनका यह व्यंग्य बहुत करारा है:—

मैं भी होता यदि राजपुत्र—
जितने पेपर, सम्मानित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
लक्षपति का यदि कुमार
होता मैं शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखने धन पर भी, अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन-स्वर,

दम्भी और ढकोसला करने वाले बगुला भक्तों को भी उन्होने नहीं छोड़ा है :—

मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता मज्जन ।
बोला मैं धन्य श्रेष्ठ मानव ।

निराला जी के ये व्यंग्य मानवतावादी दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हैं । इसीलिये ये व्यंग्य वैयक्तिक से अधिक सामाजिक यथार्थपरक हैं । "नये पत्ते" में निराला जी ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक सभी दृष्टियों का गहन व्यंगात्मक चित्रण किया है । 'खजोहरा' से चित्रित यथार्थ व्यंग कितना स्पष्ट है:—

दौड़ते हैं बादल ये काले काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले ।
जहां चाहिए वहां नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे ।

जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े,
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े।

निराला जी की व्यंगात्मक कविताओं में व्यंग्य के साथ साथ हास्य और विनोद का पुट भी है। "नये पत्ते" में संग्रहीत 'रानी और कानी' कविता में हास्य के साथ ही करुणा के भी भाव हैं। रानी के जीवन की एक अपनी भी विवशता है। जन्म से वह कानी है—कुरूप है। ईश्वरीय कोप का भाजन तो वह बन ही चुकी है पर समाज में भी उसके लिये कोई स्थान नहीं है, कोई सदभावना नहीं है। नितान्त उपेक्षित जीवन का यह क्रूर व्यंग्य उसके स्वयं के लिये भी कम मार्मिक नहीं है —

चेचक के दाग-वाली नाक चिपटी,
गंजा सर, एक आँख कानी
रानी अब हो गई सयानी
× × ×
फिर भी माँ का दिल बैठ रहा
× × ×
सोचती रहती दिन रात
कानी की शादी की बात

प्रगतिवादी सामाजिक समस्या का यह एक अच्छा व्यंग्य चित्र है। सामाजिक व्यंग्य की उनकी एक प्रसिद्ध कविता 'गर्म पकौड़ी' है। गर्म पकौड़ी में निराला जी ने आजकल के प्रेम पिपासु नवयुवकों के छिछले प्रेम पर व्यंग्य किया है —

पहले तूने मुझको खींचा
दिल देकर फिर कपड़े सा फींचा
अरी, तेरे लिये छोड़ी
बम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौड़ी

निराला जी ने मानव जीवन पर भी तीखा व्यंग्य किया है। साथ ही हास्य और विनोद की मनोरम छटा भी कुशलता पूर्वक बिखेरी है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "निराला जी के हास्य की यह विशेषता है कि वह घटना प्रधान नहीं, विचित्र घटनायें, दृश्य, व्यक्ति आदि का चित्रण करके हमें केवल हँसाना नहीं चाहते। हास्य और व्यंग्य सबको आनन्द देता है। उसकी शिष्टता, स्वाभाविकता और निर्दोषता सर्वप्रिय है। हास्य और विनोद में किए गये तथ्यों का निरूपण प्रस्तुत है—जो निराला जी की हास्य—विनोदात्मक शैली का एक अनुपम-उदाहरण भी है —

मैं ही डाँडी से लगा पल्ला,
सारी दुनिया तोलती गल्ला,
मुझसे मूँछें, मुझसे कल्ला,

मेरे लल्लू, मेरे लल्ला;
कहे रुपया या अधन्ना,
हो बनारस या नेवन्ना;
रूप मेरा, मैं चमकता,
गोला मेरा ही वमकता
लगाता हूं पार मैं ही,
डूबता मंझधार में ही।
डिब्बे का मै ही नमूना,
पान मै ही, मैं ही चूना।

इस प्रकार निराला जी ने काव्य को ठोस धरातल पर लाकर उसे ऊंचाई तक पहुंचने की शक्ति दी है। उन्होंने प्रगतिवाद को मानवतावाद के रूप में देखा है और उसे नव जागरण की समस्या के रूप मे स्वीकारा है। हिन्दी के व्यंग्यकारों में इसीलिये निराला जी का स्थान सर्वोच्च है क्योंकि उन्होंने समाज के नव निर्माण की दशा मे यथातथ्य स्थितियों का सही निरूपण किया है। वे एक जागरुक कवि थे। श्री रमेश चन्द्र मेहरा ने अपनी पुस्तक निराला का परवर्ती काव्य मे लिखा है—"निराला का विद्रोह व्यक्तित्व उनके स्वछन्दतावादी काव्य को सामाजिक स्वतंत्रता का समर्थक और पुरस्कर्त्ता बनाने मे समर्थ हुआ।....निराला की सामाजिक चेतना राष्ट्रीय जीवन की मूक वेदना को नया स्वर देती है परन्तु इसका स्वरूप व्यंगात्मक, तर्क प्रधान तथा विद्रोही रहा है।" (१) निराला का यही विराट व्यक्तित्व और प्रखर पौरुप जन कल्याण पर सम्पूर्ण रूप से निछावर रहा है।

व्यंग्यकार निराला ने प्रतीकों के समुचित प्रयोग और अप्रस्तुत के माध्यम द्वारा व्यंग्य के व्यक्तित्व का सुन्दर निर्माण कर साहित्य और समाज का अपूर्व हित किया। मेरीडिथ ने एक स्थान पर लिखा है—"व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। प्राय: वह सामाजिक कूड़ा-कर्कट का वटोरने वाला जमादार होता है।" (२) निश्चय ही निराला जी अपने जीवन काल में समाज की नैतिकता के ठेकेदार बने रहे और अपने व्यंग्यों से समाज में व्याप्त अन्ध परम्पराओं और कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना जगाते रहे और क्रान्ति का शंखनाद फूकते रहे। हम सभी स्वीकार करते हैं कि समाज और साहित्य के उत्थान के लिये अच्छी व्यंग्य पूर्ण रचनाओं का सृजन परमावश्यक है। इस दृष्टि से व्यग्यकार निराला साहित्य गगन में सदा सूर्य की भाति देदीप्यमान रहेंगे।

(१) श्री रमेशचन्द्र मेहरा: निराला का परवर्ती काव्य, पृ० स० ५४ व ७४
(२) मेरीडिथ: दी आइडिया आफ् कमेडी, पृ० स० ७६

निराला के गीत

प्रो गिरीश चन्द्र त्रिपाठी

विरह भावना काव्यों में उतनी ही प्राचीन है जितना काव्य स्वयं, अतएव कवि ने अपने अन्तर में निवसित व्यष्टि से समष्टिगत वेदना की सहज विवृत्ति के लिए अपनी करुणापूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति गीतों में अवश्य ही की होगी । किन्तु उस सहजानुभूति द्वारा वेदनामय गीतों ने जिस चेतना को जन्म दिया वह युगों तक अपना असर कम नहीं कर सकेगी । इस प्रकार गीत उत्पत्ति जन समुदाय के सहज भावों के रूप में निकले जान पड़ते हैं । आज ये गीत नये नहीं हैं । गीत लोकभाषा में बहुत प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं । भरत के 'नाट्यशास्त्र' में तो गीतों का विश्लेषण किया गया है । इससे लगता है कि गीत की परंपरा प्राचीन है । इसके बाद जयदेव और क्षेमेन्द्र के काव्यों में भी गीत की धारा प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है । किन्तु क्षेमेन्द्र और जयदेव के पहले गीत की परंपरा कुछ काल के लिए लुप्त हो गई थी । इससे सामान्यत यह अनुमान किया जा सकता है कि गीत पुन जनकंठ में प्रवेश पा उनके हृदय को नवीन उत्साह का संचार करा रहे थे ।

इस प्रकार मनुष्य मात्र की भावनाओं के परिष्कार से लोकगीतों में वर्णित भावों का शोध हुआ होगा और शनै शनै साहित्यिक गीतों को एक अत्यन्त अभिनव तथा मंगलकारी आलोक प्राप्त हुआ होगा । आज के आलोचक आदि कवि बाल्मीकि के इस प्रथम श्लोक से कविता की उत्पत्ति मानते हैं ।

> मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वमगम शाश्वती समा ।
> यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधा काममोहितम् ॥

उपर्युक्त श्लोक को ध्यान में रखते हुए गीत का जन्म वेदना में स्वीकार करना अत्यन्त समीचीन ज्ञात होता है । आधुनिक या प्राचीन जितने भी गीत हैं सबके मूल में वेदना है और उसी वेदना से कविता का जन्म हुआ है । इस सिद्धान्त को मानने वाले पाश्चात्य साहित्य के कवियों ने भी कहा है । शेली भी यही मानता है —

Our sincerest laughter with some pain is fraught Our sweetest songs are those that tell of saddest thought

प्राचीन कवि भवभूति के भी मूल में इसी करुणा के भाव आये थे । उन्होंने कहा —

> एकोरस करुणएव ।

पंत प्रभृति कवियो ने भी साहित्य के प्रथम कवि को वियोगी ही मान कर कहा —

> वियोगी होगा पहला कवि
> आह से उपजा होगा गान,

उमड़कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

× × ×

कल्पना में है कसकती वेदना
अश्रु में जीता सिसकता गान है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के मूल में कवि के पूर्व जन्म के संस्कार भाव अवश्य ही रहते हैं जिससे वह रमणीय वातावरण में रम कर वेदना की सहज विवृति करता जाता है। क्योंकि एकाएक करुणा की उत्पत्ति तो होती नहीं सर्वप्रथम हम मनोनुकूल वातावरण में ही रमते हैं उसके उपरान्त नियति हमारे विरुद्ध कोई कार्य कर उठती है जिससे सारा वातावरण विपाक्त हो उठता है!

इस प्रकार सभी कवियों ने कविता के मूल मे वेदना को ही माना है। निराला की भावना विरह मे ही फूट पड़ी:—

मां वहाँ तू ले चल—
देखूंगा वह द्वार- दिवस का पार
बेसुध पड़ा जहाँ वेदना का संसार
आ वेदने! मैं भी तुझको गाकर जीवन दूँ।

छायावाद युग से लेकर प्रगतिवाद अथवा प्रयोग काल तक निराला ने चार गीत की पुस्तकें लिखी—गीतिका, अणिमा, वेला और आराधना। गीतिका के गीतों में कवि का पौरुष दुर्जेय जीवन की परिस्थितियों से पराजित नहीं होता है। उसमें जीवन के आराध्य तक पहुँचने की घोर तपस्या और साधना के भाव निहित हैं। किन्तु जैसे-जैसे उसका पौरुष थकता जाता है कि जीवन की सान्ध्य वेला सन्निकट चली आती है। उसके विश्रान्त जीवन के शेष पौरुष वाण विश्वास को करुणा की धूमिल रेखायें घेरती आ रही हैं। यों तो गीतिका के एकाध गीतों में उसे जीवन के प्रति ऊब पैदा हो गई थी, किन्तु वैसे भावों को स्थायित्व मिला कहाँ? अक्षय शक्ति का क्षय होते देख सहसा कवि का मन गा उठा—

उन चरणों मे मुझे दो शरण,
इस जीवन से करो हे मरण!

विषय की दृष्टिकोण से गीतिका का विभाजन निम्नलिखित मुख्य विभागों में हो सकता है:—(१) प्रार्थना प्रधान गीत। (२) नारी सौंदर्य प्रधान गीत। (३) प्रकृति प्रधान। (४) राष्ट्रीयता प्रधान गीत।

प्रार्थना प्रधान गीत

गीतिका के सभी गीत जननि या माँ को संबोधित कर लिखे गये हैं। कवि जब माँ! कहता है तो उसके मन की सारी दुःखी भावनाएँ झंकृत हो उठती हैं। अन्त में वह माँ भारती को संबोधित कर कह उठता है:—

वर दे वीणावादिनी वर दे!

ऐसे कई गीत इस संग्रह में आ गये हैं जिसमें कवि की याचना माँ के समक्ष अत्यन्त दीन भावों में व्यक्त होती है। उसकी माँ भक्ति प्रदायिनी है। साथ ही सर्वशक्तिमान तथा ज्योतिमयी भी है। उसकी दीनता सहज भावों में व्यक्त हुई है। कुछ गीतों में कवि का मन विश्व के प्रति घोर अश्रद्धा प्रकट करता है। वह निराश भावनाओं में डूबता उतराता रहता है। वह चाहता है, इससे दूर ही रहना। साधक कहीं-कहीं भावनाओं द्वारा अपनी दयामयी माँ के निकट पहुँच जाता है। किन्तु जब उसका मन निराशामय जीवन को पुनः स्मरण करता है और कुछ करुणापूर्ण गीतों में प्रार्थना के शब्दों को जोड़कर गा उठता है —

प्रात तव द्वार पर
आया जननि नैश अन्ध पथ पार कर।

किन्तु प्रार्थना से ही उसके दुःखी जीवन की समाप्ति नहीं हो जाती।

सार्थक करो प्राण
जननि दुःख अवनि
दुरित से दो त्राण।

कवि जिन नैराश्य भावनाओं से प्रेरित होकर प्रार्थनापरक गीत लिखता है, उसका मूल कारण दुःख ही है। उसके मर्म को चोट पहुँचती है। वह मनुष्यों के स्वार्थान्ध जीवन को देख घोर व्यथा प्रकट करता है। अतएव वह अपनी मंगलमयी माँ को पुकार कर 'परोपकाराय सतां विभूतयः' में पली भावनाओं को सर्वत्र प्रसारित करने की प्रार्थना करता है, ऐसे गीत 'गीतिका' में अधिक नहीं मिलेंगे जितने 'अणिमा' और अर्चना तथा 'आराधना' में, 'गीतिका' तो उस समय की रचना है जब कवि रहस्य सौंदर्य और दर्शन की ओर विशेष रुचि रखता था। 'परिमल' और 'अनामिका' में कवि का जीवन विशेषतः विद्रोह की ओर ही झुका था। 'परिमल' का कवि विघ्न बाधाओं से लड़ता उनसे विजित पराजित होते रहते कह उठता—

डोलती नाव प्रखर है धार
सभालो जीवन खेवनहार।

यह गीत दीन जीवन का नहीं, प्रत्युत संघर्षों से पराजित होता हुआ अपने भविष्य के सोच में कह उठता है। इसके आगे उसके मन में प्राचीनता के प्रति घोर विद्रोहात्मक भावनाओं का प्रवेश हो जाता है —

जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करूँगा तन जीवन हीन।

'अणिमा' में दीन जीवन के विषाद की छाया नाच रही है। इससे कवि के जीवन में एक घोर करुण अंधकार ही अंधकार दिखायी पड़ रहा है। इसमें इकट्ठे थके पौरुषहीन जीवन के विषादमय गीत हैं। 'परिमल,' 'अनामिका' और 'गीतिका' तक के गीतों की करुणा 'अणिमा' में राशिभूत हो गई है। वह अपने जीवन के लम्बे पथ का स्मरण कर सहसा पुकार उठता है —

मैं अकेला मैं अकेला,
देखता हूँ आ रही मेरे गगन की सान्ध्य वेला।

कभी अपने आराध्य तक अपनी वेदना पहुँचाने के लिए उसने किसी प्रकार का प्रयत्न किया:—

तुम्हें सुनाने को मैंने भी
नहीं कहीं कम गाने गाए ।

'बेला' के प्रथम गीत पर 'गीतिका' और 'अणिमा' का कुछ प्रभाव पड़ा है, किन्तु बाद के सभी गीतों मे कवि जन-कंठ के अत्यधिक निकट पहुँचने का प्रयास किया है। इसके सभी गीत—कजली—कव्वाली और गजल वाले भावों से ही आये हैं। विषय की दृष्टि से 'बेला' का महत्व उतना नहीं जितना विविध रूपों के प्रयोग से । अर्चना में कवि के दीन भावों का पुनर्जागरण होता है:—

दूरित दूर करो नाथ,
अशरण हूँ गहो हाथ।

प्रार्थनापरक इन गीतो मे कवि का मन सत्संग की बातों का स्मरण करता है:—

दो सदा सत्संग को मुझको
अनृत से छाया छुटे
तब हो अमृत का रग मुझको !

इस प्रकार की अनेक कामनाओं से 'अर्चना' के प्रत्येक पुष्प सुरभित हो गए है। कहीं-कहीं तो उसकी अतृप्त पिपासा की शान्ति का विश्वास मिलता है और कही उसके निराशापूर्ण जीवन में भूत की मधुमयी स्मृतियाँ जागरित हो उसे और अधिक दाहकता प्रदान करती हैं। इसलिए कवि का जीवन भक्ति से इस प्रकार सुन्दर हो गया है कि वह ठग को भी अपने सा ही मानता है। इन सभी भक्ति परम गीतों को ध्यान मे रखने पर कवि के गीतों में सत कवियों की परपरा शीघ्र ही याद आ जाती है । वह सर्वत्र काम क्रोध मद-लोभ मोह का बाजार गरम देखता है । वह जीवन से अत्यधिक निराश हो उठा है। तुलसी ने जिस प्रकार अपने को सबसे बडा पातकी माना था और कहा "मै प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी"। उसी प्रकार के भाव निराला ने भी व्यक्त किये:—

सागर से उत्तीर्ण तरो है
पार करो हे संसार !

प्रकृति चित्रण

निराला ने अत्यधिक गीत प्रकृति सम्बंधी भी लिखे है । उन गीतों में कवि ने प्रकृति पर शृंगार भावनाओं का आरोप किया है। इन गीतों में प्रेम, वासनापूर्ण प्रेम, कथा स्वरूप निखरता हुआ आया है। निराला ने दो प्रकार के गीत लिखे हैं एक में कोरा प्रकृति-चित्रण होता है और दूसरे में प्रकृति के रम्य व्यापारों द्वारा हृदय में उत्पन्न भावनाओ के विविध व्यापारो का चित्रण। "वह चली अलि शिशिर समीर" वाले गीत में मृणाल पर काँपती इन्दीवर की कलिकाओ का थर-थर काँपते हुए प्रातःकालीन अरूणिमा को देखना

ऐसे दृश्यों को वह अत्यन्त अधीर हृदय से चित्रित करता है। इस प्रकार ऋतुओं के चित्र भी इसमें आ सके हैं। ऋतुओं में विशेष प्रकार से वसंत, शिशिर और वर्षा ही चित्रित हुए हैं। वर्षा ऋतु के दृश्य उपस्थित करते हुए वह उनमें जीवन धन की कल्पना से आनन्दित हो उठता है —

बादल में आये जीवन धन

इस जीवन धन को पूर्ण बनाने के लिए उसने सम्पूर्ण विश्व को आह्लादित कर दिया है। 'परिमल' और 'अनामिका' के गीतों में फुल्ल प्रकृति का रूप स्पष्ट आभासित हुआ। 'परिमल' के 'द्रुमदल शोभी नयन ये" और 'दूत अलि ऋतुपति के आये' इत्यादि गीत गीतमयता एवं भाव की दृष्टि बहुत सुन्दर ढंग से आये हैं।

इनमें वसंतकालीन सभी मधुमय उपादानों के प्रयोग से वासंती वातावरण की सृष्टि की गई है।

काँप उठी विधी के यौवन
प्रथम कंप मिस, मन्द पवन से,
सहजा निकल लाज चितवन से
भाव सुमन छाये।

इसमें यह न कह कर कि हवा धीरे धीरे चली कवि ने इसे 'काँप उठी विधी के यौवन' से अनुभूत कराया है। ऐसे वातावरण में भावों के पुष्प सवत्र छा जाते हैं और सारा वातावरण अत्यन्त मोहक हो जाता है। इसी मूल भावना से प्रेरित होकर कवि ने बहुत से वसंत के गीतों का स्रोत प्रवाहित किया है। दूसरा गीत 'अलि घिर आये घन पावस के' वाले गीत में कवि ने वर्षा के अत्यन्त सुन्दर रूपक द्वारा भावों को जागरित कराया है। ऐसे ही गीत मूल रूप में पहुँच कर 'कौन तम के पार रे कहे, बादल में आये जीवन धन, तथा मेघ के घन केश' की प्रेरणा बन गये हैं। इस प्रकार की वर्षा के आगमन से लता तरु गुल्मों में सर्वत्र एक नवीन उल्लास छा जाता है। हर्ष इतना अधिक हो जाता है कि वन प्रांतर भी एक प्रकार के हर्ष का अनुभव करते हैं।

गीतिका की यह प्रकृति अणिमा में नया रूप लेकर आई। प्रार्थना पूर्ण दूसरे गीत में कवि ने प्रकृति का सहारा लेकर अपने अन्तर की सजल अनुभूतियों को माँ भारती के समक्ष रखा है। वह असीम और सर्वव्यापी प्रार्थना जैसे ही अक्षय कोश से करना चाहता है —

बूँदें जितनी चुनी अधखिली
कलियाँ उतनी
हार तुम्हें मैंने पहनाए

'अर्चना' के गीतों में होली या वसंत वर्णन और वर्षा के चित्र आये हैं। इस संग्रह में भी एक प्रकार की वासंतिकता बड़े ही सुस्पष्ट ढंग से चित्रित हुई है। बालारुण की किरणें जैसे केशर भी भरी पिचकारी छोड़ रही हैं। इस तरह सारे पत्र पीत और रक्त वर्ण के हो गये हैं।

केशर की कली की पिचकारी,
पात पात की गति सँवारी।

मानो प्रत्येक पत्र से किरणों ने होली खेली हो इसी से मिलता जुलता वर्णन पंत का भी है.—

रूपहले सुनहले आम्रबौर
नीले पीले औ ताम्र भौर।

आम्रों में बौर आने का एक दूसरा चित्र कवि ने इस प्रकार रखा है:—

फूटे हैं आमों को बौर
भौर वन-वन टूटे हैं ।

इसके बाद कुछ गीतों में वर्षा के वर्णन भी आते हैं । जिस प्रकार 'अणिमा' का गीत 'बादल छाये' हैं उसी प्रकार के गीत 'अर्चना' में भी संग्रहीत हैं। इसमें सीधा वर्षा का वर्णन नहीं किन्तु वर्षा का रूपक बाँध कर वेदना को अत्यधिक सजीव बनाया है:—

प्राणों की अंजलि से उड़ कर
छा छाकर ज्योतिर्मय अम्बर
बादल से ऋतु समय बदल कर
बूँदों से वेदना बिछा दी ।

परिमल के 'बादल राग' जैसी विद्रोहात्मकता, इस घनदर्शनोत्सुक मन में नहीं, सीधा आत्मविश्वास है अतएव वह कह उठता है:—

मुक्तादल बरसो बादल
सरि सर कल कल बरसो बादल ।

निराला के इन गीतों में भी लोक कंठ के समान ही गीत फूट पड़े हैं । 'घन आये घनश्याम न आये' वाले गीत मे सामान्य जनता में गाये जाने वाले गीत का ही प्रभाव है।

<u>नारी सौंदर्य प्रधान गीत</u>:—'परिमल' में भी इस प्रकार के गीत मिलते हैं किन्तु 'गीतिका' मे ऐसे गीत अधिकता से मिलते हैं। 'परिमल' की 'निशा की उर की कली खिली' वाला गीत गीतिका में पहुँच कर विविध गीतों का प्रेरणा स्रोत बने हैं।

खड़ी सोचती नमित नयन मुख
रखती पग उर कांप पुलक सुख
हँस अपने ही आप सकुच धनि
गति मृदु मन्द चली ।

ऐसे गीतों में 'शेफालिका,' 'जुही की कली' और 'नर्गिस' के स्वच्छन्द प्रेम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले भाव अंकित किये गए हैं।

'परिमल' के उपर्युक्त सभी गीतों के भाव 'अपराजिता' वाले गीत में केन्द्रित हो गए हैं:—

हारी नहीं, देख आँखें
परी नागरी की,
नभ कर गई पार पाँखें
परी नागरी की ।

इसी 'परी नागरी' के भाव बाद म छवि विभावरी के रूप में आई । कवि की छवि विभावरी की यही वेला है जिसमें 'बनवेला' और 'जूही की कली' नाम की कविताएँ लिखी गई थी। फिर भी कवि के अन्तर में और छवि ला दो की आकुलता बनी ही रही। वह गीतिका के गीतों में बसत की घोर शृंगारी भावनाओं में प्रकट हुई।

'नयनों के डोरे लाल गुलाल' भरे खेली होली' इस गीत में जिस घोर शृंगारिकता का चित्रण हुआ है वह कवि के यौवन की रोमासवादी भावनाएँ हैं जो उबल कर फूट पड़ी हैं। 'प्रिय यामिनी जागी' वाले गीत म रात्रि की जगी नायिका के विविध रूप तो चित्रित हुए ही हैं साथ ही अलसाए नयनों के तथा मुक्त कुन्तल की शोभा रमणीयता बन रही है। इसमें नायिका के हाव-भाव भी चित्रित हुए हैं —

टेर उर पट फेर मुख के बाल
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल
गले मे प्रिया स्नेह की जयमाला
वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग की लागी।

इसके उपरान्त कवि ने शुभ्र किरण वसना नामक गीत में कवि ने गौरागी का रूप चित्रित किया है, जिसे केवल हँसना ही आता है । उसे लाज अनय मय और आहत दुसमय कुछ भी व्यापता है । इतना ही नहीं 'अनामिका' में कवि ने कृषक के वधु की आँखों की उपमा खजन से देकर बड़ी ही रमणीयता उत्पन्न की है —

ज्यों हरीतिमा मे बैठे दो विहग बन्द कर पाखे

राष्ट्रीय गीत

निराला ने राष्ट्रीय जन जागरण के बहुत से गीत लिखे हैं। किन्तु गीतिका का दूसरा गीत भारतवर्ष की सीमा सहित उसकी गौरव गरिमा का स्मरण कराता है। ऐसे भारत को भारति विजयिनी हो जिसके चरण प्रान्त पर कमल रूप में लका विराजमान है, सागर की तरगें सदैव गरजती रहती हैं। इतना ही नहीं इन तरगो से सदैव इसके पाद पद्मो के प्रक्षालन का काय होता रहता है। इसकी प्रशसा बहुत अर्थों म लोग करते हैं। इससे राष्ट्र की गुरुता तो मालूम ही पड़ती है साथ ही भारती की शुचिता भी मुखर हो उठती है —

मुकुट शुभ्र हिम तुषार
प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शतमुख शतरव मुखर

यद्यपि कि यह गीत प्रार्थनापरक हे फिर भी इसमें राष्ट्रीय जागरण के भाव आ गये हैं। भारतीय संस्कृति का चिन्ह कमल की ओर संकेत कर तथा ओंकार की ध्वनि से इसे अत्यधिक सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीयतावादी गीत बना दिया है।

'जागो जीवन धनिके' में भी कवि का राष्ट्रीयतापूर्ण हृदय विश्व में बंधुत्व के भावो की स्थापना करके गा उठता है। इसमें आधुनिक भारतीयों की दशा की ओर कवि का विशेष ध्यान गया है। दूसरी बात वाणिज्य की है। कवि भारतीय वाणिज्य की विश्व में सर्वत्र प्रसारित हो जाने में ही देश को पूर्ण उन्नतिशील होना मानता है। इतना ही नहीं भारतमाता की मुक्ति के लिए वह प्राणों की बलि भी चढ़ा सकता है। जिस प्रकार के भाव कवि ने इस गीत द्वारा जनता के हृदय मे उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है उसने उससे कायरों के हृदय में भी वह वीर भाव को उत्पन्न कर रोती भारत माँ के मन को सन्तोष दिया है। देश को दासता में बँधा रहने का मुख्य कारण आपस की फूट ही है। इसी कारण विदेशियों ने भारत पर अपना अधिकार जमाया है। इस प्रकार गीतिका में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय गीतों का सुन्दर मेल हुआ है। यह गीत देश स्वतंत्र होने के पूर्व ही लिखा गया है।

प्रमुखतया यह युग गीतों का युग है। आधुनिक युग में कई गीतकार हुए, किन्तु उनमें चार ही मुख्य माने गये हैं। इन चारों गीतकार कई बातों में मिलते हैं और कुछ में भिन्न भी हैं। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी इन चारों ने गीत की उत्पत्ति वेदना में ही मानी है।

(क) ये चारों गीतकार दो प्रकार से गीत लिखने की ओर अत्यधिक झुकते दिखायी पड़ते हैं। प्रथम तो ये स्वयं एक विरह-वेदना का अनुभव करते हैं और उससे सहज भाव से गीत फूट पड़ते हैं। द्वितीय इसमे कवि दूसरों के दुःख में अपने इतना तन्मय हो जाता है कि उस दुःख को अपना दुःख मान कर गीत लिखने को बाध्य हो जाता है। प्रसाद का आँसू और स्कन्दगुप्त का अन्तिम गीत, निराला के गीतिका के गीत, पंत और महादेवी के भी गीत इन्हीं दो विभागों के अन्तर्गत आते हैं। वह इस युग की सामान्य प्रवृत्तियाँ थी।

(ख) प्रसाद के गीत ही क्या उनकी अधिकांश रचनाएँ बुद्धि वृत्ति में पगी रहती है। वे शीघ्र ही विराट् की कल्पना करने लगती हैं। निराला वहाँ नई शक्ति का आवाहन करते हैं और साथ ही उनका 'अहं' प्रबल होकर 'द्वैतवाद' की कल्पना में लीन हो जाता है। महादेवी का प्रिय चिरन्तन होकर असीम में निवास करता है। उनके गीतों मे वेदना का इतना आधिक्य हे कि वे जीव की भी उत्पत्ति वियोग में ही मानती हैं। पंत के प्रार्थनापरक गीत भी विराट् की ज्योतिर्मय जीवन कह कर अपनी आत्मा को शांत कर ही लेते हैं।

(ग) निराला के गीतो में आवेग की मात्रा कहीं-कहीं बहुत अधिक हो जाती है कहीं-कही तो कवि ने अनावश्यक और असंबद्ध प्रसंगो के योग से कल्पना को उर्जस्वित बनाने का प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में आचार्य पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी की निम्नलिखित पंक्तियाँ अत्यधिक युक्तियुक्त और संगत ज्ञात होती हैं:—

"निराला की रचनाएँ साधारण पाठकों को तो दुर्बोध मालूम ही होती हैं, उनके प्रशंसकों को भी कभी-कभी दुरूह लगती हैं। इसका कारण यह है कि कवि अपने आवेगो को संयत रख

कर नहीं लिख सकता। एक बात कहते कहते उसे उसी से सम्बन्धित और कभी कभी उलटा पड़ने वाली दूसरी बात याद आ जाती है। कवि अपने आवेगों पर अंकुश नहीं रख सकता।"

उपर्युक्त कथन में निराला की कविताओं में भाषा की क्लिष्टता का दोष तो है ही साथ ही आवेग की वशवर्तिनी कल्पना कहीं कहीं इतनी पीछे छुट जाती हैं कि कोरे भावों के आवेग से कविता सम्पूर्णता दुर्बोध हो जाती है।

जहाँ तक प्रसङ्गों के निबाह की बात है कवि कहीं उसका विस्मरण कर जाता है। इससे पाठक को अपनी बुद्धि द्वारा उसके अनुकूल प्रसङ्ग का आरोप कर समझना पड़ता है।

प्रसाद की कविताओं को समझने के लिए बुद्धि का सहयोग लेना आवश्यक होता है। पंत की कविता में हृदय की सहज कल्पना का सुमधुर आवेग है, भाषा में क्लिष्टता का दोष नहीं। इनके प्रत्येक शब्द में माधुरी और चित्रोपमता का सुन्दर समावेश है। इनमें न तो प्रसाद की तरह बुद्धि की वैसी उड़ान ही है और न निराला की तरह तीक्ष्ण आवेग ही। पंत की प्रांजलता सर्वथा सराहनीय है। महादेवी के गीतों में जैसे कवियित्री का हृदय बोलता है उसमें हार्दिक भावों की अभिव्यक्ति उनके गीत में प्रतिपादित वेदना के अनुरूप ही होती है। इससे इनके गीतों में वेदना की अतल गहराई है और सहजानुभूति का करुणापूर्ण उद्रेक भी। अत उनके गीतों में प्रभावोत्पादकता है और व्याकुल अन्तर में निरक्षित 'क्षण क्षण नवीन सुहागिनी' का 'चिरन्तन प्रिय' के लिए प्रणय निवेदन भी।

सबसे बाद एक ही बात निराला के लिए कही जा सकती है कि इनके बाद के गीतों में भावावेग की कमी है। इन्होंने कई प्रकार के गीत लिखे हैं। किन्तु इनके गीतों में विषय की दृष्टि से दो प्रकार के ही गीत अधिक है। प्रथम तो प्रार्थनापूर्ण और दूसरा शृङ्गारपूर्ण गीत। इन दोनों प्रकार के ही गीतों के अत्यधिक लिखे जाने का कारण है। कवि का हृदय सदैव से भक्त का हृदय रहा है। इससे उसने प्रारम्भ की रचनाओं में अपने आराध्य का गुणगान किया है। किन्तु अन्त के प्रार्थनापरक गीतों में करुणा और दुःख की अत्यधिक अभिव्यक्ति है। इसका कारण उसके त्रस्त पौरुष की आकुलता है। वह संसार को दुःखपूर्ण मान कर अपनी दीनता प्रकट करता है। प्राचीन कवियों में भी इस प्रकार के भाव आये है।

तुलसी ने तो 'विनय पत्रिका' में जैसा आत्मदैन्य प्रदर्शित किया है, उसमें उनके हृदय का सहज करुणा नहीं, प्रत्युत एक सर्वाधिक आर्तवाणी की करुण चीत्कार ही अनुभूत होता है। तुलसी के—"जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे" में जैसा आत्मदैन्य खुल कर आया है, वैसा अन्य भक्तों के यहाँ बहुत ही कम है, निराला के यहाँ भी —

दुरित दूर करो नाथ,
अशरण हूँ गहो हाथ

इस पर तुलसी जैसे भक्त कवियों के घोर आत्मदैन्य की छाप पड़ी है। ऐसे गीत लिखने के मूल में कुछ ऐसी भावनाएँ अवश्य ही बीज रूप में अंकुरित होती हैं। जहाँ भक्त अपने आराध्य को सर्वश्रेष्ठ मानता है। वह सब कुछ देखने वाला है। वह सर्वशक्तिमान है। निराला के प्रार्थना निवेदन मात्र ही हैं। इनके गीतों में अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन और तत्त्ववाद की

अभिव्यंजना ही मुख्य हो जाती है । सब कुछ होने पर वह उसमें अपना जीवन दर्शन देखते है । सौंदर्य प्रधान या शृंगारी गीत तो अत्यधिक छायावादी युग के सौंदर्य और रहस्य के मिश्रण से आये है ।

प्रसाद और निराला ने गीतों को ताल और स्वर में सजाया । अब तक के इस छायावादी युग के गीतों के ताल और स्वर का यह बाना किसी कवि ने धारण नही करवाया था । गीतिका में उसने ताल और स्वरबद्ध गीतों का प्रणयन किया है । दोनों कवियो के गीत रीतिवादी ढंग के हो गए है । इनके स्वरो में आरोह-अवरोह का सुन्दर मेल है । गीत में संगीत का प्रभाव कुछ तो आवश्यक है ही किन्तु संगीत का मेल गीत मे इतना अधिक नही होना चाहिए जिससे भावों की अभिव्यक्ति का पता ही न चले । गीत कोरा संगीत ही रह जाय । इसमे साहित्य का कोमल और माधुर्य पक्ष अत्यधिक व्यक्त होता है । संगीत से कविता या गीत के शब्दो में तद्रूप भाव ग्रहण कराने की क्षमता वर्तमान रहती है । संगीत की माधुरी तो सर्वत्र वर्तमान है । यह प्रत्येक जड और चेतन में सामान्य रूप से निहित है । जो चेतन है उनका संगीत श्रोतव्य है किन्तु जड का संगीत आज तक सुना ही नहीं गया । जैसे हवाएँ अपने कोमलतम स्पर्श से वृक्ष को उत्फुल्ल कर देती है और हवाओं को कोमल रागिनी मे वे झूमने लगते है । इसी को शेक्सपीयर ने कहा था :—

when the winds did gently kiss the trees
and they make no noise.

इस प्रकार जड के संगीत के प्रभाव की और स्वरों की अभिव्यक्ति सर्वथा श्रोतव्य नही होती इसीलिए अंग्रेजी कवि Keats कीट्स ने कहा :—

Heard melodies are sweeter.
But those unheard are sweeter.

संगीत से भी रसानुभूति कराने मे सहायता मिलती है, क्योंकि जन-साधारण को जिन्हे गीत या कविता समझने की योग्यता नहीं मिली है । वे गीत में निहित रस का ग्रहण कवि के स्वरों और मुद्राओ पर ही करते है । संगीत के स्वरो का सीधा सम्बंध हृदय से है और यह उसमें सुषुप्त करुण, वीर या शृंगार भावनाओं कों सद्यः जागरूकता प्रदान करता है । इस प्रकार संगीत की कोमल ध्वनियाँ जब समाप्त हो जाती है तो वे चेतना मे गूँजती रहती हैं :

Music when soft voices die
vibrates in memory.

यही कारण है कि संगीत भावनाओं को सर्वाधिक और यथाशीघ्र जागरूक बनाने में सहायता करता है । इसके अतिरिक्त यह ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है कि काव्य मे संगीत को उतना ही स्थान मिलना चाहिए जिससे की भावों की स्वाभाविक गति बनी रहे । ऐसा न हो कि संगीत के भावों में गतिरोध उत्पन्न हो जाय । आधुनिक युग में ऐसे गीतकार हैं जिनमे से निराला ने संगीत पर अत्यधिक ध्यान रखा है ! वे प्राचीन रीतिवादी ढंग के गीतों का विस्मरण नहीं चाहते । निराला के गीतों मे संगीत की एकतानता नही है । इन्होने अपने गीतों में संगीत पक्ष गीतों से अलग न हो जाय इसका विशेष ध्यान रखा है । 'गीतिका की भूमिका मे लिखा है :—

"प्राचीन गवैयों की शब्दावली संगीत की रक्षा के लिए किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। आजतक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी सुन्दर करने की कोशिश की है।"[1] निराला के विषय में एक बात का स्मरण अनायास ही हो जाता है कि वह नवीनता के पुजारी हैं। गीतिका के ताल स्वरबद्ध गीत 'बेला' में—कव्वाली कजली ठुमरी और गजलों में आया है, 'अणिमा' के गीत मुख्यतः अंगरेजी के Odes में ही आये हैं। अतः उन गीतों में भी संगीतात्मकता उतनी नहीं रह सकी है। धीरे धीरे कम होती गई। इनमें लोक प्रचलित संगीत का ही माधुरी आने लगी हैं। अतएव गीतों में भी निराला जग जागरण के गीतकार कहलाने का दावा रखते हैं।

शिवगोपाल मिश्र का संस्मरण निराला के साथ महत्व रखता है —"एक बार मैंने पूछा पंडित जी अपना जीवन-चरित्र लिखिए हिन्दी जगत व्याकुल है।" निराला जी ने स्पष्ट कहा —अपनी कृतियों के बारे में भले ही कुछ दें जैसे 'अणिमा' में Odes (संबोधगीत) हैं, 'बेला' में नये प्रयोग 'नये पत्ते' में मुहावरे 'अर्चना' में प्रौढ़ भाषा का स्वरूप। किन्तु 'आराधना' में आते आते कवि का पूर्व विश्वास पुनः मुखरित हो उठा। महादेवी जी ने भूमिका में लिखा है —

"अविश्वास के इस अन्धकार युग में 'आराधना' के स्वर दीपकराग की भाँति संगीत और आलोक की समन्वित सृष्टि करने में समर्थ होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।[2]

इस प्रकार निराला के हृदय में संगीत के प्रति घोर विश्वास है और वे समझते हैं कि वे संगीत के माध्यम से दैन्य की अभिव्यक्ति का स्वर एक अनुपम प्रभावोत्पादकता प्रकाशित कर सकेंगे —

Congreve कवीर ने The Morning Bride "प्रात दुलहिन" में लिखा है —

"Music hath charms to soothe a savage breast
To soften rooks, or bend, a knotted oak"

निराला के काव्य में प्रकृति और उनमें चित्रण की विविध शैलियाँ —

मनुष्य और प्रकृति का साहचर्य सृष्टि के प्रारम्भिक काल से ही चला आ रहा है। अतएव काव्य में मानव के बाद प्रकृति को ही विषय की मान्यता दी गई। संस्कृत साहित्य में तो इसका महत्वपूर्ण वर्णन अपूर्व और अनुपम है। किन्तु काल विशेष के बाद प्रकृति वर्णन की यह परंपरा रूढ़ि रूप में गृहीत हुई। रीतिकाल में नायिका भेद के प्रचार ने इसके स्वतंत्र वर्णन का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। इस कारण, हिंदी साहित्य में उद्दीपनाश्रित प्रकृति का दाहक रूप ही हिन्दी साहित्य के काव्य रूपों में प्राप्त हुआ। रीतिकाल के कवि परंपरागत प्रकृति चित्रण में

---

१ साहित्य निराला अंक—१९५४ देहरादून।

२ आराधना की भूमिका—श्रीमती महादेवी वर्मा।

प्रकृति वर्णन की शैली का निर्वाह अवश्य करते थे, किन्तु उनमें प्रकृति को स्वतंत्र दृष्टि से चित्रित करने की क्षमता किसी मे नही थी। इसके विरुद्ध बीसवी शताब्दी मे स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कुछ क्रान्तिकारी चित्रण-शैलियो के प्रयोग किये।

इस क्रान्ति के कुछ मुख्य कारण थे। स्वच्छन्दतावादी युग भौतिकवाद का युग था और इस काल मे नगरो की स्थिति अधिक आभापूर्ण हो गई थी। नागरिको और ग्रामवासियो में लोलुपता भरी दृष्टि आ गई थी। सभी वर्गों में संघर्ष और प्रतिद्वन्द्विता के भाव उत्पन्न हो गये थे। एक प्रकार की आर्थिक विपन्नता फूट उत्पन्न कर रही थी। इधर कवि का विश्व बन्धुत्व और विश्वप्रेमपूर्ण हृदय अपनी कल्पना की अन्तिम सासे गिन रहा था। ऐसे काल मे कवि की हृदय-सहचरी प्रकृति ही हो सकती थी। उसने प्रकृति मे मानवीय चेतना का आरोप कर अपनापन का अनुभव किया और साथ ही उसके प्रेम को प्रतिदानस्वरूप सहर्ष हृदय से लगाया।

बीसवी शताब्दी के कवियो के लिए प्रकृति जड़ पदार्थ नही रह गई थी, प्रत्युत मानवीय भावनाओ की उभय वृत्तियो की सहयोगिनी हुई। उन्हे ऐसा लगा जैसे प्रकृति का सहज रूप उन्हें प्रेम सिखा रहा है। वर्ड्सवर्थ की तरह वे भी कह उठे :—

Nature never did betray
The heart that loved her.

इस तरह की भावना रखने वाले कवियो मे प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी मुख्य हैं।

प्रसाद की प्रवृत्ति वेद कालीन प्रकृति है। यही कारण है कि वह सजीव हो उन्हे आत्मबोध कराती है। कवि ने प्रकृति में एक ऐसी शक्ति का अनुमान किया है जो उसके काव्यो मे नियति नाम से ही सबोधित है।

उसने प्रकृति में सदैव चैतन्य का अनुभव किया है, और साथ ही उसके हृदय का प्रतिस्पन्दन भी। 'समुद्र सतरण' और 'बिसाती' और साथ ही कामायनी मे भी प्रकृति को प्राचीन ढङ्ग से चित्रित किया है।

'वह अकेला साधारण मनुष्य के समान इसे देखता निरीह छात्र की तरह गुरु हृदय से कुछ अध्ययन करता'। ॥समुद्र सन्तरण॥

'विश्वदेव सविता या पूषा,
सोम, मरुत, चन्चल पवमान।
वरुण आदि सब घूम रहे हैं,
किसी सेवा मे अम्लान ॥आशा सर्ग॥

पन्त के लिए प्रकृति ही सब कुछ है। उनकी बाल सुलभ भावुकता ही विस्मित होकर देवी, माँ, सहचरी रूप में निकली है। कभी तो वह तटस्थ होकर उसके रूप का चिन्तन करता है और कभी वह तारो मे चेतना का आरोप कर आत्म और जग दर्शन की बाते करने लगता है। जैसा पोप ने लिखा था :—

All are but parts of one stupendous whole
whose body natnre is and God the sonl

पन्त से प्रकृति का मोह छोड़ नहीं जाता। वे प्रकृति के हैं और प्रकृति उनकी है —

छोड द्रुमो की मृदु छाया,
तोड प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल जाल मे,
कैसे उलझा दूँ लोचन
छोड अभी से इस जग को।

निराला वास्तव में मानववादी हैं। उनके हृदय में मनुष्य जीवन का कठोर संघर्ष भरा पड़ा है। प्रकृति चित्रण की पूर्णता इनके काव्यों में मिलती है और मानवोचित भावों की अभिव्यक्ति भी। इनकी कविताओं में मनुष्य के संघर्षपूर्ण हृदय की गहरी छाया उनके चरित्र चित्रण में वर्तमान है। कवि के जीवन में अत्यधिक ऐसे क्षण आये हैं जिनमें उसे अत्यधिक आहत होना पड़ा। अन्त में वह नस्तमन हो प्रकृति की ओर अपलक देखता रहा है, जैसे 'वनवेला में'।

निराला की प्रवृत्ति सर्वदा प्रकृति को नायिका रूप में देखने की रही है। प्रकृति उनके खण्डकाव्यों की पृष्ठभूमि रूप में आई है। 'तुलसीदास' 'पंचवटी प्रसंग' 'राम की शक्तिपूजा' मे प्रकृति अत्यधिक निखरी जान पड़ती है। 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। अन्य कविताओं में उनका करुणाप्लावित मानव हृदय ही मुख्यत जाग उठा।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में कवियों में दो प्रमुख प्रवृत्तियों का प्राधान्य था। प्रथम, प्रकृति का परम्परागत वर्णन जैसे ऋतुओं का वर्णन, प्रभात वर्णन, समुद्र वर्णन इत्यादि। डा० श्रीकृष्णलाल ने उपर्युक्त शैली के अतिरिक्त चार अन्य शैलियों को बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। प्रकृति वर्णन की इस प्रवृति में प्रकृति निरीक्षण से उत्पन्न आनन्द का सहजोद्रेक था। इसमें बाल सुलभ भावुकता और आनन्दमग्न अन्तर का सहज उल्लास फूट पड़ता है। ऐसे ही प्रकृति के अनुकूल वातावरण प्राप्त कर कवि नवीन शोभा लिए बादलों को देख एक नैसर्गिक आनन्द का अनुभव करता है —

झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर!
राग अमर-अम्बर में भर निज रोर।
झर झर निर्झर गिरि सर मे
घर, मर, तरु मर्मर सागर मे
सरित तडित गति चकित पवन मे
मन मे विजन गहन कानन मे
आनन आनन मे, रव घोर कठोर
राग अमर अम्बर मे भर निज रोर!

पन्त का 'पावस ऋतु थी पर्वत' प्रदेश शीर्षक वाली कविता इस का एक सुन्दर उदाहरण है :—

उड़ गया, अचानक, लो भूधर
फड़का अपार पारद के पर !
अवशेष रह गए हैं निर्झर !
है टूट पड़ा भू पर अम्बर !

इसमें कवि ने वर्षा ऋतु में पर्वत प्रदेश का अत्यन्त सुन्दर चित्र उपस्थित किया है।

प्रसाद का कवि हृदय प्रभात की किरणों को देख कर अनायास ही पूछ उठता है :—

किरण क्यों बिखरी हो सुकुमार
रंगी हो किस विराग के रङ्ग ॥

उपर्युक्त पक्तियों में कभी तो कवि का मन प्रकृति के रूप व्यापार में लीन हो उसके अपूर्व एवं अलौकिक सौंदर्य का चित्र अङ्कित करता है और कभी विस्मय मे जाग पड़ता है विविध रंगीन कल्पनाएँ :—

कुंज कू-ऊ बोली कोयल अन्तिम सुख स्वर,
पी कहाँ, पपीहा-प्रिया मधुर विष गई घहर

....

पल्लव पल्लव की हिला हरित बह गई वायु
लहरों मे कम्प और लेकर उत्सुक सरिता
तेरी देखती तमश्चरिता
छवि वेला नभ की ताराएँ निरुपमिता
शत नयन दृष्टि
विस्मय मे भर कर रही विविध आलोक सृष्टि

इसमें सन्ध्या-वेला का चित्र आया है। कहीं कोयल की कूक है, और कही पपीहे के पी-कहाँ से विष-वर्षण हो रहा है। प्रत्येक पल्लव का स्पर्श करती वायु लहरो मे कम्प उत्पन्न करती वहती चली जा रही है। इससे सान्ध्यवेला मुखरित हो उठी है। ऐसे चित्र जिनमे प्रकृति के यथार्थ चित्र आ गए हों, बडी कठिनता से प्राप्त होते हैं।

प्रकृति वर्णन की तीसरी शैली मे प्रकृति मानवीय भावनाओं और कार्यों की भूमिका अथवा पृष्ठभूमि के रूप मे मिलती है। ।ऐसे ही प्रकृति-चित्रण की शैली का सहारा प्रवन्ध काव्यो मे लिया जाता है। जैसे कामायनी इत्यादि में। कामायनी के आशासर्ग में प्रभात-वर्णन तथा इसी सर्ग के अन्त में रात्रि के मध्याह्न और अन्तिम प्रहर के वर्णन दर्शनीय हैं। इसके वाद स्वप्न सर्ग सन्ध्या के चित्र से प्रारम्भ होता है। निराला ने 'तुलसीदास' जैसे खंड काव्य में तुलसी की मनोदशा का चित्रण प्रकृति की मनोरमता की सहायता से किया है। पत्नी-विरहित तुलसी का आकुल मन प्रकृति के इस रूप व्यापार को देख और भी आकुल हो उठा है। किन्तु कवि ने

All are but parts of one stupendous whole
whose body natnre is and God the sonl

पन्त से प्रकृति का मोह छोड़ नहीं जाता। वे प्रकृति के हैं और प्रकृति उनकी है —

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल जाल में,
कैसे उलझा दूँ लोचन
छोड़ अभी से इस जग को।

निराला वास्तव में मानववादी हैं। उनके हृदय में मनुष्य-जीवन का कठोर संघर्ष भरा पड़ा है। प्रकृति चित्रण की पूर्णतता इनके काव्यों में मिलती है और मानवोचित भावों की अभिव्यक्ति भी। इनकी कविताओं में मनुष्य के संघर्षपूर्ण हृदय की गहरी छाया उनके चरित्र चित्रण में वर्तमान है। कवि के जीवन में अत्यधिक ऐसे क्षण आये हैं जिनमें उसे अत्यधिक आहत होना पड़ा। अन्त में वह नस्तमन हो प्रकृति की ओर अपलक देखता रहा है, जैसे 'बनबेला में'।

निराला की प्रवृति सर्वदा प्रकृति को नायिका रूप में देखने की रही है। प्रकृति उसके खंडकाव्यों की पृष्ठभूमि रूप में आई है। 'तुलसीदास' 'पंचवटी प्रसंग' 'राम की शक्तिपूजा' में प्रकृति अत्यधिक निखरी जान पड़ती है। जूही की कली' और 'शेफालिका' में उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। अन्य कविताओं में उनका करुणाप्लावित मानव हृदय ही मुखरित जाग उठा।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कवियों में दो प्रमुख प्रवृत्तियों का प्राधान्य था। प्रथम, प्रकृति का परम्परागत वर्णन जैसे ऋतुओं का वर्णन, प्रभात वर्णन, समुद्र वर्णन इत्यादि। डा० श्रीकृष्णलाल ने उपर्युक्त शैली के अतिरिक्त चार अन्य शैलियों को बहुत ही महत्वपूर्ण माना हैं। प्रकृति-वर्णन की इस प्रवृति में प्रकृति निरीक्षण से उत्पन्न आनन्द का सहजोद्रेक था। इसमें बाल सुलभ भावुकता और आनन्दमग्न अन्तर का सहज उल्लास फूट पड़ता है। ऐसे ही प्रकृति के अनुकूल वातावरण प्राप्त कर कवि नवीन शोभा लिए बादलों को देख एक नैसर्गिक आनन्द का अनुभव करता है —

झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर!
राग अमर अम्बर में भर निज रोर!
झर झर निर्झर गिरि-सर में
घर, मर, तरु मर्मर सागर में
सरित तड़ित गति चकित पवन में
मन में विजन गहन कानन में
आनन आनन में, रव घोर कठोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर!

पन्त का 'पावस ऋतु थी पर्वत' प्रदेश शीर्षक वाली कविता इस का एक सुन्दर उदाहरण है :—

उड़ गया, अचानक, लो भूधर
फड़का अपार पारद के पर !
अवशेष रह गए हैं निर्भर !
है टूट पड़ा भू पर अम्बर !

इसमें कवि ने वर्षा ऋतु में पर्वत प्रदेश का अत्यन्त सुन्दर चित्र उपस्थित किया है।

प्रसाद का कवि हृदय प्रभात की किरणों को देख कर अनायास ही पूछ उठता है :—

किरण क्यों बिखरी हो सुकुमार
रंगी हो किस विराग के रङ्ग ॥

उपयुक्त पंक्तियों में कभी तो कवि का मन प्रकृति के रूप व्यापार में लीन हो उसके अपूर्व एवं अलौकिक सौंदर्य का चित्र अङ्कित करता है और कभी विस्मय मे जाग पडता है विविध रंगीन कल्पनाएँ :—

कुंज कू-ऊ बोली कोयल अन्तिम सुख स्वर,
पी कहाँ, पपीहा-प्रिया मधुर विष गई छहर
....
पल्लव पल्लव की हिला हरित वह गई वायु
लहरों मे कम्प और लेकर उत्सुक सरिता
तेरी देखतीं तमश्चरिता
छवि वेला नभ की ताराएँ निरुपमिता
शत नयन दृष्टि
विस्मय मे भर कर रही विविध आलोक सृष्टि

इसमें सन्ध्या-वेला का चित्र आया है। कहीं कोयल की कूक है, और कही पपीहे के पी-कहाँ से विष-वर्षण हो रहा है। प्रत्येक पल्लव का स्पर्श करती वायु लहरो मे कम्प उत्पन्न करती बहती चली जा रही है। इससे सान्ध्यवेला मुखरित हो उठी है। ऐसे चित्र जिनमे प्रकृति के यथार्थ चित्र आ गए हों, बडी कठिनता से प्राप्त होते हैं।

प्रकृति वर्णन की तीसरी शैली में प्रकृति मानवीय भावनाओं और कार्यों की भूमिका अथवा पृष्ठभूमि के रूप में मिलती है। ।ऐसे ही प्रकृति-चित्रण की शैली का सहारा प्रवन्ध काव्यो मे लिया जाता हे। जैसे कामायनी इत्यादि मे। कामायनी के आशासर्ग में प्रभात-वर्णन तथा उसी सर्ग के अन्त में रात्रि के मध्याह्न और अन्तिम प्रहर के वर्णन दर्शनीय हैं। इसके बाद स्वप्न सर्ग सन्ध्या के चित्र से प्रारम्भ होता है। निराला ने 'तुलसीदास' जैसे खंड काव्य में तुलसी की मनोदशा का चित्रण प्रकृति की मनोरमता की सहायता से किया है। पत्नी-विरहित तुलसी का आकुल मन प्रकृति के इस रूप व्यापार को देख और भी आकुल हो उठा हे। किन्तु कवि ने

सुनते सुख वंशी के सुर
पहुँचे रत्नधर रमा के घर

लिखकर तुलसी के चेतन मन में गूंजती ध्वनि तथा दृष्टि में आये प्रकृति के व्यापारों को सजग कर दिया :—

मन में पिक कुहरित डाल डाल
है हरित विटप, सब सुमन माल
हिलतीं लतिकायें लाल लाल सस्मित
पड़ता उन पर ज्योति प्रपात
है चमक रहे सब कनक गात
बहते मधुर धीर समीर ज्ञात आलिंगित।

इसमें भी आगे तुलसी को श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रमुदित मिलनोत्सुक दिनों की याद हो जाती है। इसके द्वारा निराला ने तुलसी के मन की वेदना को और भी घनीभूत कर दिया है और सारा वातावरण उसे क्षुब्ध कर रहा है —

धूसरित बाल दल पुण्य रेणु
लख चरण चारण चपल धेनु
आ गई याद उस मधुर वेणु वादन की,
वह यमुना तट, वह वृन्दावन
चपलानंदित वह सघन गगन
गोपी-जन यौवन मोहन तन वह वन की

ऐसे वातावरण से तुलसी का प्रिया विरहित हृदय प्रिया के गाँव की ओर चला जा रहा है। सवत्र विरह की स्मृतियाँ ही साकार होती चल रही हैं। ऐसे चित्रण से युवक के मन में विरह के उद्दाम आवेग लाने में बड़ी सहायता पहुँचती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रभात का वर्णन किया है और इसके बाद मध्याह्न का चित्र दूसरे में आया है। इन दो चित्रों को प्रस्तुत कर कथा को प्रवाह किया है।

'कामायनी' के आशासर्ग में उषा का वर्णन प्रारम्भ कर प्रसाद जी ने नई सृष्टि के उदय का वातावरण तैयार किया है—

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल में अन्तर्निहित हुई।

स्वप्न सर्ग में सन्ध्या का वर्णन —

सन्ध्या अरुण जलज केशर ले अब तक थी मन बहलाती
मुरझा कर कब गिरा तामरस उसको खोज कहाँ पाती।

इसमें भी प्रकृति का सन्ध्याकालीन वातावरण उपस्थित किया गया है।

प्रकृति-वर्णन की चौथी शैली में कवि प्रकृति को उपमा और रूपक में प्रस्तुत करता है। यह शैली अत्यन्त प्राचीन है। किसी वस्तु या स्त्री-पुरुष के सौंदर्य या किसी चीज की उपमा के लिये प्रकृति का अक्षय कोश वर्तमान है। कालिदास की उपमाओं में निम्न उपमा बड़ी ही मधुर है :—

> अधर किसलय राग, कोमल विटपानुकारिणौ बाहू।
> कुसुममिव लोभनीयम्, यौवनमंगेषु सन्नद्धम्॥"

आधुनिक युग में इस शैली का पुनः उत्थान हुआ है। निराला की "तुम और मैं" कविता और तुलसीदास के कुछ रूप चित्रण इसी कोटि में आते हैं।—

> तुम गंध कुसुम कोमल पराग
> मैं मृदुगत मलय समीर
> ....
> तुम आशा के मधुमास और मैं पिक कल कूजन तान !

तुलसी दास की रत्नावली का मुख चन्द्रमा है, उसका कलंक उसकी आँखें और आकाश उसकी अलकें हैं। उस चन्द्रमुख से प्रकाश निकलता है। तुलसी दास का मन चकोर की भाँति उस चन्द्रमुख की ओर देखता है:—

> प्रेयसी अलकें नील व्योम,
> दृग-पल, कलंक, मुख मंजु सोम,
> निःसृत प्रकाश जो, तरुण क्षोभ प्रिय तन पर !
> पुलकित प्रतिपल मानस चकोर
> देखता मूल दिक् उसी ओर
> कुल इच्छाओं का वही छोर जीवन भर।

'जूही की कली', 'शेफालिका' इत्यादि कविताओं में निराला ने प्रकृति के वासनामय सौंदर्य का चित्रण किया है। कवि ने प्रकृति के नायक नायिकाओं को भी वासनापूर्ण व्यापारों में सलग्न दिखाया है। 'जूही की कली' में वसंतकालीन मन्दमलयानिल और जूही की कली का रति-वर्णन है। ऐसी नायिकाओं का पर्यंक प्रायः कवि ने प्रकृति को ही माना है, जैसे शेफालिका का पल्लव।

स्वच्छन्दतावादी युग में प्रकृति का वर्णन भी बिलकुल स्वच्छन्द रूप में होने लगा। सबसे भावनाओं की स्वच्छंदता भी आ गई। 'जूही की कली' में तो स्वच्छन्द प्रेम बड़े ऊँचे सिरे से वर्तमान है।

निराला की वासनात्मक प्रकृति चित्रण की शैली 'शेफालिका' में जाग पड़ी है:—

> बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
> यौवन-उभार ने

निराला ने निम्नलिखित सबोधगीति लिखे हैं।—

यमुना के प्रति, वासती, बसत समीर, भिक्षुक, सन्ध्यासुन्दरी, बहू, जुही की कली, शेफालिका, तरंगो के प्रति, जलद के प्रति, क्या दूँ, स्मृति, प्रपात के प्रति, धारा, बादल, बादलराग, अनामिका में मित्र के प्रति, अष्टम एडवर्ड के प्रति, खण्डहर के प्रति, प्रेम के प्रति, ज्येष्ठ रेखा, खुला आसमान, ठूँठ, कविता के प्रति, बसत की परी के प्रति, अपराजिता, बसत, वे किसान की नई बहू, आँखें और नर्गिस।

'अणिमा' मे सन्त कवि रविदास जी के प्रति, श्रद्धाजलि, आदरणीय प्रसाद जी के प्रति, और भगवान बुद्ध के प्रति, इत्यादि। 'अणिमा' कुछ गीतो को छोड प्राय सभी सबोध गीत भरे पड़े हैं। जैसे, जमुना के प्रति जैसे सबोधगीति में निराला ने अतीत के गान का स्मरण किया है, जिसम श्रीकृष्ण और गोपियो के रासलीला की बातें कही गई हैं। इसमें तरंगो का मधुर सगीत और भ्रमरो की टोलियाँ उसे सहस्र वर्ष दूर ले जाती हैं। एकमात्र कल्पना की सहायता से वह पाठकों के समक्ष अतीत के अत्यन्त मधुमय वातावरण की सृष्टि करने लगता है। किन्तु प्राचीन उन समस्त चिह्नो को न देख कर पूछने लगता है —

बता कहाँ वह अब वशीवट
कहाँ गये नटनागर श्याम,
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दाधाम

दूसरे प्रकार की एक सबोधगीति है जिसम वे वस्तुएँ अपना परिचय स्वयं देती हैं। जैसे निराला की 'ध्वनि' शीर्षक कविता —

हरे हरे ये पात
डालियाँ कलियाँ कोमलगात
मैं ही अपना स्वप्न मृदुल कर
फेरूँगा निद्रित कलियों पर
जगा एक प्रत्यूष मनोहर।

(२) शोकगीति

शोकगीति का प्रचलन छायावादी काल में अगरेजी ढग पर हुआ। यह गीति हिन्दी साहित्य के किसी भी काल में इतना समृद्ध रूप लेकर नहीं आया था। शिप्ले के अनुसार यह इलेजाइक मीटर से लिखा जाता था। इसका एक मात्र ध्येय दुखपूर्ण भावों का गीतों में पिरोना। निराला की 'सरोज स्मृति' कविता इसका सुन्दर उदाहरण है। जिसके प्रति यह गीति लिखी जाती है वह प्राणी इस लोक में नहीं रहता। इसके उदाहरण के लिए हम टेनीसन की 'इन मेमोरियम' वाली कविता और मिल्टन की 'लाइसिडास' ले सकते हैं। निराला ने भी 'सरोज-स्मृति' में सरोज की मृत्यु पर ही ये शोकपूर्ण गीति लिखी थी। इसमें विस्तार के लिए सीमा में बाँधने की आवश्यकता नहीं होती। इसमें कवि दिवगत की जितनी स्मृतियाँ याद आती हैं उन्हें पक्तियों में सजाया जाता है। निराला ने 'सरोज स्मृति' में सरोज की करुण एव मधुर स्मृतियो को चित्रित किया है —

खाई भाई की मार, विकल,
रोई उत्पल-दल दृग-छल-छल !
चुमकारा फिर उसने निहार,
फिर गंगा-तट सैकत विहार ।

एक प्रकार से वह इन सारी करुण एवं मधुर स्मृतियों से उसका जीवन ही साकार कर देता है । इसमें विरह से उद्दीप्त भावाकुलता रहती है और भावनाओं का सुमधुर आवेग भी ।

(३) पत्र गीति

इसमें पत्र के रूप में कविता लिखी जाती है । इसका प्रथम प्रयोग बंगला साहित्य के महाकवि मधुसूदनदत्त ने अपनी 'वीरांगना' में किया था । उसी का अनुवाद होने के बाद मैथिली शरण गुप्त ने 'पत्रावली' भी इसी शैली मे लिखा । पत्र मे आभ्यान्तरिकता तो अवश्य होती है, किन्तु इसमे संगीतात्मकता नहीं रहती । इसलिए इसे गीतिकाव्य के अन्तर्गत नहीं रखना चाहिए, किन्तु हडसन महोदय ने इसे गीति के अन्तर्गत ही माना है । निराला ने भी इस तरह की दो पत्रगीति लिखी है । 'हिंदी सुमनो के प्रति पत्र' और महाराज शिवाजी का पत्र केवल ये ही दो हैं । ये दोनों मुक्त छन्द में है । इनमें गीतिमयता नही है । एक प्रकार का उत्साह-संवर्द्धन होता है । इससे लगता है कि 'पत्रगीति' सभी प्रकार के रसों में लिखा जा सकता है ।

महाराज शिवा जी को पत्र में कवि ने भारतीय राजपूतों के इतिहास के रत्नों की याद दिलायी है, साथ ही उनके गौरव का स्मरण करा कर उसे स्वधर्म की ओर तथा स्वदेश को मोगलों के हाथ में जाने से बचाने की कोशिश की है ।

इसलिए यह गीति विशेष प्रकार से वर्णनात्मक होती है । उपर्युक्त दोनों गीति लंबी है । हिंदी सुमनो के प्रति पत्र तो उतना लंबा नहीं है जितना 'शिवाजी का पत्र' लंबा है । प्रथम में अपने प्रति दया की और अहंवादी भावनाओं का मेल है और दूसरे में राष्ट्रीयता और उपयुक्त मार्ग पर चलने का संदेश ।

(४) नाटक काव्य

नाटक काव्य हिन्दी साहित्य में नया रूप नहीं है, यह अतीव प्राचीन है । रीतिकाल मे ऐसे काव्य बहुत लिखे गये । किन्तु आधुनिक युग में जिस प्रकार के नाटक काव्य लिखे जा रहे हैं, उनसे पुराने नाटक काव्य के सिद्धान्तों में भिन्नता है । केवल कथनोपकथन और स्वगत-भाषण के रूपमें कविता में नाटकीय चरित्र-चित्रण का प्रयास किया जाता है । इसमें नवीनता महत्वपूर्ण क्षणों के योग का ही है । 'पंचवटी प्रसंग' में उपर्युक्त सारी बातें घटती चलती हैं । कथानक और चरित्र-चित्रण की बड़ी सुन्दर सफलता इसमें लक्षित होती है । अंत में कवि महत्व के क्षणों की कल्पना कर सारे प्रभाव केन्द्रित कर देता है । जैसे उसने शूर्पणखा द्वारा राम को फटकार सुनवा कर महत्क्षणों की कल्पना कर लेता है:—

धिक है नराधम तुझे,
धधक कहीं का शठ
विमुख किया तूने इसे
आई जो यह तेरे पास
चाव से
अर्पण करने के लिए जीवन यौवन नवीन।

इसके पाँचवें भेद का मुख्य लक्ष्य किसी वर्ग विशेष की भावना का पथ-प्रदर्शक होना है। राष्ट्रीय कविताएँ अधिकांश इसी के अन्तर्गत आती हैं। इसमें विशेषत दो कविताएँ आ सकती हैं—प्रथम 'दिल्ली' और दूसरी 'जागो फिर एक बार'। इसमें कवि ने जन जागरण का सन्देश दिया है। हमारी आधुनिक अधोगति का मूल कारण क्या है, इस पर भी कवि ने पूर्ण दृष्टि रखी है। प्राचीन भारतीय वीरों को स्मरण करा कर उसने हमारे हृदय में देश के प्रति जाग्रति के भाव उत्पन्न किये हैं:—

योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है गीता है
स्मरण करो बार बार
जागो फिर एक बार।

इसमें अपनी संस्कृति और सभ्यता को अत्यन्त उन्नतिशील दिखाया गया है। यह इस गीति की विशेषता है। इस गीति का प्रसिद्ध लेखक सर वाल्टर स्कॉट था। इसकी भाषा भी इसी के अनुरूप कुछ उत्साह वर्द्धन करने वाली भावानुकूल ही होती चलती है।

(६) आख्यानक गीति

आख्यानक गीति हडसन के अनुसार एक पद्यबद्ध कहानी होती है। इसमें युद्ध, वीरता और पराक्रम के कृत्यों के दर्शन होते हैं और प्रेम, घृणा, करुणा इत्यादि जीवन के सरलतम अभिभाव इसे प्रेरणाशक्ति प्रदान करते हैं। इसमें अत्यन्त सरल और स्पष्ट शैली का निर्वाह होता है। इसमें वर्णन प्रवाह का स्वच्छन्द वेग होता है। इसके पढ़ने मात्र से शरीर में उत्साह और शक्ति का अनुभव होता है। वर्णन स्थल इसमें अत्यधिक नहीं होते। मनोवैज्ञानिक चित्रण का इसमें अभाव रहता है। एकमात्र कार्य ही इसका मूल होता है।

इन सारे सिद्धान्तों के अतिरिक्त 'राम की शक्ति पूजा' में कुछ खास विशेषताएँ हैं, जिसके कारण हम इसे कलात्मक आख्यानक गीति की श्रेणी में रख सकते हैं। क्योंकि इसमें स्थल-स्थल पर प्रकृति चित्रण का दृश्य उपस्थित कराया गया है। भाषा बड़ी ही समृद्ध है। इसमें अलंकार का पूर्ण निर्वाह भी हुआ है। वीरता, पराक्रम तथा शौर्य का पूर्ण रूप से दर्शन होते हैं। राम के मन की स्थिति दिखला कर कवि ने मनोवैज्ञानिक चित्रण भी किया है। इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रख कर इसे कलात्मक आख्यानक गीति कहना अत्यधिक श्रेयस्कर होगा। एक चित्र देखिये:—

है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न केवल जलती मशाल ।"

इसमें ध्वनि-सौंदर्य तथा भाषा का अत्यन्त उन्नत रूप लक्षित होता है।

हनुमान के वीरत्व से एक प्रकार के उत्साह की वृद्धि होती है। इसकी भाषा में इतनी गतिशीलता है कि चित्र का दर्शन कराने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। इसमें वर्णन की संक्षिप्तता तो नहीं, किन्तु व्यंजना की समास-शैली कहीं-कहीं बहुत ही सुन्दर है।

ऐसी कलात्मक आख्यानक गीति अभी तक किसी कवि द्वारा नहीं लिखी गई थी। इसमें कवि का पौरुष और उसका व्यक्तिगत गुणों का समुचित समावेश हुआ है।

(७) खण्डकाव्य

तुलसीदास सर्गबद्ध रचना नहीं है। इसलिए इसको खण्डकाव्य मानने में कुछ लोगों को आपत्ति हो सकती है किन्तु सर्गबद्ध न होते हुए भी इसमें नाटकीयता पर्याप्त मात्रा में है। दूसरे इसमें आख्यानक गीति का धारा प्रवाह भी नहीं मिलता, बल्कि इसके सभी छन्द पद्यांश है। इसलिए इसको आख्यानक गीति न कह कर खन्ड काव्य के अन्तर्गत लेना ही समीचीन होगा। कवि एक पद्यांश मे एक बात कहता है। साथ ही वह नाटकीयता का निर्वाह भी करता जाता है। कभी वह तुलसीदास को उनकी प्रिया से वियुक्त दिखलाता है और कभी वह उन्हें साले के विरुद्ध विविध मनोदशाओं का चित्रण करता है।

ऐसी हालत में सम्पूर्ण काव्य एक नाटकीय स्पर्श से पूर्णतः सुसज्जित हो जाता है :—

यह नहीं आज गृह, छायाउर
गीति से प्रिया की मुखर मधुर
गति नृत्य ताल शिंजित नूपुर चरुणारुण
व्यंजित नयनों का भाव सघन
भर रंजित जो करता क्षण क्षण,
कहता कोई मन से उन्मन, सुन रे सुन।

—

छायावाद और निराला

श्री धनञ्जय वर्मा

हिन्दी कविता का युगान्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रारम्भ और प्रचलन से माना जाता है। स्थूलत यह स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन तो उसी समय से प्रारंभ हो गया था जब भारतेन्दु ने नवीनता की ओर प्रवृत्ति दिखलाइ थी, लेकिन द्विवेदी युग के अन्त तक उसकी स्पष्ट धारा में क्रांति और विद्रोह का सयोग नहीं हो पाया था। प्रसाद, निराला और पत के प्रवेश के साथ ही वह अपने पूर्णरूप से अभिव्यक्त हो पाया। आचार्य वाजपेयी के मत में सन १३ से २० तक का समय इस स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रवृत्ति से अधिक छायावाद की विशिष्ट काव्य शैली के रूप में परिवर्तित और परिणित होने का समय कहा जा सकता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन अपने युग की समस्त विशेषताओं को समेट लेता है। यहा हम उस आन्दोलन पर विस्तार से विवेचन करना चाहेंगे, क्यों कि निराला का सम्बन्ध इस आन्दोलन से अधिकाधिक है।

वस्तुत साहित्यिक स्वच्छन्दतावाद अपने यथातथ्य रूप में न तो व्याख्या की वस्तु है न उसे उसके मूल परिवेश में विवेचित किया जा सकता है, न ही उसे समय की सीमाओं में बाँधा जा सकता है। व्यापकता यह उन एकाधिक प्रवृत्तियों के समीकरण का शाब्दिक अनुबन्ध है जो १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १९ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप अवतरित हुइ थीं। वे समय, स्थान, लेखक के अनुसार बदलती गई हैं और उनका आदि उद्देश्य प्राचीन परम्पराओं से हटकर विद्रोह में नये द्वार खोलता था। यूरोप का अठारवां शताब्दी का साहित्य अपनी शास्त्रीय परम्पराओं के लिए प्रसिद्ध था। इसका प्रारभ पुरातन ग्रीस के साहित्य अध्येताओ द्वारा हुआ था। जब यह पद्धति और परम्परा रूढ़ हो गई तो उसके विरुद्ध क्राति का नाम रोमाटिक आदोलन दिया गया। हिन्दी काव्य में यह आदोलन उसी रूप में नहीं आया जिस रूप म पाश्चात्य काव्य जगत में आया था। हिन्दी कविता के पीछे शास्त्रीय परम्परा का ह्रास (सस्कृत समीक्षा का ह्रास काल) तो सत्रहवी शती के उत्तरार्द्ध से ही प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि उसके बाद उसी परम्परा म नयी प्रवृत्ति के लक्षण नहीं मिलते। (रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय विवेचन अधिकाशत सस्कृत परम्परा की अनुवर्तिता में ही है।) हिन्दी में यह विद्रोह है, और प्रतिक्रिया द्विवेदीयुगीन स्थूल आदर्श और इतिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध है और भारतीय समाज की सामन्तवादी और साम्राज्यवादी दोनों प्रवृत्तियो के भी। आचार्य शुक्ल ने इस प्रवृत्ति को अति व्याप्ति दी है। वे इसका प्रयोग हिन्दी की समस्त उस कविता के लिए करते हैं जिसमें कवि की भावना स्वच्छन्द रूप से विषय, दृश्य या व्यक्ति का वर्णन करती है। उनकी दृष्टि में स्वच्छन्द प्रकृति वर्णन करने वाली प्रत्येक कविता स्वच्छन्दतावादी ठहरती है और श्रीधर पाठक से लेकर रामनरेश त्रिपाठी एव रूपनारायण पान्डेय तक की कविताओं को उन्होंने स्वच्छन्दतावादी कहा है, लेकिन स्वच्छन्दतावाद के मूल में प्रकृति वर्णन

ही नहीं है, व्यक्तिगत संवेदन, व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की लालसा और नियम-बद्ध जीवन के विरुद्ध उद्दाम मुक्त अभिलाषा भी कार्य करती है। सामाजिक परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह का भाव भी स्वच्छन्दतावाद की गतिविधियों का एक प्रक्षेप है। वस्तुतः हिन्दी का स्वच्छन्दतावाद द्विवेदी युग की स्थूल चेतना के विरुद्ध सूक्ष्म चेतना का विद्रोह था। यह विद्रोह शरीर के प्रति आत्मा का, पदार्थ के प्रति चेतना का, बाह्य के प्रति अंतर का और संक्षेप में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था।[1] वह इस देश की प्रकृति के अधिक अनुकूल है और उसमें हमारी जलवायु का असर है।[2]

स्वच्छन्दतावाद की विशेषताओं का ही नाम छायावाद और रहस्यवाद है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने तो यथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रतीकवाद और प्रयोगवाद तकको छायावाद का विकसित रूप मान लिया है।[3] इससे अतिव्याप्ति दोष की सम्भावना है। छायावाद का विकास यदि इन्हें मान भी लिया जाय तो अपनी विकसित अवस्था मे वे मूल से इतने भिन्न पड़ जाते हैं कि दोनों का प्रस्थान भेद अत्यधिक हो जाता है। ऐसी ही कुछ भ्रांति छायावाद को 'असन्तोष, अतृप्ति और काम-केन्द्रित कुंठाओं का परिणाम' मान लेने से होती है।[4] वस्तुतः यह भ्रांति वहीं प्रारम्भ हो जाती है जब 'इसे पूँजीवादी व्यक्तिवाद से सम्बद्ध कर दिया जाता है।[5] यह सही है कि तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र मे औद्योगिक क्रांति के उत्तराधिकारी पूँजीवाद के अनेक प्रक्षेप-जैसे साम्राज्यवाद आदि-प्रबल रूप में थे और पूँजीवादी व्यक्तिवाद अपनी चरम सीमा पर भी था। लेकिन इस पूँजीवादी व्यक्तिवाद की अनिष्टकारी शक्ति का विवेकानन्द के आध्यात्म और वेदाती अद्वैतवाद ने ही चुनौती दे दी थी और जिस व्यक्तिवाद तथा अहं की अभिव्यक्ति छायावाद में मिलती है वह आध्यात्मिक ओज की है। वह व्यक्तिवादी अहं फायडीय न होकर वेदान्ती और अद्वैतवादी है। सर्वात्मवाद का व्यक्तिवाद वह है। छायावाद का व्यक्ति और अहं समस्त सृष्टि, प्रकृति तथा चराचर मे अपने आत्मा का ही प्रक्षेप देखता है। स्वभावतः ही वह संकीर्ण नही है। यह आंदोलन पूर्णतः भारतीय है। अरविन्द, गाधी और रवीन्द्र के मानवतावाद मे उसे अपना समर्थन प्राप्त हुआ है। यह भी माना ही जाता है कि वह व्यक्तिवाद अपनी शक्ति मे अधिक प्रबल भी है क्योंकि पूँजीवाद को तो केवल सामन्तवाद से ही टक्कर लेनी पड़ी जब कि इस व्यक्तिगत को साम्राज्यवाद से भी।[6] स्वभावतः ही उसमें अधिक शक्ति की कल्पना भी की जा सकती है। सामाजिक विश्लेषण के पार्श्व मे काव्य अध्ययन की दृष्टि से उसे असफल सत्याग्रह और महायुद्ध के प्रभाव के रूप में देखा जाता। १९१४-१८ के महायुद्ध के कुछ परिणाम तो श्रेयस्कर हुए हैं और उनका स्वीकरण छायावाद मे भी है जैसे, व्यक्ति स्वातन्त्र्य के आदर्श का उदय, लेकिन सत्याग्रह की असफलता से किसी दूरगामी अनिष्ट प्रभाव की आशंका न तो तत्कालीन राजनीकि क्षेत्र मे

(१) डा० नगेन्द्र
(२) आधुनिक साहित्य—आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी पृष्ट—३४४
(३) छायावाद युग—डा० शम्भूनाथ सिंह
(४) डा० नगेन्द्र की मान्यता
(५) छायावाद युग—डा० शंभूनाथ सिंह
(६) अवन्तिका—जनवरी १९५४ पृ० २०१
(डा० शंभूनाथ सिंह का निबन्ध)

आई थी न ही, काव्य में। उसका उत्साह तो विवेकानन्द की आत्मा विश्वास और गांधी का अनेकान्तवादी दृष्टिकोण बढ़ा रहा था। इसलिए उसे, आत्मबोध और अध्यात्म की स्वप्निलता या पलायन नहीं कह सकते। एक निश्चित तथ्य तो यह है कि छायावाद की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक जागरण के आध्यात्मिक आन्दोलन थे। जिसे स्वप्निलता कहा जाता है वह दृष्टि चेतना का विकास ही है। वह उपभोग न रहकर दूरागत भविष्य की कल्पना है और निराला का संघर्ष जीवन, प्रसाद में अविचल योद्धा का व्यक्तित्व और काव्य इसके पलायनवादी आरोप को मिटाने के लिए यथेष्ट है। जिसे हम 'आध्यात्मिक छाया का भान' या उदात्तीकरण कहते हैं, उस अरविन्द के ऊर्ध्वविकास से भी समझा जा सकता है। अद्वैतवादी विचारधारा और सर्वात्मवादी दर्शन ने छायावाद के कवि को प्रकृति पर चेतन के आरोप की ओर उन्मुख किया। सर्वात्मवादी प्रकृति के कण-कण में आत्मा का रूप देखता है और कवि उसका मानवीकरण कर लेता है। अद्वैतवादी के अनुसार वह स्वयं में और परमात्मा के प्रक्षेप प्रकृति में कोई अन्तर नहीं देखता, इसलिए छायावाद की सौन्दर्य भावना वस्तु से अधिक द्रष्टा में है।

यह आध्यात्मिकता एक दृष्टिकोण है। उसमें साधना का योग नहीं है। नई छायावादी काव्यधारा का एक आध्यात्मिक पक्ष है, परन्तु उसकी प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है भारतीय परम्परागत आध्यात्मिक दर्शन की नव प्रतिष्ठा का वर्तमान अनिश्चित परिस्थितियों में यह एक सक्रिय प्रयत्न है।[1] इसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण कतिपय समीक्षक उसे दार्शी और पलायनवादी मान बैठे हैं। वह भौतिकवादी और जीवन की वैज्ञानिक दासता की आलोचना भी है और आदर्शवाद तथा भौतिकवाद के संघर्ष में आदर्शवाद की विजय भी वह कही जा सकती है।[2] अन्यथा उसमें और जीवन के बीच कोई खाई नहीं है। जीवन की परिस्थितियाँ और उसकी भावात्मक अनुभूतियाँ तथा पार्थिव अनुभवों में कोई असमानता नहीं है। उसमें मानव के व्यापक अनुभूतियाँ, चराचर के सौन्दर्य का आत्मा के सौन्दर्य से एकाकार करने का प्रयत्न है और इस प्रकार उसकी भावनाओं में अव्याहत गति है। वह प्रकृति की चेतना सत्ता अनुप्राणित होकर पुरुष या आत्मा के अधिष्ठान में परिणत होता है। उसकी गति प्रकृति से पुरुष की ओर, दृश्य से भाव की ओर होती है और इस दार्शनिक अनुभूति के अनुरूप काव्य-वस्तु का चयन करते हैं। छायावादी कवियों ने प्रकृति अपार क्षेत्र में यथेष्ट सामग्री ग्रहण की है।[3] छायावादी कविता वास्तविक अर्थों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक कविता है। उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति[4] भी कहा जा सकता है। छायावाद का यह युग सन् २० के आसपास आया और सन् ४० तक चलता है। छायावाद युग की एक विशेष धारा रहस्यवाद के नाम से अभिहित होती है। दार्शनिक दृष्टि से छायावाद रहस्यवादी कवि भूमि का प्रारम्भिक सोपान है। छायावादी भावभूमि में कवि प्रकृति के सौन्दर्य में एक आध्यात्मिक सत्ता का आभास पाता है। उसे दिव्य सौन्दर्य

(१) आचार्य नन्दुलारे वाजपेयी — आधुनिक साहित्य पृ० ११६

(२) डा० नगेन्द्र

(३) आचार्य वाजपेयी — आधुनिक साहित्य पृ० ३२३

(४) नामवर सिंह — छायावाद पृ० १४

की झाकी मिलती है और वह उसे कल्पना की शक्ति से अभिव्यञ्जित करता है। इसके विपरीत जैसे-जैसे कवि पूरे दर्शन को दृष्टिगत करता है और उस दर्शन सत्य को अधिक प्रगाढ़ करता है, उस सत्ता का प्रतीकात्मक काव्याभिव्यजना करता है, वैसे-वैसे वह क्रमशः छायावाद की भूमि छोड़कर रहस्यवाद मे प्रवेश पाता जाता है। इस दार्शनिक भूमि पर अज्ञात सत्ता को केन्द्र बनाकर उसके प्रतीकात्मक भाव-निवेदन की प्रणाली रहस्यवादी सीमा में प्रवेश पाती है। रहस्यवाद मे एक भावात्मक साधना का रूप भी मिलता है और भाव-साधक कवि अज्ञात परमसत्ता के प्रति अपने अनुभावो का ज्ञापन करता है। लेकिन छायावाद में ऐसी किसी साधना का समावेश नही होता। रहस्यवाद तो एक दिव्य अनुभूति है और एक प्रकार का आध्यात्मिक वातावरण है।[१] आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के दो रूप माने हैं- एक साम्प्रदायिक, दूसरा भावात्मक। अज्ञात के प्रति लालसा या जिज्ञासा भावात्मक रहस्यवाद की सीमा है और इस भूमि से उठकर रहस्यात्मक रूपों द्वारा इस अज्ञात की प्राप्ति की विभन्नि साधना-प्रणालियों का कविता मे विज्ञापन साम्प्रदायिक रहस्यवाद 'कहलाता है। यह अंतर भावात्मक और इतिवृतात्मक कविता के अंतर को स्पष्ट करने के लिये तो यथेष्ट है, किन्तु रहस्यवाद की जो सहज प्रक्रिया है वही वास्तविक रहस्यवाद नहीं कहा जा सकता। साधना रूप में जब निराकार या साकार का वर्णन होता है और जब वह साधना का विषय बन जाता है तब वह वास्तविक रहस्यवाद से उठकर साधना प्रक्रिया-विशेष हो जाता है। आचार्य शुक्ल का मत है कि रहस्यवादी काव्य परम्परा भारतीय नही है, वह विदेशी है। यह भी कहा जाता है कि उसका उद्गम समेटिक धर्म-भावना है। ईसाइयों ने धर्म के क्षेत्र मे यह रहस्यवादी परम्परा चलाई और सूफियो ने इसका प्रचार और प्रसार फारस मे किया, लेकिन आचार्य शुक्ल का मत है कि यह सब धार्मिक क्षेत्र का है और काव्य की सीमा के लिए अग्राह्य है। क्यो कि यह सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध हे। यहाँ तक कि कबीर मे जो रहस्यवाद है वह भी उन्हें शिष्ट काव्य परम्परा के प्रतिकूल जान पडता है।[२] इसके विपरीत छायावाद युग के कृति विद्वान श्री जयशकर प्रसाद रहस्यवाद को विशुद्ध भारतीय परम्परा का मानते हैं। साहित्य मे विश्वसुन्दरी प्रकृति मे चेतनता का आरोप सस्कृति वाङ्मय मे प्रचुरता से उपलब्ध होता है।

यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य लहरी के 'शरीर त्वं-शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी मे इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमे अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति हैं, इसमे सदेह नहीं।[३] वैदिक परम्पराओ मे यह भावना मिलती है, छान्दोग्य उपनिषद मे और मुण्डकोपनिषद में इसके काव्यात्मक वर्णन है। प्राचीन काल मे रहस्यवादी काव्य अधिकार, प्रेम और ज्ञान की भूमिकाओं पर रचा गया था। ज्ञानात्मक, प्रेममार्गी और सौन्दर्याश्रित रहस्यवाद के तीन आयाम हो

(१) स्पर्जियन

(२) काव्य मे रहस्यवाद--चिन्तामणि भाग २-पृ० ५०-१६२

(३) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध --जयशंकर प्रसाद पृ० ६८-६६

सकते हैं जिसमें अंतिम छायावाद के अधिक निकट पड़ता है। महादेवी का रहस्यवाद प्रेममार्गी है, उसमें प्रेमी प्रेमिका के विभिन्न सम्बन्धों का प्रकाशन है। एवं विरह भावना से भी उनका काव्य सम्पन्न है। लेकिन यह अद्वैतवादी विचारधारा पर आश्रित है जब कि प्रसाद में वह अद्वैतवादी चेतना से सम्बन्धित है। उनके नारी वर्णन सौन्दर्य भाव में रहस्यशक्ति का आभास मिलता है। उनकी दृष्टि में सौन्दर्य चरमसत्ता है और उसकी ही अनुभूति उन्हें होती है जो उनके आनन्दवाद से भी समर्थन प्राप्त करती है। निराला के काव्य में रहस्यवाद का आलेख माना जाता है। उनका रहस्यवाद ज्ञानात्मक कोटि का माना जायगा। यह पूर्णत बौद्धिक है और अपने परिवेश में वह उनकी दार्शनिक अद्वैतवादी चेतना का ही परिणाम हो सकता है। अपनी विकसित अवस्था में काव्य की ये धारायें ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्य मय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति करती है।[1] ये अनुभूतियाँ प्रगति तत्व की प्रमुखता लिए हुये हैं और उसकी प्रधानता के कारण कवि की वैयक्तिक भावना और अनुभूति कल्पना के द्वारा श्रेष्ठ काव्य का सृजन करती है। जिसे हम स्वच्छन्दतावादी काव्य कहते हैं।

उसने द्विवेदी युगीन स्थूल आचार और नियमबद्धता के प्रति विद्रोह किया था, नयी भाव भूमियों की शोध की थी और नये प्रतिमान आविष्कृत किए थे। शैली और छन्दों के क्षेत्र में भी इसने क्रान्ति की थी और इस काव्य से अपेक्षाकृत अधिक सम्बद्ध, पुरोधा निराला में मुक्त छन्द के द्वारा कविता की परिवेश और आत्मा से स्वतन्त्रता और मुक्ति का आख्यान किया था, जिसका मूल्यांकन हमारे तृतीय परिवर्तन का विवेच्य है।

छायावाद के उत्तरकाल में ही उसके अन्तिम वर्षों में मार्क्स के विचारों का आगमन हो चुका था। अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील संघ भी स्थापित हो चुका था और छायावादी कल्पना-प्रधान के विरुद्ध प्रगतिशीलता का आन्दोलन भारत में आरम्भ हो चुका था। सन् ३६ में यहाँ प्रगतिशील साहित्य संघ की स्थापना हुई और साहित्य में लघुता की ओर दृष्टिपात प्रारम्भ हुआ। लेकिन इसके पहले साहित्य में प्रगति की विशेष अवस्थायें प्रत्येक साहित्य में प्रत्येक युग के साथ आती हैं और छायावाद युग में ही निराला ने इस सामाजिक यथार्थ के दृष्टिकोण को अपनाया था और इस रूप में इस आन्दोलन के पुरस्कर्ता भी वही माने जाने चाहिये। साहित्य के प्रगतिवादी दृष्टिकोण को मार्क्स की प्रतिपत्तियों के अनुरूप वर्ग-वैषम्य और वर्ग संघर्ष से सम्बद्ध भी किया। वे ही कविताएँ प्रगतिवादी कही गई जो साम्यवाद की विचारधारा के अनुकूल अभिव्यक्तियाँ देती थीं। साहित्य एक सामूहिक चेतना मानी गयी है और उसके मूल्य में जनहित समाहित हुये। मार्क्स और डार्विन के विकास वाद पर आश्रित विचार-प्रणाली जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखती हैं। यह व्यक्ति का सामाजीकरण चाहती और कलाकार को समाज हित से बाँध देती है आर्थिक प्रतिपत्तियों पर जीवन की व्याख्या और उसका दर्शन सीमित होता है। फलतः साहित्य एक विशिष्ट राजनीतिक धारा का अस्त्र मान लिया गया। प्रगतिवादी समीक्षक तो साहित्य की आर्थिक व्याख्या भी करते हैं और साहित्य का उत्पादन व्यवस्था से सम्बन्ध स्थापित करते

(१) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशंकर प्रसाद पृ० १२०

हैं लेकिन काव्य का यह वादी और वर्गीय दृष्किोण निराला के प्रगति शील काव्य का अंग नहीं है। वह प्रगतिशीलता काव्य-भूमि की है। उसे किसी इतर लक्ष्य का अस्त्र नहीं कहा जा सकता। साहित्य के तत्कालीन प्रगतिवादी आन्दोलन ने जिस साहित्य को समाजवादी विचारधारा का अस्त्र बनाया था और उसकी चेतना को सामूहिक मान लिया था, वैसा एकागी दृष्टिकोण निराला के काव्य में नहीं। वह साम्यवादी और समाजवादी के स्थान पर मानववादी भूमि पर ही प्रगतिवादी है।

साहित्य की चेतना सदैव व्यक्तिगत हो सकती है और उसके मूल्य सामयिकता से परिसीमित नही किए जा सकते। प्रगतिवादी आन्दोलन का जो देय है वह यही कि लोक-व्यवहार की अधिक समीपीय भाषा और काव्य की आशंसा लेकर वह चला गया था। भाषा मे पूर्वोतर असाधारणता के बदले साधारणता और लौकिकता काव्य मे आई थी। उसकी दृष्टि उपेक्षित और शोषित के प्रति गई और लघुता को प्रश्रय मिला। एक नवीन सामाजिक यथार्थ की चेतना का प्रवेश हुआ जिसने व्यंगात्मक शैली का परिष्कार किया। प्रगतिवादी आन्दोलन का यह विशुद्ध काव्यात्मक रूप निराला के 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते', बेला आदि मे मिलता है। प्रगतिवाद के साथ कुछ कालान्तर से हिन्दी काव्य में एकाधिक नई प्रवृत्तियो का आगमन भी हुआ जिनकी गति अभी सुनिश्चित नहीं है, वे केवल प्रयोग तक ही सीमित हैं और कितनी दूरगामी यह होगी यह नही कहा जा सकता। इन प्रवृत्तियो की पृष्ठभूमि में जीवन को विश्रृखल, अव्यवस्थित और मूल्य-अराजकता की दृष्टि से देखा जाता है। प्रयोगवाद की एकागी अन्तर्मुखता को छायावाद के आरोपित अन्तर्मुखी दृष्टिकोण से भी कई अंशो में आगे बढी हुई है। कविताएँ मनोवैज्ञानिक प्रतिपत्तियाँ तक भी कभी-कभी सीमित हो जाती हैं। कविता भावानुभूति या आत्मानुभूति के स्थान पर विशुद्ध बौद्धिकता से अधिक सम्बन्धित है और भाषा मे प्रगतिवादी साधारणता और व्यवहारिकता का भी लोप होकर एकाविकवैयक्तिता बढ गई है प्रकृतिवाद का जो आन्दोलन फ्रास मे उठा था उसका प्रभाव ग्रहण कर विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण तक ही सीमित होकर हिन्दी कविता मे जो एक और आन्दोलन आया वह मनुष्य की स्वाभाविक क्रिया और मूल प्रवृतियो को ही महत्व देता है। इसी कारण चित्रकला की प्रतिपत्तियो से प्रेरित होकर अतियथार्थवादी कविताएँ स्वच्छन्द भाव-संयोग और अतिशयता का आग्रह करती है। वे तथ्य की अपेक्षा भाव को अधिक महत्व देती है, वे भाव भी अधिकतर मूर्छावस्था और अवास्तविकता के आधार होते हैं। उन धाराओं मे अभी अभ्यास और प्रयोग ही चल रहें हैं। अतः निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। कुछ समीक्षको की दृष्टि मे प्रयोगवादी धारा का प्रारम्भ निराला के 'कुकुरमुत्ता' और नये पत्ते से माना जाता है।[१] और उनके परवर्ती काव्य मे अतियथार्थवादी कला का भी आग्रह किया जाता है।[२] इसका विचार काव्य-परिशीलन मे प्रसंगानुकूल किया गया है।

सॉस्कृतिक जागरण और साहित्यिक पृष्ठभूमि के इस रेखाचित्र मे निराला का संबन्ध उस अवस्था से है जो सस्कृति मे रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द एवं साहित्य में

(१) डा० प्रेमनारायण शुक्ल—हिन्दी साहित्य विविधवाद पृ० ३४७

(२) प्रभाकर माचवे— साहित्य (त्रैमासिक) जनवरी १९५१

स्वच्छन्दवादी काव्य प्रवृत्ति से स्पष्ट है। स्वच्छन्दतावादी काव्य सांस्कृतिक जागरण की स्फूर्ति चेतना को अभिव्यक्त करता है और काव्य जगत में नये नये आन्दोलन का पुरस्कर्ता है। निराला के प्रवेश तक छायावादी विद्रोह का सूत्रपात प्रच्छन्न हो चुका था तथा प्रसाद और पंत के आरम्भिक प्रयास भी हो चुके थे। सन् १९११,१२ में ही रवीन्द्र की ख्याति हिन्दी साहित्य को प्रभावित कर चुकी थी और जयशंकर प्रसाद ने नव अभियान की निश्चित स्थापना के पूर्व ही चित्राधार, कानन कुसुम आदि में ऐसी एकाधिक कवितायें दी थीं जो अनिवार्यतः नये युग का सन्देश देती हैं। चित्राधार में ही प्रकृति प्रेम की उनकी कविताएँ दार्शनिक अभिरुचि को ज्ञापित करती हैं। प्रसाद की प्रारम्भिक कविताओं में भी छायावाद का बीज देखा जा सकता है, लेकिन नये युग का वास्तविक अभ्युदय सन् १९२० से माना जाता है।[1] यद्यपि 'जुही की कली' सन् १६ में ही रची गयी थी। यह पंत के 'उच्छ्वास' का प्रकाशन तिथि है। 'उच्छ्वास' के पहिले भी समन्वय, मतवाला और जागरण में निराला की रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। बौद्धिकता या दार्शनिकता प्रधान उनकी 'तुम और मैं' तथा अधिवास सन् १६ में 'मतवाला' में ही निकली चुकी थी और 'जुही की कली' की सरस्वती से सन् १६ में ही वापिस हुई थी। प्रकाशन और प्रचार की बात सुविधा और अवसर पर निर्भर करती है। स्पष्टतः हमारा विनम्र मत है कि स्वच्छन्दतावाद के पुरस्कर्ता निराला ही हैं क्योंकि मुक्त छन्द ही नहीं मुक्त आत्मा का काव्याख्यान निराला ने सर्वप्रथम किया। यदि इस विवाद को छोड़ भी दिया जाय कि छायावाद का आरम्भकर्ता कौन था? तो प्रसाद, निराला, पंत की यह बृहत्त्रयी सम्मिलित रूप से हिन्दी कविता के युगान्तर के लिये ऐतिहासिक महत्व की है। इस बृहत्त्रयी में निराला का महत्व मुक्तछन्द और विशुद्ध दार्शनिक भावनाओं तथा कलाकार की तटस्था के आख्यान में है। जितनी विविध और एकाधिक भाव भूमि की कविताएं छायावाद काल में ही निराला ने दीं, उतनी अपवादतः किसी ने नहीं। प्रश्न केवल छायावाद की स्थापना और आरम्भ का ही नहीं, वरन उसके पूर्ण परिष्कार और विकास का भी है, जिसमें निराला ने अपना अप्रतिम योग दिया है। छायावाद काल में ही निराला ने प्रगतिवादी कविताओं का द्वार खोल दिया था और 'भिक्षुक' तथा 'विधवा' में इनका प्रारम्भिक रूप मिल जाता है। स्वभावतः निराला हिन्दी काव्य की एकाधिक प्रवृत्तियों का नेतृत्व करते हैं। आरम्भकर्त्ता और प्रतिष्ठाता से आगे बढ़कर उनका महत्व परिष्कर्ता और समृद्ध विकास देने वाले पुरोधा के रूप में भी है। सांस्कृतिक जागरण की चेतना का जितना काव्याभिव्यंजन निराला ने किया है उतना सम्भवतः प्रसाद के अपवाद सहित किसी में नहीं है। स्वच्छन्द काव्य के अग्रदूत के साथ ही वे सांस्कृतिक कलाकार के उत्तरदायित्व का भी समुचित निर्वाहन करते हैं और हिन्दी काव्य के ऐतिहासिक व्यक्तित्व प्राप्त काव्यान्दोलन में उनका महत्व ऐतिहासिक है।

---

(१) अवन्तिका, जनवरी १९५४—छायावाद का प्रारंभ कब हुआ?

निरालाजी का रहस्यवाद

डा० अरविन्द कुमार देसाई

रहस्यवाद की कोई एक निश्चित परिभाषा दे सकना संभव नही है। पाश्चात्य और भारतीय विद्वानो ने इसकी जो विविध परिभाषाएं दी है उनके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि निर्गुण-निराकार-परमतत्व के साथ आत्मा के मिलन को रहस्यवाद कहते है। आधुनिक भारतीय साहित्य में पाया जाने वाला रहस्यवाद शब्द अंग्रेजी के 'मिस्टिसिज्म' का भाषान्तर है, जो कि अंग्रेजी के 'मिस्ट' शब्द से बना है। 'मिस्ट' शब्द का अर्थ अंग्रेजी मे अस्पष्ट, धुंधला या कुहासे से आछन्न होता है इसी के आधार पर साहित्य में और सामान्य व्यवहार मे भी जो कुछ अस्पष्ट होता है उसे हम रहस्यमय कह देते है। यह 'रहस्य' शब्द भले ही आधुनिक या वर्तमान युग का हो, किन्तु यह भाव तो मानव के जन्म के समय से ही विद्यमान है। विश्व के प्रथम मानव ने जब अपनी आँख खोली होगी तो विचित्र और रंग-विरंगी सृष्टि को देख कर उसके हृदय मे अवश्य ही आश्चर्य का भाव पैदा हुआ होगा। विश्व-साहित्य के प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद के नासदीयसूक्त के ऋषि ने भी इस अद्भुत सृष्टि को रहस्यमयी कह कर इसके रचयिता को जानने की अभिलाषा प्रकट की है। इसके अनन्तर तो भारतीय विचारकों ने इस रहस्यमय अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए एक विशेष प्रकार के साहित्य की रचना ही कर डाली, जिसे हम उपनिषद् साहित्य के नाम से पहचानते है। इसमें तर्क, बुद्धि और सहज अनुभूति के द्वारा विश्व के गुप्त रहस्यो को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। आज का वैज्ञानिक युग प्रत्येक बात को केवल तर्क और बुद्धि की कसौटी पर कसने का आदी हो गया है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियो ने भी इसी प्रकार बौद्धिक तर्कों का सहारा लेकर सृष्टि के गुप्त रहस्यों के भेद को समझ लेने का प्रयत्न कर लिया था। परन्तु अनेक रहस्य ऐसे भी थे जहाँ मानव बुद्धि कुंठित हो जाती थी। ऐसे ही किसी अवसर पर उन्होंने कहा था—

> कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा,
>
> भूतानि योनिः पुरुष इतिचिन्त्या।
>
> संयोग एषां न त्वात्मभावा---
>
> दात्माप्यनीशः सुख दुःख हेतोः ॥

अर्थात् इस जगत् का कारण ढूंढते हुये काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत और पुरुष का विचार करना चाहिये। आत्मा के अधीन होने के कारण तथा सुख-दुख के हेतु के वश मे होने के कारण आत्मा भी इस जगत् का कारण नहीं हो सकता। इस प्रकार मानव बुद्धि की मर्यादा की परिसीमा तक पहुँच कर और उसका कोई परिणाम न पाकर ही इन विचारों ने ध्यान और सहज अनुभूति का आश्रय लिया था। इसी को उन्होंने 'अपराविद्या' नाम से अभिहित किया था। जिस प्रकार आज सहज बुद्धि से अप्राप्य तथ्यों के लिये हम 'रहस्य' शब्द का प्रयोग करते हैं, वही यह अपराविद्या या ब्रह्मविद्या है।

भारतीय साहित्य और संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से अध्यात्म की एक धारा निरन्तर प्रवाहित होती हुई देखी जा सकती है। प्रारम्भिक वैदिक साहित्य तो अध्यात्म का भंडार ही है और उसी के प्रभाव से रचा गया संस्कृत, प्राकृत और पालि का साहित्य भी इससे बच नहीं पाया है। जगद्गुरु शंकराचार्य ने आत्मा, परमात्मा और प्रकृति के बीच तादात्म्य सम्बन्ध की स्थापना करके समस्त मध्यकालीन साहित्य में रहस्यात्मक अध्यात्मवाद का समावेश कर दिया है। निर्गुण निराकार में किसी प्रकार के गुणों की कल्पना करना ही रहस्यमूलक है। इसी को शुक्ल आलोचकों ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है कि तर्क और ज्ञान के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है वही भाव और अनुभूति के क्षेत्र में रहस्यवाद बन जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे मध्यकालीन भक्तों और सन्तों को किसी असीम शक्ति, सौन्दर्य तथा चेतना का परिचय है, उस तक पहुँचने की उनमें आकुलता है और उससे एकाकार होने की तड़प है। इसीलिए उनके साहित्य में रहस्य की जो सहजानुभूति है वह पाठक को प्रभावित कर देने में समर्थ है। साथ ही यह मध्यकालीन वातावरण श्रद्धा और विश्वास से परिपूर्ण था। जनता अलौकिक चमत्कारों और सिद्धियों में विश्वास करती थी और भक्तों के रहस्यमय अनुभवों को आदर से सुनती थी, इससे भक्तों को भी प्रोत्साहन मिलता था। कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास और मीराबाई आदि अनेक रहस्यवादी कवियों ने अपनी अमूल्य रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

वर्तमान युग में भी हमारे देश में अनेक भक्त और सन्त हुए हैं जिनके विचारों के प्रभावस्वरूप आधुनिक साहित्य में भी रहस्यवाद का प्रयोग स्वाभाविक है। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक युग के कारण हमारे आलोचक मध्यकालीन और वर्तमान रहस्यवाद में विविध प्रकार से भिन्नता देखते हैं। उनके मतानुसार मध्यकालीन सन्तों के रहस्यवाद में साधना का बल था अतः वह अनुभूति प्रधान रहस्यवाद था, जब कि आधुनिक कवियों के रहस्यवाद में कल्पना प्रधान साहित्यिक रहस्यवाद था, जब कि आधुनिक कवियों का रहस्यवाद साहित्यिक रहस्यवाद है। आधुनिक रहस्यवाद में लाक्षणिकता और उपचार में वक्रता की बहुलता, प्रकृति का विशेष महत्त्व तथा व्यक्तिगत चेतना की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति विशेष परिमाण में पाई जाती है। इस रहस्यवाद पर प्राचीन भारतीय विचारधारा और पाश्चात्य विचारधारा का समान प्रभाव देखा जाता है। इसके कारण मध्यकालीन और प्राचीन रहस्यवादों से इसमें भिन्नता स्वाभाविक है, पर यह कह देना उचित नहीं प्रतीत होता कि यह केवल कोरा काल्पनिक रहस्यवाद है। यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि इन आधुनिक रहस्यवादियों ने भी सांसारिक पदार्थों में कुछ क्षण के लिए भी अतिप्राकृत तत्व का दर्शन अवश्य किया होगा, अन्यथा इतने सुन्दर काव्यों की रचना सम्भव न थी?

आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रमुख रूप से प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी इन चार प्रधान छायावादी कवियों की रहस्यवादियों में गणना की जाती है। इनमें भी प्रसाद और पन्त तो शुद्ध छायावादी कवि हैं और निराला एवं महादेवी ही सच्चे अर्थों में रहस्यवादी हैं। निराला जी का सम्पूर्ण जीवन विभिन्न प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच व्यतीत हुआ है। अपने को विविध प्रकार के कष्टों में डालकर भी सत्य एवं कविकर्म से मुँह न मोड़ने की उनकी दृढ़ता सर्वविदित है। इन परिस्थितियों में यदि वे रहस्यवाद की ओर उन्मुख न हुए होते

तभी हमें आश्चर्य होता। उन्होंने बचपन में मातृ सुख का अनुभव नहीं किया। कुछ बड़े होने पर पिता की छाया भी चली गई। केवल पाँच वर्ष के गृहस्थ जीवन के अनन्तर ही पत्नी भी उन्हें सदा के लिये छोड़कर चली गई। उसी के साथ बड़े भाई, चाचा, चाची और एक भतीजी को अपने सामने ही मृत्यु के मुख मे जाते हुए उन्होंने देखा। बहुत थोड़े ही समय में घर के सभी बड़े सदस्य परलोक सिधार गये। उस समय निराला जी के सिर पर चार भतीजो तथा दो अपने बच्चों का भार आ पड़ा था। उन्हें चारो ओर अँधेरा ही नजर आ रहा था और यही उनके काव्य का प्रारम्भिक काल था। हमारे आचार्यो ने दुःख, करूणा तथा वियोग को ही काव्य के उद्भवका हेतु कहा है, वह निराला जी के संम्बध मे सर्वथा उचित है। निराला जी का बाल्यकाल अपने जन्मस्थान से दूर बंगाल में बीता है। वह युग बंगाल में रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द का युग था। तत्कालीन बंगाली युवक उनके विचारों का अभ्यास करने मे और उन्हें ग्रहण करने में अभिमान ले रहा था। निराला जी पर भी इन दोनो महापुरूषो के विचारो का प्रभाव प्रभूतमात्रा मे पडा है। सन् २१-२२ में रामकृष्ण मिशन के 'समन्वय' पत्र के सपादक के रूप में कार्य करने के कारण यह प्रभाव और भी अधिक सुदृढ़ हो गया है। इसीलिए निराला जी के रहस्यवादी विचारो पर इन्हीं की वेदान्त धारा का सर्वाधिक प्रभाव है। इसी वेदान्त के चिन्तन के फलस्वरूप कवि में एक ओर तीव्र विरक्ति अथवा जगत के प्रति उदासीनता का भाव पैदा हुआ है तो दूसरी ओर सघर्षोन्प्रेरक उत्साह का संचार भी पाया जाता है कवि ने स्वय ही एक स्थान पर लिखा है, सोलह सत्रह साल की उम्र से भाग्य में जो विपर्यय शुरू हुआ वह आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन के उसी समय से मै जीवन के पीछे दौडा, जीव के पीछे नही। जीव के पीछे पड़ने वाला बड़े-बड़े मकान, राष्ट्रचमत्कार और जादू से प्रभावित होकर जीवन से हाथ धोता है जीवन के पीछे चलने वाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नही होता। रामकृष्ण परमहंस के विचारों को ही अपने पञ्चवटी-प्रसंग' काव्य मे व्यक्त करते हुए निराला जी ने लिखा है—

> एक ही है, दूसरा नही है कुछ—
> द्वैत भाव ही है भ्रम।
> तो भी प्रिये
> भ्रम के ही भीतर से
> भ्रम के पार जाना है।

कविवर निराला जी पर छायावाद के अन्य कवियो के सदृश ही अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो का भी प्रभाव पडा है। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ के काव्यों पर तो वे मुग्ध थे ही। बचपन में बगला भाषा सीखकर इसी मे उन्होंने प्रारम्भिक कुछ रचनाएँ भी लिखी थीं। फिर जिस समय अपने जीवन का श्रेष्ठ कैशोरकाल मे वे बगाल में बिता रहे थे तभी रवि बाबू को 'नोबुल पुरस्कार' मिला था। साथ ही कविवर की कविताओं का सूक्ष्म अध्ययन करके निराला जी ने अपनी प्रथम आलोचनात्मक कृति 'रवीन्द्र कविता कानन' भी लगभग उसी समय लिखी थी। रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद के बिचारो के प्रभाव से ही कदाचित निराला जी ने भी कहा है—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।

निराला जी ने कबीर इत्यादि के भावों को कहीं कहीं तो उन्हीं के शब्दों में प्रतिफलित करने का भी सफल प्रयास किया है। कबीर ने लिखा है—

अमराय पन्तर माफ मरातदगग
लखियो मुक्ति रसाद..

इसी भाव को व्यक्त करते हुए निराला जी भी कहते हैं —

मुक्ति नहीं चाहता मैं, भक्ति रहे काफी है।

इस प्रकार काव्य देखते निराला जी ने अपने साहित्य में जिन जिन प्रभावों का ग्रहण किया है, उनको देखते हुये निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि रहस्यवादी भावनाओं का ग्रहण करने के लिए उनकी हृदय भूमि पर्याप्त उर्वरा हो चुकी थी।

रहस्यवाद के आलोचकों ने विभिन्न प्रकार के भेद करने का प्रयास किया है। पाश्चात्य विद्वान स्पर्जन ने आधुनिक रहस्यवाद के चार प्रमुख भेद बताये हैं—(१) सौंदर्य और प्रेम संबंधी रहस्यवाद, (२) दर्शन सम्बन्धी रहस्यवाद, (३) धार्मिक उपासना सम्बन्धी रहस्यवाद और (४) प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद। निरालाजी के काव्य में इन सभी भेदों के उदाहरण पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध हो सकते हैं। वस्तुतः निरालाजी के समस्त साहित्य को विषय की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है —(१) व्यक्तिवादी या सांस्कृतिक काव्य और (२) सामाजिक अथवा लोकजीवन से सम्बन्धित काव्य। यहाँ यह भी स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है कि कोई भी विचारक कवि संस्कृति का त्याग करके केवल लौकिक काव्य की रचना नहीं कर सकता, और फिर निरालाजी जैसा शंकर अद्वैतवाद का मानने वाला, परमहंस की शक्ति का उपासक, टैगोर के रहस्यवाद का प्रशंसक, आनुवंशिक आध्यात्मिकता में पला हुआ और जीवन भर अभावों का मुकाबला करने वाला काव्य देवता तो इससे अछूता रह ही नहीं सकता। निरालाजी के व्यक्तिवादी काव्य साहित्य में रहस्यवाद का विशेष प्रयोग पाया जाता है। इस तत्व को खोजने के लिए उनके 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'अर्चना', तथा 'आराधना' काव्य ग्रंथों को देखना चाहिए। इनमें संगृहीत अनेक कविताओं को देखकर कहा जा सकता है कि उनका रहस्यवाद भारतीय विचारधारा के आत्म चिन्तन का परिणाम है। वेदान्त का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करके उन्होंने अपनी मान्यतायें निश्चित की हैं और एक परमतत्व में नानात्व के सौंदर्य को देखा है। उनके इस अद्वैतवादी रहस्यवाद का श्रेष्ठ उदाहरण उनकी 'तुम और मैं' कविता है, जिसमें इस सिद्धान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा पाई जाती है। ब्रह्म और जीवन की पूर्ण अभिन्नता व्यक्त करते हुये इसमें कवि ने कहा है—

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग
और मैं चंचल गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त कामिनी-कविता। इत्यादि

इससे स्पष्ट है कि उस परमसत्ता के प्रति कवि की सम्पूर्ण अनुरक्ति और आस्था है। परवर्ती काव्यों में यह अवस्था और भी अधिक दृढ़ एवं गम्भीर हो गई है। उनकी रहस्य भावना में

सौंदर्य और प्रेम के विविध रूपों का स्पष्ट दर्शन पाया जाता है। ये समस्त विश्व में उस परमतत्व के सौंदर्य को बिखरा हुआ देखते हैं। उस पावन सौंदर्य के दर्शन से उनके मन में खिन्नता की भावना जागती है—

> कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना।
> सीखा केवल हंसना-केवल हँसना—
> मन्द मलय भर अङ्ग गन्ध मृदु,
> बादल अलकावलि कुंचित ऋजु,
> तारक हार, चन्द्र मुख, मधु ऋतु,
> सुकृत-पुन्ज-अशना।
> शुभ्र-किरण-वसना।

प्रेम तो मानव की एक आदिम वृत्ति है। छायावाद युग में कवियों ने लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम का विस्तार से वर्णन किया है। निरालाजी ने प्रेम को शाश्वत और अनादि मानते हुये विविधरूप मे उसका परिचय दिया है। 'जूही की कली' और 'प्रिया के प्रति' में लौकिक प्रेम का उल्लेख हुआ है तो 'तुम और मैं' मे अलौकिक प्रेम का उत्तम चित्रण किया गया है।

निर्गुण-निराकार उस परमतत्व के दर्शन की जिज्ञासा प्रत्येक रहस्यवादी में अनिवार्य रूप से पाई जाती है। हमारे कवि भी उसके दर्शन के लिए व्याकुल हैं। कवि की यह व्याकुलता उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में देखी जाती है—

> तुम हो अखिल विश्व में
> या यह अखिल विश्व है तुम में,
> अथवा अखिल विश्व तुम एक,
> यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक ?
> पाया हाय न अब तक इसका भेद !
> सुलझी नहीं ग्रंथि मेरी, कुछ मिटा न खेद !

धार्मिक उपासना भी रहस्यवाद का एक अनिवार्य तत्व कहा गया है। इस सबन्ध मे निरालाजी रामकृष्ण परमहंस की मातृशक्ति के अनुयायी प्रतीत होते हैं। उनका रहस्यवाद बंगाली रहस्यवाद होने के कारण उसपर 'माँ काली' का प्रभाव पड़ना सहज है। इसीलिए कवि ने अपने अधिकांश प्रार्थना और उपासनापरक गीतों में परमतत्व के लिए 'किरण-मयी' 'ज्योत्स्नामयी', 'ज्योतिर्मयी' आदि के द्वारा नारी रूप ब्रह्म का आह्वान किया है। 'राम की शक्ति पूजा' मे रावण पर विजय पाने के लिए राम से दुर्गा की आराधना करवाई गई है। उसका अत्यन्त हृदयस्पर्शी वर्णन कवि की धार्मिक उपासना का उदाहरण है। रवीन्द्र नाथ की 'गीताञ्जली' के अनुकरण पर भी कवि ने कुछ बहुत सुन्दर प्रार्थनापरक गीत रचे हैं।

प्रकृति संबन्धी रहस्यवाद छायावाद के सभी कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। निरालाजी ने भी अपने प्रकृति सबन्धी काव्यो में विविध प्रकार से रहस्यवाद को प्रकट किया है। इनमें जहाँ कवि वैचारिक होते हैं वहाँ अद्वैतवाद के अनुयायी बन जाते हैं और जहाँ

भावुक होते हैं, वहाँ वे दार्शनिक प्रतीत होते हैं। प्रथम प्रकार के काव्यों में आत्मा परमात्मा का अद्वैतभाव दिखाते हुए कवि कहते हैं—

जागता है जीव जब,
मग मग से दरता है
अपने ही भीतर वह
सूर्य चन्द्र ग्रह तार।

कवि प्रकृति में सर्वत्र ब्रह्म का अनुभव कर लेने पर अमानिशा के गाढ़ अन्धकार में भी ब्रह्म की ज्योति का दर्शन करते हुए लिखते हैं—

तुम आये,
अमा निशा थी,
शशधर से नभ म छाये।
फैली दिङ्-मन्डल मे चादनी
बँधी ज्योति जितनी थी बाँधनी
खुली प्रीति प्राणों से प्राणों म आये।

इसी प्रकार 'सन्ध्या सुन्दरी' शरतपूर्णिमा की विदाइ जूही की कली शेफालिका, बादल-राग, प्रभात के प्रति इत्यादि रचनाओं में भी प्रकृति के साथ तादात्म्य साधकर रहस्यमयी प्रकृति का विविध प्रकार से वर्णन किया है। इस भाँति निरालाजी के साहित्य में सौन्दर्यनिष्ठ, प्रेमजन्य जिज्ञासामूलक, प्रकृतिजन्य आदि सभी प्रकार के रहस्यवाद का प्रयोग पाया जाता है।

रहस्यवाद के विवेचकों ने रहस्यवाद की चार प्रमुख अवस्थाओं का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार प्रत्येक सच्चे रहस्यवादी में इन चारों अवस्थाओं का दर्शन किया जा सकता है। ये हैं—(१) परमसत्ता के प्रति जिज्ञासा, (२) परम सत्ता और आत्मा में अद्वैत भावना का दृढ़ विश्वास, (३) परमसत्ता के प्रति गहन भावपक्ष-जिसमें प्रेमी प्रेम अथवा विरह का अनुभव करता (४) और है परमसत्ता का साक्षात्कार निरालाजी के रहस्यवादी काव्यों में इन चारों अवस्थाओं के भी सहज ढग से हो जाते हैं। परमसत्ता के प्रति जिज्ञासा तो रहस्यवाद की एक अनिवार्य माग होती है। निराला जी तम के पार छिपे हुये विश्व के एकमात्र स्रोत और सचालक परम आत्मा का ज्ञान पाने की अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहते हैं—

कौन तम के पार रे ?
अखिल-पलके स्रोत, जल जग
गगन घन घन-धार रे!

उस अज्ञात और अप्राप्य परमसत्ता और आत्मा म अद्वैत भावना का दृढ़ विश्वास इसकी द्वितीयावस्था होती है। वेदान्त विचारधारा के अनुसार हमारे कवि ने समस्त विश्व का उद्भव और पर्यवसान उसी म माना है। अपने उसी आराध्य म दृढ़ विश्वास तथा श्रद्धा के भाव व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं—

जीवन सी विजय, सब पराजय,
चिर अतीत आशा सुख, सब भय
सब में तुम, तुममें सब तन्मय ।

परमसत्ता के प्रति गहन आकर्षण होने के कारण उसी प्रेम या विरह का अनुभव रहस्यवादी के लिए सहज हो जाता है। प्राणीमात्र मे उस ब्रह्म की विद्यमानता का अनुभव करके निरालाजी प्रसन्नता से गा उठते हैं—

पास ही रे, हीरे की खान,
खोजता और कहाँ नादान !

अन्त मे उस परमसत्ता का साक्षात्कार हो जाने पर साधक उसके साथ तादात्म्यका अनुभव करता हुआ सर्वत्र मै का ही दर्शन करता है और कहता है—

वहाँ-कहाँ कोई है अपना ? सब,
सत्य नीलिमा में लयमान।
केवल मै, केवल मैं, केवल मै,
केवल ज्ञान

इसी प्रकार रहस्यवाद के किसी भी दृष्टिकोण से परीक्षा करने पर निरालाजी का रहस्यवाद संपूर्ण खरा उतरता है, फिर भी हमे स्मरण रखना चाहिए, कि वे मध्यकालीन सन्तो और भक्तों की भाति संसार से विमुख नहीं थे । यदि वे केवल रहस्यवादी रचनाये लिखते तो उन पर पलायनवादी होने का दोषारोपण किया जाता । उनकी ये रहस्यवादी रचनाये अपना स्वतंत्र मूल्य रखती हैं और अपने ढंग की अनूठी हैं उनकी आध्यात्मिकता और दार्शनिकता का परिचय पाने के लिए पाठक को ये विशेष सहायक हो सकती हैं। निरालाजी के परवर्ती काव्य में उनकी प्रयोग शीलता अधिक स्पष्ट ही है । इस काल मे वे अधिक भौतिकवादी बन गए हैं, फिर उनकी अनेक रचनाओं मे आध्यात्मिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । परवर्ती काव्य-संग्रहों मे 'आराधना' और 'अर्चना' में तो भक्ति-प्रार्थना-विनय की कविताएँ पर्याप्त परिमाण में पाई जाती हैं । अतः उन्हें एक आध्यात्मिक या रहस्यवादी कवि कहना अनुचित न होगा ।

कवि निराला की वेदना

प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री

निराला? यह नाम सुनते ही आत्मा के सामने पौरुष, विद्रोह और अपराजेयता की साकारमूर्ति प्रतिभासित हो उठती है, और कानों में स्वर गूंज उठता है, 'तुम हो महान्' तुम सदा हो महान्, है नश्वर यह दीन भाव, कायरता कामपरता, ब्रह्म् हो तुम, पदरज भर भी है नहीं, पूरा यह विश्व भार ?'' सामान्यत हम निराला को अप्रतिहत यौवन नद के रूप में ही स्मरण करते हैं जो किसी बाधा, विरोध या अवरोध को नहीं मानता, अपनी उच्छल तरंगों से उन्हें पार करता हुआ अपने गन्तव्य की ओर बढ़ता जाता है। हम भूल ही गये हैं कि इस वज्र कठोर रूप का अंतरंग कुसुम कोमल है। निरंतर अभाव, अभियोग, वियोग, अन्याय अत्याचार से जूझते रहने के कारण उस सिंह गर्जना में वेदना का करुण स्वर भी उभरता चला गया है। आज जब इसी स्वर की प्रधानता हो गयी है, तब निराला काव्य के विकास क्रम को सूक्ष्मता से न देखने वाले पाठक उनकी इस दीनता पर विस्मित हो सकते हैं और उनके मर्म को न समझकर निराला को पराजित या टूटा और झुका हुआ मान सकते हैं। किन्तु क्या यह उचित होगा? निराला की वेदना की अभिव्यक्ति का आद्यन्त अनुशीलन करने के बाद ही किसी निर्णय पर पहुँचा जा सकता है।

निराला काव्य की सुधी पाठकों को यह ज्ञात ही है, कि वेदना की मर्मानुभूति उनके काव्य में आरम्भ से ही अभिव्यक्ति पाती आयी है। हाँ, उत्तरोत्तर घनीभूत और मेरी दृष्टि में उदास भी होती गयी है। 'परिमल'' की सन्ध्या कविता में ही, "डालती ताण, प्रखर है धार, सँभालो जीवन खेवनहार'' का जो विकल स्वर गूँजा था वही "गीत गुंज'' तक पहुँचते पहुँचते इस मर्मभेदी व्यथा में परिवर्तित हो गया है —

> बादल र जी तडपे।
> अब अ थियाली ही बढती है,
> छाया, छाया पर चढती है,
> मारो के घनश्याम गगन से
> नू क्‍भी न बरसे ?

प्रश्न है, इस जीवन व्यापी वेदना के कारण क्या रहे हैं, इसका स्वरूप क्या रहा है, इसे झेलने की दृष्टि कौन सी रही है, इसके स्तर कैसे रहे हैं, ये सभी सार्थक प्रश्न हैं किन्तु इन पर विचार करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि यह वेदना है किसकी।

निराला की वेदना उस योद्धा की वेदना है जो विकराल प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझा है, उस कलाकार की वेदना है, जो अपने काव्य कानन के सुमनों के मृदु मकरन्द पराग से इस द्वेष जर्जर संसार को सुरभित प्रेम हरित स्वच्छन्द करने का संकल्प लेकर ही आया था, उस भक्त की वेदना है जो आजीवन आत्मार्पण करता है और अब सब कुछ प्रभु के पादपद्मों

में समर्पित कर मुक्त हो जाना चाहता है। यह कुण्ठित, आत्मसीमित, पथ पर चलने के पहले ही बैठकर चीत्कार करने वाले नपुंसकी शौकीन वेदना नही है। इसीलिए निरन्तर ज्वालाओं से जलते रहने पर भी, संसार से प्रवंचना, अपमान, उपहास, लाछना पाने पर भी, वे शिव की परम्परा से च्युत नहीं हुये हैं, उन्होंने स्वयं गरलपान कर जगत को अमृत दान ही दिया है। उनके व्यक्तित्व और आदर्श को समझने के लिये परिमल की "कवि" तथा गीतिका की "गर्जित जीवन झरना" शीर्षक कविताओ पर विचार करना आवश्यक है। प्रथम कविता मे कवि के रूप मे मानों अपना ही चित्र उपस्थित करते हुये वे लिखते हैं :—

> ......कवि, तुम, एक तुम्ही,
> बार-बार, झेलने सहस्रों वार
> निर्मम संसार के,
> दूसरों के अर्थ ही लेते दान,
> महा प्राण ! जीवों मे देते हो
> जीवन ही जीवन जोड़
> मोड़ निज सुख से सुख

विश्व के दैन्य से जब कवि का हृदय दीन हो उठता है, जब उसे सदयता कहीं भी नहीं मिलती, ससार मे स्वार्थ का तार ही दीखता है, जब उसे लगता है कि संसृति का सुष्ठु रूप मृत्यु की शृंखला ही है और इसकी चरम परिणति है धीरपद अवनति मात्रा तब वायु से आन्दोलित पत्र के समान उसके प्राण और कांप उठते हैं और दुःख से मुक्ति का, नव जीवन की शक्ति का साधन देने को चिन्तारत हो जाता है। उस अनल कुन्ड की नित्य नव उमडने वाली ज्वालाओं में बाह्य रस, रूप, राग की आहुति देकर, हृदय सुखाकर, कवि अपने शत सहस्र वर्षों के अभिधान प्राणों के प्राण, नव जीवन के मूर्त रूप निकालता है और उसके हार्दिक आह्वान पर शोकातुर लोक आकर, जीवन-विधान पाकर, धन्य हो जाता है, किन्तु कवि अपने नव शून्य हृदय मे केवल आस, प्यास और अभिलाष ही भरता है। उस कवि को सम्बोधित करते हुए निराला ने कहा है:—

> "झोली मे दैन्य की
> प्रकृति का दान बहु
> रिक्त तत्काल कर
> रहते हो रिक्त ही
> चिर प्रसन्न ! चिरकालिक पतझड़ बने हुए।"

अतः स्मरण रखना चाहिए कि निराला की वेदना स्वेच्छया सर्वस्व दान करने वाले चिर प्रसन्न, चिरकालिक पतझड' की वेदना है। अपने जीवन के उद्देश्य को और भी मर्मस्पर्शी ढंग से उन्होंने झरने के रूपक से यों कहा है:—

> गर्जित जीवन-झरना
> उद्देश्य पार पथ करना।

ऊचा रे नीचे आता,
जीवन भर भर दे जाता,
गाता वह केवल गाता
"बन्धु, तारना, तरना" !
वकिम से वकिम पथ पर,
बढता उद्दाम प्रखर तर,
बाधाएँ अपसारित कर,
कहता-"वर यों वरना" !
सूखते हुए निर्जीवन
होने से पहले तक, मन
बढना, मर कर बनना घन,
धारा नूतन झरना !

निराला का जीवन झरना स्वत ऊचे होते हुए भी जनगण की प्यास बुझाने के लिये नीचे आता है, निष्प्राण होती हुई मानवता का 'जीवन' भर भर कर दे जाता है और यही गाता जाता है कि तरो और दूसरों को तारो। वकिम से वकिम, दुर्गम से दुगम पथ पर वह प्रखरतर उद्दाम वेग से बढ़ता है, बाधाओं को अपसारित करता है और पर-सेवा का वर ही वरता है। उसकी एक ही कामना है कि वह सूखते हुए निर्जीवन होने से पहले तक भी बढ़ता ही रहे और मर कर भी घन बने एव नूतन धारा के रूप में पुन झरे। स्पष्ट है, कि निराला की वेदना उसकी इसी मगलमयी असीम करुणा से उद्भूत हुई है, कुन्ठा और अनास्था से नहीं।

स्थूल दृष्टि से देखते वाले कह सकते हैं कि निराला की बेदना का कारण भौतिक अभाव है। यह सच है कि निराला जीवन भर दरिद्रता के नागपाश से बधे रहे और उसने उनका बहुत सा जीवन-रस चूस लिया। अर्थाभाव की मर्मन्तुद व्यथा गीतिका की भूमिका की इन पंक्तियों में व्यक्त हो उठी है, पर कुछ ऐसी परिस्थिति मेरी रही कि सब तरफ से अभाव ही अभाव का सामना मुझे करना पड़ा। एक अच्छे हारमोनियम की गुजाइश भी मेरे लिये नहीं हुई। मेरी सरस्वती सगीत में भी मुक्त रहना चाहती हैं, सोचकर मैं चुप हो गया, "इन सहज सरल पंक्तियों के पीछे अभाव का जो ज्वालामुखी धधक रहा है, उसका अनुभव सहृदय ही कर सकते हैं। यह भी सच है कि निराला को प्रियवियोग के रूप में वे अनेकानेक मर्म आघात सहने पड़े हैं, भरे जीवन में उनकी प्रियतमा, उनकी पत्नी परलोक सिधारी, प्रौढ़पिता के वात्सल्य को आन्दोलित कर उनकी आँखों की पुतली उनकी पुत्री सरोज ने दम तोड़ा, उनके अनेक मित्र एक एक-कर उन्हें छोड़ गये। साहित्यिक क्षेत्र में भी उन्हें प्रबल विरोध, उपहास और लाञ्छना का सामना करना पड़ा। इन सबने निश्चय ही उनके "कोमल कुसुमगिह चाहि" चित्त को निष्ठुरता पूर्वक झकझोरा है और उसकी वेदना कविता के रूप में वह निकली है। किन्तु यही सब कुछ नहीं है, व्यक्तिगत सुख दुखों का अतिक्रमण कर उनकी करुणा के घन उनपर भी बरस हैं जिन्हें मर्

समाज ने शोषित और पीड़ित कर रखा है। सामाजिक अन्याय के अभागे शिकारों की शोचनीय अवस्था ने उनकी करुणा को सहज ही सम-वेदना का रूप दे दिया है। वे यहां भी नहीं रुके हैं। उनकी मूलग्राही दृष्टि ने यह भी देख लिया है कि मानव की दुरवस्था का कारण केवल आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक ही नहीं है। मूल कारण तो आध्यात्मिक ही है। भवबन्धन में छटपटाने वाले जीव मात्र की वेदना से समरस होकर ही उनकी करुणा भक्ति साधना में प्रवृत्त हो गयी है। इसीलिये उनकी वेदना के तीन स्तर स्पष्ट दीख पड़ते हैं—(१) वैयक्तिक (२) सामाजिक (३) आध्यात्मिक।

निराला की वेदना के इन विभिन्न स्तरों पर विचार करने के पूर्व वेदना झेलने की उनकी दृष्टि का समझ लेना आवश्यक है। वेदना के ग्रस्त होने पर भी वे उससे त्रस्त नहीं हुए, क्योंकि उन्होंने उसे तपस्वी की तटस्थ दृष्टि के देखा है और उसमें छिपे मर्म को, प्रभु के गान को पहचाना है। परिमल की 'नयन' शीर्षक कविता मे नयन के रूप में उन्होंने मानो अपनी ही बात कही है—

> "हम तपस्वी हैं, सभी दुख सह रहे,
> गिन रहे दिन ग्रीष्म, वर्षा शीत के
> काल-ताल-तरंग में हम बस रहे
> मौन हैं, पर पतन में-उत्थान में
> वेणु-वर-वादन-निरत विभुमान में
> है छिपा जो मर्म उसका समझते
> किन्तु फिर भी है, उसी के ध्यान में।'

इसी निलिप्तता और प्रभु-निर्भरता की वृत्ति के कारण वे वेदना हंसते-हंसते झेल सके हैं, दुःखो से संघर्ष करते हुए भी अपराजेय रहे हैं, पथ के तीक्ष्ण प्रस्तर-खंड भी उन्हें कमलवत् लगे हैं और चुभते हुए काटे जागरण की प्रेरणा बनते रहे हैं, माता की स्मृति मे तल्लीन रहकर ही उन्होंनें रात पार की है, तभी तो अवसन्न होने पर भी वे प्रसन्न हैं———

> "प्रात तव द्वार पर
> आया जननि, नैश अन्धपथ पार कर।
> लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात,
> कन्टक चुभे, जागरण बने अवदात,
> स्मृति मे रहा पार करता हुआ रात
> अवसन्न भी हूँ, प्रसन्न मैं प्राप्त वर।
> प्रात तव द्वार पर।" (गीतिका, गीत ६५)

जब-जब वेदना का तीव्र आघात निर्लिप्तता की वृत्ति को विचलित कर देता है और कवि की आखों में आसू आ जाते हैं, तब-तब प्रभुनिर्भरता ही आड़े आती है। बार-बार करुणा की किरणे से उसके क्षुब्ध हृदय को भरकर पुलकित कर देते हैं, व्यथाभार को लघु जाते हैं और किरणकरों से अश्रु पोंछ लेते हैं।

"भर देते हो
बार-बार प्रिय, करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो ।
मेरे अन्तर मे आते हो देव निरन्तर
कर जाते हो व्यथाभार लघु
बार बार कर-कञ्ज बढा कर
अन्धकार मे मेरा रोदन
सिक्त धरा के अंचल को
करता है क्षण क्षण-
कुसुम कपोलों पर वे लोल शिशिर कण
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो ।" (परिमल भर देते हो) दु ख की अनुभूति के साथ साथ दु ख से मुक्ति कि अनुभूति भी निराला का होता रहती है क्योंकि प्रेरणा और शक्ति के अक्षयकोष से वे निरन्तर सम्बल प्राप्त करते रहते हैं। निराला की अपराजेयता का यही रहस्य है। यह भी समझ लिया की निराला की वेदना के प्रति निर्लिप्तता उस हृदय हीन शुष्क ज्ञानी की निर्लिप्तता नहीं है जो जगत् के सुख दु ख से अप्रभावित रहता है, उस भावुक भक्त की निर्लिप्तता है जो जगत् के सुख दु ख को अपना ही सुख दु ख समझ कर भी उससे बद्ध नहीं होता सब कुछ प्रभु चरणों में अर्पित कर देता है।

स्वाभिमानी निराला के लिए व्यवहार के व्यक्तिगत वेदना का प्रकाशन उस वेदना से भी अधिक वेदना प्रदान करने वाला रहा है किन्तु काव्य की प्रक्रिया भी प्रेम की ही तरह सूक्ष्म और रहस्यमयी है और प्रेम को चण्डीदास ने विष, अमृते मिलन एकत्रे" विष और अमृत का एकत्र मिलन कहा है, इसी तरह काव्य में वेदना की अभिव्यञ्जना भी एक ही साथ कवि के लिये वेदनाप्रद और वेदनाहर हो उठती है निराला की कविता इसका साक्षी है। निराला का उलझन भरा हृदय समझ नहीं पाता कि वह अपनी दुख गाथा कैसे गाये, अपने प्रिय को कैसे बतलाये कि वह कितना दु ख भोग रहा है। जो पुष्प प्रकृति के निर्दय आघातों से छिन्न हो जाते हैं, वे तो कुछ नहीं कहते, वे अपना यौवन, पराग, मधु खोकर केवल रो उठते हैं और अंतिम श्वास छोड कर पृथ्वी पर सो जाते हैं, उसी तरह तो मैंने भी रूप और यौवन की चिन्ता में अपना सर्वस्व गवाया है, माया का स्वप्न प्रेम भी नहीं पा सका, आज मेरा विफल हृदय तो दु ख ही दु ख देखता है—

'मैं तुम्हे कैसे गाऊ ?
तुम्हे कैसे प्रिय बतलाऊ मैं ?
कैसे दु ख गाथा गाऊ मैं ?
छिन्न प्रकृति से निर्दय आघातो मे हो जाते हैं,
जो पुष्प, नही कहते कुछ, केवल रो जाते हैं,
वे अपना यौवन पराग मधु खो जाते हैं,

अन्तिम श्वास छोड़ पृथ्वी पर सो जाते हैं !
वैसे ही मैंने अपना सर्वस्व गंवाया
रूप और यौवन चिन्ता में, पर क्या पाया ?
प्रेम ! हाय ! आशा का वह भी स्वप्न एक था
विफल हृदय तो आज दुःख ही दुःख देखता।"
(परिमल-विफलवासना)

किन्तु वेदना निवृत्ति के लिए भी तो वेदना के गीत गाने ही पड़ेंगे ? बुद्धि तो कहती है–

"दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही"

किन्तु मन नहीं मानता, वह सिसक उठता है:—

"गीत गाने दो मुझे तो
वेदना को रोकने को।
चोट खा कर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग-
ठाकुरों ने रात लूटे,
कन्ठ रुकता जा रहा है
आ रहा है काल देखो ?" (अर्चना, गीत ५६)

अपनी और परायी वेदना को रोकने के लिए, उसे आनन्द में परिवर्त्तन कर देने के लिए कवि के पास गीत का ही सम्बल तो है, वह कैसे उसे छोड दे ! प्रारम्भिक जीवन में साहित्य जगत् मे नवीनता का द्वार खोलने के लिए कवि को पर्याप्त लाछना सहनी पड़ी थी। वह उनसे विचलित नहीं हुआ। यथास्थान उसने यथोचित उत्तर दिये, किन्तु अपनी परमाराध्या भगवती सरस्वती के चरणों मे अपने काव्य सुमनों को अर्पित करते समय उसके हृदय का बाँध टूट गया। अपनी वेदना—कातर वाणी में उसने भगवती से पूछा—

"देवि, तुम्हे मैं क्या दूँ ?
क्या है, कुछ भी नही ? ढो रहा व्यर्थ-साधना-भार,
एक विफल रोदन का है यह हार-एक उपहार !
भरे आंसुओं में हैं असफल कितने विकल-प्रयास,
झलक रही है मनोवेदना, करुण, पर उपहास।
क्या चरणों पर लादूँ ?
और तुम्हें मैं क्या दूँ ?

निश्चय ही भगवती ने उसका यह विनम्र उपहार सप्रेम स्वीकार कर लिया, उसकी वाणी हिन्दी की शोभा बन गयी।

अपने दुःख भरे दीर्घ जीवन काल मे निराला जिस व्यक्तिगत आघात से सर्वाधिक विचलित हुए है, वह उनकी प्रियकन्या-"सरोज" का देहावसान है। पत्नी की मृत्यु के आघात को भी

वाह सहने वाला 'वज्र कठोर अन्तर' पुत्री की मृत्यु पर पानी-पानी हो गया। उनके सम्पूर्ण जीवन की विफलता मानो उसी दिन उनके सामने मूर्तिमती हो उठी। उस करुण हृदय मन्थन ने ही 'सरोज स्मृति' का रूप ग्रहण किया, जिसमें निःस्व पिता की असफल वत्सलता की हृदय भेदी टीस ही निहित है। उनका पिता चीख उठा —

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका"

इस महान करुण कविता पर सम्यक् विचार के लिए स्वतन्त्र लेख अपेक्षित है। किन्तु फिर भी यह स्पष्ट कर दिया जाय कि इस घनघोर घटा के आवरण के पीछे चन्द्र के समान चमकता हुआ उनका अपराजित योद्धा इस महामोह की वेला में भी अपने गत आचरण को गलत नहीं मानता। स्वार्थी दुनिया से पायी हुई स्वार्थ समर की हार को वह हिन्दी का स्नेहोपहार, भास्वर लोकोत्तरतर, रत्नाहार के रूप में ही मानता है।

"जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर
शुचिते! पहना कर चीनांशुक
रख सका न तुझे अत दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न
मैं लख न सका वे दृग विपन्न
अपने आंसुओं अत बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुखचित
सोचा है नत हो बारबार-
"यह हिन्दी का स्नेहोपहार
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह- रत्नाहार-लोकोत्तर वर।"

कितने बड़े कलेजे से ये पंक्तियां निकली होंगी, इसका हम ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं कर सकते।

इसी काल की कुछ रचनाओं में निविड़ हताशा और पराजय की भावना के स्वर भी उभरे हैं, किन्तु वह मन स्थिति क्षणिक रही है, अपने को बार-बार उन्होंने समेटा है। 'वनबेला' में ज्योंही उन्होंने यह सोचा —

हो गया व्यर्थ जीवन,
मैं रण में गया हार।
सोचा न कभी-
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी।

त्योंही वनवेला ने उन्हें सचेत किया, कि अपनी स्थिति की अवहेलना करने के कारण वे अपावन हो रहे हैं,

"......" विकल बोली वेला-
मैं देती हूँ सर्वस्व, छूओ मत अवहेला
की अपनी स्थिति की जो तुमने, अपवित्र स्पर्श
हो गया तुम्हारा, रुको, दूर से करो दर्श।"

निराला ने वेला की 'आज्ञा मान ली, वेला ने उन्हें तब जीवन की चरितार्थता का सिद्धान्त ही नहीं समझाया, आचरण में दिखा भी दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण द्वारा तोड़ी जाते समय उसने कहा-

'जाती हूँ मैं बोली वेला
जीवन प्रिय के चरणों पर करने को अर्पण"

इस प्राकृतिक शिक्षा से हताश निराला की अवस्था सुदृढ़ हो गयी। यह सच है कि अपनी 'हताश' कविता मे उन्होने दुःख की ही कामना की है और कहा है कि मेरी प्रार्थना विफल हो, हृदय के कमलदल मुरझा जाये, जीवन म्लान हो, मेरे प्राण शून्य सृष्टि की शून्यता प्राप्त करें, मेरा जग अन्तर्धान हो जाये इतनी उज्ज्वलता इतना वन्दन अभिनन्दन क्या होगा जीवन तो चिरकालिक क्रन्दन ही है, किन्तु यह आत्मघाती निराशावादी जीवन दर्शन उनके काव्य का मूल स्वर नहीं है। यह और ऐसी अन्य कविताएं हमें लक्ष्मण के आहत होने पर विलापरत प्रभु राम की कातरता का स्मरण कराती हैं जिसके कारण ही वे 'मानवीय' बन सके थे। निराला भी अपनी दुर्बलता के कारण अधिक भावनीय हो उठे हैं। निराला अपनी प्रेरणा और शक्ति के अक्षय कोष से पुनः शक्ति संग्रह कर सकते हैं—

कुछ न हुआ, न हो।
मुझे विश्व का सुख, श्री यदि केवल
तुम पास रहो।
मेरे नभ के बादल यदि न कटे,
चन्द्र रह गया ढका,
तिमिर रात को तिर कर यदि न अटे
लेश गगन भास का
रहेंगे अधर हँसते, पर तुम
हाथ यदि गहो !" (अनामिका—उक्ति)

मृत्युन्जयी निराला के गहन काल रात्रि में भी हँसते हुए ये अधर हमें और आपकी वेदना मे डूबने पर हँसने की प्रेरणा दें, और यदि 'वह' हाथ न गहे, यदि अकेले ही रहना पड़े तो भी हँसते रहने का निराला का निश्चय अटल है।

"मैं अकेला,
देखता हूँ, आ रही,

मेरे दिवस की साध्य वेला।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती जा रही
हट रहा मेला।
जानता हूँ नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख
कोई नहीं भेला!

चढ़ती जवानी में ही नहीं, दिवस की साध्य वेला को आते देखकर भी, आधे बाल पक जाने पर और गाल निष्प्रभ हो जाने पर भी, चाल मन्द हो जाने पर एव मेले को हटते देखकर भी, पार जाने के लिये किसी तरणी के न रहने पर भी निराला हँस सकता है, इस लिये उसकी वेदना भी बहुत से गर्जन-तर्जन-वादी सारे बाल कवियो के साहस के प्रदर्शन से अधिक प्रेरणाप्रद है।

जगत की निरन्तर उपेक्षा के कारण कवि को लगता है—

स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।

आखिर विषपान के करने के बाद भगवान शिव का कण्ठ भी नील पड़ गया था। उस विष की ज्वाला से निराला कैसे अछूते रह जाते। 'आराधना' में उनकी करुण स्वीकृति है-

नील नील पड गये प्राण वे
जहा उठे थे शुभ्र गान वे।

किन्तु उनके गानों की शुभ्रता आज भी अमलिन है और वह शत शत कलुषों को शुभ्र बनाती रहेगी

कुछ बरस पहले साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित उनका यह गीत उनकी निर्लिप्तता और अतीत की हृदयबेधी स्मृति से ओत प्रोत है —

"जय तुम्हारी देख भी ली,
रूप की गुण की सुरीली।
वृद्ध मैं अब ऋद्धि की क्या,
साधना की सिद्ध की क्या,
फूल मेरा खिल चुका है
पखुरियाँ हो गयी ढीली।
जो चढी थी आस मेरी,
बज रही थी जहा भेरी,
वहा सिकुडन पड चुकी है
जीर्ण है वह आज तीली।

आग सारी फुँक चुकी है,
रागिनी वह रुक चुकी है,
स्मरण में है आज जीवन
बढ़ रही है रेख नीली।"

करुण रस की हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में इसे अनायास रखा जा सकता है। अन्तिम पद तो वृद्धावस्था की परिभाषा ही है। यह लक्षणीय है कि इस स्थिति में भी निराला को ऋद्धि सिद्धि अपने माया जाल मे नही फंसा सकी, इसी निष्काम स्थिति में वेदना भी अवेदन बन जाती है।

व्यक्तिगत वेदना के प्रकाशन में निराला की वाणी को जितना संकोच बोध हुआ है, दूसरों की पीड़ा देखकर उतना ही कभी तो काल सर्पिणी की तरह वह फुंकार उठी है और कभी सावन भादों की घन घोर घटा की तरह करुणा की वर्षा कर उठी है। छायावादी कवियों में निराला की सामाजिक चेतना निस्सन्देह सर्वाधिक व्यापक रही है। अन्तः पीड़ित और शोषित मानवता के प्रति समवेदना भी उन्ही की सबसे अधिक गंभीर रही है। अपना दुःख भूल कर वे अपने पीड़ित भाई के आँसू पोंछने के लिये दौड़ गये हैं, इसके लिये भले ही उनका 'अधिवास' उनसे छूट जाय, उन्हें उसका कुछ त्रास नहीं है। परिमल की 'अधिवास' कविता उन्होंने कहा है—

"मैंने मैं' शैली अपनाई,
देखा दुखी एक निज भाई,
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई,
उसके निकट गया है धाय
लगाया उसे गले से हाय!"

निराला की व्यक्तिवाद (मैं शैली) भी समग्र मानवता के दुःख को अपने में समेट लेने वाला है। अब यदि आत्मिक उन्नति इस करुणा के, ममता के बोध के कारण रूक जाय तो भी निराला को कोई खेद नहीं।

जब साहित्य के राजपथ में भिक्षुओं, दीनों, किसानों, मजदूरों का प्रवेश निषिद्ध-सा था, उस समय निराला की वाणी ने ही उनकी वेदना को ध्वनित किया था। पथ पर पछताते हुए आने वाले भिक्षुक को देखकर संभवतः हमारा कलेजा दो टूक ही होता, किन्तु निराला की कविता उसके शत-शत टूक कर देती है। निराला की दृष्टि मतवाली 'जूही की कली' की सुन्दरता से ही नही अटकी रही, इलाहाबाद के पथ पर, गर्मियों के तमतमाते दिन में पत्थर तोड़ने वाली की व्यथा को भी उसके नयनों में झाँक कर आँक गयी है:

"देखते, देखा मुझे तो एक बार—
उस भवन की ओर देखा, छिन्न तार,
देख कर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार खा रोई नहीं।

सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह, नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक क्षण के बाद वह कांपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा,
मैं तोड़ती पत्थर!"

भार ढोकर भी न रुक पानेवाली दृष्टिवाली नेत्रों से ढुलकते हुए अश्रुबिन्दुओं को कविता में अंकित कर निराला ने समाज के पत्थर हृदय को तोड़ने की महती चेष्टा की है।

और विधवा पर लिखित उनकी कविता तो पवित्रता एवं करुणा की प्रतिध्वनि ही है-

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीपशिखा-सी शान्त, भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन,
दलित भारत की विधवा है!

पहली दो पंक्तियों में वैधव्य की पवित्रता और पिछली तीन पंक्तियों में उसकी करुणा, निस्सहायता चित्र विधान करने वाली उपमाओं के कारण मर्मस्पर्शी रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। पर दुःखकातर निराला विधवा के क्रन्दन का हृदय द्रावक चित्रण करने के पश्चात् विधाता से क्षुब्ध होकर कह उठते हैं —

यह दुःख वह जिसका नहीं नहीं कुछ छोर है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है,
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल
या किया करते रहे सबको विकल।

समाज सुधारकों की सौ सौ वक्तृताओं का भी वैसा हृदय परिवर्तनकारी प्रभाव नहीं पड़ सकता, जैसा निराला की इस एक कविता का पड़ता है।

इस परिवर्तनशील जगत में निरन्तर होने वाले परिवर्तन कब किसके सुख दुःख का ध्यान करते हैं। कितने सुनहरे सपने धूल में मिल जाते हैं, कितनी कलित कल्पनाएं आहों में बदल जाती हैं। अतीत का सुख स्मृति में कण्टक बन चुभता रहता है, किन्तु परिवर्तन नहीं थमता। प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से जगत की नश्वरता और दुःखमयता का प्रभविष्णु संकेत निराला ने दिया है 'यमुना के प्रति' और 'तरंगों के प्रति' नामक कविता में। इतिहास की यह भूमिका 'यमुना के प्रति' में कवि ने विगत विभूतियों की स्मृतियों की श्रद्धा के फूल चढ़ाये हैं। स्वर्णिम अतीत की मोहक स्मृति के परिवेश में वर्तमान की दयनीयता और भी मर्मन्तुद हो उठी है।

'राम की शक्ति पूजा' में रावण की जय के भय की आशंका से विचलित राम के रूप में आधुनिक युग के 'रावणत्व' की विजय संभावना से आशंकित 'रामत्व' पर विश्वास रखने वाली

मानवता का ही चित्रण किया गया है। उस भयंकर आशंका से भी राम के मन मे पराजय की भावना का ही नहीं, साधना की भावना का भी उदय होता है। श्री दुर्गा द्वारा परीक्षा के लिए पूजन का अन्तिम इन्दीवर अवहूत किये जाने पर साधना के खण्डित होने के भय से राम के मन में उठी प्रतिक्रिया का चित्रण निराला ने मानों अपनी जीवन साधना में वारवार पड़ने वाले विघ्नो की अनुभूति के आधार पर ही किया है.—

धिक् जीवन को जो पाता ही विरोध,
धिक् साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध,
जानकी ! आह, उद्धार, दुःख जो न हो सका

किन्तु राम......... आस्थाशील मानवता के प्रतीक.......... हार मान कर नहीं बैठ सकते इस धिक्कृति की परिणति, कर्माभाव, व्यक्तित्व के विघटन और कुठाग्रस्त क्षयिष्णु दर्शन बघारने में नही हुई वरन् वज्र की प्रवलता के साथ-साथ विश्वास की अडिगता और वलिदानी भावना बढती ही गयी। राम की कभी न थकने वाला, कभी न झुकने वाला मन जागा और उसने उपाय खोज ही निकाला—

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य, जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण, प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा, विद्युत् गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन।"

समग्र मानवता के प्रति निराला की समवेदना उसके दुःख पर अकर्मण्य आसू ही नहीं वहाती उसकी असहायता के खोखले दर्द भरे गीत गाकर उसे पगु नहीं वनाती, उसे अपनी दुर्दशा मे ही रस लेते रहने का 'आत्मपीड़क' पाठ नहीं पढ़ाता, वरन् करुणा से आर्द्र होकर कष्टों के निवारण का पथ सुझाती है और उसे झक झोर कर उस पर प्रवृत्त भी करती है। तभी उसकी शक्ति पूजा का पर्यवसान प्रचंड, दुनिग्रह रावणत्व के समक्ष दीन पराभव में नहीं होता, अप्रतिहत मंगलमयी संघशक्ति के सचय में होता है, जिसका प्रतीक श्री दूर्गा स्वतः प्रकट हो उसकी अवश्यं-भावी विजय का आश्वासन देती है—

होगी जय, रोगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन
कह मनाशक्ति राम के वदन मे भई लीन।

निराला की समवेदना में ओजस्विता, दृढता और कर्म प्रेरकता तो हैं किन्तु कठोरता और रुक्षता नहीं। इस कथन की प्रतीति अनामिका की ही सेवा-प्रारम्भ प्रकाश आदि कविताएँ पढ़ने पर अनायास हो सकती है। स्वामी अखन्डानन्द जी की सेवा के आदर्श उदाहरण पर रचित दीर्घ कविता सेवा प्रारम्भ में परदुःखकातरता और मानवता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम बोध की विवृति हुई है। प्रकाश मे उनकी आत्मीयता भरी सहानुभूति उन सब के प्रति व्यक्त हुई है, जिन्हें समाज ने अस्पृश्य, दास घोपित कर रखा है। निराला के लिये तो वे अनुराग मूर्ति किसी कृष्ण के उर की अनुपम गीता से कम नहीं है, उन धूलधूसरितो को गले लगाना शुभ नहीं

है, दुःख देत में हुए पहचान में रस कहाँ, जिसे चेतन का आभास है, वह किसी को किसी का दास नहीं मानता, जिसमें यह ज्ञान नहीं, वह 'प्रकाश' को कैसे समझ सकता है ?

रोक रहे हो जिन्हें
नहीं अनुराग मूर्ति वे
किसी कृष्ण के उरकी गीता अनुपम ?
और लगाना गले उन्हें
जो धूलि धूसरित खड़े हुए हैं
कबसे प्रियतम, हे भ्रम !
हुई हुई हमे अगर कहीं पहचान
तो रस भी क्या—
अपने ही हित का गया न जब अनुमान ?
है चेतन का आभास
जिसे, देखा भी उसने कभी किसी को दास ?
नहीं चाहिए ज्ञान
जिसे, वह समझा कभी प्रकाश ? (अनामिका प्रकाश)

यह भागवत एकत्व का बोध संसार के दुःख कष्ट से निराला को उदासीन कैसे रहने दे सकता है ? इसीलिये जब वे देखते हैं कि संसार जहर से भर गया है और लोग जैसे हार खाकर एक दूसरे का सही परिचय न पाकर, एक दूसरे को अपरिचित या शत्रु मान बैठे हैं, और इस तरह प्रभा की लौ बुझ गई तो उसे उसे सींचने के लिये, ज्योतित करने के लिए वे स्वय जल उठना चाहते हैं, मानवता की वेदना को रोकने लिये ही गीत गाना चाहते हैं

"भर गया है जहर से
संसार कैसे हार खाकर,
देखते हैं लोग लोगों को
सही परिचय न पाकर
बुझ गई है लौ प्रभा की
जल उठी फिर सींचने को।
गीत गाने दो मुझे तो
वेदना को रोकने को।' (अर्चना, गीत ५६)

निराला की सामाजिक समवेदना ने करुणा वपण का ऋजुपथ छोड़कर कभी-कभी व्यंग बाण वपण का वक्रिम पथ भी ग्रहण किया है, कुकुरमुत्ता तथा बेला, नये पत्ते आदि का बहुत सी कविताए इस कथन के प्रमाण में दी जा सकती हैं। जन कल्याण के लिये कर्मठ प्रयास के विश्वासी और क्रियाशील रहने पर भी निराला यह जानते हैं कि अन्तत यह भी प्रभु कृपा पर निर्भर है। अत सब कुछ उसी के चरणों में अर्पित करते हुए उनकी यही प्रार्थना है —

दलित जन पर करो करुणा,
दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा।

अपने यौवन काल में ही निराला श्रीरामकृष्ण संघ के घनिष्ट सम्पर्क में आ गये थे। उन्होने श्री रामकृष्ण वचनामृत तथा संघ के कुछ अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों का हिन्दी में रूपान्तर भी किया, सघ के मासिक पत्र 'समन्वय' का सम्पादन भी किया, विवेकानन्द की कविताओं के अनुवाद भी किये। इसी घनिष्ट सम्पर्क के फलस्वरूप उनके हृदय में आध्यात्मिकता की ज्योति जग उठी परम हंसदेव ज्ञान, भक्ति, योग और धर्म को परस्पर पूरक एवं अन्योन्याश्रित मानते थे, फिर भी काल की दृष्टि से भक्ति साधना को सुलभ एवं प्रशस्त कहा करते थे। यह उन्ही का पुण्य प्रसाद है कि निराला के काव्य मे ज्ञान, भक्ति और धर्म की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। निराला-काव्य का अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है, कि आरम्भ में ज्ञान और कर्म की भावना ही प्रधान रही है, भक्ति अपेक्षाकृत रूप से क्षीण और किंचित् आवृत-सी रही है, किन्तु उत्तरोत्तर वह सान्द्र होती गयी है और सम्प्रति वही उनका जीवनाधार बन गयी है। अपनी आरम्भिक रचनाओं मे निराला ने भक्ति की अभिव्यंजना करते समय लोकरुचि का ध्यान रखा है। उस समय के साहित्यिक परिवेश विशेषतः रवीन्द्र के प्रभाव के कारण अंग्रेजी शिक्षित समाज में यह समझा जाने लगा था कि सगुणलीला के पद पुराने पड़ गये, सगुण भक्ति का दर्जा नीचा है और निर्गुणभक्ति या आधुनिक भाषा में कहें तो रहस्यवाद का दर्जा ऊंचा है। निराला संस्कार से राम और कृष्ण को परमेश्वर मानते थे, फिर भी समझते थे कि उनकी ईश्वरी लीला का गान या उनके प्रति दैन्य भाव का निवेद आधुनिकता के परे की चीज है, राम-कृष्ण के चरित्र पर आधुनिक दृष्टि से काव्य लिखा जा सकता है—यह मानते हुए भी उनके प्रति दैन्य निवेदन करने मे उन्हें सकोच-सा था। गीतिका की भूमिका से यही बात झलकती है। उसमें उन्होने लिखा है, "सूर, तुलसी आदि भाषा संस्कार रखते हुए भी कृष्ण और राम की सगुण उपासना के कारण आधुनिकों की रुचि के अनुकूल नहीं रहे। "निराला के अनुसार जो आधुनिक राम और कृष्ण का ब्रह्मरूप समझते हैं उन्हें भी इनकी लीलाओं के पुनः पुनः मनन, कीर्तन और उल्लेख से तृप्ति नहीं होती।" इसीलिए उन्होने अपनी आरम्भिक रचनाओं में भक्ति-भावना को रहस्यवादी रूप में उपस्थित किया है। स्पष्टतः लोकरुचि का अंकुश उस समय उनकी भावनाओं को प्रकृतिरूप में व्यक्त नहीं होने दे रहा था। यह कवि की भूमिका हो सकती है' भक्त की नहीं। 'भक्तन को कहा सीकरी सो काम 'भक्त तो' लोक लाज, कुल की मर्यादा 'से ऊपर उठकर मुक्त रूप से अपनी भावना अपने उपास्य के चरणों मे अर्पित करता है। इसी के अभाव के कारण हमारी मान्यता है कि उनके आरम्भिक काव्य मे भक्ति का रूप अपेक्षया क्षीण और रहस्यवाद से आवृत्त-सा है। 'अर्चना' तक पहुँचते-पहुँचते निराला इस बाह्य अंकुश से मुक्त हो जाते हैं और लोक सम्मति निरपेक्ष हो अपने हृदय की भक्ति की व्यंजना करने लगते हैं। आराधना में राम, कृष्ण, गंगा आदि के प्रति अनेकानेक भक्ति पूरित पद हैं। भक्ति में निर्गुण सगुण दोनों स्वीकृत हो सकते है किन्तु बड़ी शर्त निष्कामता, अनन्यता और 'लोकबेद व्यापार न्यास' की है। लोकरुचि से

ऊपर निराला किस तरह उठे हैं, इसे अर्चना की भूमिका की ये पंक्तियां स्पष्ट करेंगी—"(अर्चना का) अन्तरंग विषय यौवन से अतिक्रान्त कवि के परलोक से सम्बद्ध है, इसलिए यहां सम्मति का फल निष्काम में ही होगा। रससिद्धि की पड़ताल कीजियेगा तो कहना होगा कि हिन्दी के भाषा-साहित्य में ज्ञानी और भक्त कवियों की पंक्ति की पंक्ति बैठी हुई है, जिनकी रचनायें साधारण जनों के जिह्वाग्र से अमृत की धारा बहा चुकी हैं, ऐसी अवस्था में लोकप्रियता की सफलता दुराशा मात्र है। अतः यहां प्राचीन परम्परा से इतना ही कहना पर्याप्त होगा—

"भाव, कुभाव, अनख आलस हूँ,
राम जपत मंगल दिशि दस हूँ।"

यही भक्त की भूमिका है, लोक-सम्मति और लोकप्रियता से निरपेक्ष होकर भक्त निराला ने अर्चना, आराधना, गीत गुंज के गीतों में अपना हृदय उड़ेल दिया है। इसीलिए सान्द्रता और तन्मयता की दृष्टि से ये गीत उनके प्रारम्भिक भक्ति गीतों से कहीं ऊँचे उठ गये हैं।

ईश्वर के प्रति परम्परा अनुरक्ति को ही भक्ति कहते हैं। ईश्वर कहने मात्र से उसके माहात्म्य का बोध जाग उठता है, इसीलिए भक्ति को श्रद्धा और प्रेम का योग भी कहा गया है। भक्त में जब श्रद्धा तत्व की प्रधानता होती है तो वह ईश्वर को पिता, माता स्वामी के रूप में देखता है, जब प्रेम तत्व की प्रधानता होने लगती है तब क्रमशः उसे सखा, पुत्र या प्रियतम के रूप में देखता है। एक ही भक्त मन स्थिति के भेद के कारण ईश्वर को कभी माता, पिता-स्वामी और कभी प्रियतम आदि के रूप में भी देख सकता है। निराला ने ईश्वर को मुख्यतः माता, प्रभु और प्रियतम के रूप में देखा है। अतः उनकी कविताओं में दास्य और माधुर्य भाव ही प्रधान हैं। चूंकि हम यहां निराला की वेदना का ही विचार कर रहे हैं अतः दास्य भाव के अन्तर्गत विनय मूलक दैन्यनिवेदन पर एवं माधुर्य के अन्तर्गत वियोगात्मक कविताओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

निराला की उत्तर कालीन भक्ति-रचनाओं में माधुर्य भाव की कवितायें अपेक्षाकृत रूप से बहुत न्यून हैं। कवि के 'भग्नतन, विषण्ण जीवन,' "बार-बार उसे अपनी लघुता का स्मरण कराते हैं और अपने को वह और छोटा, दीन बनाना चाहता है, क्योंकि यदि वह सचमुच अपने को छोटा बना सकता जिस तरह आंखों के तिल में समस्त गगन प्रतिबिम्बित हो जाता है उसी तरह उसकी गागर में सागर समा जायगा। फिर भी कभी कभी मधुर भावना का उद्रेक होने पर वह प्रियतम के वियोग में रो उठता है—

"प्राण धन को स्मरण करते
नयन झरते, नयन झरते।"

निष्ठुर प्रियतम उसे छोड़ कर चले ही गये, वह हृदय में प्रिय छवि भी नहीं ले सका जो करुणा के घन बरसाने को गरजते थे वे न जाने किस हवा से उड़ गये, उसके नयन तो प्यासे ही रह गये, अब क्या धरा में धूल ही उड़ती रहेगी, क्या वह स्नेह धारा से गीली न होगी।

"तुम चले ही गये प्रियतम, हृदय में प्रिय छबि नहीं ली,
व्यर्थ ऋतु के दृश्य दर्शन, व्यर्थ यह रचना रसीली।
बरसने को गरजते थे वे न जाने किस हवा से,
उड़ गये हैं गगन में घन, रह गये हैं श्रवन नयन प्यासे,
उड़ रही है धूल धाराधर, धरा होगी न गीली।"

जीवन के पथ पर चलते-चलते दुःख का भार जब झुकने लगता है तो सहारे के लिए मन कातर हो उठता है और चरण रुकने लगता है, यही दशा निराला की भी हो रही है, ओ करुणाकर क्या तेरा स्पर्श, क्या तेरा स्नेह इस अभागे को नहीं मिलेगा? क्या मरु का यह स्तब्ध दग्ध तरु कभी नहीं खिल सकेगा? निराला की कातर जिज्ञासा है—

"मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा?
स्तब्ध, दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा?
मेरे दुख का भार झुक रहा,
इसीलिए प्रति चरण रुक रहा
स्पर्श तुम्हारा मिलने पर क्या
महाभार यह झिल न सकेगा?"

सब सहारों के टूट जाने पर, अपनी शक्ति के थक जाने पर जीव सर्वशक्तिमान् का सहारा पाना चाहता है। निविड़ वेदना के ऐसे ही क्षणों में अपनी हार मानकर अशरण शरण की करुणा की याचना करते हुए निराला ने कहा है—

"दुरित दूर करो नाथ,
अशरण हूँ गहो हाथ।
हार गया जीवन रण,
छोड़ गये साथी जन,
एकाकी नैश क्षण,
कण्टक पथ विगत पाथ।"

अन्ततः निराला ने "भक्ति आंसुओं पद पखार कर, नयन ज्योति आरति उतार कर, तन मन धन सर्वस्व वार कर" प्रभु के चरणों में आश्रय ले ही लिया। 'शबरी गज गणिकादिका' में ही अपनी गणना करते हुए प्रभु से 'काम' हरण करने की निराला की प्रार्थना है, क्योंकि वे चाहते हैं "जपू नाम, राम-राम! "उनका लक्ष्य सामान्य भौतिक दुःख कष्टों, आधि-व्याधियों से ही छुटकारा पाने का नहीं है, उनकी तो विनती है,

आदि-व्याधियों से ही छुटकारा पाने का नहीं है, उनकी तो विनती है,

"भवसागर से पार करो हे,
गह्वर से उद्धार करो हे।"

कभी-कभी भक्त को लगता है कि प्रभु मानों उसे भूल ही गये हैं, तभी तो उसकी सुधि तक नहीं लेते और इस अवस्था में वह अपने प्रेम लपेटे अटपटे शब्दों में उन्हे उपालंभ भी

देता है और, शीघ्र ही अनुग्रह करने का निवेदन भी करता है। निराला को भी लगता है कि प्रभु उसे भूल ही नहीं गये, बल्कि उसकी डाल नहीं, मूल को ही काट गये हैं, जब रवि की तीव्र किरण से विश्व जल रहा था, उस समय वे उसके छाया तरुवर पवन से उत्पन्न धूल ही डाल गये। तभी उससे मान भरे स्वर मे पूछा है—

"क्यों मुझको तुम भूल गये हो ?
काट डाल क्या, मूल गये हो।
रवि की तीव्र किरण से पी कर
जलता था जब विश्व प्रसर तर
तुम मेरे छाया के तरु पर
डाल पवन से धूल गये हो।" (अर्चना गीत ५४)

पहले निराला को लगा था कि नाथ ने हाथ पकड़ लिया है, आनन्द की वीणा बज उठी है, द्विविधा लजा गई है और विश्व साथ हो गया है। उस समय तक जैसे उसकी यह कामना थी, कि विश्व साथ रहे, अब उसकी यह कामना भी नहीं रही। प्रभु से मन की लाग लग जाने पर जग की वासना बासी पड़ गयी, अब तो भक्ति-गंगा की निर्मल धारा की मानस-काशी में उसे मुक्ति ही मिल गयी है—

"तुमसे लाग लगी जो मन की,
जग की हुई वासना बासी,
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति मानस की काशी।"

अब उसकी एक ही कामना है कि प्रभु से लगा हुआ उसका सहज मन न ऊब जाय, भले ही सुख का दिन डूब जाय, भले ही सारा जग रूठ जाय, किन्तु मन की मिली हुई यह गांठ न खुले, यह धन की राशि न लुटे, शुभानन की यह आन न धुले।

"सुख का दिन डूबे डूब जाय,
तुमसे न सहज मन ऊब जाय।
खुल जाय न मिली गांठ मन की
लुट जाय न उठी राशि धन की
धुल जाय न आन शुभानन की
सारा जग रूठे रूठ जाय।"

इसी स्थिति पर पहुँच कर उसे लगता है कि पहले रचना ही बदल गयी है अब तो दुख भी सुख का बन्धु बन गया है—

'दुख भी सुख का बन्धु बना
पहले की बदली रचना।'

अब उन्हें इसकी प्रतीति भी हो गया है कि जिसे साधारणतः सुख का अनुरंजन माना जाता है वही महादुःख है और यह यह सत्य ही कहा गया है कि जगत् जिसे दुःख कहता है उसी से वास्तविक सुख की प्राप्ति होती है। उन्हीं के शब्दों में—

"सुख के अनुरंजन दुःख महा,
दुख से सुख है यह सत्य कहा।"

प्रभु से नाता जुड़ जाने के कारण निराला को लगता है कि अब यह सारा भुवन ही उनका भवन हो गया है और समस्त दुःख ताप खो गया है—

'भवन भुवन हो गया,
दुःख ताप खो गया।'

यह सच है कि अब भी उसकी अनेक कविताओं में वेदना का क्रन्दन मिलता है किन्तु उन सबके बीच भी उनका स्वर मूलतः इसी अनुभूति को वाणी दे रहा है—

'हार तुमसे बनी है जय।'

निराला की अन्तस्थ करुणा व्यक्तिगत वेदना से उभर कर सामाजिक समवेदना में उससे भी निखर कर आध्यात्म-वेदना में···भक्ति में परिवर्तित हो गयी है। क्या इसे निराला का झुकना कहा जा सकता है ? टूटाहुआ व्यक्ति दुख भी सुख का बन्धु बना नही कहा करता, और यदि यह झुकना है तो उस क्षितिज का सा झुकना है जिसका चरण चुम्बन करने के लिये आकाश भी झुक जाता है।

हृदय की वृत्तियों का विस्तार परिष्कार और संस्कार करने वाली निराला की इन वेदनामयी कविताओ को पढ़ कर हम समझ सकते हैं कि आदि कवि का सान्द्रिक शोक श्लोकत्व प्राप्त कर जगत् का उद्धार करने वाली राम-कथा कैसे दे सका था, भवभूति यह कैसे कह सके थे, 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्,' अरस्तू ने यह क्यों माना था, कि चित्त के शोधन के लिए करुणा का उद्रेक अनिवार्य है।

—

निराला और देश प्रेम

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

निराला का साहित्य विशुद्ध स्वदेशी भूमि पर आधारित है, वह कवि प्राचीन संस्कृति का भक्त और गुणगायक है, भारतीय परम्परा प्राप्त संस्कारों का उसे अभिमान है, वह विदेशों से अन्ध अनुकरण की घोर निन्दा करता आया है, उसके जागरण काल में बंगला व हिन्दी दोनों में विदेशी रीति, नीति व साहित्य और दर्शन सभी के अनुकरण की प्रवृत्ति चल रही थी कवि ने इसका विरोध किया।

निराला हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर ही खड़ा है, यह कवीन्द्रता व अधिक विराटता शक्ति और 'गति' का कवि इसीलिए बन पाया। निराला की भारतीय ऐतिहासिक पुरुषों पर अतीत प्रेम पर लिखी कविताएं प्रमाण हैं कि कवि को देश की सन्ध्या, उषा, नद, लतादि निर्झर से प्रेम है, देशीय विचार दर्शन उसके जीवन का अभिन्न अंग रहा है, उनकी प्रेरणा के स्रोत विवेकानन्द, शङ्कर, तुलसीदास, उपनिषद तथा रवीन्द्र हैं। यद्यपि उन्होंने योरोपीय साहित्य का भी पढ़ा है, परन्तु उसके प्रभावों का अविकल अनुवाद प्रस्तुत न कर उन्होंने मौलिकता की रक्षा की है। स्वतन्त्रता की ऊष्मा से अभिमण्डित निराला देशी विदेशी दासता के विरुद्ध आज तक लड़ता रहा है। अन्य छायावादी कवियों की रंगीनी के साथ निराला में स्वतन्त्रता की भावना का नवागार श्वास प्राप्त है। अदम्य साहस, अपराजित स्वाभिमान उनकी कविता कामिनी को रणचण्डी बनाने के लिये पर्याप्त हैं। 'राम की शक्ति पूजा' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' प्रमाण है। हम आगे देखेंगे कि निराला राष्ट्रीयता के वैज्ञानिक विश्लेषण में समर्थ हुए हैं। उनका तुलसीदास सांस्कृतिक नवोत्थान के साथ साथ, समाज शास्त्रीय विशुद्ध व्याख्या प्रस्तुत कर, जातीयता व राष्ट्रीयता का स्वस्थ रूप सामने रखता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि निराला संकीर्णतावादी हैं। उदारता और व्यापकता, निजत्व की पूरी रक्षा के साथ वहां विद्यमान है। वह विश्व के साहित्य के भावों के आदान प्रदान को अभारतीय कहने वालों के लिए कहता है—

पश्चिम के लिये जिस तरह यहां के भावों की गहनता, त्याग, सतीत्व की शिक्षा आवश्यक है, उसी तरह वहां के प्रेम की स्वच्छन्दता, तरलता उच्छ्वसित वेग यहां वालों के लिये आवश्यक है। निराला में दोनों प्राप्त है)। इस समय वहां वालों का खूनी प्रेम भी शक्ति संचार के लिये आवश्यक हो गया है। साहित्य को जीवित रखने के लिये उसमें अनेक भावों अनेक चित्रों का रहना आवश्यक है, जबकि अपने स्थान पर सभी भाव आनन्दप्रद और जीवन पैदा करने वाले हैं पर हमारे साहित्य में क्या हो रहा है यह भारतीय है, यह अभारतीय, असंस्कृत। नस नस में शरारत भरी हजार वर्ष से सलाम ठोंकते नाक में दम हो गया, अभी संस्कृति के लिये मरते हैं? यह निराला का उदार सांस्कृतिक रूप जिसमें न अपने का तिरस्कार है न दूसरे से घृणा, उन्होंने बार बार कहा है, सबसे बड़ी आफत ढा रहे हैं, कुछ साहित्यक

सुधार पंथी ....सुधार व प्रोपेगेण्डा से साहित्य मंजिलों दूर है। निराला जी गौरव के गायक हैं पर रूढ़ियो के कायल नही—

निराला जी ने 'सामाजिक पराधीनता' शीर्षक लेख में स्पष्ट लिखा है।

इसके (हमारे कलह) मूल में प्राचीन शिक्षा है,
जो एक वक्त संस्कार थी और अब कुसंस्कार ॥

निराला जी पुरुष व स्त्री दोनों के लिए एक ही धर्म उपार्जन से लेकर संतान पालन तक चाहते हैं, पुरुष इस समय आधे हाथ से काम कर रहा है हम गुलाम हैं ही, हमारी स्त्रियाँ को भी गुलाम बना रखा है।' इस दृष्टि से सकीर्ण भारतीयतावादी चौंक सकते हैं पर कवि ने स्पष्टतः मनुस्मृति की गृहलक्ष्मी का रूप स्वीकार न करके जीवन की सच्ची सहचरी के रूप में ही नारी की महिमा को स्वर्गीय बनाने मे कोई प्रयत्न अवशेष नही छोड़ा। स्थूल मॉसल वर्णनों से ऊब कर साहित्य मे नारी की प्रतिष्ठा, सूक्ष्मतम चेतना की प्रतिनिधित्व करने वाली अव्यक्त सत्ता के रुप मे हुई। रीतिकाल मे सम्भोग के लिये ललक रही और छायावाद मे नारी के दिव्य दर्शन की झलक का चित्रण हुआ, कहीं प्रेम अस्फुट मनोंवृत्तियो का चित्रण हुआ और कहीं प्रेमोन्माद को अस्फुट शैली मे ही अभिव्यक्त कर दिया गया। निराला नारी को दिव्यता के साथ साथ यथार्थ के धरातल पर उसका स्वस्थ जीवन दर्शन भी दे सके हैं, वहाँ सीता और रत्नावली के चित्र हैं जो जीवन मे एक नूतन अध्याय खोलते हैं।

निराला ने कला के सम्बन्ध मे पूछे जाने पर कहा था—

'कला क्या है ?'

'कुछ नही'

'जो अनन्त है, वह गिना नही जा सकता, इसलिये 'कुछ नही' कहा, कला उसी की सृष्टि है,······ अनादि काल से सृष्टि को गिनने की कोशिश की जा रही है, पर अभी तक वह गिनी नही जा सकी······ यह एक-एक सृष्टि कला है, फलतः कला क्या है, यह बतलाना कठिन है,·····(यह) एक बांध है, उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है, जैसे ब्रह्म के अलग-अलग रूपो की बात नहीं कही गई, केवल सच्चिदानन्द कह दिया गया है, इसी को साहित्यिकों ने 'सत्यं, शिव सुन्दर' कहकर अपनाया है, बोध वह है, जैसी कला हो, उसके विकास-क्रम का वैसा ज्ञान इसके लिए प्राचीन और नवीन परम्परा भी सहायक है, और स्वजातीय और विजातीय ज्ञान के साथ मौलिक अनुभूति भी।'

कला की यह व्याख्या 'सच्चिदानन्दवाद' पर आधारित है, निराला जिस आदर्शवाद को मानते आ रहे थे उसी का परिणाम उनका कला के प्रति यह दृष्टिकोण है। कला एक बोध है, यह ठीक है पर वह निरपेक्ष्य नहीं है, इस ओर कवि का ध्यान नहीं गया कि किस प्रकार सामाजिक चेतना, व्यक्ति के बोध को बनाती है और तब वह बोध विभिन्न माध्यमो से प्रकट होता है, अतः कला अवर्णनीय, अवाङमनसगोचर तत्व नहीं है। कवि ने अन्यत्र मूर्ति को कला के लिये आवश्यक माना है।, जो भावनापूर्ण स्वॉग सुन्दर मूत खींचने मे जितना कृतिविद्य है—वह उतना ही बड़ा कलाकार है, इन मूर्तियों मे विराटता का लाना निराला

की कला की सर्वश्रेष्ठता का मापदण्ड मानते हैं। विराट रूपों की प्रतिष्ठा इसलिये आवश्यक है, 'रूप की सार्थक लघु विराट कल्पनायें संसार के सुन्दरतम रूपों से, जिस तरह अंकित हों, उसी तरह, रूप तथा भावनाओं का, आनन्द में सार्थक अवसान भी आवश्यक है, कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्कर्ष, इस तरह काव्य के भीतर से, अपने जीवन के सुख दुःखमय चित्रों को प्रदर्शित करते हुये परिसमाप्ति पूर्णता में होगी।'

अतः निरालाजी कला को रूप और भावना की समष्टि मानते हैं। छायावादी कला के पूर्व रूपों की प्रतिष्ठा प्रायः नाम मात्र को ही थी, क्योंकि सीधे उपदेशों या वर्णनों में रूपों के लिए स्थान ही कहाँ था, साथ ही भावना का नहीं, भावना के आभास का-'भाव के ज्वर', हाय हाय का बोलबाला रहता था। छायावाद में भावना का उच्छ्वसित रूप भी रहा और साथ ही रूपों की प्रतिष्ठा भी एक विराट चित्रफलक पर हुई। निरालाजी ने अन्तिम बात बहुत-सी महत्वपूर्ण बतलाई है कि जीवन के सुख दुःखमय चित्रों का प्रदर्शन और तत्पश्चात् उन सबकी पूर्णता में परिसमाप्ति, छायावादी कला की इससे अच्छी व्याख्या और क्या होगी? यह सुख दुःख की अभिव्यक्ति व्यक्तिवादी मनोवृत्ति को स्पष्ट करती है जिसमें व्यक्ति के विद्रोह, विषाद, मधु मुखर, उन्माद प्रमाद, का वर्णन होगा और पुनः एक पूर्ण व्यक्तित्व में उसका विलयन होगा, क्यों? क्योंकि व्यक्ति के असन्तोष के लिए तो व्यक्तिवादी-पूँजीवादी युग में स्थान है परन्तु उसका सामाजिक आधार लुप्त हो जाने के कारण विचारक उसको हाल 'शाश्वत शान्ति' में खोजने के लिये विवश है। फलस्वरूप उत्तेजित लहर सामन्ती मान्यताओं को चाल-स्खलित करती हुई आगे बढ़ती तो है परन्तु जब उसका कुछ सामाजिक उपयोग नहीं होता तो सीधी चिरन्तन सत्ता के समुद्र में जाकर लुप्त हो जाती है, छायावादी कला की 'दिव्यसत्ता' 'चिर विराम' के रूप में तभी प्रस्तुत की गई है!

कला के विकास के साथ-साथ साहित्य में नई भाषा भी विकसित होती है 'हरा' पेड़े-दार, मजबूत डण्ठल ही इसकी नवीन कला का चाहिये, कोमल व कठोर, आत्मा व प्राणों का ऐसा ही सम्बन्ध रहा है।' उक्त विश्वास के साथ निराला ने छायावाद के लिये जिस प्रौढ़ कलात्मक, भाषा का समर्थन किया था, वह गाँधीजी की हिन्दुस्तानी के विरुद्ध थी, निराला ने तब स्पष्ट कहा था भाषा क्लिष्टता से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न, हिन्दी की तरह, अपर भाषियों में नहीं उठते मैंने आज तक किसी को यह कहते न सुना, कि शिक्षा की भूमि विस्तृत होनी चाहिये, जिससे अनेकों शब्दों का लोगों को ज्ञान हो, जनता क्रमशः सोपानों पर चढ़े।

हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिये ललित शब्दावली की टाँग तोड़ कर लँगड़ी कर देने से लड़खड़ाती हुई भाषा अपनी प्रगति में पीछे ही रहेगी भावानुसारिणी कुछ मुश्किल होने पर भी भाषा समझ में आ जाती है गैर लोगों को अपने में मिलाने का तरीका भाषा को आसान नहीं, उसमें व्यापक भाव भरना और उसी के अनुसार चलना है[1] प्रायः यही बात 'प्रसाद जी' ने नाटकों की सरलता के विषय में कही थी कि नाटक मञ्च के लिये नहीं है, मञ्चों को नाटकों के स्तर तक उठाना चाहिये, उक्त विचारधारा का प्रभाव तभी तक रहा जब तक निराला 'रूप व भावना' के साधनों से साहित्य में विराट चित्र खड़े करते रहे, जब वे 'लघुता'

१—प्रबन्ध पद्म

की ओर प्रवृत्त हुयें, तव से वह भाषा भी अत्यन्त सरल और सहज लिखते हैं यथा युद्धकाल के वाद के प्रयोगों मे, यहाॅ उन्हें अपनी प्रिय 'ललित-पदावली' की चिन्ता नही रही। ललित भाषा के स्थान पर भाषा तीखी, नोकदार, चुभने वाली और विभिन्न प्रयोग-वहुला हो गई। गद्य को वे जीवन संग्राम की भाषा मानते हैं। अतः गद्य मे उनका यथार्थवाद अधिक आकर्षक और सफल हुआ है।

हमने पहले कहा कि निराला में विचारधारा का उग्र परिवर्तन नहीं मिलता, उनका चिर-प्रिय विश्ववाद आज तक उनका पीछा नहीं छोड़ सका, किन्तु जिस विराट ललित, व्यक्तिगत राग विरागमयी, 'पूर्णता' मे समाप्ति पाने वाली रूप भावनामयी छायावादी कला का विकास 'जुही की कली' 'तुलसीदास', यमुना के प्रति', संध्या सुन्दरी', 'तरंगों के प्रति' आदि कविताओं में हुआ था, वह आगे रुक गया। छायावादी कला को प्रौढ़ता की चरम-सीमा पर पहुॅचा कर जैसे 'लघुता' की ओर प्रवृत्त होता चला गया। यद्यपि 'मानवतावादी' होने के कारण कवि 'भिखारी,, 'विधवा जैसी रचनाएॅ' दे चुका था परन्तु इन प्रगतिवादी रचनाओं का युग तो आगे चल कर ही आया। विकास की दृष्टि से हम सामान्यतः दो भागों मे निराला के साहित्य को वाॅट सकते हैं। (१) सन् ३८ से पहले की रचनाएॅ (२) और उससे वाद की। सुविधा की दृष्टि से हम पूर्व काल को भी दो भागों में वाॅटे सकते हैं:—(१) १९१६ से १९३४ तक (२) १९३४ से १९३८ तक।

डा० रामविलास शर्मा ने उक्त ४ वर्षों के समय को सन्धिकाल नाम दिया है और 'सरोज स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा', 'वनवेला' आदि रचनायें संक्रमण-काल की मानी हैं। इनके अलकार छायावाद के हैं और व्यंजना नवीन है, इनमें दोनो युगों की सन्धि है, उसने वीर नायकों का चित्रण कर लिया था, अव जन साधारण की ओर झुका है, ऐसा उन्होंने कहा है [१]। वस्तुतः हम कोई दृढ रेखा सौंदर्यवादी कविताओ व जनवादी कविताओ के वीच नहीं खींच सकते क्योंकि सन ५० तक में निराला ने रहस्यमय-गीत लिखें हैं, यथा अर्चना में, परन्तु कवि का स्वर निश्चय वदला है अतः उक्त विभाजन को ही सुविधा के लिये स्वीकार कर हम आगे वढ़ते हैं। इस काल की प्रमुख रचनाएँ हैं—

'सरोज स्मृति' (१९३५) 'राम की शक्ति पूजा' (१९३६) 'वह तोडती पत्थर' (१९३५), हिन्दी के सुमनों के प्रति' (१९३७), 'वन वेला' (१९३७), 'स्मृति' १९३६, 'प्रेयसी' (१९३५), 'उक्ति' १९३७, तुलसीदास (१९३८)।

उक्त कविताओं में प्रेयसी, स्मृति आती नयन झरते, की व्यंजना पूर्णतया रोमाटिक काल की है जो कवि के जीवन व विलास जन्य उच्छवास को लेकर चली। तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा, में कथा के वहाने व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक ऊर्ध्वगति का वर्णन है, वाह्य-स्थूल वीरत्व के अन्तस मे जो मानसिक उल्लास रहता है उसकी प्राप्ति का उल्लेख है, जिसका माध्यम दोनो स्थानों पर नारी की मंगलमयी मूर्ति का बनाया गया है। व्यंजना की दृष्टि से मनुष्य को उदात्त भूमि पर ले जाने तथा उसमें अद्भुत कर्मशीलता जागृत करने, 'रावणों' के प्रहारों पर भी अविचलित रहने की राघवीय शक्ति प्राप्त करने के रूप में हम इन्हें संक्रमण काल की

(१, निराला—डा० रामविलास शर्मा

रचनायें भले ही कह लें परन्तु तथ्य यह है, कि वीर नायकों को वाह्य वीरता के लिये मनोवैज्ञानिक आधार देने की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के रूप में हमें इन कविताओं को लेना चाहिये, जैसे छत्रपति शिवाजी का पत्र (१६२२) की परम्परा 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' में समाप्त हुई हो। प्रतीक रूप में हम यह कह सकते हैं कि कवि राम के समान शोषक-रावणों से आतंकित है, आत्म-बल के लिए शक्ति पूजा की आवश्यकता है, और हनुमान तो निराला जी स्वय अपने को समझते भी है। इसी प्रकार तुलसीदास के रूप में कवि सांस्कृतिक सूर्य राहु ग्रस्त देखता है, उसके उद्धार के लिए भी आत्मबल को जगाया गया है। कठिनाईयों का आतंक इस काल में कवि पर अवश्य पूर्व काल से अधिक है, उसकी प्रिया की स्मृति सरोज की मृत्यु के रूप विनष्ट हो जाती है, भ्रान्ति व विह्वलता के इस युग में आत्म बल के सञ्चयन के लिये कवि एक ओर 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' को देता है और दूसरी ओर करुणा से आहत होकर 'सरोज स्मृति' व 'वनबेला' में पुकार उठता है—

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण मे गया हार,
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी (वन बेला से)
× × × ×
धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय,
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर,
" "
दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही॥ (सरोज स्मृति से)

प्रियजनों की मृत्यु आघातों तथा उससे भी अधिक अर्थ के अभाव से कवि का स्वर कितना विषण्ण हो गया है! कवि चाहता था, किन्तु धनाभाव में अपनी पुत्री के लिये औषधि का भी प्रबन्ध न कर सका, अत एक तो युग व्यवस्था के प्रति उसमें घोर तिरस्कार की भावना बढ़ती गई तथा दूसरे साहित्य में, जीवन में, सतुलन कम होता गया 'व्यथा' और 'विश्रान्ति' मानसिक विक्षेप की जननी है। निराला ने इस समय के पश्चात् जन जीवन पर लिखा। यद्यपि कभी कभी 'अज्ञात प्रिया' की स्मृति में भी अश्रु बहा लेते रहें। सन १६३६ से १६४८ तक का समय कवि के लिए और घोर अर्थाभाव का युग रहा, सम्मेलन की उपेक्षामयी नीति गांधी, नेहरू की हिन्दी विरोधी कार्यवाहियों से निराला को अत्यन्त क्षोभ हुआ था। युद्ध कालीन परिस्थितियों में बाजार बन्द थे, निराला को पहले उन्नाव और वहाँ से करवी नामक

स्थान को भागना पड़ा। वहाँ वे बीमार रहे और उस रुग्णावस्था ने कवि के पूर्व मानसिक विक्षोभ को घनीभूत कर 'पागलपन' में बदलना प्रारम्भ कर दिया, इस अवधि मे 'अणिमा', बिल्लेसुर बकरिहा, 'कुकुरमुत्ता' लिखे गये, जो स्पष्टतया कवि की परिवर्तित मनोवृत्ति दिखाने के लिये पर्याप्त है।

सन ४३ के पश्चात् कवि का आत्मविश्वास पुनः दीप्त हो उठता है और आज निराला प्रगति युग का सर्वश्रेष्ठ व्यंगकार बन गया है। उसने बिल्लेसुर बकरिहा' 'कुल्लीभाट' चतुरी चमार, सुकुल की बीवी' रेखाचित्रों, कथाओं, उपन्यासों तथा 'नये पत्ते, 'कुकुरमुत्ता' आदि की व्यंग्यप्रधान कविताओं से जन वादी साहित्य को अद्भुत देन दी है। व्यष्टिवादी चेतना जिसका पूर्ण अभ्युदय सन ३८ तक हो चुकता है अब समिष्टवाद के अंचल से क्रांतिकारिता के सूत्र पर अपनी नूतन व्यंयमयी मुद्रा से प्रलयकर तान्डव करने में लवलीन है। किन्तु साथ ही आत्मवादी चिन्ता करुणा, श्रद्धा, विनय और रहस्य स्पर्श से सम्बन्ध भी बनाए रखना चाहता है, यथा 'अर्चना के गीतो में' जिसके सब गीत १९५० के ही लिखे हुये हैं, कुछ गीत 'गीतिका' की परम्परा मे हैं, कुछ क्रान्तिकारी स्वर मे बाँधे गये हैं। एक ओर 'नर को नरक त्रास से उबारते' चलने की भी प्रार्थना की गई है, तो दूसरी ओर वही कवि पुकारता है :—

"भजन कर हरि के चरण मन, पार कर मायावरण, मन
कठिन यह संसार, कैसे विनिस्तार
सत्य में झूठे, कुहरा भरा संसार
× × × ×
आँख लगाई—
तुम से, जबसे हमने चैन न पाई—अर्चना

कहीं निर्विकार को फटकार बताई गई है, कहीं उसी के प्रति आत्म-समर्पण है, यह परम्परा का निर्वाह नहीं, कवि का दिव्यसत्ता पर अडिग विश्वास है, जहाँ से वह अद्भुत दृढ़ता साहस और संयम प्राप्त करता रहता है।

निराला और औचित्य वाद-विचार के इस विकास के साथ-साथ विचार का स्वरूप इतना सीधा नहीं है जो हम उसे सहसा प्रगतिशील या प्रतिक्रियावादी के घेरों में बन्द कर सकें, क्योंकि आदर्शवादी विचारधारा से पूर्ण विलगाव तो निराला जैसे ब्रह्मवादी का होना असम्भव है। प्रगतिवाद के सम्बन्ध में निराला जी का विचार यह है कि प्रगतिवाद संघबद्ध साहित्यिक चेष्टा, है और संघबद्धता को वह पुण्य मानते हैं—

'हम उसे ही पुण्य मानते हैं जिसमें अधिक संख्यक मनुष्य को लाभ हो, जिससे वे सुखी हों।

साथ ही वे कहते हैं—परन्तु इतने वैषम्य के भीतर एक साम्यावस्था है, आज तक संसार के बड़े-बड़े मनुष्यों ने उसी की खोज की है, जीवन की अमरता और बचने का रास्ता वहीं से निकलता है।

(१) प्रबन्ध-पद्म से

आगे वह प्रगतिवादियों के साम्य और अपने चिरप्रिय साम्य की व्याख्या करते हुये कहते हैं—यह स्थान जहाँ मौलिकता की भूल 'साम्य' स्थित है, यथार्थ स्वतंत्रता है, इसी की बाहरी प्रेरणा, बाहर मनुष्यों को अधिकार वाद में स्वतंत्र करती है ‥ ‥ यही स्थान हमारे समाज के अन्तःकरण में आज नहीं पाया जाता, इसीलिए उसके मनुष्य मौलिक विचारों से रहित जड़ अधिकारों की रक्षा के लिए व्यस्त हो रहे हैं।'

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि निराला यथार्थ स्वतन्त्रता आन्तरिक साम्य भावना, अद्वैत स्थिति को मानते आ रहे हैं जिसकी बाह्य प्रेरणा उनके व्यंग्यों व जनवादी रचनाओं में दिखाई पड़ती है, वे केवल बाह्य स्वतन्त्रता और समानता को, जड़वादी विचारक की भांति नहीं चाहते सच्चे आत्म-वादी चिन्तक की भाँति बाह्य व आन्तरिक दोनों प्रकार की समता प्राप्ति ही उनका लक्ष्य है।

सर्व हारा साहित्य के सम्बन्ध में निराला जी का स्पष्ट मत है—

'अभी हमारा साहित्य इतने पीछे है कि उसी में रहकर उसी के अनुकूल चित्र खींच रहने से हम आगे नहीं बढ़ सकते, कुछ समाज के ही अनुरूप खींचने के पक्ष में हैं, यह उनकी अदूरदर्शिता है, हम पक्ष में भी हैं और विपक्ष में भी, जहाँ तक हमें औचित्य दीख पड़ेगा, हम पक्ष में हैं अनेकानेक भावों से ही साहित्य की नवीन प्रगति है और उसी की वृद्धि साहित्य'' औचित्यवादी निराला इसलिये अर्चना में कहता है—

कैसे हुई हार, तेरी निराकार?
जीवन बिन अन्न के है विपन्नाव
कैसे दुसह द्वार से करे निर्वार!
यही पाइये—
छूटता है मेरा अधिवास
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास

अन्न की प्रथमता के साथ ही ब्रह्म की प्रमुखता रह सकती है अतः ब्रह्म को चुनौती उसकी निरपेक्षता के कारण है।

रोटी की बात भूलने से निर्विकार ब्रह्म की हार निश्चित है इस सत्य को दिखाने के लिए ही ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं। निर्विकार ब्रह्म में आज भी कवि का अडिग विश्वास है।

'कुकुल की बीबी' में निराला जी ने लिखा है भलाई और बुराई में भी सच पूछिये तो परमात्मा की दुहाई देना एक चाल हो गई है। परमात्मा को किसी ने देखा नहीं, सिर्फ सुना है। सुनते सुनते लोग संस्कार की रस्सी में बँध गये हैं और बात बात में परमात्मा की रट लगाते हैं, मैं इसे सब समझता हूँ, यों निर्विकार ईश्वर मानना पड़ता है। पर उसे किसी बधाई की क्या अपेक्षा और गलतियों की क्या परवाह ?''

यथार्थ से लापरवाह लोगों के लिये कितनी बड़ी फटकार है और साथ ही अपने विश्वास की अभिव्यंजना भी। इस सम्बन्ध में इतना निवेदन और आवश्यक है कि आलोचनाओं में उनके साथ कहीं-कहीं घोर अन्याय हुआ है, जहाँ भ्रान्तियाँ नहीं हैं, वहाँ भ्रान्तियाँ

(१) क्या देखा कहानी से (प्रकाशन काल १६४१)

खोज ली गई है, जहाँ अंतर्विरोध नाम मात्र को भी नहीं है, वहाँ असंगतियाँ और अंतर्विरोध ढूँढ लिए गए है।

'गीतिका' में एक कविता है—'कौन तम के पार रे कह'। इसका बिना अर्थ स्पष्ट किए ही आलोचक महोदय ने प्रमाणित कर दिया है कि इस कविता मे कवि ने उस दिव्य सत्ता का निषेध किया है, इस जड प्रकृति से परे क्या है? इस गीत में ज्ञान जन्य सृष्टि के सिद्धान्त को अस्वीकार किया गया है, मनुष्य का ज्ञान, उसकी चेतना, उसका आनन्द जड़ प्रकृति के विकास से ही सम्भव हुए हैं, प्रकृति मे गुणात्मक परिवर्तन हुए हैं, आतप जल बन जाता है, उपल द्रवित होकर नीहार बन जाता है, इसी प्रकार एक गुणात्मक परिवर्तन से चेतना व आनन्द की भी सृष्टि हुई है, अतः देवी सत्ता की कल्पना आवश्यक नही है—

इस प्रकार के अर्थ से तो वेदों को भी मार्क्स-दर्शन का व्याख्याता सिद्ध किया जा सकता है, सृष्टि-विकास की व्याख्यायें वेदो व उपनिषदों मे विभिन्न प्रकार से दी गई है, इस विराट ब्रह्मांड के ऋषियों ने महान आश्चर्य के रूप मे देखा था। उन्होने परमाणुओं की खोजकर सृष्टि विकास में उनकी उत्पत्ति का क्रम भी बतलाया, कभी आकाश को प्रथम स्थान दिया, कभी प्राण को, कभी अग्नि को और कभी जल को और साथ ही यह जिज्ञासा भी प्रकट की गई है कि कोई नहीं कह सकता कि किस तत्व का सर्वप्रथम जन्म हुआ होगा? उस अनीह, सर्वशक्तिमान, दिव्य सत्ता का रहस्य समझना दुःसाध्य है, सृष्टि विकास के सबन्ध में यह जिज्ञासा व रहस्य की भावना आगे कवियों मे भी अभिव्यक्त होती रही।

इस गीत की अर्थ-अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

कवि प्रश्न करता है, कि तम, अंधकार या अज्ञान की सीमा कौन लाँघ सका है। सब कुछ माया के बन्धन में बँधा हुआ है, कौन इस अन्धकार-अज्ञान के पार जा सका है, यह स्थावर, जगम, काल प्रवाह के परिणाम है, आकाश ही घनीभूत होकर मेघ धारा बनाता है। (सूक्ष्म आकाश स्थूल होकर चारो तत्वों मे परिणत हो जाता है) हृदय के सरोवर के तट कमलों की गंध से व्याकुल हैं, सरोवर की लहरें, ही बाल है और कमल ही मुख हैं, जिस पर किरणें पड रही हैं. आनद रूपी भौंरा स्पर्श का चुभा तीर हर रहा है, यह तीर सौन्दर्य का है (तीर के निकालने से, हरने में भी एक सुखद स्पर्श होता है) आनन्द रूपी भौंरा बार-बार गुंजार रहा है. (यहाँ एक ही सरोवर मे पाँचों तत्वो का सन्निवेश है, गंध क्षिति का गुण, लहर जल कमल रूप-अग्नि,स्पर्श-वायु, गूंज-आकाश, इस प्रकार पंचतत्वो की आनन्द प्रियता में अन्धकार की प्रदर्शन कला पूर्ण ढंग से किया है) दूसरे स्टेंजों में उदय, अस्त और रात्रि के चित्र लिये गये हैं और पूछा गया है कि ये हर एक अलग-अलग सुख को बोध कराते हुए सार हैं या आसार। अन्तिम स्टेंजों में कहा गया है, कि आतप के कारण ये ही जल बरसता है। पाप के कारण ही मनुष्य निष्कलुष होने का अवसर पाता है, कोमल बनता है,

(१) निराला—डा० रामविलास शर्मा
(२) प्रश्नोपनिषद्।
(३) आप एव इदमग्र आसुः-बृहदारण्यक उपनिषद्।
(४) छान्दोग्य उपनिषद

जो पत्थर है अशिव है वही मगल है, शिव है, गला हुआ जल ही बर्फ तथा कठोर पत्थर बनता है, यहाँ कवि ने स्पष्ट सृष्टि की उत्पत्ति माया से दिखाई है, पच भूतों का जन्म और विकास अपने आप नहीं होता, वह माया के कारण है। इस माया ने इन पचतत्त्वों के मिश्रण ने विभिन्न सुन्दर वस्तुएँ निर्मित कर दी हैं, यद्यपि यह माया है, अज्ञान है पाप है, भ्रम है, पर कवि के अनुसार भ्रम में से ही भ्रम को दूर करने का मार्ग खोजता है किन्तु यह भ्रम यह अज्ञान यह तम कौन पार कर सका है—

कौन तम के पार रे कह।

यहाँ वस्तु स्वाभाविक जिज्ञासा है, जो सृष्टि के रहस्य के प्रति कवि के मन में स्वत जाग्रति हुई है, यहाँ आतप से जल और उपल से नीर बनने की प्रक्रिया बतला कर मार्क्स के गुणात्मक परिवर्तन की व्याख्या कवि ने प्रस्तुत नहीं की है, सृष्टि के पच भूतों के इन गुणात्मक परिवर्तनों पर ऋषियों ने विभिन्न स्थानों पर लिखा है और फिर भी जिज्ञासा प्रकट की है। उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सृष्टि के विकास का ज्ञानजन्य नहीं माना गया है, ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कहा गया है

> को अद्धावेद क इह, यचत्कुत आजाता कुत इय विसृष्टि।
> अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा, को वेद यत आबभूव॥
> इय विसृष्टिर्यत आबभूव, यदि वा दधे यदि वा न।
> यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अगवेद यदि वा न वेद॥
>
> ऋ० अ० ८। अ० ७। व० १७।

'सचमुच कौन जानता है और यहाँ कौन कह सकता है कि (यह सब) कहाँ से उपजा, और इस विश्व की सृष्टि कहाँ से आयी, देवताओं की उत्पत्ति पीछे की है और यह सृष्टि पहले आरम्भ हुई, फिर कौन जान सकता है, कि यह सब कैसे आरम्भ हुआ, वह वेदों को ही कैसे ज्ञात हुआ, जिससे वह विश्व की सृष्टि आरम्भ हुई, उसने यह सब रचा है, या नहीं रचा है अर्थात् उसकी प्रेरणा के बिना ही आप ही आप आ गई है? परम व्योम में जिसकी आँखें इस विश्व का निरीक्षण कर रही है वस्तुत वही जानता है, या शायद वह भी नहीं जानता।'

क्या यह वेद का, गीतिका के रहस्यवादी गीतों में अन्तर्विरोध देखने वालों के अनुसार, सदेहवाद नहीं है? क्या सृष्टि के रहस्य के सम्मुख आत्म समर्पण करता हुआ ऋषि सशयात्मा नहीं बन रहा है? क्या कि जब किसी पर विश्वास नहीं जम रहा है तो 'जड़वाद' ही अन्तिम शरण है।

परन्तु खेद है कि इस प्रकार निराला के विषय में ठीक विश्लेषण न कर, व्यर्थ भ्रम फैला कर हम ज्ञान की प्रगति को रोकते हैं, वैज्ञानिक विवेचन से करते हैं, हमें पूर्व और उत्तर

१—गीतिका के उक्त गीत में जो आतप से जल आदि की उत्पत्ति बतलाई गई है, वह प्राचीन छान्दोग्य उपनिषद की परम्परा में ही है। वहाँ भौतिक तत्त्वों में प्रारम्भिक तत्त्व तेज को माना गया है उसी से जल और फिर उससे अन्य पदार्थों की उत्पत्ति बताई गई है।

पद्यों को देखना होगा ? क्या गीतिका में और भी गीत हैं जिनमें ज्ञान जन्य सत्ता के समान्तर कवि ने परमाणुओं द्वारा स्वयं विकास दिखाकर सृष्टि क्रम को समझाया हो ? नहीं, तब फिर एक ही पद में निराला क्यों भटका ? निराला कहीं संशयात्मा नहीं हुआ, हमने बराबर दिखाया है कि जहाँ कवि ब्रह्म को सीधी चुनौती देता है वहाँ अविश्वास उसका कारण नहीं अपितु वहाँ सापेक्ष्यता और निरपेक्ष्यता का प्रश्न है। समाज से निरपेक्ष्य रह कर कवि के शब्दों में लापरवाह लोगों का निर्विकार ब्रह्म यदि कवि के उपहास का प्रतीक न बने तो और क्या हो ? जिस ब्रह्म की इच्छा से यह सृष्टि बतलाई जाती है उस सृष्टि के प्रति लापरवाह कहना तो कवि के विश्वास के विरुद्ध है। विवेकानन्द की बात हम तीसरी बार दुहरा रहे हैं पहले रोटी फिर धर्म'। 'किन्तु यहाँ उस यथार्थ की भी कवि को चिन्ता नहीं है, यहाँ कवि विशुद्ध रहस्यानुभूति के मार्ग पर है, जहाँ कभी आभास, कभी उस चेतना सत्ता के प्रतिबिम्ब की झलक पाकर कौतूहल-विस्मय, कभी आत्म समपर्ण, कभी आत्म-प्रिया के विरह व मिलन के अनुभव आदि का वर्णन रहता है, 'कौन तम के पार रे कह' गीत भी उन्हीं गीतों में से एक है, जब आलोचक के अपने साँचे मे कवि नहीं बैठा पाता, तो उसके काव्य शरीर को तोड़ने मरोड़ने से कवि की आत्मा को कष्ट अवश्य होगा, आखिर ऐसी आवश्यकता ही क्या है कि बलात् निराला को संकीर्ण साँचे मे फिट किया जाय ? क्या निराला के प्रगतिवादी होने के लिये अनिवार्य है कि उन्हें जड़वादी ही सिद्ध किया जाय ? हमारा तो विचार यह है कि निराला जड़वादी नहीं है, न सिद्ध किया जा सकता है।

उसका मानवतावाद उसके सम्पूर्ण निजी विश्वासो के साथ क्रांतिकारी स्फुलिगों की समष्टि है, उसका अध्यात्मवाद उसकी प्रगतिशीलता के लिये अधिकांश में सहायक बनकर ही आया है, क्यों कि वह स्थितप्रज्ञ बनकर समाज से तटस्थ नहीं रहा, अपनी भैरव हुंकार से समाज विरोधियों को हिलाता रहा, मानव में साहस और पुरुषार्थ भरता रहा है।

निराला की और भी अपनी सीमायें हैं जो उनकी प्रगतिशील रचनाओं के साथ चलती हैं। परन्तु सन ४० के बाद कवि का स्वर मुख्यतः जनवादी हो गया, इसमें संदेह नहीं है, किन्तु अपने विश्वासो के साथ उन विश्वासों को हमने ऊपर दिखाया है, निराला में सबसे प्रगतिशील तत्व है मानव प्रेम। कवि मनुष्य की दुर्दशा देख कर पागल हो उठता है, व्यक्तिगत रूप से शत-शत आर्थिक अभावों और दुश्चिन्ताओं में पला हुआ। यह कवि इतना अधिक संवेदनाशील हो गया है कि मनुष्य मात्र के प्रति उसमे ममता का सागर उमड़ रहा है, इसीलिये मानवता के अभिशाप, शोषको, थोथे दार्शनिको, लापरवाह ईश्वर वादियों, दम्भी बगुलाभक्तों तथा प्रवंचना-पटु नेताओ का वह घोर शत्रु है इसीलिये मनुष्य के मूल आर्थिक प्रश्न को झुठलाने वालों को वे फटकार पिला देते हैं। शूद्रों के प्रति जो अनाचार होता आ रहा है उसके वे कटु आलोचक है, उन्होंने भारतीय समाज का विश्लेपण बड़ी पैनी दृष्टि से किया है, उनके अनुसार द्वापर से उच्चवर्ण वालों का अभिमान बढ़ता गया। बुद्ध ने उनके दुष्प्रभाव को कम किया, पर शंकर की दिग्विजय से ब्राह्मणवाद का पुनः अभ्युदय हो गया, रामानुज ने हृदय धर्म की स्थापना की, परन्तु अनेक देवी देवताओं की उपासना के साथ भारतीयो का पतन होता गया, उच्चवर्णों के अन्याय से ही शूद्र मुसलमान हो गये, उद्योगों के

विकास ऐनि   स्ता सत्य के ठेकेदारों (उच्चवर्ण वाला) की सन्तान कलकत्ते में जमादारी व बम्बई में भैयागीरी करने लगी।'

निराला का विश्वास है कि 'शूद्र शक्तियों के उठने से ही भारत का शीश उन्नत होगा। भारत तभी तक पराधीन है, जब तक ये नहीं जागते।'

मनुष्यता के वे इतने बड़े हामी हैं कि 'कुल्ली भाट' के रेखाचित्र में अपनी छायावादी कला विचारधारा के सम्बन्ध में कहते हैं—

'अधिक न सोच सका, मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है, व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न, कुल्ली धन्य है, वह मनुष्य है   मैं ईश्वर सौन्दर्य, वैभव व विलास का कवि हूँ फिर क्रांतिकारी!!!'

इस प्रकार कवि व्यक्तिवादी अवगुण्ठन से निकल कर यथार्थ सामाजिक भूमि पर बढ़ता जाता है, सन ४० के बाद की रचनाओं का मुख्य स्वर 'जनवादी', है, उनकी अपनी सीमाये हैं किन्तु वे सामाजिक सम्बन्धों को, समाज के आर्थिक आधार को खूब समझते हैं, आज की व्यवस्था के दोष उन पर स्पष्ट हैं। अत उनके विरुद्ध मुक्त होकर सीधा विद्रोह करना केवल एक कवि निराला का कार्य है, 'पन्त व महादेवी' में मानवतावादी स्वर अवश्य है पर निश्चत रूप से उसमें वह आग नहीं है जो "निराला" में है। कला का मधुर कोमल अंचल छोड़ कर अनगढ़ यथार्थ के रोडों से टकराता हुआ निराला का सृजनन्द रूढ़ियों के कगारों को काटता हुआ, समाज के आवछनीय तत्वों पर कीचड उछालता हुआ, विकृतियों को व्यंग्य लहरों से पीटता हुआ 'हर हर' करता बढ़ रहा है, यह बात दूसरी है कि उसका गन्तव्य चेतना का वह महासागर है जिसे कवि अपने विश्वास से इस प्रपंच का मूल कारण समझता है।

निराला की अलंकार-योजना

प्रो० युगल किशोर सिंह 'श्याम'

काव्य में सौन्दर्य की सर्जना करने वाले प्रसाधनों में अलंकार ही सर्वोपरि हैं। किंतु अलंकार काव्य के बाह्य आभूषण नहीं, वे तो उसके अवयव ही हैं, जो कर्ण के कवच-कुडल के सदृश उसके साथ ही उत्पन्न होते हैं, और उनके सौंदर्य में चार चॉद लगा देते हैं। इन अलंकारों की तुलना पेडो और लताओं के मनोहारी पुष्पों से की जा सकती है, जो उन्हीं पेड़ों-लताओं से उत्पन्न होकर उनके प्रकृति रूप-लावण्य को और भी चमत्कृत कर देते है। वे पुष्प शोभा के बाह्य उपकरण नहीं कहे जा सकते। साराश यह कि अलंकारों को काव्य-सौन्दर्य का बाह्य प्रसाधन मानना एक बहुत बड़ी साहित्यिक भ्रान्ति है। अलंकार काव्य की आत्मा के रूप में भले ही मान्य न हो, वे काव्य के अति-सुन्दर अवयव अवश्य हैं।

अलंकारों के बिना कविता-कामिनी का रूप-विन्यास रसिकों के चित्त को लुभा ही नहीं सकता। वामन ने तो स्पष्ट घोषणा कर दी है—'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' अर्थात् काव्य का ग्रहण ही अलंकारों से होता है। अलंकारो का महत्व इसलिए भी अधिक है, चूँकि उसमें लाक्षणिकता का विशेष पुट रहता है। अधिकांश के मूल में लक्षणा ही होती है, और जहाँ पर प्रयोजनवती लक्षणा होती है, वहाँ पर व्यंजना भी अनिवार्य रूप से रहती ही है, क्योकि लक्षणा का प्रयोजन ही व्यंग्यार्थ का रूप धारण कर लेता है। तात्पर्य यह कि अलंकारों के प्रयोग से काव्य में लाक्षणिकता एवं व्यजकता का समावेश होता है और इस प्रकार उत्तम काव्य की सृष्टि होती है। उदाहरण के लिए रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारो में क्रमशः सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा ही तो होती है। अतः यह निर्विवाद है कि अलंकारों के बिना काव्य में चारुता, मनोरजकता, वंकता एव चमत्कारिता आ ही नहीं सकती, और केशव की ये अमर पक्तियाँ भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करती हैं :—

जदपि-सुजति सुलच्छनी, सुवरन सरस सुवृत।
भूपन बिनु न विराजई, कविता, बनिता, मित्त ॥

यह सब कहने का तात्पर्य यह है कि सुकवि के काव्य में अलंकारों की विद्यमानता अनिवार्य है। हिन्दी के प्राचीन काव्य की तो बात ही निराली है, आधुनिक युग की कविता-कामिनी भी अलंकारो से ही सामाजिकों तथा रसिकों के चित्त को लुभाती और ललचाती है। निराला आधुनिक युग के एक महाकवि हैं। उनकी प्रेयसी कविता रानी भी अपने अमूल्य अलकारो के कारण ही सहृदयो के हृदयों की हारिका बनी हुई है। निराला का काव्य-रत्नाकर अनेक उत्तमोत्तम अलंकार-रत्नो से जगमगा रहा है। उन्हीं में से कुछ विशेष प्रभावान् रत्नो की चयनिका पाठकों को भेट करना मेरे इस निबध का एक मात्र प्रयोजन है।

सर्वप्रथम अलंकारों की रानी उपमा के ही दर्शन निराला-काव्य में क्यों न कर ले? 'परिमल' की 'उसकी स्मृति' शीर्षक कविता में कवि को किसी सुन्दरी रमणी की स्मृति होती

है और फिर भावावेश में वह उपमाओं की लड़ी सी (मालोपमा) गूथ देता है। उस रमणी की मधुर मुस्कान की अनेक उपमाओं का ध्यान दे लीजिये :—

मृदु सुगन्ध सी कोमल दल फूलों की
शशि किरणों की सी वह प्यारी मुस्कान
स्वच्छन्द गगन-सी मुक्त, वायु सी चचल,
खोई स्मृति की फिर आई-सी पहचान,

यहाँ 'सुगध सी कोमल' निराला की निराली उपमा है। उसकी चाल की उपमा लघु लहरों से दी गई है —

लघु लहरों की सी चपल चाल वह चलती

उस सुन्दरी के लहराते उरझे काले बाल कवियों की मृदुल कल्पना के जाल जैसे मनोमोहक प्रतीत होते हैं —

मन्द पवन के झोंकों से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल

केश-कलाप की कल्पना जाल से दी गई नवीन उपमा कितनी सटीक है !

और पुन स्वय उस लावण्यवती की उपमा मानस मदिर प्रतिमा से दी गई है —

वह विचर रही थी मानस की प्रतिमा-सी।

यह उपमा भी अपनी नवीनता एव मधुरता से मन को मुग्ध कर लेती है।

उसी गोरी बाला की एक और उपमा का रस स्वादन कीजिये —

क्या जाने किसके लिए यहाँ आई थी
वह सुर सरिता सैकत सी गोरी बाला।

यह उपमा भी निराला की एक नवीन और मौलिक उद्भावना है। सुर सरिता-सैकत सी में अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है।

इस कविता की अतिम पक्तियों म रूपकातिशयोक्ति, विभावना (प्रथम) तथा विरोधाभास की त्रिवेणी हृदय को बरबस मुग्ध कर देती है—

वह कली सदा को चली गई दुनियाँ से,
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त।

उस नायिका तथा उसकी विरुदावली के उपमान क्रमश कली और सौरभ हैं। सिर्फ इन्हीं का उल्लेख किया गया है। अत रूपकातिशयोक्ति है। कारण रूप कली की अनुपस्थिति कार्यरूप सौरभ का दिगत में प्रसार होने से प्रथम विभावना है। कली के अभाव में सौरभ की उपस्थिति विरोध कथन जैसी मालूम पड़ती है, किन्तु यहाँ विराट् की मिथ्या प्रतीति है। किसी विशिष्ट-गुण-सम्पन्न व्यक्ति के निधन के पश्चात् भी उसकी कीर्ति लता अपनी सुगन्ध से विश्व को आप्लावित रखती ही है। इसी प्रकार ध्यान पूर्वक देखने पर विरोध का शमन हो जाने के कारण विरोधाभास है।

इन्हीं पक्तियों में प्रकारान्तर से अन्योक्ति भी सिद्ध की जा सकती है। किंतु मुझे यहाँ रूपकातिशयोक्ति का रूप ही प्रधान जैसा लगता है। किसी सुन्दरी नव बाला का कली से

सुन्दरतर उपमान और हो ही क्या सकता है? सुन्दरी के लिये कली का उपमान काव्य में सुविख्यात और लोकप्रिय भी है।

मालोपमा का सौंदर्य 'विधवा' शीर्षक कविता मे भी देखने को मिल जाता है:—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

इष्टदेव के मंदिर की पूजा, शात दीप-शिखा, क्रूर काल-ताण्डव की स्मति रेखा और टूटे तरु की छूटी लता से भारतीय विधवा की उपमाएँ कितनी सम्यक एव मर्मस्पर्शिनी हैं। इनमें भारतीय विधवा जीवन की सारी कारुणिकता, विवशता एवं शुचिता साकार हो उठी है। इनको हृदयंगम कर हृदय करुणा-विह्वल हो जाता है। ये उपमाएँ भी निराला की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इनमें निराला की काव्य-प्रतिभा मानो शतशः मुखरित हो उठी है।

कविता-कामिनी के परिधान पर उपमा के दो-चार नयनाभिराम छींटे और भी देखिये—

आँखें अलियों सी
किस मधु की गलियों में फँसी
(जागो फिर एक बार)
बाल-रवि-किरणों से हँसते नव नीलोत्पल
(पचवटी प्रसंग)

अब अलंकारराज रूपक की रूप-छवि का अवलोकन कीजिये। 'गीतिका' के एक गीत में एक सूखी डाल और पार्वती का रूपक कितना उपयुक्त है!

सूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी!
देख रहती करती तप अपलक,
हीरक-सी समीर-माला जप,
शैल सुता अपर्ण-अशना,
पल्लव-वसना लेगी—
वसन वासन्ती लेगी।
हार गले पहनों फूलों का,
ऋतुपति सकल सुकृत कूलों का,
स्नेह सरस भर देगा उर-सर
स्मरहर को वारेगी
वसन वासंती लेगी।

इस सांग रूपक के साथ ही-साथ 'हीरक-सी समीर माला' में उपमा और 'स्नेह' में श्लेष के सौंदर्य की अनुभूति भी कीजिये।

एक दूसरे गीत में भारत माता का एक सुन्दर रूपक (सांग रूपक) देखिये —

भारति, जय,जय विजय करे!
कनक, शस्य, कमल धरे।
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ-भरे।
तरु-तृण लता बसन,
अचल में, खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल कण
धवल-धार हार गले।

रूपक के कतिपय निदर्शन और भी लीजिये —

जीवन प्रसून यह वृन्तहीन
खुल गया उषा नभ में नवीन,
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर
बह चलीं-चतुर्दिक कर्म लीन।
—('परिमल' की 'प्रभाती')

गगन घन विटपी, सुमन तन ग्रह, नव ज्ञान
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना-वसन परिधान
कौन तुम शुभ किरण वसना ?
मदमय भर अङ्ग-गंध मृदु
बादल अलकावलि कुंजित ऋजु,
तारक हार, चन्द्रमुख, मधुऋतु
सुकृत पुंज अशना—

'रहा तेरा ध्यान' शीर्षक इस गीत में प्रकृति का चित्रण प्रेयसी के रूप में किया गया है।

उपर्युक्त रूपकों में जूही डाल, भारत भूमि, प्रकृति आदि का मानवीकरण किया गया है। यह मानवीकरण पाश्चात्य साहित्य में एक अलंकार के रूप में मान्य है, जिसे आधुनिक कवियों ने हृदय से अपना लिया है। निराला-काव्य में मानवीकरण के सुन्दर उदाहरण अधिकता से मिल जाते हैं। एक सुन्दरी के रूप में संध्या का मानवीकरण देखिए —

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे धीरे।

अवश्य ही यहाँ रूपक और उपमा की योजना के कारण मानवीकरण की शोभा और भी निखर उठी है। इसी प्रकार के सुन्दर मानवीकरण 'यमुना के प्रति' 'तरंगो के प्रति' 'जलद के पति' 'शेफालिका' 'नर्गिस' आदि कविताओं में बिखरे पड़े हैं। आधुनिक काव्य में मानवीकरण तथा प्रकृति के प्रति तादात्म्य भाव की प्रधानता है भी।

निराला-काव्य में अन्योक्तियों की तो भरमार ही जैसी है। 'वनवेला' शीर्षक कविता में कवि ने वनवेला के व्याज से साहित्यिकों के उपेक्षित एवं संघर्षमय एकाकी जीवन की ओर ही तो संकेत किया है, जो विश्व को शान्ति, शीतलता और आनन्द का दान करता है।

बोला मैं—वेला, नहीं ध्यान
लोगों का जहाँ, खिली हो वनकर वन्य गान।
जब ताप प्रखर
लघुप्याले में अतल की सुशीलता ज्यों भर
तुम करा रही हो यह सुगन्ध की सुरा-पान!

इसी प्रकार इसी कविता में राजपुत्र के व्याज से महात्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों के सुख एवं विलासमय जीवन पर व्यंग्य किया गया है।

'कुकुरमुत्ता' में भी अन्योक्ति और व्यंग्य की ही प्रधानता है। गुलाव का फूल पूँजीपति शोषकों का, और कुकुरमुत्ता देशी संस्कृति के प्रेमी सामान्य मानव का प्रतीक है। दो-चार पंक्तियाँ लीजिए:—

अबे, सुन बे गुलाव,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआव,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।

'गीतिका' के एक गीत में निराला ने अभिसारिका और उसके प्रियतम के माध्यम से परमात्मा की अनुभूति के लिए जीवात्मा की व्याकुलता भरी चेष्टाओं की ही व्यंजना की है। कैसी सुन्दर अन्योक्ति है!

मौन रही हार—
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार,
× × ×
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ?
उन चरणों को छोड़, और
शरण कहाँ पाऊँ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार
प्रिय पथ पर चलती; सब कहते शृंगार

'जुही की कली' शीर्षक कविता में जुही की कली और मलयानिल के बहाने किसी वियोगिनी नायिका और उसके प्रवासी प्रियतम के मधुर पुनर्मिलन के संबंध में अन्योक्तियाँ की गई हैं—

विजन-वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी, स्नेह-स्वप्न मग्न
अमल कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बंद किए, शिथिल, पत्राङ्क में,
वासन्ती निशा थी,
विरह-विधुर प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।

अन्योक्ति का आनन्द समूची कविता पढ़कर लीजिए।

'उल्लेख' अलंकार की भी निराला की रचनाओं में कुछ कम योजना नहीं है। परिमल की 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में आदि से अंत तक 'उल्लेख' की ही प्रधानता है। कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

तुम तुङ्ग-हिमालय शृंग
और मैं चंचल गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी-कविता।
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरा पान घन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

इन पंक्तियों में परमात्मा और आत्मा के संबंध को अनेक रूपों में प्रदर्शित किया है। एक और उदाहरण 'अनामिका' की 'प्रिया से' शीर्षक कविता से लीजिए —

मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका,
मधुमय मेरे जीवन की प्रिया है तू कमल कामिनी
मेरे कुंज-कुटीर-द्वार की कोमल चरण-गामिनी,

यहाँ कवि अपनी प्रेयसी कविता का अनेक प्रकार से वर्णन कर रहा है।

'परिमल' की 'माया' और 'नयन' शीर्षक कविताओं में सन्देह अलंकार की निराली छटा का रस-पान कीजिए —

तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता ?
या किसी दुख दीन की है आह तू

या किसी तरु की तरुण वनिता.लता ?

× + ×

यक्ष विरही की कठिन विरह-व्यथा
या कि तू दुष्यन्त-कन्त शकुन्तला ?
या कि कौशिक-मोह की तू मेनका
या कि चित्त-चकोर की तू विधु-कला ?

सारी कविता बड़ी सुन्दर है। कवि माया के स्वरूप का चमत्कारपूर्ण सन्देहात्मक वर्णन कर रहा है।

मद भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं;
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं ?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी ;
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं ?

यहाँ नेत्रों के सम्बन्ध में कवि की सन्देहात्मक उक्तियाँ कितनी सरस हैं!

अब कुछ अन्य प्रमुख अलंकारों के नाम देकर उनके उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

परिकरांकुर :—

कवि अपनी प्रेयसी कविता से कहता है:—

प्रिये, छोड़ कर बन्धन मय छन्दों की छोटी राह !
गज गामिनि, वह पथ तेरा संकीर्ण कण्टककीर्ण
कैसे होगी उससे पार !

—'प्रगल्भप्रेम' (अनामिका)

'गज गामिनी' का, साभिप्राय प्रयोग होने से उसमें 'परिकरांकुर' है।

विरोधाभास :—

क्या जाने वह कैसी थी आनन्द सुरा अधरों तक आकर
बिना मिटाये प्यास गई जो सूख जलाकर अंतर !

—'प्रगल्लाभ प्रेम' (अनामिका)

इन पंक्तियों में विरोध की मिथ्या प्रतीति है। प्रेम की आनन्द-मदिरा से किसी की प्यास थोड़े मिटती है ? वह तो और हृदय-वाटिका को जला ही देती है, फिर भी उसी जलन से आनन्द की अनुभूति होती है। यही है प्रेम की अलौकिकता।

'परिमल' की 'जलद के प्रति' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियों में एक ही साथ अपह्नुति, काव्य-लिंग, परिकरांकुर और अनुप्रास का जमघट-सा लग गया है:—

जलद नहीं, जीवनद, जिलाया
जबकि जगज्जीवनमृत को ;
तपन-ताप-संतप्त तृपातुर
तरुण-तमाल-तलाश्रित को।

यहाँ सत्य जलद को छिपाकर असत्य का प्रतिपादन करने से अपह्नुति है। प्रथम पंक्ति में जो कथन किया गया है उसका कारण शेष पंक्तियों में स्पष्ट करने से काव्यलिंग है। जीवनद' का प्रयोग साभिप्राय होने से परिकरांकुर भी है। प्रथम दो पंक्तियों में 'ज' की और 'अंतिम दो पंक्तियों में 'त' की बार-बार आवृत्ति से वृत्यनुप्रास की योजना स्पष्ट ही है।

'परिमल' की 'यमुना के प्रति' शीर्षक कविता में 'स्मरण' अलंकार की शोभा विशेष दर्शनीय है। यमुना और उसकी लहरियों को देख कर कवि को नटनागर श्याम, गोपांगनाओं, और उनकी मनोमुग्ध कारिणी लीलाओं की स्मृति हो आती है। इस कविता की कुछ सरस पंक्तियाँ देखिए —

यमुने तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुलतान
पथिक प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान ?
बता कहाँ अब वह वंशीवट ?
कहाँ गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दा धाम ?
× × × ×
कहाँ छलकते अब वैसे ही
ब्रज-नागरियों के गागर ?
कहाँ भीगते अब वैसे ही
बाहु, उरोज, अधर, अम्बर ?

कहाँ तक गिनाऊँ ? सारी कविता स्मरण अलंकारों की एक मनोहारिणी मंजूषा है जिसका दर्शन कर हृदय लोट पोट हो जाता है।

इसी कविता में 'उदाहरण' अलंकार का एक सुन्दर निदर्शन देखिए —

आप आ गया प्रिय के कर में
यह, किसका वह कर सुकुमार
विटप-विहग ज्यों फिरा नीड में
सहम तमिस्र देख संसार ?

उत्प्रेक्षा अलंकार की एक सुन्दर बानगी से अपने चित्त को प्रफुल्लित कीजिए —

'पंचवटी प्रसंग' में शूर्पनखा अपने सुन्दर स्वरूप की संभावना करती है —

वायु के झकोरे से वन की लताएँ सब
झुक जातीं—नजर बचाती हैं,
अंचल से मानों हैं छिपाती मुख
देख यह अनुपम स्वरूप मेरा।

इन्हीं पंक्तियों में उपमानो—लताओं—का कथन होने तथा उपमेय शूर्पनखा के सुन्दर-स्वरूप—से उनके लज्जित या अपमानित होने से तृतीय प्रतीप की बाँकी छटा भी दर्शनीय है।

इसी पंचवटी प्रसंग कविता में अत्युक्ति के दो सुन्दर उदाहरण लीजिए:—शूर्पनखा अपने रूप—लावण्य की अत्युक्ति करती है:—

(१) सृष्टि-भर की सुन्दर प्रकृति का सौंदर्यभाग
खींच कर विधाता ने भरा है इस अंग में
(२) और यह भी सत्य है कि
ऐसी ललाम वामा चित्रित न होगी कभी

द्वितीय उदाहरण में अनन्वयोपमा भी ध्वनित हो रही है।

पाश्चात्य-साहित्य के एक अलंकार 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' की सुन्दर योजना भी निराला की 'गीतिका' के एक गीत में देखने ही योग्य है:—

मौन रही हार—
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार
कण-कण कङ्कण, प्रिय
किण्-किण् रव किङ्किणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज
लौट रङ्किणी,

इन पंक्तियो में ध्वनियो से ही अभिसारिका की मधुर चेष्टाओ की मानों व्यंजना-सी हो जाती है।

'प्रगल्भ प्रेम' 'आकुल-तान' जैसे पद भी पाश्चात्य साहित्य के विशेषण विपर्यय के सुन्दर नमूने हैं।

अन्त में 'पंचवटी-प्रसंग' की इन दो पक्तियों को लीजिए:—

विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में।

इस अवतरण में 'अत्युक्ति' और अतिशयोक्ति का सुन्दर समन्वय है। शूर्पनखा के नेत्रों की अत्यधिक प्रशंसा होने से अत्युक्ति और अयोग्य में योग्यता के प्रतिपादन से संबधातिशयोक्ति भी है।

कितने अलंकारों के नाम गिनाऊँ? निराला की रचनायें अलंकार-रत्नों की सुन्दर मञ्जूषायें हैं। उन रत्नों की अनन्तता में मेरा लघु हृदय-विहग श्रांत और आनन्द-विह्वल होकर खो जाता है, और उनकी प्रखरप्रभा से उसकी आँखों में चकाचौंध सी लग जाती है। इसीलिए वह कुछ ही रत्नों का संचय करने मे समर्थ हो सका है, जो सहृदय पाठकों के कर-कमलो में, एक तुच्छ भेंट के रूप में सादर और सप्रेम समर्पित है।

निराला की छंद-योजना

डा० दयानन्द श्रीवास्तव

निराला कृत 'परिमल' का प्रकाशन आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में एक विशेष महत्व रखता है। 'परिमल' में संग्रहीत रचनाओं म वेदना की उदात्त भाव भूमि मिलती है। प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य को कवि ने विविध भूमिकाओं में प्रस्तुत किया है। निराला ने इन तत्वो को पूर्व परम्परा से अलग रुप में देखने की चेष्टा की है और फलस्वरुप जीवन के विभिन्न तत्वों को काव्य में अंकित करने की एक नवीन परम्परा की स्थापना की है। यह तो हुई 'परिमल' की भाव भूमि, परन्तु 'परिमल' की रचनाएँ शिल्पविधि में भी एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। छन्दो की परम्परा में भी एक क्रान्ति की अवतारणा हुई। 'परिमल' का महत्व मुक्त भावो और मुक्त छन्द योजना के कारण ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि निराला की काव्य-साधना एकाकी एव मुक्त है भावों की दृष्टि से और छन्दो की दृष्टि से। द्विवेदी युग के मध्य में छायावाद का प्रस्फुटन हो रहा था और छायावाद की अपूर्ण निर्मित रेखाओं के मध्य निराला की साधना अलिगुन्जन के समान मुखरित और प्रस्फुटित हो उठी। निराला ने 'परिमल' की भूमिका में जो वक्तव्य दिये हैं उनसे निराला की चिन्तनविधि तथा काव्य की भाव-भूमि और छन्दविधि सम्बन्धित दृष्टिकोण का उद्‌घाटन होता है। सूक्ष्म विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक खड़ी बोली कविता के प्रथम प्रभात से ही काव्य शिल्पियों के मन में उद्‌वेलन प्रक्रिया क्रियाशील थी। वे काव्य सम्बन्धी भावभूमि और शिल्प अथवा छन्दभूमि की एक निश्चित परम्परा की अवतरण-हेतु क्रियाशील थे। उनके प्रयास इस सत्य की स्थापना करते हैं। इस सत्य की ओर सकेत निराला ने 'परिमल' की भूमिका में दिया है। उनके अनुसार मात्रिक अतुकान्त कविता का प्रथम प्रयोग गिरिधर शर्मा 'कविरत्न' ने किया है। उनकी कविता 'सती सावित्री' मात्रिक अतुकान्त छन्दों में लिखी गई हिन्दी की प्रथम कविता है, उदाहरण —

जब वह हुई अवस्था वाली
अजब निराली रुप रग में
इसको देख शची सकुचानी
यानी उतर गया रतिमुख का
इसकी सुनी सुरीली वाणी
भागी वृथा मजुघोषा को
यह गाती जब कभी प्रवीणा
निज वीणा रख देती वाणी।

(परिमल की भूमिका-पृष्ठ २०)

उद्धृत कविता के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ हैं, एव चरण अतुकान्त हैं। १९०७ में नागरी प्रचारक में लोचन प्रसाद पाण्डेय की 'ससार' शीर्षक रचना का प्रकाशन आधुनिक

हिन्दी छन्दो के इतिहास में महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय घटना है। यह कविता अतुकान्त है। लोचन प्रसाद पाण्डेय अतुकान्त छन्दों की तरफ अधिक आकर्षित थे। १६१८ में 'पद्य-पुष्पान्जलि' में माइकेल मधुसूदन की कृति का अनुवाद 'वीरांगना' शीर्षक से इन्होंने अतुकान्त छन्दो से प्रस्तुत किया। १६१५ की जुलाई और अगस्त की 'इन्दु' पत्रिका के अक में लोचन प्रसाद पाण्डेय ने एक प्रश्नावली प्रस्तुत की जो इस प्रकार है—

१—खडी बोली में मात्रा-वृत्तो में तुकान्तहीन पद्य (ब्लैंक-वर्स) लिखे जाने की आपकी सम्मति क्या है ?

२—व्रजभाषा में भी तुकान्त पद लिखे जायें ?

३—गुण-वृत्तो के अतिरिक्त मात्रा-वृत्तो को किसी एक, दो या नियमित संख्या मे निर्धारित छन्दो में इस शैली से पद्य लिखे जाने चाहिए या कवि की रुचि के अनुसार किसी भी छन्द में ?

४—'इन्दु' के प्लवगम्, लावनी, रोला, वीर आदि वृत्तों में ब्लैंक-वर्स के पद्य लिखे जाते हैं, क्या यह ऐसा ही चलता रहे अथवा कुछ मात्रा-छन्द इस कार्य के लिए चुन लिए जायें ?

(इन्दु, जुलाई-अगस्त अक १६१५, हिन्दी में तुकान्त रचना अर्थात् ब्लैंक-वर्स)

इन प्रश्नों ने तत्कालीन कवियो के समक्ष सचमुच छन्द संबन्धित समस्या उत्पन्न कर दी। हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रूपनारायण पाण्डेय एव 'प्रसाद' ने इस जिज्ञासाओ के समाधान मे अपने अभिमत दिये और इन्होंने अतुकान्त मात्रिकों का समर्थन किया। अपने समर्थन से अनुप्रेरित हो प्रसाद ने भरत शीर्षक कविता प्लवंगम् छंद मे लिखी। 'महाराणा का महत्व' एवं करुणालय की रचना भी प्लवंगम् छन्द में हुई। रूपनारायण पान्डेय ने रवीन्द्र रचित 'राजरानी, का अनुवाद इसी छन्द में किया। हरिऔध संस्कृत वर्णिक वृतों के प्रयोग की विधा स्थापित कर रहे थे। इनके विपरीत मैथिलीशरण गुप्त ने माइकल मधुसूदन की कृति 'मेघनाद-वध, का अनुवाद घनाक्षरी के अंतिम १५ वर्णों की लय के आधार पर एक नव-निर्मित छन्द में किया। उनकी 'जयभारत' और 'सिद्धिराज' रचना भी इसी छन्द में हुई। साथ ही साथ सियारामशरण गुप्त, पंत एवं प्रसाद अतुकांत मार्मिक छन्दों के प्रयोग की चेष्टा में संलग्न थे। इस विवेचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि रचनाकारों की चेष्टा हिन्दी छंदो की एक निश्चित अवतारणा की ओर संलग्न थी। वे अन्वेषक की भाँति नवीन छन्दों के अन्वेषण और उनके प्रयोग में संलग्न थे। अन्वेषण की इस अनिश्चित वेला में निराला का आगमन हुआ।

सृजनात्मक उद्वेलन के क्षणों में निराला ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ही काव्य की भावभूमि और छन्द-भूमि प्रस्तुत की और इस उद्वेलन ने छन्द के अन्वेषक कवियों को एक आश्वासन एवं निश्चित मार्ग प्रदान किया। परन्तु निराला के अतिरिक्त अन्य कोई कवि निराला की छन्द-भूमि पर नहीं पहुँच सका, क्योंकि निराला ने स्वयं यह कहा है—ऊपर जितने प्रकार के काव्य के उदाहरण दिये गए हैं, सब एक-एक सीमा में बँधे हैं—एक-एक

प्रधान नियम सभी में पाया जाता है। वर्ण-वृत्तों में गुणों की शृंखला, मात्रिक वृत्तों में मात्रा का साम्य वर्णवृत्तों में अक्षरों का साम्य कहीं भी इस नियम का उल्लंघन नहीं किया गया। इस प्रकार दृढ़ नियमों में बँधी कविता कदापि मुक्त छन्द नहीं हो सकती। मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमिका में रह कर भी मुक्त है। इस पुस्तक (परिमल) के तीसरे खण्ड में जितनी कविताएँ हैं सब इस प्रकार की हैं। इनमें नियम कोई नहीं, केवल प्रवाह कविता का सा जान पड़ता है—मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और नियम साहित्य उसकी मुक्ति का समर्थक है। अत निराला के इस वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि नियमों का उल्लंघन और अवहेलना उनको मुक्ति की श्रेणी में ले जाते हैं और प्रवाह उसे छन्दों की सीमा में समीकृत करता है। मुक्त छन्द की आत्मा लय है। मुक्त छन्दों की दृष्टि से (परिमल) का तृतीय खन्ड महत्वपूर्ण है। परन्तु 'परिमल' के प्रथम खण्ड की रचनाओं को कवि ने सम-मात्रिक सान्त्यानुप्रास के नाम से विभूषित किया है। मुक्त-छन्द के विपरीत ये छन्दबद्ध रचनाएँ जो नियमों के अंतर्गत हैं। प्रथम खंड में संकलित छन्दबद्ध रचनाओं में प्रकृति के विविध रूप चित्रित हो उठे हैं, जहाँ वसन्त के आगमन के कोमल एवं आकर्षक चित्र हैं। वसत को कवि ने ऋतुपति के दूत के रूप मे स्वीकार किया है। 'वसन्त-समीर' से सम मात्रिक सान्त्यानुप्रास का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

वहाँ नहीं कोई अपना सन	१६
सत्य नीलिमा मे लयमान,	१५
केवल मैं, केवल मैं, 'केवल	१६
मैं, केवल मैं, केवल ज्ञान।	१५

अलि घिर आये घन पावस के शीर्षक गीत में कवि वर्षा की तीव्र संवेदना को प्रस्तुत करता ही है परन्तु गीत की तीव्रता छन्द की संवेदना पर ही आधारित है।

अलि घिर आये घन पावस के!	
लख ये काले काले बादल,	१६
नील सिन्धु में खुले कमल दल	१६
हरित ज्योति' चपला अति चचल	१६
सौरभ के, रस १० (टेक)	

इसी प्रकार 'परिमल' के प्रथम खन्ड की रचना में सममात्रिक (१५ मात्रा) एवं अन्त्यानुप्रास युक्त है।

एक दिन थम जायगा रोदन	१५
तुम्हारे प्रेम अचल मे।	१५
लिपट स्मृति बन जायेंगे कुछ कन	१५
कनक सींचे नयन जल मे॥	१५

(गति के अनुसार)

परिमल के द्वितीय खण्ड में संकलित कविताओं को निराला ने विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कहा है—उदाहरण,

"वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी, १२
वह दीप शिखा सी शात, भाव में लीन, २१
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी, २२
वह टूटे तरू की छुटी लता सी दीन २१
दलित भारत की ही विधवा है। १७

इसी प्रकार 'गीतिका' की अधिकाँश रचनाएँ सममात्रिक एवं सान्त्यानुप्रास हैं।

"आमरण भर मरण गान १२
वन वन उपवन उपवन १२
जागी छवि, खुले प्राण १२
वसन विमल तनु विकल १२
पृथु उर सुर पल्लव दल १२
उज्जवल दृग कलि कल पल १२
निश्चल कर रही ध्यान।' १२

ऐतिहासिक दृष्टि से 'जुही की कली' का विशेष महत्व है। मुक्त-छन्दों में निराला की यह सर्वप्रथम रचना हैं। 'सरस्वती' में इसका प्रकाशन न हो सका, क्योंकि 'सरस्वती' की मान्यताओं के विपरीत यह स्वतंत्र सत्ता पर आधारित थो और यह हिन्दी जगत के सम्मुख 'मतवाला की अठारहवीं संख्या में सम्मुख आई। हिन्दी कविता मे मुक्त-छन्द का यह प्रथम प्रभात था और उस प्रथम-प्रभात की यह प्रथम रश्मि थी। यह कविता घनाक्षरी की पीठिका पर आधारित है। घनाक्षरी शुद्ध वर्णिक छन्द है। निराला जी घनाक्षरी को हिन्दी का जातीय छन्द मानते हैं। अतः घनाक्षरी लय-भूमि और मात्रा-भूमि के समन्वित परिवेश में उन्होने 'जुही की कली' की छन्द योजना प्रस्तुत की। निराला जी को इस प्रकार के छन्द विधान की प्रेरणा पं० गिरधर शर्मा 'नवरत्न' से मिली है। 'परिमल, की भूमिका में निराला जी लिखते हैं :—एक प्रकार अतुकान्त कविता का रूप पं० गिरधर जी शर्मा 'नवरत्न' ने हिन्दी में खड़ा किया। इसकी गति कवित्त छन्द की है। हर एक छन्द ८-८ वर्णों का होता है, अत्यानुप्रास नहीं होता—इस तरह पंक्ति में आठ आठ अक्षर होते हैं। 'जुही की कली' की छन्द विधा पर इस वक्तव्य से विशेष प्रकाश पड़ता है।

१	विजन वन। पल्लरी पर।	४, ४ वर्ण
२	सोती थी सुहाग भरी! स्नेह स्वप्न।	मगून वर्ण (६+३ मात्रा)
३	अमल कोमल तनु। तरुणी—जुही की कली।	८ वर्ण-८वर्ण
४	दृग बन्द फिर। शिथिल पत्रांक में।	६ मात्रा-७वर्ण
५	वासन्ती। निशा थी।	६ मात्रा-५मात्रा
६	विरह विधुर। प्रिया संग। छोड़—	६ मात्रा, ६ मात्रा ३ मात्रा
७	किसी। दूर देश। में था पवन	३ मात्रा, ६ मात्रा, ७मात्रा
८	जिसे। कहते हैं। मलयानिल	३ मात्रा, ६ मात्रा, ६ मात्रा

९ आती याद । बिछुड़न में । मिलन की वह । मधुर बात । ४ वर्ण, ८ मात्रा
७ मात्रा, ६ मात्रा

१० आई याद । चाँदनी की । धुली हुई । आधी रात । ४ वर्ण ४ वर्ण
४ वर्ण ४ वर्ण

११ आई याद । कान्ता की । कम्पित कम । नीय गात । ४ वर्ण, ६ मात्रा
६ मात्रा, ६ मात्रा

फिर क्या ? पवन— ७ मात्रा
उपवन सर । सरित गहन । गिरि कानन । ६, ६, ६ मात्रा
कुञ्ज लता । पुञ्जों को । पार कर ६, ६ ५ मात्रा
पहुँचा जहाँ । । उसने की केलि ७, ६, ३ मात्रा
कली । खिली साथ । ३, ६ मात्रा
सोती थी । ६ मात्रा

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट छन्द-गठन सम्बन्धी निराला की उद्भावना का परिचय मिलता है छन्द वर्णिक और मात्रिक दोनों ही हैं इसे अतुल मात्रिक छन्द की संज्ञा दी गई है ।[1] प्रस्तुत छन्द में लय धाराधारी की है एवं चरणों में यति का क्रम निश्चित नहीं है, मुख्यतः १-८ पंक्ति तक । यह अंश अतुकान्त भी है । परन्तु ९, १०, ११ पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास की योजना है और यति का क्रम भी निश्चित है । समग्र रूप में लय के कारण यह छन्दात्मक है एवं वर्ण, मात्रा तथा तुक के बन्धन के अभाव में मुक्त है ।

कविता के लय के अनुसार इन पंक्तियों का अंकन प्रस्तुत रूप में किया जा सकता है—

विजन वन वल्लरी पर—सोती थी सुहाग [भरी]
स्नेह स्वप्न मग्न अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली ।
[भरी] दोनों अंशो में संयोजक है और स्वर की गति [भरी]

के उपरान्त आरोह प्राप्त करती है और अमल कोमल से अवरोह की तरह चलती है तथा यह गति कली में समाप्त हो जाती है —इसका अंकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

=विजन वन वल्लरी पर— सोती थी सुहाग [भरी]

निराला जी की दूसरी उल्लेखनीय रचना है, 'जागो फिर एक बार' इस कविता को सहज में ही दो खण्डों में विभक्त कर सकते हैं । पूर्वार्द्ध अंश शृंगार रस प्रधान है । और उत्तरार्द्ध वीर रस प्रधान ।

उदाहरण—(उत्तरार्द्ध)

SS 11 S1S1
जागो फिर । एक फिर ६, ६ मात्रा ४, ४ वर्ण

111S111
समर में अमर । कर प्राण ६ मात्रा, ४ वर्ण

(१) देखिये आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना— डा पुत्तूलाल शुक्ल पृ० ४२६

	२, ७ वर्ण
गान । गाये महासिन्धु से	४, ४ वर्ण
सिन्धु नद । तीर वासी ।	४, ४ वर्ण
सैनधव तु । रंगो पर ।	४, ४ वर्ण
चतुरंग । चमू संग	४, ४ वर्ण
सवा सवा । लाख पर	३, ४ वर्ण
एक को । चढ़ाऊँगा ।	

शृंगार—पूर्वार्द्ध

ss ii si si
जागो फिर । एक बार — ६, ६ मात्रा ४ ; ४ वर्ण

ss i
प्यारे ज । गाते हुए । हारे सब । तारे तुम्हे; — ६ मात्रा ४, ४, ४ वर्ण

iiisi iii iii
अरुण पंख । तरुण किरण — ६, ६ मात्रा

is si issi
खड़ी खोल । रही द्वार — ६, ६ मात्रा
जागो फिर । एक बार

\+ + + +

ssii
अस्ताचल । ढले रवि — ६ मात्रा ४ वर्ण

iiiii siss
शशि छवि वि । भावरी में — ५,७ मात्रा
चित्रित हुई है देख — ८ वर्ण

sis
यामिनी । गन्धा जगी — ५ मात्रा ४ वर्ण

siiii sisi siiii
एक टक च । कोर कोर । दर्शन प्रिय — ६ मात्रा, ६, ६ मात्रा

sss iss ss ii siis
आशाओं । भरी मौन । भाषा वहु । भाव मयी — ६, ६, ६, ६ मात्रा ४, ४, ४ वर्ण

sis sis
घेर रहा । चन्द्र को । चाव से — ६ मात्रा ५, ५ मात्रा ४ वर्ण

iii si siiii
शिशिर भार । व्याकुल कुल — ६, ६ मात्रा

ISSI ISIS
खुले फूल। झुके हुए — ६, ६ मात्रा ४, ४ वर्ण

SS II SS III
छाया फलि। यों मे मधुर — ६ मात्रा, ७ मात्रा

II IIS II ISI
मद उर यौ। यन उभार — ६, ६ मात्रा

जागो फिर। एक बार। (परिमल पृ० २०३)

शृंगार की उद्भावना के लिये ही समवत कवि ने इस अंश में वर्णित चतुष्कों की अपेक्षा ६ मात्रिक पर्वों का प्रयोग किया है।

निराला की रचना 'वह तोड़ती पत्थर' सप्तक मुक्त मात्रिक छन्द में लिखित है। उदाहरण —

IISIS SII
वह तोडती। पत्थर — ७, ४ मात्रा ४ (पूर्णक)

SSIS SS IS SSIS IIII
देखा उसे। मैंने इला। हाबाद के। पथ पर — ७, ७, ७, ४ मात्रा (पूर्णक)

\+ + + +

SI II S SIII S SIII
एक क्षण के। बाद वह का०। पी सुधर — ७, ७, ५ मात्रा (५ पूर्णक)

IIISS SIS S II
ढुलक माथे। से गिरे सी। कर — ७, ७, २ मात्रा (२ पूर्णक)

SISS SISII SIS
लीन होते। कर्म मे फिर। ज्यों कहा — ७, ७, ५ मात्रा (३ पूर्णक)

में तोडती। पत्थर

सध्या सुन्दरी की रचना अष्टमात्रिक छन्द मे हुई है।

IIS ISI SIII
दिवसा वसान। का समय — ८, ५ मात्रा (५ पदान्तर)

SI II SISI S IIIIS S
मेघ। मय आसमान। से उतर रही। है — ३, ८, ८, २ (२ पूर्णक)

IISS S IS IS S
वह सध्या सु। न्दरी परी सी — ८, ८ मात्रा

SS SS SS
धीरे धीरे। धीरे — ८, ४, (४ पूर्णक)

IISII S SIISS IS ISS SI
तिमिराचल मे। चचलता का। कहीं नहीं था। भास — ८, ८, ८, ३ (३ पूर्णक)

पूर्णक—यदि चरणान्त में पूरा पर्व समाप्त हो जाता है और दूसरे चरण के प्रारम्भ में पूरे पर्व की आवृत्ति हो जाय तो मुक्त छन्द प्रवहमान रहेगा और यदि चरण के अन्त पर्व का

i i i i i s i i s s s i i i
मधुर मधुर है । उसके दोनों । अधर ।   ८, ८, ३ (३पूर्णक)

(निराला, परिमल, संध्या सुन्दरी पृ० १२५)

निराला की प्रसिद्ध कृति 'राम की शक्ति पूजा' का प्रत्येक चरण तीन अष्टकों से निर्मित है । निराला का यह मौलिक छन्द है जो रोला छन्द की भूमि में लिखा गया है, उसे डा० पुत्तूलाल शुक्ल ने 'शक्ति पूजा छन्द' की सज्ञा दी है ।

i i i s s i   s i s s i   i i i s i i i
रवि हुआ अस्त । ज्योति के पत्र । पर लिखा अमर ८,८,८,।।।
i i i s s i   s i i s is   s s i i i i
रह गया राम । रावण का अप । राजेय समर   ८,८,८,।।।
s i s s i i   i s i i s i   i i s i i i i
आज का तीक्ष्ण श । रविद्धित क्षिप्र । कर वेग प्रखर ८,८,८,।।।
(का, लघु)

i i s i s i   i i s i s i   i i s i i i i
शत शेल सम्ब । रण शील नील । नभ गर्जित स्वर ।
(तुकान्त-अन्त में ३ लघु=।।।)

+ + + +

s i s i   s i i s s   s s s i i
वन्दना ईश । की करने को । लौटे सत्वर ।   ८,८,८,
i i s i s i   s s s s   s s s i i
सब घेर राम । को बैठे आ । ज्ञा को तत्पर ।   ८,८,८,
s s s i i   s i s i s   i i s i s i
पीछे लक्ष्मण । सामने विभी । षण मल्लवीर ।   ८,८,८,
s s i s i   i i s i s i   s i s s i
सुग्रीव प्रान्त । पर पाद पद्म । के महाबीर ।   ८,८,८,
(तुकान्त-अन्त अनियमित s i i, s i i, i s i s s s)

s s s s i i i i i s   s s s s
बोले आवेग रहित स्वर से । विश्वास स्थित, ८,८,८——५।।
s s i i i s   s i s s   s s s i i
मातः दशभुजा । विश्व ज्योतिः । मैं हूँ आश्रित, ८,८,८,-५।। अतिक्रम
s s i s i   s s i i i i   s i i s i i
हो विद्ध शक्ति । से है खल महि । षासुर मर्दित, ८,८,८,-५।।

अंश प्रयुक्त होता है तो पूर्णक है—मुक्तक-छन्द के प्रवाह में पूर्वांश के प्रयोग से जो यति आती है उसे पूर्णक कहते हैं—
(देखिये-डा० पुत्तूलाल शुक्ल हिन्दी छन्द का विकास, पृष्ठ ४६१)

I I S I I I I　　I I I I I I S　　I S I S I I
जन रजन चर । ण कमल तल ध । न्य सिंह गर्वित ८,८,८ S॥
I I I I S S　　I S I S S　　I I S S I I
यह वह तेरा । प्रतीक मात । समझा इंगित, ८८,८, S॥
S S I I S　　S I S I S　　S I I S I I
मैं सिंह इसी । भाव से करूँ । गा अभिनन्दित , ८, ८८, S॥
(तुकान्त अन्त नियमित—S॥)

S I S I S　　I I S I S I　　S S I S S
है नहीं शरा । सन आज हस्त । तूणीर स्कन्ध, ८, ८, ८, S।
I I I S S I　　S I I I I S　　I I I I I S I
यह नहीं सोह । ता निविड जटा । दृढ मुकुट बध, ८ ८ ८ S।
I I I I S S　　I S I I I S　　S I I I S I
सुन पड़ता सिं । हनाद रण की । लाहल अपार, ८, ८, ८ S।
I I I S I S　　I I S I S I　　S S I S I
उमडता नहीं । मन स्तब्ध सुधी । हैं ध्यान धार ८८,८, S।
(तुकान्त-अन्त नियमित—S।

गीतिका का छन्दविधान

गीतिका की प्रत्येक रचना में संगीत की आत्मा प्रवाहित है और छन्द मात्रिक जिनमें ताल एवं लय का समुचित समन्वय है।

S I　S I　S I　I I I
स्तब्ध । अन्ध । वार । सघन　　३, ३ ३, ३

S I　S I　S I　I I I
मन्द । मन्द । भार । पवन　　३, ३, ३ ३

S I　S I　S I　I I I
ध्यान । लग्न । नैरा । गगन　　३, ३, ३, ३

S S I I　S S　I I
मूँदे पल, । नीलोत्पल　　६, ६

(प्रथम ३ चरण त्रिकलात्मक अर्थात् ३ मात्राओं का है- अंतिम चरण का प्रत्येक पर्व ६ मात्राओं का है। बोल दादरा के हैं जिसका क्रम है—

१ २ ३ ४ ५ ६
धा धी ना । धा ती ना

—अन्त्यानुप्रासयुक्त

इसी प्रकार गीतिका का गीत ६१ 'तुम्हारा प्रात प्रियतम तुम आग्राण बने' अष्टताल में लिखित है जो २० मात्रा का है- क्रम है —

१　२　　३　४　५　　६　७
धा ऽ धि न । न क । धे ऽ धि न । न क । धे ऽ । धा ऽ धि न । न क
१ २३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
(देखिये डा० पुत्तूलाल शुक्ल पृष्ठ ४८३

उदाहरण—

is si iiii ii si s is
हुआ प्रात । प्रियतम तुम । जाओगे चले   ६, ६, ६, २
sss si si s ii i s
कैसी थी । रात बन्धु । थे गले ग । ले ।   ६, ६, ६, २

इसी प्रकार अणिमा की प्रस्तुत पंक्तियां पद्धरी छन्द में हैं जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं और ८ ८ पर विश्राम होता है।

si is s
दाग दगा की   ८।
s i i s s
आग लगा दी   ८।
i i s s ii ii s iis
तुमने जो जन । जन की भड़की   ८, ८।
is sis sii ii s
वरूँ आरती । मैं जन जन की ।   ८, ८।

पद्धरी छन्द के अनुसार 'दाग दगा की
आग लगा दी' का रूप
'दाग दगा की आग लगा दी' होना चाहिए था परन्तु निराला ने इसे दो चरणों में विभक्त कर दिया है।

बेला की अधिकांश रचनाएं उर्दू के छन्दों की पीठिका पर लिखी गई हैं।

उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत रचना—

मुत फाइलुन, मफाइलुन, फाइल— के आधार पर एक नवीन छन्द में लिखित है—

s ii s s i s s si s i s ii
पे टहनी से हवा की छेड़ छाड़ थी र   २४
li ii is i s i s s i i iii is
खिल कर सुगन्धि से किसी का दिल बहल गया।   २३
ss i iii ss s ss i s i s
खामोश फ़तह पाने को रोका नहीं रुका   २४
s ii isi s i s s ii iii is
मुश्किल मुकाम जिन्दगी का जब सहल गया।   २३

(बेला गीत सं० ७५)

कतिपय आलोचकों ने निराला के मुक्त छन्दों पर वक्तव्य देते हुए यह कहा है कि इन छन्दों की प्रेरणा निराला को अंग्रेजी साहित्य से प्राप्त हुई है। Walt whitman की पुस्तक Leayses of Grass (१८८५) में सकलित कविता के छन्दों से निराला प्रभावित है ऐस

उनकी धारणा है। Waltwhitman के छन्दों के विषय में यह कहा गया है कि जिस प्रकार घास की पत्तियाँ समान नहीं होती उसी प्रकार कविता की पंक्तियाँ भी समान नहीं होती है। इस कविता ने पद्य को गद्य के धरातल पर प्रस्तुत करने की चेष्टा की थी। निस्सन्देह इनकी रचना को गद्य कविता कह सकते हैं, परन्तु शुद्ध कविता की भावभूमि में इन्हें हम स्वीकृत नहीं कर सकते। इनमें लय नहीं है प्रवाह नहीं है, जिसके कारण इनकी गद्य कविता कविता की भूमि को स्पर्श नहीं कर पाती। निराला की मुक्त छन्द योजना में लय और प्रवाह को मान्य रूप में स्वीकार किया गया है जिनके कारण इनकी अतुकान्त मुक्त रचना सहज ही कविता की परिभूमि में आ जाती हैं। अत निराला Walt whitman की कविता Leayes of Crass या अन्य पाश्चात्य Freeyerse में लिखने वाले कवियों से कदापि प्रभावित नहीं है। मेरे विचार से यदि निराला को कहीं से प्रेरणा मिली है तो बंगला-काव्य छन्द संबंधी मान्यताओं से। बंगला में काव्य और छन्द संबंधी व्याख्याएँ भावुक शब्दावली में प्रस्तुत की गई हैं जिनका निष्कर्ष यह निकलता है कि कवि छन्दों का अनुगामी नहीं होता, अपितु छन्द कवि का अनुगमन करते हैं अर्थात कवि के भावों का अनुगमन छन्द नवीन रूप धारण करते हैं। कवि को प्राचीन छन्द शास्त्र की परम्परा के सम्मुख नत नहीं होना चाहिए। कविता की भूमि में ध्वनि संगीत और लय अनिवार्य हैं पदों में लय, मात्राओं के माध्यम से ही संगीत का विस्तार होना चाहिए। भावना एवं संगीत की सम्मिलित भाव धारा ही कविता की परिभाषा है। ज्ञात या अज्ञात रूप से निराला की आस्था इस विचार धारा से प्रभावित है यह मेरा अनुमान है और मुक्त छन्द के निर्माण में इन निष्कर्षों से वे अनुप्रेरित है।

निराला के मुक्त छन्द एवं उनका रचना विधान

डा० किशोरी लाल गुप्त

हिन्दी और सस्कृत के छन्दों विधान में मौलिक अन्तर है। हिन्दी के छन्द मूलतया मुख्यता मात्रिक हैं। जो गणवृत (सवैये) अथवा मुक्तक (घनाक्षरी) आदि वर्णिक छन्द हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, उनमें भी मात्रिक छन्दों की सी लचक होती है और गुरु को लघुवत पढने की छूट है। इसी प्रकार संस्कृत वर्णवृत्तानुगामिनी है। वहां मात्रिक छन्द बहुत कम हैं। मात्रिक एवं वर्णिक के इस अन्तर के अतिरिक्त एक और महान अंतर जो स्पष्टतया परिलक्षित होता है। वह है तुक का।

अंग्रेजी के 'ब्लैक वर्स' की देखा देखी हिंदी मे जब अतुकान्त कविता का प्रारम्भ हुआ, तब लोगो ने अनुदारतापूर्वक उसका अनादर किया। जो लोग तुकान्त कविता नहीं लिख सकते, वे ही सरलता के इस पथ की सृष्टि कर रहे हैं और यह अन्त्यानुप्रासहीनता हिन्दी की प्रकृति के प्रतिकूल है। आधुनिक युग मे छन्दों के संबन्ध में जो पहली स्वच्छन्दता ली गयी, वह तुकों की इस हीनता की ही थी। हिन्दी के आदिकाल में ही जगनिक ने यह स्वच्छन्दता आल्हा खंड की रचना में ले ली थी जिसका अनुकरण आज तक आल्हा गाने वाले और वीर छन्द की रचना करने वाले बराबर करते आये हैं। सोरठा छन्द भी अन्त्यानुप्रास हीन होता है, ऐसा किसी अंश तक कहा जा सकता है। नागरीदास ने 'बालबिनोद' नामक एक ग्रंथ दोहों मे लिखा था। यह हास्यरस का ग्रन्थ है और आदि से अंत तक अतुकांत है, केवल कवि की ओर से जो कुछ कहा गया है वही सतुक है। सभा में सभी बालक बैठे हैं। मधुम गल नायिका का वर्णन करता है। गवदराम उस नायिका को देखना चाहते हैं। तब बालवृन्द एक महिष (भैंस) दिखाते है। ग्रन्थ की रचना संवत १८०६ मे आश्विन शुक्ल ८ को हुई।

आधुनिक युग में सबसे पहले भारतेन्दुकालीन पं० अम्बिकादत्त व्यास (१६१५-१६५७ वि०) ने अतुकांत कविता का असफल प्रयोग किया। इस तथ्य का उल्लेख आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास (पृष्ठ ५६६) मे इन शब्दों में किया है—

'एक बार उन्होंने कुछ बेतुके पद्य यों आजमाइस के लिए बनाए थे पर इस प्रयत्न में उन्हें सफलता नहीं दिखाई पड़ी थी, क्योंकि उन्होने हिन्दी का कोई प्रचलित छन्द लिया था।'

संस्कृत के वर्ण वृत संस्कृत में बराबर अन्त्यानुप्रास हीन रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। हिन्दी की प्रवृत्ति यद्यपि छन्दों की रही है, पर आदिकाल से ही वर्णवृतो का प्रयोग भी होता आया है, भले ही वह उल्लेखनीय मात्रा में न हो। चन्दवरदाई के रासो में भुजंगी आदि व्यवहृत हैं। नागरीदास ने भी यत्रतत्र इस छन्द का प्रयोग किया है। आधुनिक युग में आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत के वृतों का बहुत प्रयोग किया है। यहां दो बातें ध्यान देने की हैं, पुराने कवियों ने गणवृतो के प्रयोग में गणों का कड़ाई से पालन नहीं

किया है। शब्दों का रूप भी उन्हें विकृत करना पड़ा है। द्विवेदी ने गण वृत्तों का छन्द की दृष्टि से शुद्ध प्रयोग किया है। हिंदी में जब भी किसी कवि ने गणवृत्तों का उपयोग किया। उसने उन्हें हिंदी की तुकान्त प्रवृत्ति के अनुसार तुकान्त रूप दिया। छन्द के प्रथम दो चरणों का एक तुक और तीसरे और चौथे चरण का दूसरा तुक। आचार्य द्विवेदी ने गण वृत्तों का जो बहुत प्रयोग किया, वही उसमें तुक प्रणाली स्वीकार की गई थी 'द्विवेदी काव्य माला' पृष्ठ २६१-६५) में एक ही कविता 'हे कविते।" है जो अन्त्यानुप्रासहीन है और संस्कृत पद्धति पर है यह सूचना जून १६०१ की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी और सम्भवत हिंदी की वर्ण वृतों में लिखी पहली अनुकान्त कविता थी।

संस्कृत के गणवृतों के एवं उनके अनुप्रासहीन रूप के प्रयोग का प्रथम विशाल प्रयोग कवि सम्राट अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध, के प्रिय प्रवास, (१६०६ १४ ई०) में हुआ। फिर तो अतुकान्त गण वृतों का द्वार खुल गया। और अनूपशर्मा ने 'सिद्धार्थ' तथा वर्द्धमान, जैसे महाकाव्य इसी शैली में प्रस्तुत किये। अन्य लोगों ने भी ऐसे अनेक सफल प्रयास किये।

संस्कृत के गण वृत तो अतुकान्तता के उपयुक्त है ही, उनकी यह परम्परा ही रही है, उन्हें अतुकान्त साँचे में ढालना कठिन नहीं था। मात्रिक छन्दों का अतुकान्त रूप देने के प्रयास में संस्कृत के पंडित अम्बिकादत्त व्यास को विफलता ही हाथ लगी थी, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। मात्रिक छन्दों का अतुकान्त रूप देने का दूसरा प्रयास श्री जयशंकर 'प्रसाद, द्वारा हुआ उन्होंने २१ मात्राओं के अरिल्ल छन्द को अतुकान्त रूप सफलता पूर्वक प्रयुक्त किया। उनकी इस प्रकार की पहली रचना 'भरत' नाम की है, जनवरी १६१३ के 'इन्दु' (कला ४, खण्ड १, किरण १) में सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी। स्पष्ट ही यह १६१२ की रचना है। इसका एक अंश यह है—

> हिम गिरि का उत्तुंग शृंग है सामने
> खड़ा बताता है भारत के गर्व को,
> पड़ती इस पर जब माला रवि रश्मि की
> मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में।

बाद में प्रसाद जी ने इस छन्द में अनेक चतुर्दशपदियों एवं 'करुणालय' तथा 'महाराणा का महत्व' काव्य की सृष्टि की। शीघ्र ही प्रसाद जी ने एक और अतुकान्त प्रयोग अपने प्रसिद्ध काव्य 'प्रेम-पथिक' में किया। 'प्रेम पथिक' का प्रथम संस्करण माघ शुक्ल ५ सं० १६७० वि० (जनवरी १६१४ ई०) में प्रकाशित हुआ था।

प्रसाद जी ने अपनी इन अतुकान्त रचनाओं के द्वारा अतुकान्तता के अतिरिक्त छन्द की स्वच्छन्दता में एक और भी योग दिया। अभी तक हिंदी में जितनी भी रचनायें हुई थीं, सब में अर्थ की समाप्ति चरणान्त में हो जाती थी और चरणान्त में पूर्ण विराम रख दिया जाता था। हिंदी में पूर्ण विराम के अतिरिक्त और कोई विराम पहले होता भी नहीं था।

चल चरणों में विराम चिन्हों का प्रयोग चरण के अंत के अनुसार न होकर अर्थ के अनुसार होता है और पूर्ण विराम चरण के मध्य में भी पड सकता है। प्रसाद जी ने अपनी अतुकात रचनाओं के द्वरा चल चरणों का भी प्रवेश हिंदी जगत में किया।

अभी तक सामान्यतया चार चार चरणों के छन्द स्वीकृत थे, अधिक चरणों वाले छन्द विषम माने जाते थे। प्रसाद ने अपने इन ग्रन्थो द्वारा छन्द की इस सीमा को भी तोड़ा। इन अतुकात छन्दो के की चरण संख्या का कोई नियत परिमाण नही। वे अनिश्चित चरणों के होते हैं। जहाँ भी भाव समाप्त हो जाता है अनुच्छेदों के समान ये पद भी वहीं समाप्त हो जाते हैं।

छन्द को स्वछन्द करने में सर्वाधिक योग निराला जी ने दिया। श्री गंगा प्रसाद पान्डेय, के अनुसार 'जुही की कली' निराला जी की पहली रचना है और इसका रचनाकाल सन् १६१६ ई० है, यद्यपि यह रचना पर्याप्त बाद मे प्रकाश मे आई। 'अपरा' में भी इसका यही रचना काल दिया गया।

निराला की रचनाओं का एक लघु संग्रह १६२२ ई० में 'अनामिका' नाम से निकला था। १६२६ ई० मे निराला जी का दूसरा काव्य संग्रह 'परिमल' निकला। 'परिमल' में उक्त अनामिका की प्रायः सारी अच्छी रचनाएँ संकलित कर ली गयी। इसके सात वर्ष पश्चात १६३६ ई० में कवि का गीत संग्रह 'गीतिका' छपा। पर कवि को 'अनामिका' नाम कुछ इतना प्रिय था कि उसने १६३७ ई० में इसी नाम से अपना सबसे बड़ा और प्रौढतम काव्य संग्रह प्रस्तुत किया।

प्रथम काव्य-संग्रह 'अनामिका' का आलोचकों ने आदर नही किया उसमें प्रयुक्त छन्द को 'रबरछन्द', 'केंचुआ छंद' 'स्वच्छन्द' कह कर उन्होंने उसकी हँसी उड़ाई। वे इस छन्द को छन्द मानने के लिए तैयार नहीं थे, किंतु नामकरण करने में सबसे आगे थे, और नाम में 'छन्द' शब्द जोड़कर एक तरह से जान अनजान मे इसे छन्द स्वीकार करहीलेते थे इसीलिए 'परिमल' की भूमिका में निराला जी ने मुक्त-छन्द के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया और विरोधियों का भी उत्तर दिया। निराला जी के कथन का सार यह है—

मनुष्यों की मुक्ति को तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दो के शासन से अलग हो जाना। मुक्त काव्य साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीनता चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है। प्रसिद्ध गायत्री मंत्र मुक्त छन्द में है। वेदों के ६५ फीसदी मन्त्र मुक्त हृदय के परिचायक हैं—चरण परस्पर असमान; कविता तीन-तीन और पाँच पाँच सतरों की भी। निराला जी ने वेद से ऐसे उदाहरण भी उद्धृत किए थे।

तदनतर निराला जी ने हिंदी के अतुकान्त छन्दों पर विचार किया और उनके चार प्रकार दिखलाए। पहला प्रकार प्रसाद द्वारा प्रवर्तित २१ मात्राओं के अरिल्ल छन्द का है ? जिसका बहुत प्रयोग पं० रूपनारायण पान्डेय ने अपन बंगला से अनुदित काव्यों में किया। दूसरा प्रकार वह है जिसे मैथलीशरण गुप्त ने अपने बंगला से अनूदित 'वीरागना' मे प्रस्तुत किया यह भिन्न अतुकात वर्णिक है। प्रत्येक चरण में १५ वर्ण है। यह वस्तुतः कवित्त के

किया है। शब्दों का रूप भी उन्हें विकृत करना पड़ा है। द्विवेदी ने गण वृत्तों का छन्द की दृष्टि से शुद्ध प्रयोग किया है। हिंदी में जब भी किसी कवि ने गणवृत्तों का उपयोग किया। उसने उन्हें हिंदी की तुकान्त प्रवृत्ति के अनुसार तुकान्त रूप दिया। छन्द के प्रथम दो चरणों का एक तुक और तीसरे और चौथे चरण का दूसरा तुक। आचार्य द्विवेदी ने गण वृत्तों का जो बहुत प्रयोग किया, वहीं उसमें तुक प्रणाली स्वीकार की गई थी 'द्विवेदी काव्य माला' पृष्ठ २६१ ६५) में एक ही कविता 'हे कविते।" है जो अन्त्यानुप्रासहीन है और संस्कृत पद्धति पर है यह रचना जून १६०१ की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी और सम्भवतः हिंदी की वर्ण वृत्तों में लिखी पहली अतुकान्त कविता थी।

संस्कृत के गणवृत्तों के एवं उनके अनुप्रासहीन रूप के प्रयोग का प्रथम विशाल प्रयास कवि सम्राट अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध, के प्रिय प्रवास, (१६०६ १४ ई०) में हुआ। फिर तो अतुकान्त गण वृत्तों का द्वार खुल गया। और अनूपशर्मा ने 'सिद्धार्थ' तथा वर्द्धमान, जैसे महाकाव्य इसी शैली में प्रस्तुत किये। अन्य लोगों ने भी ऐसे अनेक सफल प्रयास किये।

संस्कृत के गण वृत्त तो अतुकान्तता के उपयुक्त है ही, उनकी यह परम्परा ही रही है, उन्हें अतुकान्त साँचे में ढालना कठिन नहीं था। मात्रिक छन्दों का अतुकान्त रूप देने के प्रयास में संस्कृत के पंडित अम्बिकादत्त व्यास को विफलता ही हाथ लगी थी, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। मात्रिक छन्दों का अतुकान्त रूप देने का दूसरा प्रयास श्री जयशंकर 'प्रसाद, द्वारा हुआ उन्होंने २१ मात्राओं के अरिल्ल छन्द को अतुकान्त रूप सफलता पूर्वक प्रयुक्त किया। उनकी इस प्रकार की पहली रचना 'भरत' नाम की है, जनवरी १६१३ के 'इन्दु' (कला ४, खण्ड १, किरण १) में सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी। स्पष्ट ही यह १६१२ की रचना है। इसका एक अंश यह है—

> हिम गिरि का उत्तुङ्ग शृंग है सामने
> खड़ा बताता है भारत के गर्व को,
> पड़ती इस पर जब माला रवि रश्मि की
> मणिमय हो जाता है नवल प्रभात मे।

बाद में प्रसाद जी ने इस छन्द में अनेक चतुर्दशपदियों एवं 'करुणालय' तथा 'महाराणा का महत्व' काव्य की सृष्टि की। शीघ्र ही प्रसाद जी ने एक और अतुकान्त प्रयोग अपने प्रसिद्ध काव्य 'प्रेम-पथिक' में किया। 'प्रेम पथिक' का प्रथम संस्करण माघ शुक्ल ५. सं० १६७० वि० (जनवरी १६१४ ई०) में प्रकाशित हुआ था।

प्रसाद जी ने अपनी इन अतुकान्त रचनाओं के द्वारा अतुकान्तता के अतिरिक्त छन्द की स्वच्छन्दता में एक और भी योग दिया। अभी तक हिंदी में जितनी भी रचनायें हुई थीं, सब में अर्थ की समाप्ति चरणान्त में हो जाती थी और चरणान्त में पूर्ण विराम रख दिया जाता था। हिंदी में पूर्ण विराम के अतिरिक्त और कोई विराम पहले होता भी नहीं था।

चल चरणों में विराम चिन्हों का प्रयोग चरण के अंत के अनुसार न होकर अर्थ के अनुसार होता है और पूर्ण विराम चरण के मध्य में भी पड सकता है। प्रसाद जी ने अपनी अतुकात रचनाओं के द्वारा चल चरणों का भी प्रवेश हिंदी जगत में किया।

अभी तक सामान्यतया चार चार चरणों के छन्द स्वीकृत थे, अधिक चरणों वाले छन्द विषम माने जाते थे। प्रसाद ने अपने इन ग्रन्थो द्वारा छन्द की इस सीमा को भी तोड़ा। इन अतुकात छन्दो के की चरण संख्या का कोई नियत परिमाण नहीं। वे अनिश्चित चरणों के होते हैं। जहाँ भी भाव समाप्त हो जाता है अनुच्छेदों के समान ये पद भी वहीं समाप्त हो जाते हैं।

छन्द को स्वछन्द करने में सर्वाधिक योग निराला जी ने दिया। श्री गंगा प्रसाद पान्डेय, के अनुसार 'जुही की कली' निराला जी की पहली रचना है और इसका रचनाकाल सन् १६१६ ई० है, यद्यपि यह रचना पर्याप्त बाद मे प्रकाश मे आई। 'अपरा' में भी इसका यही रचना काल दिया गया।

निराला की रचनाओं का एक लघु संग्रह १६२२ ई० में 'अनामिका' नाम से निकला था। १६२६ ई० मे निराला जी का दूसरा काव्य संग्रह 'परिमल' निकला। 'परिमल' में उक्त अनामिका की प्रायः सारी अच्छी रचनाएँ संकलित कर ली गयी। इसके सात वर्ष पश्चात १६३६ ई० में कवि का शीत संग्रह 'गीतिका' छपा। पर कवि को 'अनामिका' नाम कुछ इतना प्रिय था कि उसने १६३७ ई० में इसी नाम से अपना सबसे बड़ा और प्रौढ़तम काव्य संग्रह प्रस्तुत किया।

प्रथम काव्य-संग्रह 'अनामिका' का आलोचकों ने आदर नहीं किया उसमें प्रयुक्त छन्द को 'रबरछन्द', 'केंचुआ छंद' 'एवच्छन्द' कह कर उन्होंने उसकी हँसी उड़ाई। वे इस छन्द को छन्द मानने के लिए तैयार नहीं थे, किंतु नामकरण करने में सबसे आगे थे, और नाम में 'छन्द' शब्द जोड़कर एक तरह से जान अनजान में इसे छन्द स्वीकार करहीलेते थे इसीलिए 'परिमल' की भूमिका में निराला जी ने मुक्त-छन्द के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया और विरोधियों का भी उत्तर दिया। निराला जी के कथन का सार यह है—

मनुष्यो की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दो के शासन से अलग हो जाना। मुक्त काव्य साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीनता चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है। प्रसिद्ध गायत्री मंत्र मुक्त छन्द में है। वेदों के ६५ फीसदी मन्त्र मुक्त हृदय के परिचायक हैं—चरण परस्पर असमान; कविता तीन-तीन और पांच पाँच सतरों की भी। निराला जी ने वेद से ऐसे उदाहरण भी उद्धृत किए थे।

तदनतर निराला जी ने हिंदी के अतुकान्त छन्दों पर विचार किया और उनके चार प्रकार दिखलाए। पहला प्रकार प्रसाद द्वारा प्रवर्तित २१ मात्राओं के अरिल्ल छन्द का है। जिसका बहुत प्रयोग पं० रूपनारायण पान्डेय ने अपने बंगला से अनुदित काव्यों में किया। दूसरा प्रकार वह है जिसे मैथलीशरण गुप्त ने अपने बंगला से अनूदित 'वीरांगना' मे प्रस्तुत किया यह भिन्न अतुकांत वर्णिक है। प्रत्येक चरण में १५ वर्ण है। यह वस्तुतः कवित्त के

चरणों का उत्तरार्द्ध है। अंतिम वर्ण सदैव गुरू हैं। यह हिन्दी के लिए कोई नया छन्द नहीं है। इसका उपयोग तुलसी आदि भक्त कवियों ने भी किया है। अंतर केवल तुकांत अतुकांत का है। उदाहरण के लिए विनय-पत्रिका का यह पद देखिए —

कहाँ जाऊँ ? कासों कहौं ? कौन सुने दीन की ?
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की ॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार को आधार गुनगन तेरे है ॥
गजराज काज खगराज ताजि धायो को ?
मौसे दोष कास पोसे, तोसे माय जायो को ॥
मौसे क्रूर कायर कुपूत कौडी आध को।
किये बहुमोल तू करैया गीध साध को ॥
तुलसी की तेर ही बनाये बलि बनैगी।
प्रभू की विलम्ब अंब दुख दोष जनैगी ॥१७६॥

विनय पत्रिका के ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, ७१, ७२, १७८, १७६, १८०, १८१, १८२ आदि सख्यक पद इसी छंद में हैं। इस छंद का मैथिली शरण जी द्वारा लिखित और निराला जी द्वारा उद्धृत अतुकांत रूप देखिये —

सुनो अब दुःख क्या। मन्दिर मे मन के
रख यह श्याम मूर्ति त्यागिनी तपस्विनी
पूज इष्टदेव को ज्यों निजन गहन में—
पूजती थी नाथ को मैं। अब विधि दोष से
चेदीश्वर राजा शिशुपाल जो कहाता है
लोक रव सुनाती हूँ, हाय! वर वेश से
आ रहा है शीघ्र यहाँ वरने अभागी को।

इसी छन्द का प्रयोग मैथिली बाबू ने 'मेघनाद वध' (१६२७ ई०) में भी किया है। आगे चलकर हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार प० लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी इसी छन्द का उपयोग अपने अपूर्ण महाकाव्य 'सेनापति कर्ण' में किया।

निराला जी ने तीसरे प्रकार के अतुकांत में 'प्रियप्रवास' के छंदों का उल्लेख किया है और चौथे प्रकार के भी एक १६ मात्राओं के अतुकांत का उल्लेख उन्होंने किया है। निराला जी के अनुसार इस प्रकार के अतुकांत छंद के प्रथम प्रयोक्ता सियारामशरण गुप्त हैं। उनकी ऐसी रचना पहली बार 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी और इसी छंद में सुमित्रानन्दन पंत ने भी अपना प्रसिद्ध प्रेम काव्य 'ग्रन्थि' लिखा है जिसकी दो पंक्तियाँ ये हैं—

विरह अहह कराहते इस शब्द को
निठुर विधि ने आँसुओं से है लिखा।

अतुकान्त कविता के एक पाँचवें प्रकार का भी उल्लेख निराला जी ने किया है। यह प्रयोग महामहोपाध्याय प० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' द्वारा किया गया था। इसकी गति कवित्त छन्द की सी है। हर एक पद आठ आठ वर्णों का होता है।

सफल हो जाता है। नाटकों में सबसे अधिक
हिन्दी में मुक्त काव्य कवित्त छंद की बुनियाद पर
रोचकता इसी कवित्त को बुनियाद पर लिखे गये स्वच्छन्द छन्द द्वारा आ सकती है।

अब मुक्त छन्द के व्याकरण पर विचार करें। जैसा कि देखने ही से प्रकट होता है, इसकी कोई पंक्ति दो वर्णों की है और कोई सोलह की, अर्थात इसमें रबर की सी लचक और केंचुए सी बढ़ने घटने की क्षमता है, अतः रबर-छंद अथवा केंचुआ छंद, दोनों यथा गुण तथा नाम है।

इस छंद के अन्तर में हिन्दी का एक अत्यन्त प्रसिद्ध छंद कवित्त काम कर रहा है। घनाक्षरी, मनहर अथवा कवित्त ३१ वर्णों का एक दण्डक है, जिसमें १६, १५ वर्णों पर विराम होता है। इस मुक्त छंद मे घनाक्षरी के चरण के चरण उठाकर रख दिये जाते हैं जैसा कि प्रसाद जी ने 'प्रलय की छाया' में ये दो पंक्तियाँ प्रयुक्त की हैं।

आ आकर चूम लेतीं अरुण अधर मेरा।
जिसमें स्वयं ही मुसकान खिल पड़ती ॥

आधे चरण तो प्रायः सर्वत्र बिखरे रहते हैं। छोटे से छोटे चरण कम से कम दो वर्णों के हैं। यों तीन, चार, पाँच, दस, चोदह आदि किसी भी संख्या के अक्षरों के चरण इन कविताओं में मिल जायँगे। किन्तु जैसा कि कहा गया है, उनमें गति होनी चाहिए। उदाहरणार्थ 'अनामिका' की 'प्रेयसी' का प्रारम्भ का अंश देखिए—

घेर अंग अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की
ज्योतिर्मय-लता-सी हुई मै तत्काल
घेर निज नद तन।
खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगंध के,
प्रथम वसंत में गुच्छ गुच्छ
दृगों को रंग गई प्रथम प्रणय रश्मि—
चूर्ण हो विच्छुरित
विश्व ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
बहु रंग-भाव भर
शिशिर ज्यों पत्र पर कनक प्रभात के
किरण संपात से।

प्रथम चरण मे ७, द्वितीय मे १५, तृतीय मे १३, चतुर्थ में ८, पंचम मे १५, छठ में ११, सप्तम मे १५, अष्टम मे ७, नवम में १४, दशम मे ८, एकादश में १५ और द्वादश में ७ वर्ण है। यहाँ न तो मात्राओं का विचार है, न वर्णों की संख्या का, केवल गति के प्रवाह का विचार है। यह छंद वर्णिक मुक्तक के अन्तर्गत आयेगा।

गति, लय के लिए संयुक्ताक्षरो का प्रयोग अवांछनीय है। वे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे ओजस्विनी के पथ में कोइ वज्र कठोर चट्टान। उदाहरणार्थ 'प्रसाद' की 'प्रलय की छाया' की यह पंक्ति—

निर्जन जलधि वेला रागमयी संध्या से

इस चरण में निर्जन शब्द का प्रयोग अपना कर्ण कटु मालूम होता है, और गति में बाधा देता है और संध्या को यदि 'सनध्या' पढ़ा जाय तो गति ठीक हो जाती है।

एक चरण में १२ से भी अधिक वर्ण रखे जा सकते हैं किन्तु एक साथ कई ऐसे चरण न रखे जायं अन्यथा वे वस्तुत दण्डक हो जायगें। चरणों की लम्बाई भावपूर्णता पर निर्भर करती है। 'दिल्ली' (अनामिका) में निम्नांकित पंक्तियों में १५ से अधिक वर्ण हैं—

(१) अविश्वस्त मज्ञाहीन पतित आत्मविस्मृतकर—१८ वर्ण।

(२) बन्ले किरीट जिसने सैकड़ों महीप-भाल ?—१७ वर्ण।

(३) मुग्ध हो रहे थे जहां प्रिय मुख अनुरागमय ?—१८ वर्ण।

(४) कहती सुकुमारियाँ थीं कितनी ही बातें जहाँ –१७ वर्ण।

निराला जी ने मुक्त छंद का यत्र तत्र तुकान्त रूप भी दिया है जैसे 'अनामिका' में संकलित 'सेवा प्रारंभ'—

अल्प दिन हुए
भक्तों ने राम कृष्ण के चरण छुये
जगी साधना
जन जन में भारत की नवाराधना।

यह छंद कवित्त के आधार पर नहीं है।

छायावादी युग के प्रारंभ में ही निराला जी ने अपने मुक्त छंदों का सृजन किया। पहले उनका घोर विरोध हुआ, उपहास हुआ, पर बाद में लोगों ने उनका अनुकरण प्रारंभ किया। इस छंद पर उस समय प्रामाणिकता की मुहर लग गयी जब प्रसाद जी ऐसे समर्थ कवि ने 'प्रलय की छाया', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया। प्रसाद जी की उक्त रचनायें 'लहर' के अंत में संकलित हैं। छायावाद युग के पश्चात् कुछ समय के लिए प्रगतिवाद युग आया था, उसके बाद प्रयोगवाद और नयी कविता का काल आया। प्रयोगवाद और नई कविता के इस युग में तो उक्त छंद का धड़ल्ले से प्रयोग होता रहा है। नये कवियों पर तो इस छंद का असाधारण मोह छा गया है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि या तो वे सीधे सीधे छंदों को मुक्तछंद घोषित कराने के लिए चरणों को तोड़ तोड़कर लिख देते हैं अथवा छंद के रचना तंत्र से अनभिज्ञ रहने के कारण विशुद्ध गद्य को छंद के नाम से प्रचारित प्रसारित करना चाहते हैं।

समर्थ कवियों ने निराला द्वारा चलाई कवित्त पद्धति के मुक्त छंदों के अतिरिक्त अन्य छन्दों का भी उद्भावना की है। तार सप्तक के एक कवि ने सवैयों को मुक्त छन्द में सफलता पूर्वक ढाल दिया है। आज तो 'निराला' द्वारा प्रचलित मुक्त छन्द दिग्विजयी है।

निराला की भाषा

डा० कैलाश चन्द्र भाटिया

महाप्राण निराला के सम्बन्ध मे संस्मरण लिखते हुए डा० उदयनारायण तिवारी ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—जब वे अत्यंत प्रसन्न रहते हैं तो अपनी मातृभाषा बैसवाडी मे वार्तालाप करते हैं। बगला मे बोलते समय भी वह प्रसन्न ही रहते है क्योकि वह भी उनके लिए मातृभाषावत् ही है, किन्तु जब वे किंचित रुष्ट हो जाते हैं—'तो सस्कृतगर्भित हिन्दी का प्रयोग करने लगते हैं, किन्तु जब विशेष रौद्रभाव के आवेश मे आते है तो अग्रेजा बोलने लगते हैं।' सक्षेप मे यह है निराला की विभिन्न मानसिक भूमियो का विश्लेषण। इस प्रकार मातृभाषा बैसवाड़ी तथा मातृभाषावत् बंगला तथा विदेशो भाषा अंग्रेजा पर पूर्णाधिकार होते हुए भी निराला ने खड़ी बोली को ही स्टैंडर्ड रूप देने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'गीतिका' की भूमिका मे स्वयं स्वीकार किया है...'फिर खड़ी बोली केवल बोली मे हो नही खडी हुई कुछ भाव उसने व्रजभाषा सस्कृति से भिन्न अपने कहकर खड़े किये है यद्यपि के वहिविश्व को भावना से सशिलष्ट हैं...मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने को कोशिश की है।'

परिमल, अनामिका, तुलसीदास और गीतिका की भाषा अत्यधिक समृद्ध एवं संस्कृत की तत्समता से बोझिल है जब कि 'अणिमा,' वेला, 'नये पत्ते' आदि की भाषा प्रायः सरल सुबोध एव मुहावरेदार है।

निरालाजी को भाषा-सम्बन्धी विशेषताओ से पूर्व यह भी उल्लेखनीय है कि निराला की दृष्टि मे काव्य भाषा का विशेष स्थान है। विशेष भावो की अभिव्यक्ति के लिए उनको वे सहस्त्रो शब्द गढने पडे जो सगीत, ताल एव लय के साथ खडी बोली मे खप सके। शब्दो के इस महान निर्माता एव पारखी के काव्य मे अनायास ही भाषा के महत्व को प्रतिपादित करने वाली अनेक भावमय पंक्तियाँ जाने-अनजाने यत्र-तत्र बिखरी पडी है।

भाषा तुम पिरो रहा हो शब्द तोलकर
किसका यह अभिनन्दन होगा।--तरंग के प्रति
खुल कर अति प्रिय नीरव भाषा ठण्डी उस चितवन से

—('बहू')

मलिन दृष्टि के भाषा-हीन भाव से,—रास्ते के फूल
मौन मुग्ध हो जाय
भाषा कूकता की आड़ मे
प्रेम भाव बिन भाषा का

तान तरल कम्पन नह निन शब्द अर्थ की।
यह भाषा छिपती छवि सुन्दर
कुछ खुलती आभा मे रग कर
(तुलसीदास)

सस्कृत की तत्सलप्रियता सस्कृत क पुराने अप्रचलित शब्दो का पुन प्रयोग, सस्कृत की धातुओ की सहायता से नवीन शब्दो को गढने का काय विशेष रूप से निराला द्वारा किया जाय।

कही-कही फारसी अग्रेजी के प्रचलित शब्द के स्थान पर भी निरालाजी को शब्द गढना पडा तो सस्कृत की तत्समता का ही आश्रय लिया, जैसे 'तनिमा' नजाकत के स्थान पर।

अत्यधिक तत्समता एव समासप्रियता के कारण अस्पष्टता भी आ जाना स्वाभाविक है। ऐसे स्थलो को कवि ने स्वय टिप्पणियो म स्पष्ट भी किया है, जसे—

'हृष अलि हर स्वशशर आनद रूपी भौंरा स्पश का चुभा तीर हर रहा है। तीर के निकालने से भी एक प्रकार का स्पश होता है। तो सुखद है तीर रूप का चुभा तीर है।' इस सम्बन्ध मे आचाय रामच द्र शुक्ल ने लिखा है कि यह जो अथ कवि को स्वय समझना पडा है वह उन पदावलिय से जबरदस्ती निकाला जान पडता है।

निराला की भाषा के सम्बन्ध मे टिप्पणी देते हुए आचाय चतुरसेन शास्त्री लिखते हैं, 'वे जब आवेश मे भावमग्न हो विचार प्रवाह करते हैं, 'तो भाषा को उसका बोझ वहन करना दूभर हो जाता है। वह लडखडाने और अटकने लगती है। उनकी कविता का आनन्द लेना दुलघ्य गारीशकर शैलशिखर पर चढने के समान साहस और परिश्रम-साध्य है। यह बात स्पष्ट दूषित होती है जहा निराला सस्कृत की तत्समता के साथ-साथ समास-पद्धति भी अपना लेते हैं।'

समासान्त पदावली उनके काय 'क्लेशयुक्त' 'नतन निर्झर,' 'हसीहिंडोले' 'अलि अलको' 'विरह विटव' 'पल्लव-पलने' 'चित्त चकोर' 'कामना-कुसुम' 'पल्लव-पयक कम-कुसुम आदि सामासिक पदों की कलो नही हैं जिसे उनका काय अनुप्स एव समास के हिंडोल झूल रहा हो यह समास-शैली उनकी बढती ही गई है। कहीं-कही सरल तथा छोटे छोटे शब्दो का समास है, पर ओजपूर्ण स्थलो पर वे क्लिष्ट शब्दो से युक्त हो जाते हैं।

विच्छुरित वह्नि-राजीवनयन हतलक्ष्य-बाण
उद्धतथलकारपति-दपित कपि दल नल विस्तार

कहीं-कही ० लम्बे समास होते हुये भी एक अलौकिक प्रवाह बना हुआ है जिसम पाठक बहता ही जाता है।

इस सम्बन्ध मे आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन द्रष्टव्य है।

'उन्होने हिन्दी पद-विन्यास को भी अधिक प्रौढ तथा अधिक प्राजल बनाने का सफल प्रयास किया। अत्यन्त सायक शब्द-सृष्टि द्वारा निरालाजी ने हिन्दी को अभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की है। शब्द-सगीत परखने और व्यवहार में लाने म वे आधुनिक हिन्दी के दिशा-नायक हैं। अनुप्रास के वे आचाय हैं।'

अनुप्रासमयता— निराला जी एक साथ अनुप्रास, रूपक तथा समास का निर्वाह करते थे। जिसकी कुछ झांकी सामासिक पदो मे दिखाई गई है। सबसे प्रथम तो यह स्मरणीय है कि महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपना उपनाम 'निराला' भी 'मतवाला' पत्र से ताल मिलाते हुए रक्खा था। उनके काव्य मे 'मार्ग-मृतिका मलिन' तथा धन से, धान्य से धरा का कृषि फल आदि पंक्तियों की कमी नही, कही-कही तो एक से ही उपसर्गो की झडी लग जाती है :—

> निःस्पृह निःस्व निरामय, निर्मम
> निराकांक्ष, निर्लेप, निरुद्गम
> निर्भय, निराकार, निः समय, शम
> मया आदि पदों की दासी।
>
> (आराधना पृ० ५०)

सन्धियुक्त शब्द—निराला के काव्य मे संस्कृत के तत्सम शब्दो का समास रूप तो प्रायः दृष्टिगत होता ही है पर सन्धि-रूप भी कही-कही मिलता है, जैसे—गर्जितोर्मि, शरदिन्दु तिग्दृग, मज्जनावेदन, चेतनोर्मियों कलमषोत्सार, सरितोपम अनुद्व, सिरसुन्ध एवम्विध आदि उल्लेखनीय है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास मे स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के द्वितीय चरण की भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डा० कृष्णलाल ने लिखा है, एक समृद्ध भाषा शैली का विकास होने लगा, जिसमे संस्कृत तत्सम तथा ध्वनि व्यंजक शब्दो का प्राधान्य था। वह चमत्कारपूर्ण और आलोकमय विशेषणो तथा चित्रमय और ध्वन्यात्मक शब्दो का युग था।" डा० लाल के इस उद्धरण से तीन प्रमुख विशेषताएँ प्राप्त होती है—

(१) आलोकमयता, (२) चित्रमयता, (३) ध्वन्यात्मकता।

आलोकमय विशेषतः प्रायः निराला ने संस्कृत की पद्धति से ही विशेषणो का प्रयोग किया है, जैसे सौन्दर्य-गर्भिता सरिता।

विशेषणो के प्रयोग मे अनुप्रास का भी प्रायः ध्यान रक्खा गया है, जैसे— सुरभि-समीर, मुग्ध मौनमय। साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है, 'टलमल पद', उसके पीछे वाहर जैसे भुक्खड़ फलोवर।'

कही-कही संस्कृत शब्द का विशेषण संस्कृत शब्द द्वारा तथा उर्दू का शब्द द्वारा खिल उठा है, जैसे फल सर्वश्रेष्ठ नायाव चीज।

> जुही मुस्कराई, नागन वलखाई आई।
> मंद गन्ध से पुरवाई डस गई सुहाई॥

'वसन्तागमन' कविता मे सारी प्रकृति मे वसन्त के आने पर हर्ष है। लताएं प्रसूनों से भर जाती है, मलयानिल मन्द-मन्द गति से वहता है, भौरे गुन-गुन मे लीन हैं, गीतिका मे ऐसे शब्द-चित्र भरे पड़े हैं। शारीरिक सौन्दर्य का एक चित्र देखिये?

जो तुलसीदास, वही ब्राह्मण कुल-दीपक,
आयत दृग, पुष्ट देह, गत भय
अपने प्रकाश में नि:संशय
प्रतिभा का मन्द स्मित परिचय, संस्मारक (तुलसीदास)

ध्वन्यात्मकता—भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दावली का विशेष महत्वपूर्ण स्थान होता है। ध्वन्यर्थ-व्यंजक शब्दों की संयोजना हिन्दी साहित्य में भक्ति काल से ही प्रारम्भ हो गयी थी। आधुनिक काल में निराला, पन्त आदि कवियों के इस ओर फिर भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। नूपुरों व झरने के सम्बन्ध में कुछ उद्धरण देखिये —

नूपुर में भी रुनझुन-रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा चुप, चुप चुप।
झर झर निर्झर गिरि सर में
मरु-तरु मर्मर सागर में—बादल (परिमल से युद्धस्थल)
की ध्वनि सुनिए—
बाजी बहती लहरें कलकल।
भेरी झररर, झररर दमामे
घोर न मारों की है चोप।
कड़-कड़-कड़ सन-सन व दूकें
अररर अररर अररर तोप।
धुन-धुन घोर बज्र हुंकार ।।
कहीं कहीं झड़ी लग जाती है, जैसे—
गाती यमुना, मुझे सुनाती धीरे धीरे,
कलकल कुलकुल कलकल टलमल टलमल
(शरत्पूर्णिमा की विदाई)

दुरुक्ति—शब्द चित्र तथा ध्वन्यात्मकता लाने के अतिरिक्त बल प्रदान के लिये भी दुरुक्ति का प्रयोग होता है। निराला के काव्य में ही प्रवृत्ति विशेष दृष्टिगत होती है, जैसे बार-बार गर्जन।

भावानुसार भाषा – निराला ने अपने सौन्दर्य पक्ष के उद्घाटन में सर्वत्र कोमल वर्णों का ही प्रयोग किया है, जैसे तवर्ग, पवर्ग, तथा र, ल आदि वर्णों का भाषा पर असाधारण अधिकार होने के नाते निराला 'ण' जैसे वर्ण का प्रयोग करते हुए भी कोमलता ही प्रस्तुत करते हैं।

आओ मधुर सरण मानस मने
नूपुर-चरण-रणन जीवन नित
बंकिम चितवन चित चार मरण ।

कठोर वर्णों के द्वारा ओजमय भाषा :—

स्वर्ग धराव्यापी संकर का
छाया विकट कटक उन्मान।
लगाये ऊपर चन्दन।
करते समय बदीश-नन्दिनी का अभिनन्दन।

मनोवैज्ञानिक स्थलो पर भाषा—तुलसीदास की भूमिका मे कृष्णदास जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, 'मनोवैज्ञानिक तथ्यो का निरूपण उसका ध्येय है अतः उसे अपनी भाषा बहुत कुछ स्वयं गढनी पड़ी है। किस सफलता से उसने छोटी-छोटी वातो को लेकर बड़े-बड़े मानसिक घात प्रतिघातों को अपनी वाणी द्वारा सजीव कर दिया है...।' इस प्रवृत्ति के प्रमाण में तुलसीदास से ही एक छन्द दे रहा हूँ :—

जब आया फिर देहात्मबोध
वाहर चलने का हुआ शोध
रह निर्विरोध, गति हुई रोध-प्रतिकूल
खोलती मृदुल दल बन्द सकल
गुदा-गुदा विकुल धारा अविचल

भाषा का चलता रूप—प्रगतिवादी धारा मे लिखी गई निराला की तीन प्रसिद्ध पुस्तकें 'अणिमा', 'वेला' और 'नये पत्ते' हैं। इन संग्रहो की भाषा के सम्बन्ध में श्री गिरीशचन्द्र तिवारी ने लिखा है, 'इन तीनों की भाषा साधा रण के अत्यधिक नजदीक है। 'अणिमा' के इन गीलो की भाषा प्रायः सरल है और साथ ही गद्यानुसार भी "सकी भाषा उर्दू के शब्दो से भी प्रभावित है प्रान्तीय भाषाओ मे खासकर उर्दू मे यह प्रकरण है और जोरो से चल रहा है। इसके वाद 'वेला' मे भाषा की सरलता और मुहावरेदारी और वढती गई है।'

ऐसी वात नहीं है कि भाषा का सरल तथा चलता हुआ रूप वाद की ही रचनाओ मे मिलता हो, प्रारम्भिक रचनाओ मे भी ऐसी उद्धरण मिलते हैं—

हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते
विप्लवरव से छोटे ही हैं शोभा पाते

मिली जुली भाषा का रूप—

पर है प्रोलेटेरियन झगड़े जहाँ
मियाँ बीबी के क्या कहना है वहाँ
नाचता है सूदखोर जहाँ कहीं ब्याज डुबता
नाच मेरा क्लाइमेक्स को पहुँचता ।

उर्दू शब्द—लोक में प्रचलित उर्दू शब्दों को बहिष्कृत करने की वृत्ति निराला की नहीं थी, यद्यपि संस्कृत की तत्समप्रियता की ओर उनका झुकाव पर्याप्त था। उनके काव्य में फतहयाब, दाग, दगा, गैर, हक, ज्यादा, रुख, खूब, होशियार, तस्वीर, मिर, तूफान, नाराज आदि शब्द सहज ही मिल जाते हैं।

व्यंग्य प्रधान काव्य 'कुकुरमुत्ता' में उर्दू के शब्दों का विशेष आधिक्य है—

एक थे नव्वाब, फारस से मँगाये थे गुलाब जवां पर लफूज

इस प्रकार इसमें तहजाब, चमन, खुशनुमा, फव्वारे, सुर्ख, फिरोजी, जर्द आसमानी, रगो आब, नव्वाब, कलम, नकली आदि सैकड़ों शब्द मिलते हैं।

प्रचलित अंग्रेजी शब्द भी निराला के काव्य में पर्याप्त मिलते हैं।

लार्ड के लाडलों को कैमरा हाथ।

इसके अतिरिक्त, रेल, ग्रेड, कारनेट, क्लारीओनेट, डम पटूट, मोटर, बाल डान्स, रोमांस, पीसमील, प्रोग्रेसिव, पोएट आदि शब्द उल्लेखनीय हैं।

निराला के 'चाबुक' कहानी संग्रह में मुझको पर्याप्त अंग्रेजी के शब्द मिले हैं। 'सुकुल की बीबी' कहानी-संग्रह में भी इस परम्परा का निर्वाह किया गया है। संग्रहों से मैं शब्द दे रहा हूँ—

सब डिवीजन, पोइट्री, लेक्चर, लिटरेचर, स्कूल, ब्रेड, ब्रिज, गार्जियन, ब्रांडी, कोट-पैन्ट, स्लीपर, मेस, रोमैंटिक, परसेंटेज कि, डबल फोर्स सेंटेंस कालम, नोट, पैराग्राफ, गेट मोटर ड्राइवर, कालेज, डिक्शनरी, फेन, नम्बर, प्राफेसर, टैक्सी, पम्प, इन्सपेक्टर, ड्यूटी, मैट्रीक्यूलेशन, पाउडर, क्रीम, सिनेमा, स्टार, कैर हैट, फीस, आइडिया, पिकेटिंग, सब्जेक्टकमेटी, प्रेस रिपोर्टर आदि उल्लेखनीय हैं। कहीं-कहीं कृदन्त रूप भी मिलते हैं, जैसे आमलेट के सिलसिले में 'वायल्ड तथा हाफ वायल्ड'। तथा 'हाफ वायल्ड। 'सवनेपे, गुडइम' आदि संकर पदावली उल्लेखनीय हैं। 'लेक्चर्स' आदि बहुवचन के रूप भी मिलते हैं।

इस प्रकार निराला की भाषा में हिन्दी के सभी रूपों के दर्शन होते हैं। महाकवि को जब जिस भाव को व्यक्त करने की आवश्यकता होती थी, सरस्वती का वही रूप उसके समक्ष नाचता गाता प्रस्तुत होता था। जहाँ एक ओर संस्कृत की तत्समता तथा सामासिकता से उनकी भाषा दुरूह तथा बोझिल है वहाँ लोक प्रचलित मुहावरों से युक्त भी है जिसमें उनका वास्तविक व्यक्तित्व झाँकता है। निराला की भाषा एक आदर्श भाषा है जिसने हिन्दी के परिनिष्ठित रूप के विकास में पर्याप्त योग दिया है।

•

निराला के गद्य-ग्रन्थ

डा० भोलानाथ

संस्कृत मे एक उक्ति यह है कि गद्य कवियों की कसौटी है। यह एक विचित्र बात है कि हिन्दी के लगभग सभी प्रमुख छायावादी—और तत्पश्चात् प्रगतिवादी और प्रयोगवादी—कवियों पर यह उक्ति पूरी तरह से चरितार्थ होती है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, माखनलाल चतुर्वेदी रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, बच्चन, दिनकर, अज्ञेय आदि सभी कवि सुन्दर और महत्व-पूर्ण गद्य लेखक हैं। कविता के माध्यम से उनके भावों और विचारो की सफल अभिव्यक्ति नही हो पाती। उसकी ही अभिव्यक्ति के लिये इन कवियों ने गद्य का सहारा लिया है। भावनाओ और विचारो के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की अभिव्यक्ति के लिये इन सब को भिन्न-भिन्न विधाओ को अपनाना पड़ा। गर्व का विषय है कि जिसने जो भी उठाया उसी मे सफल रहा और सफलता उच्चकोटि की मिली। कवि सदैव, चौबीसो घंटे, कवि-मात्र ही नही रह सकता, और आज का कवि तो कवि-मात्र होने पर जीवित ही नही रहने पायेगा। उसके व्यक्तित्व और चेतना का बहुमुखी होना युग की आवश्यकता है। और तब उसके व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न रूप साहित्य के भिन्न-भिन्न रूपो के द्वारा अभिव्यजित होते है। इस दृष्टि से विचार करने पर निराला के गद्य-साहित्य का महत्व हमारे सामने विशेष रूप से प्रकट होता है। वह उनके व्यक्तित्व के अनेक रूपो पर प्रकाश डालता है। यदि निराला ने गद्य-साहित्य न प्रस्तुत किया होता तो उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके साहित्य के माध्यम से न उभर पाता।

निराला की औपन्यासिक कृतियो के नाम ये है—

उपन्यास—१—अप्सरा, २—अलका, ३—प्रभावती, ४—निरुपमा, ५—चोटी की पकड, ६—काले कारनामे, और ७—चमेली। 'चमेली' निराला जी की अधूरी कृति है। उसका एक ही परिच्छेद 'रूपाभ' पत्रिका मे निकला था। उसके बाद लेखक उसे पूरा न कर सका। 'काले कारनामे' एक छोटा सा उपन्यास है जो बहुत हद तक व्यक्ति और समाज की ढोंगी और अवाञ्छित प्रवृत्तियो को दृष्टि मे रखकर लिखा गया था। उपन्यास साहित्य मे उनकी प्रथम कृति है। अप्सरा १९३१ ई० जिसमे 'वेश्या की समस्या' उठाई गई है। इस उपन्यास को नायिका है। कनक-जिसको नृत्य-संगीत मे भारत-प्रसिद्ध माता सर्वेश्वरो उसकी गधर्व जाति का पुनरुद्धार करना चाहती है और इस लक्ष्य को सामने रखकर उसे पठन-पाठन तथा नृत्य-सगीत मे पारगत कराना चाहती है। कुमार नामक एक नवयुवक एक अंग्रेज डी० एस० पी० से उसकी रक्षा करता है। कनक कुमार एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। कनक और कुमार के मित्र चन्दन के प्रयत्नो के फलस्वरूप कुमार डी० एस० पी० हैमिल्टन के कुचक्र से बचता है और कनक और कुमार का मिलन होता है। इस उपन्यास की मुख्य विशेषताएँ हैं – संयोग तत्व की अधिकता, कल्पित घटनाओ की बहुलता, रूप और भावनाओ का काव्यात्मक वर्णन, साधारण कथावस्तु, नारी हृदय का चित्रण, सुन्दर चरित्र-चित्रण, वेश्याओ मे

भी उच्चतम भावनाओं की उपस्थिति आदि। एक आलोचक के अनुसार, इसके प्रकाशन से 'प्रथम बार साहित्य के मुख पर प्रणय-हास मिला।'

'अप्सरा' लिखने के कारण निराला जी पर उनके कुछ मित्रों और आलोचकों ने कुछ छींटा कशी की थी। सम्भवत उसी से प्रेरित होकर उन्होंने १६३३ मे 'अलका' नामक उपन्यास प्रकाशित कराया। इसकी नायिका शोभा पर तालुकेदार मुरलीधर की कुदृष्टि पड़ती है। अरक्षित और अनाश्रित शोभा को एक वृद्ध सज्जन के यहाँ आश्रय और आत्मनिर्भरता का पाठ मिलता है। उसके निराश किन्तु निःशुल्क शिक्षादान मे निरत पति को कूटनीति के कारण जेल जाना पड़ता है जहाँ से लौटकर वह मजदूरो मे कार्य करने लगता है। यहीं उसकी अलका से भेंट होती है जिसे आगे चल कर एक रात मुरलीधर भगा ले जाना चाहता है और जो मुरलीधर की ही पिस्तौल से, जिसे एक लड़की छल से उससे उसे मारने के लिये प्राप्त कर लेती है, उसे मार डालती है। इस उपन्यास की विशेषताएँ हैं—गाँव की जनता और उस पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन, मोहक रूप चित्रण, पात्रों मे विशिष्टता का अनुभव, काव्यतत्व प्रधान भाषा-शैली, नाटकीय तत्व, आकस्मिकता और सयोग का आश्रय, आदर्शवादी दृष्टिकोण और व्यंग्य। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव के कथनानुसार, 'अपनी त्रुटियों के होते हुए भी यह उपन्यास अच्छा बन पड़ा है।' तत्पश्चात उनका 'चोटी की पकड़' नामक उपन्यास निकला। इस उपन्यास मे जमींदारों का विलासी जीवन चित्रित किया गया है। रुपये वालो का अनैतिकतापूर्ण जीवन और ऐसे वातावरण मे पलने वाली महिलाओं की चरित्र-हीनता भी देखने को मिलती है। सुन्दर चित्रण, नवीनता का आकर्षण, बंगाल प्रान्त के सम्पन्न और विभिन्न जीवन के चित्र, और व्यंग्य-प्रधान लाक्षणिक भाषा इस उपन्यास के गुण हैं। के० सी० सोनरिक्सा के अनुसार, 'हिन्दी के गद्य और कथा-साहित्य के विकास के मार्ग पर (यह) मील के पत्थर की तरह है।' १६३६ ई० मे निराला ने 'प्रभावती' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित कराया जिसमे मध्य युग का सामन्ती जीवन मुखरित हो उठा है। डा० रामचन्द्र तिवारी के अनुसार, 'इसमे इतिहास कम, कल्पना अधिक है।' सोनरिक्सा जी के अनुसार, यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासो मे एक नयी दिशा है। जाति, वंश, रंग रूप, धन, अधिकार आदि के लिये लालच और इन सब का अभिमान चित्रित है और व्यक्तिगत वीरता, विकृत वीर पूजा, विदेशी आक्रमण आदि भी मिलता है। १६३६ ई० में ही 'निरुपमा' का भी प्रकाशन हुआ जो उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है निरुपमा इस उपन्यास की नायिका है और कृष्णकुमार नायक। यामिनी राय खल नायक अर्थात नायक के प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे माना जा सकता है। उपन्यास सुखान्त है और रायबाबू को (पाठकों की दृष्टि से काफी मनोरंजक) दण्ड मिल जाता है। डा० तिवारी के कथनानुसार निरुपमा की 'विवशता, उदारता एवं मानसिक मथन के चित्रण मे पूर्ण कलात्मकता' और 'कुमार के चरित्र की दृढ़ता' मे पर्याप्त आकर्षण है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव की विवेचना इस उपन्यास मे कथा सौष्ठव भावानुभूति, सामाजिक यथार्थ, रमणीयता, गम्भीर प्रेम, बंगाली भावुकता, नाटकीय स्थितियाँ, अनेक रमणीय, प्रभावपूर्ण, मर्मस्पर्शी और मनोरंजक स्थल, समाज के अनेक स्वाभाविक खंड चित्र, ग्राम्य वातावरण, सजीव व्यंग्य, सप्राणपात्र, मानसिक द्वंद्व और अन्तर्व्यथा, नवीन सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत, व्यावहारिक और पात्रानुकूल भाषा तथा बंगला के उपन्यासों का-सा आनन्द है।

निराला के उपन्यास चरित्र प्रधान, उज्ज्वल नारी चरित्र वाले, प्रेम प्रधान, सामाजिक समस्याओ से परिपूर्ण, सुन्दर आलंकारिक भाषा, भावानुकूल शैली वाले और आकर्षक एवं मनोरंजक है।

हिन्दी के सभी उपन्यासकार कहानियाँ भी अवश्य लिखते रहे हैं और साहित्य-विषयक किसी भी प्रकार के सामर्थ्य मे निराला किसी से भी कम नही थे। उन्होने भी कहानियाँ लिखी हैं। कहानी रचना की ओर उनका ध्यान इस बीसवी शताब्दी के तृतीय दशक मे ही गया था। उन्ही के कथनानुसार उन्होंने लगभग २० कहानियाँ लिखी। उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ 'मतवाला' नामक पत्रिका मे समय-समय पर निकला करती थी। आगे चल कर उनके चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए लिली (१९३६ ई०), सखी (१९३५ ई० , सुकुल की बीवी (१९३१ ई०) और चतुरी चमार, (१९४५ ई०) पद्मा और लिली, ज्योतिर्मयी, कमला, श्यामा, अर्थ, प्रेमिका-परिचय, परिवर्तन हिरनी, सुकुल की बीबी, गजानन शास्त्रिणी, कला की रूपरेखा, क्या देखा और चतुरी चमार आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ है। ये कहानियाँ मूलतः सामाजिक है। इनमे राजनीति, धर्म, कला, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, वेश्या, अनियंत्रित और उच्छृङ्खल प्रेम, पति-पत्नी प्रेममय जीवन आदि विषयो पर चर्चा की गई है। इन कहानियो का भाव पक्ष अत्यन्त सबल है। प्रायः सभी आलोचको का यही मत है कि इन कहानियो की कला उच्चतम कोटि की नहीं है। इनसे मनोरजन होता है और विचारो को उत्तेजना भी मिलती है। इनमे वर्णन और चित्रण की प्रधानता है। कला की दृष्टि से कहानियाँ प्रेमचन्द स्कूल की लगती है। इनमे इतिवृत्ततत्मकता है। घटना के विकास मे कोई विशेष चमत्कार नही पाया जाता। पात्र अधिकांशतः मध्यम तथा उच्च वर्ग के हैं। चरित्र पर घटनाओ के ही द्वारा प्रकाश डाला जाता है। लेखक का दृष्टिकोण बहुत कुछ यथार्थवादी है। व्यग्य और हास्य प्रचुर मात्रा मे है। उदार शब्दकोश के साथ-साथ भाषा मे साहित्यकता प्रायः पायी जाती है। चतुरी चमार निराला की सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

निराला के गद्य साहित्य मे दो रेखाचित्र भी है। सामान्य पाठक को ये हास्य और व्यंग्य प्रधान बड़ी कहानी मे दिखलाई पड सकते है और वह इनको चतुरी चमार के साथ-साथ रख सकता है। इन चित्रो से व्यक्तित्व उभरता है। 'कुल्ली भाट' १९३९ ई० मे प्रकाशित हुआ था। हास्यपूर्ण ढग से घटनाओ का वर्णन करके लेखक कुल्ली भाट के जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। क्रिया प्रधान हास्य कम है, कथन प्रधान हास्य अधिक। उदाहरण के रूप मे इसके दो हास्य प्रधान स्थल उपस्थित किये जा रहे है। नायक अपने एक मित्र के यहाँ अत्यन्त आवश्यक कार्य से गया। वे कनकौआ (पतग) उडाते रहे, और बिना मुड़े हुए बोले—देख ही रहे है अभी फ़ुर्सत नही है। नायक ने डिप्टी साहब के आने की झूठी बात कही और परिणाम यह हुआ कि वे तुरन्त काम खतम करके साथ हो लिये। अपने घर आकर नायक ने सही बात बतलाई और स्पष्ट कह दिया कि जैसा मेरा आना-जाना व्यर्थ रहा, वैसा आपका। दुःख न कीजियेगा। जाइए कनकौआ उड़ाइए। एक दूसरा हास्य देखिये। सास ने पूछा-भैया, मेरी लडकी आपको पसन्द आई। उत्तर मिला—मुझे उसे देखने का अभी तक सौभाग्य ही न मिला। मै जाता था तो दिया बुझा दिया जाता था। एकाध बार दियासलाई लेकर गया और जलाई तो उसने मुँह फेर लिया और आस-पास के लोग

सोसने लगे। डा० रामचन्द्र तिवारी का कहना है कि 'कुल्ली भाट' में निराला जी ने पूरे समाज पर बड़ा गहरा व्यंग्य किया है और सोनरिक्सा जी का विचार है कि 'कुल्ली भाट' एक अनोखी जीवन कहानी है और कम से कम हिंदी साहित्य में तो बेजोड़ ही है।

निराला जी का लिखा हुआ दूसरा रेखाचित्र है—बिल्लेसुर बकरिहा। उसमे अवध का ग्रामीण जीवन चित्रित किया गया है। इसमें गाँव वालों के अन्दर पाये जाने वाले अंध विश्वास, ढोंग-ढकोसले, गरीबी, संकुचित दृष्टिकोण, मूढ़ता और वासना की भूख आदि का जैसे—यथार्थवादी दृष्टिकोण से ही चित्रण किया गया है। विधवाओं और निराश्रिताओं की करुण-कथाएँ मर्मस्पर्शी ही नहीं, मर्म को वेधने वाली हैं। यहाँ निराला की अनुभूति मार्मिक रूप में मुखरित हो उठी है। डा० रामचन्द्र तिवारी का कथन है—इसकी भाषा की सजीवता और व्यावहारिकता तो हिन्दी गद्य साहित्य मे अकेली है।

निराला जी की लिखी आलोचनाएं दो रूपों में मिलती हैं—१—महान कवियों पर लिखी गई आलोचनाएँ और २—निबंध रूप में लिखी गई आलोचनाएँ। प्रथम प्रकार की पुस्तकें दो हैं—१—रवीन्द्र कविता कानन और २—पंत और पल्लव। रवीन्द्र कविता कानन (१९२८ ई०) उनकी प्रथम आलोचना कृति है। निराला साहित्यिक बंगला और व्यवहृत बंगला, दोनों खूब अच्छी तरह जानते थे। संस्कृत और अंग्रेजी के साहित्यों का भी पर्याप्त अध्ययन और मनन किया था। उपयुक्त पुस्तक में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य की बारीकियों को बड़ी ही विद्वता और कुशलता के साथ समझाया गया है। 'पंत और पल्लव' छपी सन् १९४९ ई० में लेकिन लिखी बहुत पहले गई थी। बड़ी ही विद्वता, बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि और बड़ी निर्भीकता के साथ पन्त के 'पल्लव' संग्रह की कुछ कविताओं पर, 'पल्लव' की भूमिका मे व्यक्त अनेक विचारों पर और पन्त की काव्य-सम्बन्धी मौलिकता तथा सामर्थ्य पर तुलनात्मक और विवेचनात्मक ढंग से विचार किया गया है। उनके आलोचनात्मक लेखों मे भी चिंतन की सूक्ष्मता, मनन की गम्भीरता, अध्ययन की व्यापकता विचार स्वातंत्र्य और निराला का अपना पर्याय अर्थात निर्भीकता बराबर मिलती है। श्री रामप्यारे मिश्र का कथन है—'उनकी आलोचना के कशाघातों की प्रताड़ना ऊँचे तबके के राष्ट्रसेवियो या सुविदित यशस्वी कवियों को भी सरकस के व्याघ्र की भाँति निस्तेज बना देती थी।'

निराला का निबंध साहित्य भी हिंदी के लिये महत्वपूर्ण सम्पत्ति और गर्व की वस्तु है। हमारे सामने उनके तीन निबंध संग्रह हैं—१—चाबुक, २—प्रबंध पद्म, और ३—प्रबंध प्रतिमा। 'चाबुक' उनका प्रथम निबंध संग्रह है। इसका प्रणयन १९२३ ई० के आसपास हुआ था। इसमें ९ निबंध हैं। उनका विषय साहित्य है। एक निबंध वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति पर है। आलोचनात्मक होते हुए भी इन निबंधों में कटुता और तीखेपन का प्रायः अभाव है। उनके दूसरे निबंध संग्रह 'प्रबंध पद्म' का प्रकाशन १९३४ ई० में हुआ था। इसमे भी विचारात्मक साहित्यिक निबंध हैं। भाषा भावों की अनुगामिनी है। उर्दू के शब्दों का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक हुआ है। व्यंग्य का आनन्द मिलता है। विचार और विवेचन में सूक्ष्मता है। आलोचना, दार्शनिकता, साहित्य और राष्ट्र, नारी आदि विषय हैं, ध्येय है ज्ञानवृद्धि और साहित्य का महत्व प्रचार।

तीसरा निबन्ध-सग्रह 'प्रबन्ध प्रतिमा' १६४० ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसके लेख विचारप्रधान हैं। लेखक की निर्भीकता स्पृहणीय है। टैगोर, गाधी, तुलसी, पन्त आदि सभी पर बुद्धि भली है। तीखा मजाक और चुभने वाले व्यंग्य दर्शनीय हैं। विषय के सभी पक्षो पर विचार किया गया है। जहाँ कोई गंभीर बात कही गई है वहाँ 'ध्यान दीजिये' आदि वाक्यांशो के द्वारा लेखक पाठको को सचेत कर देता है। कभी-कभी भाषण-कला का आनन्द मिलता है। हास्य और व्यंग्य की कमी नही है। हिन्दी-साहित्य हिन्दू समाज और उनकी उन्नति के लिए विचार-विनियम लक्ष्य है। शुद्ध विवेचनात्मक निबन्ध भी इस संग्रह मे है। अधिकार-समस्या, सामाजिक पराधीनता, मेरे गीत और कला, प्रातीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, नेहरू जी से दो बाते आदि निबन्ध इसमे है। मेरा विचार है कि यह निराला जी का सर्वश्रेष्ठ निबन्ध संग्रह है।

निराला के गद्य-साहित्य मे केवल ललित ही नही, उपयोगी साहित्य भी है। उन्होने ध्रुव, भीष्म और राणाप्रताप की जीवनियाँ लिखी हैं, परिव्राजक, श्रीरामकृष्ण कथामृत (४ भाग), विवेकानन्द के व्याख्यान और राजयोग का प्रणयन किया है, आनन्दमठ, कपालकुण्डला, चन्द्रशेखर, दुर्गेशनन्दिनी, कृष्णकान्त का विल, युगलागुलीय, रजनी देवी, चौधरानी, राधारानी, विष वृक्ष और राज सिंह आदि बंकिम बाबू के उपन्यासो के अनुवाद भी प्रस्तुत किये, खड़ी बोली मे रामचरितमानस लिखना प्रारम्भ किया, महाभारत भी लिखा, तथा हिन्दी-बगला-शिक्षा, रस-अलकार, वात्स्यायन कामसूत्र, और तुलसीकृत रामचरित मानस की टीका भी लिखी। उनके द्वारा प्रस्तुत दो नाटको . समाज और शकुन्तला...का भी उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही साथ हमे इस बात को भी न भूलना चाहिए कि उन्होने 'समन्वय' और 'मतवाला' नामक पत्रो का सम्पादन भी किया था।

'आज' के निराला स्मृति अक (२६ अक्तूबर, ६१ ई०) मे प्रकाशित निम्नलिखित दो लेखको के विचार निराला के गद्य साहित्य पर सुन्दरतम ढग से प्रकाश डालते है। श्री चन्द्रबली सिंह का कथन है...'निराला का यथार्थवादी गद्य-साहित्य उनकी कविता की तरह ही सघर्षो के बीच उनके अपराजेय व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है।...निराला का गद्य साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, हर तरह के गुरुडम के विरुद्ध चुनौती-भरी आवाज है। उसमे निराला की तेजस्विता और दर्प है......निराला ने जिस तरह आखिरी सॉस तक तपकर, उसकी आहुति देकर, लघुता के बीच पाई जाने वाली महानता के मान की रक्षा की उसे समझने मे निराला के गद्य साहित्य से बहुत मदद मिलती है।''

जगदीश चन्द्र माथुर का निम्नलिखित विचार निराला के गद्य साहित्य के प्रति अर्पित सत्य और सुन्दर प्रशस्ति है :—

'निराला जी ने कविताएँ तो दी ही, एक ऐसी चीज भी दी जिसने उस समय हिन्दी साहित्य को चकाचौंध कर दिया। वह था उनका ललित गद्य। .....कौन जानता था कि अभिजात सस्कृतमयी भाषा का अभिकार कवि धरती की गध से सुवासित, चौराहे और चौपाल की उच्छृ खल किन्तु चित्रोपम वर्णावलियो को इस सहज भाव से हिन्दी गद्य मे आरोपित कर सकेगा। गद्य पन्त, प्रसाद,

महादेवी, सभी ने लिखा है, किन्तु निराला जैसा गद्य उस युग में चमत्कार था महादेव धूर्जटी का यह धूल-धूसरित रूप !

सच है, यदि निराला का गद्य—साहित्य न होता तो हिन्दी कई दृष्टियों से दीन-हीन विपन्न होती।

सच है, निराला का गद्य—साहित्य न होता तो इनकी साहित्य चेतना, साहित्यिक प्रतिभा, साहित्यिक सामर्थ्य, अनुभूति और व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष एवं स्वरूप अव्यक्त रह जाता !!

सच है, यदि यह न होता तो बहुत कुछ न होता !!!

निराला का उपन्यास-साहित्य

श्री जगन्नाथ सेठ

उपन्यास के सम्बन्ध मे निराला का मत है..."जब तक किसी बहते प्रवाह के प्रतिकूल किसी सत्य की बुनियाद पर ठहरकर कोई उपन्यास नयी-नयी रचनाओ के चित्र नही दिखलाता, तब तक न तो उसे साहित्यिक शक्ति ही प्राप्त होती है और न समाज को नवीन प्रवाहमान जीवन।" 'प्रतिकूल' के प्रति इस अतिशय आग्रह के मूल मे है समाज की विकृति और विषमता से उत्पन्न विक्षोभ और असन्तोष। "समाज...एक सर्वाङ्ग सुन्दर शब्द, गुण से युक्त, व्यष्टि और समष्टि को परस्पर मिलकर भी हर एक को उसी के मार्ग से चलने की पूर्ण स्वतंत्रता देनेवाला है," किन्तु शब्द जब अपना अर्थ खो देता है, गुण जब अभिशप्त हो जाता है, व्यष्टि और समष्टि के विकास का विधान ही जब व्यवधान बन जाता है, तब समाज अपने कर्म-संस्कार खोकर अपनी ही जडता मे रूढ हो जाता है। ऐसे समाज का अनुमोदन करना उसके जडत्व को और भी घनीभूत बनाना है। इसीलिए नव निमाण की भावना से अनुप्राणित सजग कलाकार बहते प्रवाह के प्रतिकूल चलता है, किन्तु आधार-भूमि सत्य की होनी चाहिए...ऐसे सत्य की जिसमे युग-धर्म समाविष्ट हो।

निराला के उपन्यासो मे उनके इस सिद्धान्त के पोषण का आग्रह मिलता है। जाति-वर्ग का दूषण समाज के तथाकथित अभिजात वर्ग के मस्तक पर अहमन्यता का तिलक बन कर चमक रहा है। भेदभाव ने मानव-मानव के बीच कितनी ऊँची दीवार खडी कर दी है। क्या यह ढह नही सकती? मा के व्यवसाय के कलुष से अस्पृष्ट 'अप्सरा' की सरल हृदया कनक अपने प्रति लोगो का उपेक्षा भाव समझ नही पाती। वह तारा से पूछती है, "दीदी, क्या किसी जाति का आदमी तरक्की करके दूसरी जाति मे नही जा सकता?" और उत्तर मे तारा कहती है, "आदमी, आदमी है, और ऊँचे शास्त्रो के अनुसार सब लोग एक ही परमात्मा से हुए है।" कितने सहज भाव से ये महिलाएँ व्यक्त कर देती है कि आज का जन-मानस वर्ण-व्यवस्था को अस्वीकार कर रहा है। जाति-वर्ण, ऊँच-नीच और प्रान्तीयता के विभेद की अस्वीकृति पात्रो के वैवाहिक सम्बन्धो मे स्पष्ट हो जाती है। बगालिन निरुपमा का कुमार से, विदिवा वीणा का अजित से, राजकन्या यमुना का सेनापति से, गणिका कुमारी कनक का कुमार से प्रणय और फलस्वरूप परिणय कराके लेखक प्रवाह की प्रतिकूलता का परिचय देता है, किन्तु सत्य-प्रतिष्ठा की इति यही नहीं होती। तारा कनक के पेशवाज को आग लगा देती है, मकान मे यज्ञ कराके और छोटा-सा मन्दिर बनवा कर प्रति दिन पूजन करने का आदेश देती है। कनक को उपहार के रूप मे नन्दन चरखा और अँगूठी देता है जिसपर 'सती' शब्द अंकित है। आदर्श के प्रति सैद्धान्तिक दृष्टि से विशेष आग्रह न होने पर भी अनायास ही आदर्श-सत्य की किरणे फूट निकली है। 'अलका' के स्नेहशंकर ज्ञान

और शील के अवतार, आदर्श जमींदार हैं। निरुपमा के कमरे में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रवि ठाकुर, तिलक, महात्मा गांधी आदि धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति और राजनीति के मूर्तिमान आदर्शों की 'बड़े आकार वाली तस्वीरें' टंगी हैं। लण्डन में डी० लिट्० उपाधि प्राप्त 'निरुपमा' का कुमार ब्राह्मण होते हुए भी बूट पॉलिश करता है 'अपनी प्रज्ञा में स्थित, उसकी पुष्टि में लगा हुआ।' इस कार्य को वह हीन नहीं समझता, इससे घृणा नहीं करता, बल्कि ऊँचे वर्ग की घृणा करने वाली दृष्टि से वह घृणा करता है। सोचता है, 'संभव है, शिक्षा पेशा कार्य सहयोग देकर भारत का सच्चे वर्ण निर्माण की शिक्षा दे रही हो।' 'उच्च वर्णों के प्रति आक्रोश का ही प्रतिफल है, निम्न वर्णों के प्रति सहानुभूति और उनको उन्नत करने का प्रयास। इसीलिये 'काले कारनामे' का मनोहर काशी में पाठशाला खोलकर शूद्रों को देवभाषा की शिक्षा देता है। निराला के आदर्श-सत्य में उज्ज्वल भविष्य की स्वर्ण रेखाएँ हैं, किन्तु यह यथार्थ की कठोर भूमि से कल्पना के स्वप्न रंजित लोक में कायरता जन्य पलायन नहीं, गौरव-गम्भीर अतीत के खंडहरों में विश्राम की आकांक्षा भी नहीं, क्योंकि 'स्वप्न की अस्पष्ट रेखा की तरह प्राचीन बड़े आदर्श के चित्र वर्तमान जागृति के प्रकाश में, छायामूर्तियाँ में ही रह गये हैं, जिनके साहित्यिक अस्तित्व से अनस्तित्व ही प्रबल है।' निराला की वासना-सृष्टि जीर्ण-शीर्ण प्राचीन के पतझर पर शिक्षा और संस्कृति से अभिसिंचित नवपल्लवों का वसन्त बुलाना चाहती है। इसमें बौद्धिकता की प्रति शयता है, पर ऐसी बौद्धिकता जो कलाकार के ही व्यक्तित्व का एक अंग है।

निराला के उपन्यासों की भावभूमि व्यापक है। इनमें व्यक्ति समाज, राष्ट्र के सामाजिक और शाश्वत संवेदनों का स्पन्दन है। गाँवों के देश में ग्रामीण समाज का चित्रण स्वाभाविक ही है।

नगर सभ्यता के प्रसार के कारण वहाँ का समाज भी निराला के उपन्यासों का विषय बना है। प्रणय और सौन्दर्य के चित्रों में कोमल तूलिका से लेखक ने रंग भरे हैं और इनकी रूमानी भावना उपन्यासों के अन्त में दो आकुल प्राणों को मिलन के मधुर मसृण सूत्र में पिरो देती है। राष्ट्रीयता का स्वर भी मुखर है। कथा की मूलधारा के साथ देशभक्ति की धारा मिलकर कथा की दिशा को मोड़ देती है।

गाँव की मिट्टी और नगर की सभ्यता में 'स्वत्वहीन गुलामों का एक समाज' पल रहा है। किसानों के जीवन की बागडोर जमींदारों के हाथ में है और स्वयं जमींदार मानो क्रूर शासना तथा शासकों की दमन-नीति के गुलाम हैं। किसानों का शोषण होता है, उनसे बेगार ली जाती है, उनपर अत्याचार होते हैं, किन्तु वे चूं तक नहीं कर सकते। उनकी गृहलक्ष्मियाँ बलपूर्वक भूस्वामियों की दुर्वासना का शिकार बनायी जाती हैं, पर सन्धिया की दासता की बोझ से झुका उनका मस्तक विद्रोह में उठने के स्थान पर मनुष्यता के शेष कण का श्रृण चुका और भी झुक जाता है। इस दीन-हीन अवस्था के लिए उत्तरदायी कुछ अंश तक वे स्वयं हैं। उन्हीं के समाज में उत्पन्न होने वाले विभीषण जमींदारों की जी हुजूरी करते हैं, चापलूसी करते हैं और स्वामी की कृपाकोर के अनन्य भक्त बन कर क्रोधदृष्टि का निरपराध निःसहायों की ओर केन्द्रित कर देते हैं। 'अलका' के महँगू जैसे दुभाषिये गाँवों में किसानों के शिकार हैं, उधर जमींदार में भी मिल

हुए हैं, लक्खे जैसे व्यक्ति स्वार्थ-प्रेरित हो निरपराध वुधुआ पर मिथ्या दोषारोपण कर उसे पिटवाते है। मानवता की जिस धुरी पर व्यक्ति को प्रतिष्ठित होना चाहिये, वह धुरी खिसक गयी है। अत्याचार के भय ने उन्हे इतना भीरु वना दिया है कि वह स्वामी जी की वात का हृदय से समर्थन करते हुए भी तदनुकूल आचरण करने का साहस उनमें नही जगता। वास्तव-सत्य के धरातल पर ही 'अलका के ग्राम का दयनीय चित्र लेखक ने उतारा है। गाँव मे प्रचलित अन्धविश्वास और ढोंगी साधुओ के पाखण्ड की ओर भी प्रसंग प्राप्त सकेत है, जो अजित से सम्वन्धित घटनाओ को आगे वढ़ाने में सहायक होता है।

'निरूपमा' के गाँव मे जाति-वर्ण के भेद भाव की संकीर्णता ही उभर कर आयी है। कृष्णकुमार के विलायत जाने के फलस्वरूप उसके परिवार का सामाजिक वहिष्कार हो जाता है, और लौटकर वूट-पालिश-वृत्ति ग्रहण करने पर तो जैसे वाह्मणत्व की नाजुक नीव ही हिल जाती है। लेखक की दृष्टि मे ये शूद्रत्व के संस्कार है और हमारे समाज मे प्रवल हैं। इनके मूल मे है, अशिक्षा-जन्य अज्ञान। जो समाज कर्म-संस्कार के आधार पर शूद्रों को व्राह्मण नही वना सकता, उसे आभिजात्य के मिथ्या दर्प मे किसी के व्राह्मणत्व का अपहरण करने का अधिकार ही क्या है? समाज की इन कुरीतियो का विरोध होना चाहिए। लेखक के हृदय को यह विरोध-भावना समाज के आदेश-पथ की निरपेक्ष अनुगामिनी निरूपमा के हृदय मे संक्रमित होती है और सोचती है, 'जिन सामाजिक रीतियो से कुमार जैसे शिक्षित मनुष्य को पीड़ा पहुँचती है, उनका समर्थन करके वस्तुतः ज्ञान की ओर वढने का उसने विरोध किया है, यह रीति के अनुसार धर्म नही। 'प्रभावती' की ऐतिहासिक पृष्टभूमि मे यमुना वर्णाश्रम-धर्म की महत्ता और विकृति की व्याख्या करती हुई कहती है, 'वर्णाश्रम-धर्म की प्रतिष्ठा मे वौद्धो पर विजय पाने वाले क्षत्रिय कदापि इस धर्म' की रक्षा न कर सकेंगे, क्योकि साधारण जातिया इनके तथा व्राह्मणो के घृणा-भावो से पीड़ित है। ये आपस मे कटकर क्षीण हो जायेंगे।'

'निरूपमा' मे ग्राम्य-समाज का चित्र महत्व की दृष्टि से गौण होते हुए भी प्रयोजनानुकूल है। वर्ण-धर्म की विकृति के माध्यम से निरूपमा के हृदय मे कुमार के प्रति घोषित स्नेहभार वढ जाता है, समवेदना अधिक तीव्र हो जाती है। ग्राम मे ही कुमार की माँ से चाक्षुष मिलन के अभाव मे भी हृदय का साक्षात्कार होता जिसका स्नेह-दीप भावी जीवन-पथ की सीमा को आलोकित कर देता है।

'काले कारनामे' मे आदि से ही अन्त तक जमीदारी हथकण्डे और घात-प्रतिघात के ही सजीव चित्र हैं किन्तु उसकी एक विशेषता है। 'अलका' के किसानो का नवनिर्माण का प्रकाश देखने की दृष्टि वडी कठिनाई से मिली थी, किन्तु शिक्षित होने के कारण मनोहर दृष्टि साफ समस्त प्रचलित प्रथाओ के प्रति उसका सहज विद्रोह, जिसे निराला के व्यक्तित्व का वल मिला है, किसानो मे विश्वास उत्पन्न करने मे सफल होता है और वे कहते है, 'वह वज्र है जो सिर फोड़कर टूटे। वह हमारी पुकार है, हमारे आसू से टपककर भाप वनकर उड गया है, कभी खुशी की वारिश लायेगा।'

नागरिक जीवन के परिवेश मे लेखक की दृष्टि अभिजात वर्ग को ओर ही रही है। 'अप्सरा' का राजकुमार और 'अलका' का विजय दो ही ऐसे प्रवाद हैं; मध्यवर्ग के प्रतीत होते हैं। यहां का वायुमंडल वदनमंडल, मनोमंडल, भावमंडल से ओतप्रोत है। अशिक्षिता अलका की

स्नेहशंकर के संसर्ग और नगर के वायुमण्डल में प्रवेश करने के बाद ज्ञान सम्पन्न हो जाती है। स्वतन्त्रता से पूर्व सम्भवतः 'अंग्रेजी', अंग्रेजी की पुस्तकें 'अंग्रेजी के उच्चारण' की ओर आग्रहपूर्वक हमारा ध्यान आकर्षित करता है। कनक की अंग्रेजी की बड़ी-बड़ी पुस्तकें देखकर थानेदार डर जाता है। राबिन्सन साहब और चन्दन के हृदय में सम्मान भाव उदित होता है। कनक अंग्रेजी जानती है, इस रहस्य का उद्घाटन होने पर 'राजकुमार के मानसिक सम्मान में कनक का दर्जा बढ़ गया।' लेखक प्रत्येक आगन्तुक की आँखों के सामने कनक के ज्ञान की चकाचौंध उत्पन्न करता है और क्षण भर के लिये भूल जाता है कि पाठक अब आगन्तुक नहीं रहा। स्नेहशंकर ने भी 'धर्म और विज्ञान' नाम की पुस्तकें अंग्रेजी में लिखी हैं। किन्तु परवर्ती उपन्यासों में अंग्रेजी के प्रति यह अतिशय आग्रह की संयत हो जाती है। अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है, किन्तु अंग्रेजी का अन्धानुकरण करने की कपि वृत्ति लेखक की दृष्टि में उपहासास्पद ही है।

राष्ट्रीयता की धारा कहीं उमड़ती हुई, कहीं अन्तःसलिला बनकर निराला के सभी उपन्यासों तक फैली है। 'अलका' 'चोटी की पकड़' तथा 'अप्सरा' में मूल-कथा के साथ देश भक्ति की सहायक कथा संगठन है, जिसमें मूल कथा की घटनाओं को गति और उत्तेजना के साथ-साथ नयी दिशा का संकेत भी मिलता है। देश भक्तों के प्रति निराला की सद्भावना और श्रद्धा उपन्यासों के हृदय में भी संकुचित होती है। ये देशभक्त जिनके सम्पर्क में आते हैं, अनायास ही उनकी श्रद्धा के आलम्बन बन जाते हैं। 'प्रभावती' के वीरसिंह और यमुना के संबंध में जब लेखक कहता है कि 'स्वप्रकाश दोनों अंधेरे में रहकर देश को प्रकाशित करना चाहते हैं' तो उस समय इस युग के क्रान्तिकारी उसके दृष्टिपथ से ओझल नहीं रहते। किन्तु सच्चे देश भक्तों के प्रति सम्मान भाव होने पर भी उनकी सफलता पर लेखक को विश्वास नहीं, क्योंकि 'देश तैयार नहीं है।' नेतृशक्ति के लोभी स्वतन्त्र-संग्राम का ढोल भले ही पीटें, किन्तु जब तक कीर्ति लिप्सा उनमें रहेगी, वह सच्चाई का अंश चरती जायेगी। वास्तव में सभी विषयों की ज्ञान राशि का भाव ही सच्चा नेता है और 'देश की स्वतन्त्रता एक मिश्र विषय।' सर्वाङ्गीणोन्नति के बिना देश का स्वतन्त्र शरीर गठित नहीं हो सकता और प्रत्येक अंग की पुष्टि के लिये ज्ञानराशि का आशय आवश्यक है। ज्ञान के मूल में शिक्षा। जेल जाकर यश अर्जित करने की अपेक्षा निरक्षर का जन समुदाय में शिक्षा का प्रचार देश का अधिक हितसाधन कर सकेगा। शिक्षा के द्वारा मस्तिष्क सुधार पहली आवश्यकता है, इसके बाद सुधारे हुए व्यक्ति स्वतन्त्रता का मूल्य समझकर संग्राम में अधिक सक्रियता से योगदान कर सकेंगे।

वस्तु में किंचित् बाह्य भिन्नता होने पर भी 'अप्सरा' और 'निरुपमा' में भाव की दृष्टि से कुछ साम्य है—सारी घटनाओं पर प्रेम और सौन्दर्य की कोमल छाया है। प्रेम के प्रति यही रूमानी दृष्टिकोण 'प्रभावती' में व्यक्त हुआ है, किन्तु एक अन्तर है। 'अप्सरा' 'अलका' और 'निरुपमा' के प्रेमीयुगल का कनक और राजकुमार अलका और विजय, निरुपमा और कृष्णकुमार का—अन्त में मिलन होता है, किन्तु प्रभावती अपने प्राणों के आराध्य देवकुमार के जीवन-पथ से दूर हो जाती है। यमुना के उपकारों के प्रतिदान स्वरूप वह उसकी बहन रत्नावली के लिये देव को छोड़ना अपना कर्तव्य समझकर स्वयं संयोगिता की रक्षा में आत्मोत्सर्ग करना है। तृप्ति विधुर दाणों में शेष रह जाती है एक करुण रागिनी। वीर-सिंह और यमुना का हृदय भी अगाध करुणा से सुप्त है। हाँ, विद्या और

रामसिंह का आह्लादकारी संयोग होता है। 'प्रभावती का रोमांस राजनीतिक उथल-पुथल मे पलता है। इसका कथा भाग कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र के समय का है। जब दो जातियो का संघर्ष प्रबल था। देश की भावी दासता से अंकुर फूट रहे थे, केन्द्रीय शक्ति का अभाव और जयचन्द्र तथा पृथ्वीराज जैसे सम्राटों का आपस मे वैमनस्य था, उसकी अधीनता में रहने वाले किलेदार परस्पर द्वेषभाव रखते थे। अपनी शक्ति को येनकेन प्रकारेण अक्षुण्ण रखने मे तत्पर जयचन्द्र अपनी स्वार्थसिद्धि तथा शक्ति के विषय मे प्रयत्नशील किलेदारो के छल फरेब की कहानी ही 'प्रभावती' का विषय है।

'चोटी की पकड़' ('अगला खण्ड अप्रकाशित) मे राजा राजेन्द्रप्रताप के जागीरदारों की विलासिका और प्रताप का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही उनके प्रेम से वंचित रानी की कुण्ठा से लाभ उठानेवाली उनकी मुँह लगी दासी मुन्ना को उच्छृंखलतापूर्ण ऐसी करतूतें है, जिनका चित्रण अनेक मर्यादा की सीमा का उल्लंघन कर गया है। शोख मुन्ना हर सिपाही की प्रेमिका और स्वयं 'रानी का मान' धारण कर उनको अपने इशारे पर नचाती है। बुआ एक विचित्र पात्र है, और जहाँ तक उसकी उपयोगिता का प्रश्न है, लगता है जैसे मुन्ना की उच्छृङ्खलता का प्रदर्शन करने के लिये ही साधन-रूप मे उसका अवतरण हुआ है।

वस्तु के संगठन की दृष्टि से अन्य उपन्यासो की तुलना में 'निरुपमा', 'प्रभावती' और 'काले कारनामे' अधिक सफल हैं, किन्तु दोषमुक्त नही। 'निरुपमा' के अन्त मे कमल जो रहस्यगर्भ षड्यन्त्र रचती है, वह किसी जासूसी-तिलस्मी उपन्यास की गुण भेदभरी घटना से कम कौतूहलवर्द्धक नही है। समाप्ति पर ही मधुर रहस्य खुलता है। 'प्रभावती' के महाराज शिवस्वरूप जैसे भीरु आत्मश्लाघा प्रिय व्यक्ति को अपने गुप्त रहस्यो से अवगत कराने में यमुना और प्रभावती सकोच नही करती, यद्यपि प्रत्येक बार हानि की किंचित् आशंका मात्र से वह भेद खोलने अथवा पलायन करने मे नही हिचकता। ऐसा व्यक्ति कितना ही प्रिय अथवा निकट क्यो न हो, उसे विश्वासभाजन बनाना राजनीतिक दृष्टि से गुरुतर अपराध है। जवविद्या 'राजा' और 'रानी' की लिखावट के भेद न रख कर नशे मे डूबे महाराज जयचन्द को धोखा देकर राजा महेन्द्रपाल को छुडा लेती है, तो लगत है, जैसे उद्देश्य-सिद्धि के लिये कान्यकुब्जेश्वर की सत्ता और राजनीतिक बुद्धि का उपहास हुआ है

कुछ स्थलो पर वस्तु के अनावश्यक ऐतिहासिक विवेचन के आग्रह के कारण 'अलका' ` कथाप्रवाह मे शिथिलता आ गयी है। निरर्थक कार्य और दौड-धूप भा कम नही। बम्बई मे सेठ ज की मनोवृत्ति का परिचय और धनियो के आगे झुकने की अपेक्षा बल प्रयोग की महत्ता का प्र[illegible]ाद अनावश्यक है। केवल वीणा से अजित को मिलाने के लिये ही अजित के पिता की बीमारी क प्रसंग उपस्थित हुआ है, ताकि दवा लाने के लिये वह कानपुर जाया करे और प्रणय-प्रसंग का क्रमि विकास हो, किन्तु अजित को कानपुर मे रख कर भी यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता था। स्नेहशंक और प्रभाकर के सैद्धान्तिक प्रवचन सुनने के लिये कथा अपनी सहज गति छोड कुछ समय के लि वही रुक जाती है। राजकुमार की अस्थिर प्रकृति के कारण 'अप्सरा' का कड़ी मे स्थान-स्थान : झटका लगता है। चन्दन और अपनी प्रतिज्ञा की याद आते ही वह सन्तुलन खोकर भाग खड़ा होत है, कथा की दिशा पलट जाती है। कनक के उद्धार के समय एक दूसरा मोड है और हे[illegible] साहब से दो-दो बातें करने के बाद जैसे विगत का सारा भार उठ जाता है। कथा का प्रवाह

अति मन्द है, कहीं अति तीव्र। 'काले कारनामे' में बहु उल्लिखित 'राज' का रूप इतना जटिल हो गया है, कि साधारण पाठक उलझन में पड़ सकता है।

दर्शन, कला, समाज, राजनीति आदि के सम्बन्ध में लेखक के विचार उपन्यासों में इधर-उधर बिखरे हैं। विस्तार का मोह कितने ही स्थलों पर कथा प्रवाह में बाधक और रोचकता के ह्रास का कारण बना है। छोटी-मोटी वस्तुओं की नाम-गणना का आग्रह भी विचित्र है। व्यंजनों का उल्लेख हुआ तो 'पक्वान्न, मिष्टान्न, सामिष निरामिष, चबेना अचार' आदि के नाम गिनाये गये, वाद्य यन्त्र का प्रसंग आया, तो 'सितार, सुरबहार, वीणा, एसराज' आदि भारतीय यन्त्रों से लेकर 'पियानो, बैंजो, क्लारियोनेट, कार्नेट' आदि विलायती यंत्रों के नामों की एक सूची प्रस्तुत कर दी। विविध वर्ण गुण सम्पन्न श्रुतिमधुर विशेष्यों और विशेषणों की सघन पंक्तियों का भी अभाव नहीं है।

उपन्यासों में आकस्मिक संयोगों का बाहुल्य है। स्वत सहज रूप से अपने स्वाभाविक गति पथ पर आगे बढ़ते जाने में ही कथा वस्तु का सौन्दर्य है, किन्तु उसका मार्ग जब अवरुद्ध होने लगता है, अथवा जब वह अपनी अभीष्ट दिशा का सन्धान भूल जाती है, तो संयोग आकर सम्बल देकर, उसे अपने साथ आगे ले चलता है। उपन्यासकार के हाथ में यह एक सिद्धिमन्त्र है। निराला के लगभग सभी उपन्यासों में गतिरोध की आशंका होते ही सहायता के लिये इसका आवाहन हुआ है। पहले उपन्यास के प्रथम चरण का सूत्रपात ही संयोग से होता है। गोरे के प्रणय निवेदन करने के साथ-साथ असहाय कनक की रक्षा के लिये जैसे शून्य से राजकुमार प्रकट होता है, कोहेनूर थियेटर के स्टेज पर शकुन्तला वेशधारी कनक आश्चर्य और हर्ष से दुष्यन्त को देखती है—यह उसकी रक्षा करने वाला कुमार है। कुमार के प्रथम आविर्भाव के साथ ही लेखक ने उसे बन्दी बनाने का सम्भवत निश्चय कर लिया था, इसीलिये कनक गोरे की जेब से कागज निकाल लेती है और 'काम की बात' न मिलने पर भी फाइल में नत्थी कर देती है। राजकुमार के बन्दी होने पर दारोगा जी को अपने यहाँ कैद कर वह बकाम का कागज निकालती है और उसमें उसे काम की बातें—हैमिल्टन साहब के नाम रिश्वत और अन्याय का आरोप आदि—मिलती हैं। इसी कागज के आधार पर राजकुमार मुक्त हो जाता है। विजयपुर से रेल से लौटने समय आसनसोल स्टेशन पर कनक की खोज करने के लिये पुलिस का कोई सिपाही या इन्सपेक्टर नहीं आता, स्वयं पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट हैमिल्टन साहब उपस्थित होते हैं, ताकि राजकुमार उन्हें खरी-खोटी सुनाकर कनक का अपनी पत्नी रूप में परिचय दे और इस प्रकार अपना साहस और कनक के प्रति हृदय का राग व्यक्त कर तनाव की स्थिति को दूर करे, परिणय का पथ सहज हो जाय। तारा को कनक के प्रेम का आभास दिलाने के लिये ही राजकुमार की कमीज की दाहिनी बाँह में सिन्दूर का दाग लगता है, किन्तु यह दाग तारा को अपने घर पर मोटर में, रेल में अथवा विजयपुर के घर में नहीं दिखलाई देता जब राजकुमार ने कनक के मकान से भागने के बाद कहीं कपड़े भी नहीं बदले। दाग और उसके रहस्य का उद्घाटन उसी समय होता है, जब बच्चे आकर कनक के जाने की सूचना देते हैं। और संयोग, तारा का मायका और कुंवर साहब की रियासत भी कितने निकट हैं।

प्रयोजन सिद्धि के लिये 'अलका' में परिस्थिति को अनुकूल बनाने का प्रयास हुआ है, पर

संयोग के विना काम नही चलता। अलका और प्रभाकर नामधारी विजय को मिलाने के लिये अजित उपस्थित होता है, उसकी उपस्थिति का कारण है वीणा और वीणा वहाँ आती है अलका से पिस्तौल मागने। पडोस में रहने के कारण ही अलका से उसकी मित्रता है और पड़ोस में रहने का कारण है मुरलीधर। मुरलीधर स्नेहशंकर का पडोसी बनता है अलका के कारण और अलका के रूप पर लुब्ध होता है थियेटर मे। थियेटर का प्रसंग अपने आप मे महत्वहीन है। उसकी अवतारणा का एकमात्र उद्देश्य यही है कि अलका पर मुरलीधर की कुदृष्टि पड़े। अलका को नैश पाठशाला इसीलिये भेजा जाता है कि मुरलीधर के आदमी उसे रोके और वह मुरलीधर की हत्या करे, नही तो 'वायु' की तरह मुक्त होने पर भी कोई सभ्य स्त्री आसन्न सकट की छाया देखती हुई भी निर्जन पथ पर रात के नौ बजे हठपूर्वक एकाकी क्यों चलेगी? किन्तु एक शंका का समाधान नही होता। मुरलीधर एक सभ्य महिला से मिलने पिस्तौल लेकर क्यो गया? और पिस्तौल उसकी जेब से पाकर वीणा ने अलका को क्यो दी?

'निरुपमा' मे भी निरू की जमीदारी मे ही कुमार की माँ का निवास स्थान और निरू का उसी गाँव को देखने जाना सयोग ही है, क्योकि कुमार की मा का स्नेह पाये विना कुमार से निरुपमा का विवाह असम्भव हो जाता। इसके वाद निरू का पत्र पाकर कुमार की माँ एक अक्षर के फैलने के कारण का अन्वेषण करती हुई, नीलू, से नीरू के कमरे की दिशा तथा मेज की स्थिति की पूर्ण सन्धान प्राप्त कर इस वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचती है, कि इस एक अक्षर के फैलने का, उस एक धब्बे के पडने का कारण है निरू की दाहिनी आँख का एक करुण अश्रु कण। और इस अश्रु कण का रहस्य भी उन्हे शब्द-चतुष्टय मे मिल जाता है—'विधाता की इच्छा से'। यह एक आकस्मिक संयोग कुमार-निरुपमा का चिर-वांछित संयोग कर देता है।

संयोग कभी-कभी बड़े व्यापक परिणामों का कारण होता है। 'प्रभावती' मे देव भिक्षुक को अपनी अँगूठी देता है। प्रभावती अपनी माला उसे देकर अँगूठी ले लेती है, और पुनः देव अपनी माला के विनिमय मे भिक्षुक से प्रभावती की माला ले लेता है। प्रभावती के हाथ मे देव की अँगूठी आ जाती है और देव के गले मे प्रभावती की माला। भिक्षुक को देव की माला मिलती है वह रत्नावली के हाथ उसे वेच देता है—वह माला रत्नावली के हृदय का आभूषण वनती है। प्रभावती देव की अँगूठी दिखाकर रत्नावली को परिचय देती है, देव के हृदय पर प्रभावती की माला देख रत्नावली को देव और प्रभावती के प्रणय का आभास होता है और प्रभावती को देव के प्रेम का विश्वास। रत्नावली के हृदय पर देव माला देखकर प्रभावती देव के प्रति उसकी प्रणयशक्ति का परिचय पा लेती है, और इसी परिचय के फलस्वरूप यमुना के उपकारो का प्रतिदान करने के लिये देव को छोड़ रत्नावली के लिये छोड़ अन्त मे वह आत्मोत्सर्ग करती है। नाव-विहार के समय अचानक वलवन्तसिह की नाव आकर देव और प्रभावती का मिलन-स्वप्न भंग कर देती है और इस विषय घटना से ही आगे की कथा विकसित होती है।

'चोटी पकड़' मे भी बुआ पर अत्याचार होने के समय प्रभाकर अचानक वहाँ प्रकट होता है। केवल बुआ की रक्षा ही नही होती, मुन्ना को उसका सन्धान मिल जाता है और रानी साहिवा से भी उसका परिचय होता है।

निराला के उपन्यासों में नारी पात्र संख्या और प्रकार की दृष्टि से बहुत कम हैं। 'काले कारनामे' नारी पात्रों से रिक्त है, 'चोटी की पकड़' की एकाध का स्वतन्त्र व्यक्तित्व और अस्तित्व नहीं, दासी मुन्ना उच्च घराना का प्रतिरूप है। 'अप्सरा' 'अलका' और 'निरुपमा' में एक-एक जोड़ा पात्र अपनी एक-एक जोड़ा अनुभूतियाँ लेकर आते हैं। इनमें एक नायिका है और दूसरी उसकी सहायिका प्रणय विह्वल नायिका के पथ के कांटे चुनकर, यह दूसरा पात्र उसे उसके प्रियतम से मिलाने में सहायक होती है। निराला की नायिकाएं ज्योति से सजी हैं, उनमें रूप की स्निग्धता है, और 'रूप और नारी' के सम्बन्ध में उनका मत है कि नारियाँ 'रूप के उपासक में अपलक ताकती हुई, सागर की ज्योति से पुष्ट यौवना हृदय कूप के पेशल स्पर्श से उभर कर उठी हुई हैं, जो मूल प्राण स्वरूपिणी की तरह अमर हैं, जिनमें प्राण स्वाधीनता की तरह अपार आन्तरिक स्वतन्त्रता मिलती है।' कनक, अलका, निरुपमा और प्रभावती की रूप सृष्टि में निराला की इसी भावधारा का योग है, फिर भी इनमें परस्पर संस्कार जन्य अन्तर है। 'कनक' स्रष्टा की एक ही सृष्टि, मानो हो विद्युत् सी चमकती हुई फिर सौन्दर्य के पारावार में छिप गई है', निरुपमा में 'निरुपमा सौन्दर्य और संस्कृति है', अलका पर 'सावित्री की पूरी-पूरी छाया पड़ी है।' अलका पहले से ही विवाहिता है। निरवधि काल तक दीर्घ यौवन का आह्वान करने वाली विरह की पीड़ा ही वह सहती है, कोई नया प्रणय प्रसंग उसके जीवन में नहीं आता। कनक और निरुपमा अपना प्रणय पात्र स्वयं चुनती हैं, प्रभावती के साथ भी यही बात है। प्रथम दर्शन में ही योग्य पात्र के प्रति उनका हृदय खिंचता है। प्रारम्भ होता है रूप-दर्शन से, किन्तु केवल रूपासक्ति में रोमांस नहीं, गुण भी होना चाहिये। प्रभावती देव के दीप की 'स्वयं पुरस्कृत प्रतिमा' बन जाती है, कनक भी राजकुमार के साहस और वीरता से प्रभावित होती है। निरुपमा के आकर्षण का कारण हैं कुमार के गुण। निकट परिचय तो दीर्घकाल के बाद होता है किन्तु प्रारम्भ में ही 'विद्या' के परिचय से उद्दीप्त कुमार की मुंदी आँखें आयत आँखें और फिर डी० लिट० होते हुए भी बूट-पालिश-वृत्ति का आदर्श उसे निरुपमा के हृदय के समीप ले आता है।

कनक स्वच्छन्द है, निरुपमा के पैरों में समाज और संस्कारों का बन्धन। कनक स्वयं आगे बढ़कर प्रिय पात्र को पाने का प्रयास करती है, अपने 'सोने के हार में एक नीलम' जड़ लेती है, किन्तु निरुपमा विवश है। हृदय कुमार को देकर भी मुँह से कुछ कह नहीं पाती, भाई की इच्छा का विरोध नहीं कर पाती। नियमित रूप से यामिनी बाबू के साथ घूमने जाती है, जैसे इस शरीर पर उसका कोई अधिकार ही नहीं, घर वाले चाहे जिसे भी वर निश्चित करके उसे दे दें। यहीं शिक्षा के प्रयोजन का पता लगता है। कनक की शिक्षा के कारण ही उसके विचारों में स्वतन्त्रता है, निरुपमा की शिक्षा अधूरी है, अतः संस्कारों का संकोच वह छोड़ नहीं सकती। विवाह की तिथि निश्चित हो जाती है और हृदय में विद्रोह उमड़ने पर भी वह मूक रुदन के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाती। अन्त में उसे दलदल से मुक्त करती है शिक्षा के आलोक में पली, स्वतन्त्र चिन्तन-शक्ति से सम्पन्न-कमल।

आज वीणा जैसी स्त्री आँख की पुतली सी नाजुक है, हमेशा पलकों के दुहरे परदे में बन्द रहती है। मायका और ससुराल ही दो परदे हैं जिनके बाहर उसकी गति नहीं, निकली तो असहाय

हो जाती है । आरम्भ मे शोभा (अलका) की यही दशा होती है । इस विवशता और असाहयावस्था का मुख्य कारण है शिक्षा का अभाव । निराला स्त्रियों की शिक्षा और स्वतन्त्रता के पक्षपाती है । शिक्षा और विद्या के अभाव मे मेघा-बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, उसका विकास रुक जाता है और 'विद्या-बुद्धि से रहित मनुष्य मनुष्यता से गिरकर इतर श्रेणी मे चला जाता है ।' दास मनुष्य स्त्रियो को भी दासी वनाकर रखना चाहता है, किसी भी ग्राम मे 'स्त्रियो का शव लेकर विजयी होना असम्भव है ।' अपने बच्चो को पालने पर झुलाते हुये 'त्वमसि निरन्जनः' का सुप्ति- गीत गाने वाली माताओ की ही ये स्त्रियाँ उत्तराधिकारिणी है । इन्हे घर की चहारदीवारी मे वन्द रखना अन्याय और अज्ञान है । वायु की तरह इन्हें मुक्त होना चाहिये । कनक और अलका को लेखक ने सचमुच मुक्त कर दिया है । यमुना प्रभावती से कहती है, 'हमारी जाति, धर्म और देश की रक्षा की जो समस्या पुरुषो के सामने है, वही हमारे सामने भी है ?' और वे स्वतन्त्रता की लडाई मे सक्रिय भाग लेती है । उनमें शक्ति और प्रेम का मधुर मिलन आज के नारी समाज के लिये अनुकरणीय आदर्श वनकर आया है । निरुपमा और कनक के सामने तो ऐसा अवसर उपस्थित नही होता, किन्तु अलका को स्नेहशकर एक व्यापक कार्यक्षेत्र के लिये तैयार करते है । कनक कुछ पैदायशी स्वतन्त्र हक अपने साथ रख पति का नाम लेती है, पर सिन्दूर भी लगाती है, किन्तु 'अलका' की सावित्री सुहाग चिन्ह नही धारण करती, क्योकि 'सुहाग प्राणो का विषय है । किसी चिन्ह का धारण उसे धवल नही करता ।' फिर भी शिक्षा और स्वतन्त्रता के कारण पति निष्ठा मे कमी नही होनी चाहिये । यमुना 'पति-ब्रह्म मे लीन' होने की वात करती है, अलका वर्षो तक पति का रिक्त आसन किसी को नही देती । वह 'सावित्री' अन्त मे 'प्रभाकर' की ओर शायद सस्कारो से प्रेरित होकर ही खिचती है । कनक का प्रेम तिरस्कृत होकर भी एकनिष्ठ है । निरुपमा के हृदय मे भी कुमार का स्नेह कभी कम नही होता ।

निराला के पुरुष पात्रों मे एक भी ऐसा नही जो उच्च शिक्षा प्राप्त अग्रेजी के ज्ञान से सम्पन्न न हो । एकमात्र मनोहर ही संस्कृत का आचार्य है, किन्तु वह भी अंग्रेजी सीखता है । पुरुष पात्रो के मुख्यतः तीन प्रकार हैं । 'अप्सरा' का राजकुमार और 'निरुपमा' का कृष्णकुमार अथवा कुमार सरस्वती का उपासक, आदर्श के पुजारी और प्रणयपथ का पथिक है । 'निरुपमा' के यामिनी वावू और 'अलका' के तेज वावू पश्चिमी सभ्यता के रंग मे रगे प्रणय का असफल नाटक करते हैं । 'अप्सरा' का चन्दन, 'अलका' के विजय और अजित, 'चोटी की पकड' का प्रभाकर देश की स्वाधीनता के सैनिक है । इनके अतिरिक्त 'ऋषियों के अनुयायी' स्नेहशकर मे ज्ञान और शील मूर्तिमान हो उठते है ।

कुमार लण्दन का डी० लिट्० है और समाज मे प्रचलित जाति भेद के कारण वेकार । सात रुपये घन्टे की पढाई अथवा चार रुपये फार्म का अनुवाद कार्य स्वीकार करके वह अपनी शिक्षा का उपहास और स्वाभिमान की हत्या नही करना चाहता । इस दासता की अपेक्षा वह वूट-पालिश वृत्ति अपना कर अधिक सुख अनुभव करता है । उसे सन्तोष है, कि उसने किसी के आगे हाथ नही पसारा, किसी का अनिष्ट नही किया । इस वृत्ति से उसका मस्तक झुकता नही, क्योकि 'अगर इसी कार्य को महत्व देने के अदृष्ट-चक्र से घूमता हुआ वहुभाषाविद् और लण्दन विश्वविद्यालय का डी० लिट्०

होकर वह आया है, तो इसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है'। उसे गर्व है कि 'मेरे साथ यह भारत का सच्चा रूप है'। सामाजिक बहिष्कार का वह स्वागत करता है, विरोध और लांछन से अपने आदर्श पर उसकी आस्था और दृढ़ होती है। वह कभी झुकता नही, कही मुडता नही, पर प्रतिकार की भावना से मुक्त है। वह केवल देखता है, सहता है और 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' के भगवदादेश का चुपचाप पालन करता है। समाज के प्रति 'उन आँखो म घृणा नहीं' केवल एक समझ है। प्रथम दर्शन मे ही निरुपमा के प्रति अपने हृदय म वह जो प्रेम पालता है, वह परिणाम के पूर्व तक मूक ही रहता है, कुछ परिस्थितियो की विवशता और कुछ उसके सकोचशील स्वभाव के कारण।

हिन्दी के प्रोफेसर राजकुमार के सामने भी एक आदर्श है—साहित्यिक का आदर्श। उसकी दृष्टि में साहित्यिक को केवल रस प्रदान करने का अधिकार है, रस-ग्रहण करने का नही और इसी कतिपय आदर्श अथवा आदर्शाभास से प्रेरित हो वह दाम्पत्य सुख की उपेक्षा कर विवाह के बन्धन से मुक्त रहना चाहता है। इसके लिये मा भारती के प्रति वह प्रतिश्रुत है। कुछ समय के लिये कनक के भाव और रूप मे डूबा वह मन्त्रमुग्ध-सा उसकी इच्छा का अनुकरण करता है, उसके प्रति आकुल प्रणय निवेदन भी करता है। किन्तु चन्दन और उसके साथ अपने आदर्श की याद आते ही कनक की प्रणय याचना को ठुकरा कर, उसे बिलखती छोड बिना कारण बताये भाग खडा होता है। सकल्प विकल्प, शका और अस्थिरता ही उसका स्वभाव है। हृदय मे प्रणय की कसक होते हुए भी प्रणय की रीति से मूढत्व की सीमा तक अनभिज्ञ है। चन्दन उसके आदर्श के खोखलेपन की ओर ही सकेत करके कहता है कि 'विकसित का जीवन जीवन नही, न उसमन समर समर'। इसकी सच्चाई का अनुभव राजकुमार को परिणय के बाद ही होता है, और वह सोचता है, 'बाहर अनेक प्रकार के सुन्दर स्त्रियो के चित्र देते थे। पर भीतर ध्यान नेत्रो से न देख सकने के कारण जब कभी उसने काव्य रचना की, उसके दिल मे एक असम्पूर्णता हमेशा खटकती रही। पूर्ण प्राप्ति पूर्णदान चाहती है, मैंने परिपूर्ण पुरुष देह देकर सम्पूर्ण स्त्री मूर्ति प्राप्त की, आत्मा और प्राण से सयुक्त रस मे ओतप्रोत चचल सनेहमयी। काव्य सृष्टि मे अनुभूति की सच्चाई और परिपूर्णता की प्रयोजनीयता हूं, राजकुमार की परिवर्तित मनोवृत्ति मे सकेतित हुई है।

चन्दन, अजीत, विजय और प्रभाकर, चारो ने स्वातन्त्र्य सग्राम म अश ग्रहण किया है, किन्तु उनके प्रकार में भेद है। चन्दन क्रान्तिकारी दल का, प्रभाकर काग्रेसी, किन्तु अजित को काग्रेसी पर विश्वास नही, क्योंकि काग्रेसी जीव दोनो तरफ रेगते हैं। अजीत और विजय स्वतन्त्र रूप से गोवा मे काम करते हैं। चन्दन और अजित म जिन्दादिली है। विजय कुछ गम्भीर है और प्रभाकर यद्यपि कला की दृष्टि से तीनो आगे बढकर सगीत ज्ञान का अधिकारी जान पडता है। फिर भी वह रहस्य म आवृत्त है। चन्दन परोक्ष रूप से राजकुमार के प्रणय मे प्रसग म बाधक और प्रत्यक्ष रूप से उसके परिणाम मे सहायक होता है। विजय और अलका को मिलाने का श्रेय अजित को है, नही तो छला नामधारी दोनो एक दूसरे से घनिष्टतम परिचय के अधिकारी होने पर भी न जाने कब तक अपने वास्तविक परिचय से अनभिज्ञ रहते।

स्नेहाकर में एक आदर्श पुरुष की कल्पना को मूर्त्त रूप मिला है। उनका बाह्य 'स्वरूप यथासस्कार और प्रौढ़ता' से सम्पन्न है, अन्तर ज्ञानराशि का सचित कोष है। धर्म और विज्ञान के

वे प्रणेता हैं। तीनो प्रकार की एषणाओ से मुक्त पर व्यावहारिकता से अनभिज्ञ नही। उन्हीं की स्नेहछाया मे पलकर असहाय शोभा स्वावलम्बिनी अलका बन जाती है।

प्रतिनायक के लिये निराला के उपन्यासो मे कोई स्थान नही। पश्चिमी रंग मे रंगे यामिनी बाबू निरुपमा का पाणिग्रहण करने के लिये आकुल हैं, किन्तु अन्त मे असहाय बन जाते हैं, कि अवश्यम्भावी दुर्भाग्य से अपनी रक्षा भी नही कर पाते। वंग निवासियो के जातीय दर्प और तथाकथित हिन्दुस्तानियो के प्रति हीन भाव का प्रदर्शन करने से ये नही चूकते। विलायती रंग मे इनसे कुछ गहरे रगे हुए इंगलैड रिटर्न तेजबाबू किसी सफल कार्टून से कम नही।

इनके अतिरिक्त ऐसे जमीदार, जागीरदार भी है, जिनकी पाशविकता और विलासिता का पोषण दीन प्रजा पर किये गये अत्याचारो और उनकी मर्यादा के अपहरण से होता है।

यथार्थ के जीवन मे जो न्यूनताएँ और अभाव है, उन्हे अपनी कल्पना से भरकर लेखक ने ऐसे पात्रो की सृष्टि की है, जो यथार्थ भ्रान्ति उत्पन्न करते हुए उदात्त, मुक्त है। किन्तु चारो ओर फैले जीवन के जिन अभावो की पूर्ति लेखक ने अपनी कल्पना से की है, जिस अभीप्सित श्रेय का वरदान अपने पात्रो को दिया है, वह क्या सत्य पर आधारित है। रूप, गुण, शील के आदर्श ये पात्र यथार्थ के धरातल पर उतरकर सत्य का वैसा आचारण कर सकें हैं जैसा उपन्यास की कल्पना सृष्टि मे वे करते है? समाज मे आज कनक और अलका जैसी उच्च शिक्षा प्राप्त नारियो का प्राचुर्य नही, तो नितान्त अभाव भी नही है। शील का खण्डन कदापि कर ही नही सकती, यह कौन कह सकता है, किन्तु उसकी रक्षा का दावा नही कर सकता, 'सावित्री' बनने का वरदान नही दे सकता। ज्ञान विवेक व बुद्धि को जागृत करके उचित-अनुचित का पथ दिखला सकता है किन्तु कार्य मे प्रवृत्ति तो हृदय का ही धर्म है। अतः शील की रक्षा का सम्बन्ध ज्ञान से उतना निकट नही, जितना हृदय से है। ज्ञान के अभाव मे भी हृदय-शोधन हो सकता है और सम्भव है विपुल ज्ञान का अधिकारी होकर भी व्यक्ति हृदय मे संकीर्णता और कलुष ही पाल रहा हो। फिर भी शिक्षा के महत्व को उपेक्षा नही की जा सकती। स्त्रियो के लिये वह भी आवश्यक है, क्योकि कुछ अंशो तक भीरुता को दूर कर साहस का सचार करने और वाह्य जगत से सम्पर्क स्थापित करने मे वह सहायक होती है। अशिक्षिता वीणा सदा मुरलीधर के भय से कापती रहती है, उसका यह भय दूर होना चाहिये, किन्तु आसन्न सकट की आशंका होने पर भी अलका का रात के नौ बजे एकाकी पथ पर चलना ज्ञानजन्य साहस नही, दुस्साहस ही कहलायेगा।

स्नेहशंकर जैसे ज्ञानी तो समाज मे है, किन्तु ऋषियो के अनुयायी का आदर्श कल्पना से नीचे उतरता, और उतरता है तो युगावतार बनकर कुमार की बूट पालिश वृत्ति का जो आदर्श उपस्थित हुआ है, वह विचार करने पर अतिरंजित प्रतीत होता है, किन्तु साधारण उपायो से समाज की वन्द आंखे खुल भी तो नही सकती। समाज की सुप्त चेतना को झकझोर कर जगाने का महत् कार्य करने का साधन यदि अतिरंजनापूर्ण हो तो नितान्त अस्वभाविक नही।

निराला की भाषा प्रसाद और प्रेमचन्द्र की मध्यवर्तिनी है। पात्र और वातावरण के प्रयोजनानुसार कभी-कभी वह इस छोर का स्पर्श भी करती है। कृत्रिमता से अस्पष्ट सर्वत्र सहज नैसर्गिता उसकी प्राकृतिक की विशेषता है। वर्णनात्मक प्रसंगो की भाषा साधारणतः प्रसाद गुण सम्पन्न है, किन्तु 'प्रभावती' जैसे ऐतिहासिक उपन्यास मे तत्कालीन देशकाल को सफलता पूर्वक स्थापित करने के लिये

लेखक ने अनेक स्थानों पर भाषा को गौरव गंभीर तत्सम शब्द मुक्ताओं का हार पहनाया है। कभी कभी भाषा अद्भुत समाहार शक्ति का परिचय देती है। रूढ़ि जर्जर ग्राम को लेखक जब—"भारतीयता का कुबड़ा रूप बदलता है", तो इस कुबड़ा शब्द में संस्कृति और सभ्यता से निवासित ग्राम की सारी विकृतियां अभावों का कोप लिए जैसे मूर्त हो जाती हैं।" शक्ति के उपासक और "पंचमकार साधकों की निर्मम हृदयहीनता और निर्बाध विलास वृत्ति सफलता पूर्वक प्रतिबिम्बित हुई है, साथ ही "पंचमकार" में "शक्ति" का श्लेष भी विलक्षण है। उपमा बड़ा ही मार्मिक और सार्थक है। पात्र और परिवेश की रूपरेखाओं और भाव वैभव में लिपटे हुए व अपनी लघुता में भी अभिव्यंजना की अपार क्षमता से समृद्ध है। ऋषियों के अनुयायी स्नेहशंकर जब शोभा को 'गायत्री' के रूप में देखते हैं, तो विदा के समय शकुंतला के प्रति कण्व के आर्त वचनों का अनायास ही स्मरण हो जाता है।

कोई विचार उपस्थित करते समय भाषा कहीं शुष्क सरल, कहीं स्निग्ध मधुर, कहीं क्लिष्ट गंभीर बन जाती है। व्यंग प्रेरित होकर वह मीठी चुटकी भी ले सकती है और आक्रोश से भीषण प्रहार भी कर सकती है। सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य उसमें हैं, किन्तु किसी हृदय की मधुर अनुभूतियों का स्नेह-स्पर्श जब जब उसे मिलता है, तो विलास और उच्छ्वास की विविध भंगिमाओं में वह नाच उठती है। अपनी शिरीष की तूलिका में इन्द्रधनुष की सुषमा लिये जब रूप और दीप्त यौवन स्वर्ण रेखायें खींचती हैं, तो जैसे उनका अशरीरी स्पर्श उसमें शतशत पुलकों का आवेग भर देता है। एक के बाद एक उपमा रूप की ज्योति का अभिषेक करने आते हैं, और उस पर राशि राशि प्रभा बिखेर देते हैं।

पात्रों की भाषा उनकी संस्कृति, शिक्षा और परिवेश के अनुकूल है। ग्रामीण जनता के निकट भाषा संस्कारों के अनुरूप तद्भव बन जाती है। अशिष्ट व्यक्तियों के पास उच्छृंखल और सुशिक्षितों के साहचर्य में शिष्ट, सुसंस्कृत रूप धारण करती है। प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' के तीन अपवादों को हरनाथ सिंह, चंदन की मां और तारा की मां को छोड़ कर शेष सभी पात्र खड़ी बोली का ही प्रयोग करते हैं। ग्रामवासी उसकी भंगिमा को अपनी सुविधा के अनुरूप बना ग्रामीण मुहाविरों से अलंकृत कर उसे नैसर्गिकता प्रदान करते हैं। कला, दर्शन, राजनीति अर्थनीति आदि विविध विषयों के वार्तालाप में भी पात्र और विषय की आवश्यकतानुसार अपना रूप संवारने में भाषा सफल हुई है। पंचतत्व दान करते समय यमुना भाषा को और हम भी एक ऊंचे धरातल पर ले जाती है। वह पुत्र का साधारण अर्थ नहीं, शब्द और धातु से निकला अर्थ लेती है।

विस्तार की दृष्टि से कथोपकथन स्वाभाविक हैं। दो-तीन स्थानों पर कोई एक ही पात्र पूरा का पूरा पृष्ठ व्याप्त कर लेता है, किन्तु इसके पीछे किसी विषय पर लेखक के अपने दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण का प्रयास है। पात्रों की भाषा में उनकी प्रकृति और मानसिक स्थिति का पूरा परिचय मिल जाता है। शिक्षित पात्र और स्वयं लेखक भी, प्रसंगवश संस्कृत उद्धरणों का स्मरण करते हैं। निरू कुमार की मातृ भाषा में 'ठूबो', गाय, गंगा कहने में नहीं हिचकती। उर्दू के शब्द सर्वत्र पुल मिले हैं, यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास में उनको कुछ मात्रा तक दूर रखने का प्रयास किया गया है। ऐसे साधारण चलते शब्दों का भी अभाव नहीं है, जो पाश्चात्यवर्ती सभ्य शब्द समाज में अभ्यागत की तरह आ बैठे हैं। साथ ही भाव और रीति, कोमलता और माधुर्य वहन करने वाले अप्रचलित शब्दों का भी पुष्कल प्रयोग मिलता है। वस्तुतः निराला में उस प्रकार के शब्द-शिल्प के प्रति आग्रह नहीं है

जिसमे एक-एक शब्दो की लडियो को प्रयास पूर्वक पिरोया जाता है। उनकी प्रकृति स्वच्छन्द है और अन्तर के सहज स्फुरण को ही भाषा मे रूप मिला है।

अधिकांश उपन्यासो मे गीतो का भी समावेश है और सख्या बहुल न होने पर भी उनका अपना महत्व है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा के गीत भाव की दृष्टि से तो मधुर है ही, भाषा की दृष्टि से भी सुन्दर हैं। रोमाटिक वातावरण उपस्थित करने मे वे समर्थ है, और वातावरण मे सन्ध्या समय 'आकाश मे पीली किरणे' पीलू गाती है। गालिब की गजल और कवि रवीन्द्र का नागरी लिपि मे एक बगला गीत भी है!

निराला मुख्यतः कवि हैं, काव्य ही उनके जीवन का श्रेय और प्रेय है, किन्तु उपन्यास-साहित्य को भी उनके स्नेह का अश मिला है। उनमे उपन्यासकार की स्पर्द्धा है, सर्जना की सजग चेतना है और इनके पीछे एक ऐसी आग है, जो अनुकरणीय बना देती है। मुख्यतः उपन्यासकार न होने पर भी उपन्यास-साहित्य को निराला का जो अवदान है, उसके लिये हिन्दी साहित्य उनका चिर ऋणी रहेगा।

निराला का कथा-साहित्य

श्री हरिराम दूबे

हिन्दी उपन्यास की परम्परा प्रदीर्घ नहीं है। ऐसा लगता है, कि कुछ आलोचकों का यह मत सही है, कि उपन्यास हिन्दी का बिल्कुल ही नव्यतम साहित्यिक रूप है। हिन्दी के अन्य साहित्यिक रूपों की जैसी सुदीर्घ परम्परा रही है, उसके अनुपात में उपन्यास की परम्परा का अभाव हमें यह मानने को बाध्य कर देता है, कि हिन्दी का यह साहित्यिक रूप (उपन्यास) पश्चिम की उपन्यास कला से प्रेरित है। यह एक अप्रत्याशित संयोग है, कि अंग्रेजी उपन्यास कथा साहित्य की परम्परा भी उसके अन्य साहित्यिक रूपों के अनुपात में प्राचीन नहीं है। अंग्रेजी उपन्यास के प्रारम्भ के लगभग तीस वर्षों के बाद ही हिन्दी उपन्यासों की परम्परा भी अंकुरित होती है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर उपन्यास की परम्परा सर्वथा नवीन नहीं है। संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक और कल्पना प्रसूत दोनों तरह के उपन्यासों की परम्परा हमें मिलती है। बाण की कादम्बरी, श्रीहर्ष का नैषध चरित संस्कृत के गद्य की बड़ी ही उत्तम रचनायें हैं। कादम्बरी की भाषा में अलंकरण की गहनता पर यह आक्षेप किया जाता है कि उपन्यास की भाषा की जैसी सादगी और सहजता की अपेक्षा होती है वह उसमें नहीं है किन्तु, आधीती आलोचक नलिनविलोचन शर्मा के मतानुसार संभवतः कादम्बरी की वर्ण्य वस्तु के निमित्त भाषा का वही रूप आवश्यक था जो उसमें प्रयुक्त हुआ है। किन्तु उपन्यास शब्द का जो अर्थ संस्कृत में है वह आज के उपन्यासों के लिए नहीं है। किन्तु कथा कहानी की परम्परा में उपन्यास का अर्थ आज हमें सर्वग्राह्य है। निश्चय रूप में हम भारतेन्दु काल में ही हिन्दी उपन्यास का आरम्भ मानते हैं। भारतेन्दु से लेकर प्रेमचन्द तक इतिहास के जिस रूप और वर्ण्य विषय की रूपरेखा है, उसमें पश्चिम की उपन्यास कला का ही प्रभाव है। स्थापत्य एवं अभिव्यक्ति, दोनों की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास पश्चिम के ऋणी हैं। किन्तु निराला का कथा-साहित्य एक मौलिक स्थापत्य और विषय वस्तु की सर्वथा भिन्न काया लिए हुए है। नन्ददुलारे वाजपेयी के मतानुसार "जिस प्रकार कादम्बरी में बाण ने शुद्ध प्रेम का ही एक मात्र व्यंजन किया है। उसी प्रकार निराला ने भी।" इस तरह वाजपेयी जी निराला के कथा-साहित्य को संस्कृत की अति प्राचीन तथाकथित उपन्यास परम्परा का अद्यतन रूप मानते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनका मत है, कि निराला जी ने अपने कथा-साहित्य की नायिकायें अपनी विद्या, बुद्धि, और अपनी संस्कृति से ही संघटित की हैं, उन्हें दृश्य जगत के कोई उपकरण प्राप्त नहीं हैं। घटनायें पात्रों का शासन नहीं करतीं—पात्रों को प्रकाश में लाती हैं। परिस्थिति और कार्य में अनुकूलता की प्रमुखता नहीं है बल्कि भाव, शिक्षा और संस्कृति का प्राधान्य है। स्काट बायरन आदि ने ऐसे उपन्यास पद्यबद्ध लिखे हैं। जिस तरह कादम्बरी गद्य रचना होते हुए भी सम्पूर्ण कविता है। उसी तरह नन्ददुलारे जी के विचार से निराला के उपन्यास

इसी कोटि की सृष्टियां हैं और उन्हे इसी दृष्टि से देखना चाहिए। इन रचनाओ की काल्पनिकता और दैनिक अनुभवो से इनकी भिन्नता ही इनका वैशिष्ट्य है। "निराला जी के उपन्यासों के सम्बन्ध मे मुख्य प्रश्न यह नही है कि उनमे यह घटना या चरित्र अनुचित, अस्वाभाविक या असम्भव है; मुख्य प्रश्न यह है कि प्रेम या संस्कृति की कैसी कल्पना उन्होने की है और उसका निर्वाह करने मे कहाँ तक समर्थ हुए है।" वाजपेयी जी ने यह कहकर निराला के उपन्यासो की एक अलग विशेषता निर्धारित की है। निराला के उपन्यासो पर अनुपयोगिता का आक्षेप किया जाता है। कुछ लोगो का यह भी मत है कि स्काट् वायरन और कादम्बरी का युग बीत गया। वे यह भी दलील पेश करते है, कि आज न तो मध्यकालीन समाज है, न प्रेम सम्बन्धी वे धारणाएं और न आधुनिक पाठको मे इतनी क्षमता है कि धैर्यपूर्वक उन अलंकृत रचनाओ का अध्ययन कर सके। किन्तु यह विचार भावना मात्र है, और वास्तविकता यह है कि सभी समयो मे न्यूनाधिक मात्रा मे रचनाकार अपनी संस्कृति के अनुरूप ऐसी रचनायें करते हैं और उनका सम्मान भी होता है। काल के प्रवाह मे वे ही रचनायें अपना महत्व खो देती है जिनमे आत्मा की सत्ता का प्रकाश नही होता और रहस्यमय जीवन-विकास के परमाणु नही होते। ऐसी रचनायें चिर नवीन और चिर जीवनमय होती हैं। हमारे बुद्धि विभ्रम से किसी समय कुछ उत्कृष्ट वस्तुयें यथार्थ दृष्टि से नही देखी जाती और इस कारण उन वस्तुओ की हीनता सिद्ध नही होती। अतएव साहित्यिक रचना की समीक्षा का आदर्श उक्त रचना मे निहित प्राणो के स्वरूप का निर्देश करना ही होना चाहिए। जहां तक उपयोगिता का प्रश्न है, शरद् पूर्णिमा नित्य हमारे उपयोग में नही आती किन्तु इसके आनन्द और मनोरमता से हम इनकार नही कर सकते। वाजपेयी जी का आग्रह है कि "निराला जी के उपन्यासो और कहानियों का अध्ययन करते समय हमे भावना की उसी कोमल भूमि मे उतरना होगा जिस पर स्थिर होकर वे प्रणीत हुई हैं। अतः निराला के कथा साहित्य का महत्व निर्विवाद है।"

"लिली और "सखी" दोनो निराला जी की छोटी कहानियो के संग्रह है, "अप्सरा" और "अलका" तथा "प्रभावती" ये तीनो उपन्यास हैं। एक अजीब संयोग है कि इन पाचों के नाम स्त्रीवाची हैं। संभवतः इन पुस्तको में स्त्रीपात्रो की प्रमुखता के कारण ही उनके नाम स्त्रीबोधक हैं। नारी जागरण की कर्कश भावनाओ को छोड कर निरालाजी ने विकासमूलक मनोरम अंगों को अपनाया है, जो वर्तमान की देन है। स्त्री-स्वातंत्र्य के क्षेत्र में वे शिक्षा, संस्कृति तथा सामाजिक व्यवहार की स्वच्छन्दता के हिमायती है, और नारी-स्वतन्त्रता के कारण समाज मे उत्पन्न कटुता और पुरुष की स्पर्धा के विरोधी है। विक्टर ह्यूगो जैसे क्रान्ति-उपासक या बर्नार्ड शा जैसे प्रकाण्ड बुद्धिवादी के वर्ण्य विषय जिस तरह के है, उस तरह के निराला के नही। यूरोप के सभी क्रान्ति प्रेमी व्यास के चरणों के नीचे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं; किन्तु व्यास ने यह समस्त यथार्थ अध्यात्म मे पर्यवसित कर दिया है। निराला जी के उपन्यास और कहानियां मृदुल रचनायें हैं जिनमे नारी का प्रेम पूर्ण शिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्तित्व मुख्य रूप से चित्रित करने की सचेष्टता है। अन्य विषय आनुषंगिक हैं, नारी सुलभ प्रेम ही प्रधान है।

"अप्सरा" सन् १९३१ मे प्रकाशित निरालाजी का पहला उपन्यास है। इसमे कनक नामक एक नर्तकी की कहानी है। अप्सरा में आजकल के सिनेमा कथानको के बहुत से गुण मौजूद

हैं रोमांस के साथ देश सेवा का आवश्यक पुट भी विद्यमान है। नायक पढ़ा लिखा, देखने सुनने में सजीला और देश सेवक भी होना चाहिए। अगर वह क्रान्तिकारी हो तो देश-सेवा में घटना-वैचित्र्य भी आ जाता है। नायिका धनी हो और उस नायक के त्यागमय जीवन में सहानुभूति हो तो इससे अधिक मनोहर दृश्य और क्या हो सकता है। इन विशेषताओं से पूर्ण और विरोधियों की आशंकाओं के विपरीत अप्सरा को काफी लोकप्रियता मिली। निरालाजी ने अपनी कथाओं में नायक-नायिकाओं की एक चित्रावली तैयार कर दी जिनकी शक्लसूरत अप्सरा के कनक और राजकुमार से मिलती जुलती है। उपन्यास में घटनाओं की प्रधानता है, और वे उस असाधारण कोटि की हैं, उन पर सहसा विश्वास नहीं होता, राजकुमार का मानसिक द्वन्द्व सीधा-सादा एवं बचकाना है। चन्दन उसी का दूसरा रूप है, वे ऐसे व्यक्ति हैं जो साधारण नवयुवकों के कल्पना-लोक में निवास करते हैं किन्तु यथार्थ की ठोस भूमि पर नहीं दिखाई देते। नाटक देखने वालों और कचहरी के वकीलों का वर्णन करते हुए निराला जी ने अपने व्यङ्ग-पूर्ण शैली का प्रयोग किया है।

"अलका" उपन्यास में "अप्सरा" के नाम की झंकार मालूम पड़ती है। नाम से यह संकेतित नहीं हो पाता कि इस उपन्यास का सम्बन्ध किसानों के जीवन से भी होगा। अलका का वास्तविक नाम शोभा है। उसका नायक एक विद्यार्थी है जिसे अप्सरा के राजकुमार की तरह राजनीति में दिलचस्पी है। जिस तरह अप्सरा ने पुलिस-सुपरिंटेंडेंट को प्रभावित किया था, वैसे ही विजय भी डिप्टी साहब को प्रभावित करता है। उसका छद्म नाम प्रभाकर है और इसी नाम का एक नायक अगले उपन्यास "चोटी की पकड़" में आता है। उपन्यास के आरम्भ में प्रभावती में उन्होंने हिन्दुओं के सामाजिक सङ्गठन और मध्यकालीन इतिहास पर अपने विचार प्रकट किए हैं। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें प्रादेशिकता का भी पुट है।

प्रथम महायुद्ध के बाद अवध जनपद की दुर्दशा का वर्णन किया गया है, गंगा के किनारे लाशों का जमघट कथा की पृष्ठभूमि है। "कुल्लीभाट' में यही दृश्य विस्तार से वर्णित है। कथानक में कई एक सूत्र हैं और कहीं-कहीं तो वे एक-दूसरे से छूट भी जाते हैं। अजीत और वीणा का एक गुट है, स्नेहशंकर और शोभा का दूसरा मुरलीमनोहर और उनके गुर्गों का तीसरा। इतने पात्रों को खुलकर बढ़ने एवं विकसित होने का अवसर नहीं मिलता। शोभा की रचना ऐसी हुई है, कि उसे देखें तो देखते रह जायं। उसके चरित्र में प्रकाश और छाया का नाटकीय सम्मिश्रण, भावों का उतार चढ़ाव, मानव सुलभ दुर्बलता और सद्गुण सबका सर्वथा अभाव है। उपन्यास के यथार्थवादी वातावरण में शोभा कटीली झाड़ी के बीच जूही की खिली कली के समान लगती है।

निराला की कहानियां छायावादी हैं, ऐसा संकेत डा० रामविलास शर्मा देते हैं। कहानी की नायिकायें प्रायः सभी सोलहवें साल की अधखुली कलियां हैं और नायक या तो धनी बाप के बेटे हैं या पढ़ लिखकर धनी बन जाते हैं। एक बड़ी विचित्र बात यह भी है, कि राजनीति में इन नायकों का झुकाव आतंकवाद की ओर होता है और देश सेवा के लिए वह रामकृष्ण मिशन के साधुओं की तरह ब्रह्मचर्य को भी आवश्यक मानते हैं। देश की सामाजिक, आर्थिक

और राजनैतिक समस्याओं का समाधान लेखक या तो आध्यात्मवाद से करता है या ऐसे यथार्थ से जो आध्यात्मवाद से करता है या ऐसे यथार्थ से जो आध्यात्म तत्व की ही तरह आदमी की पहुँच से बाहर है। पद्मा और लिली सखी, न्याय, सफलता, श्यामा, अर्थ इत्यादि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ है। "भक्त और भगवान" मे प्रजा की समस्याएँ है—"देवी" कहानी मे उन्होने अपने ऊपर ही व्यग्य किया है। यह व्यग्य एक पूरे आन्दोलन पर है, छायावादी कवि के वडप्पन पर है; जो विराट् की पुकार करता हुआ साधारण जनो की महत्ता भूल जाता है। "देवी' कहानी को पगली का जीवन समाज के नेताओ, उसके संचालको, उसकी संस्कृति, कला, और साहित्य पर एक तीखा व्यग्य बन गया है, निराला ने एक ओर इस सामाजिक वड़प्पन की तसवीर दी है और दूसरी ओर पगली का छुटपन दिखाया है। इस तुलना से सामाजिक विषमता की खरी परख हो जाती है।

रोमान्टिक कवि हास्य और व्यग्य के लिए शायद ही कही प्रख्यात हुए हो। "मतवाला" काल मे जहाँ निराला ने छायावादो कविताएँ करते हुए तन्मयता को पराकाष्ठा दिखलाई, वही "चाबुक" आदि शीर्षको मे उन्होने आत्यन्तिक बौद्धिक तटस्था का भी परिचय दिया था। "देवी" व्यग्य पूर्ण उनका पहला मास्टर पीस है जो इतना प्रभाव पूर्ण है कि इसका लक्ष्य व्यक्ति विशेष ही नही, वरन् वह सामाजिक व्यवस्था है, जिसमे मुफ्तखोर पूजे जाते हैं तथा जिन्हे पूजना चाहिए वे ठोकरें खाते है।

"देवी" और "चतुरी चमार" का अटूट सम्बन्ध है। दोनो के रचना-काल और शैली मे साम्य है। किन्तु चतुरी चमार मे जीवन की विविधता अधिक है।

इस तरह निराला का कथासाहित्य अपनी विशिष्टता और कलात्मक महत्व का अधिकारी है। नन्ददुलारे वाजपेयी और डा० रामविलास शर्मा प्रभृति आलोचको द्वारा निराला के साहित्यिक रूप की विशद विवेचनाये प्रस्तुत की गयी है।

गीतिकार निराला

—डा० रामखेलावन पांडेय

गीतिकाव्य की अनिवार्य प्रकृति का सम्बन्ध कवि की अन्तर्वृत्ति, आकांक्षा और रागात्मक आवेश की चेतनागत अभिव्यक्ति से है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति एवं कल्पना के द्वारा वस्तु को भावात्मक बना देता है। वस्तु की निरपेक्ष स्थिति अथवा अपना जीवन में महत्वपूर्ण नहीं, उसका महत्व आवश्यकता-पूर्ति की साकांक्ष संभावना में है। अनुभूति भावना का सौन्दर्यगत संगीतात्मक विधान काव्य का उद्देश्य है। गीति-काव्य में भावना, सौन्दर्य और संगीत के संतुलित समन्वय की सहज अभिव्यक्ति अपेक्षित है। इस दृष्टिकोण से गीति-काव्य अधिक काव्यात्मक है। गीति-काव्य का कवि विषय से अनुभूति की ओर नहीं बल्कि अनुभूति से विषय की ओर आता है। सम्पूर्ण सृष्टि में अनेकानेक विषय बिखरे पड़े हैं, प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में अनेक मनोरम चित्र फैले हैं, अन्तर्लोक में विचारों और भावनाओं की ज्योति जागरित है, कवि उनकी ओर आकृष्ट होता है, चेतना के क्षणों में वे एक नूतन रूप धारण कर लेते हैं। इस विस्तृत पटभूमि के किसी विशिष्ट उपकरण पर उसकी दृष्टि अटक जाती है और उसकी अन्तर्वृत्ति को अभिव्यक्ति का माध्यम मिल जाता है। कवि विषय विशेष की ओर आकृष्ट इसलिये नहीं हुआ है कि उसमें आकृष्ट करने की शक्ति है—उसमें वस्तुगत स्थिति, सौन्दर्य और आकर्षण सम्भव है—बल्कि संवेगपूर्ण अन्तर्वृत्ति की अभिव्यक्ति के अनुकूल वह विषय है। इस विचार से गीति-काव्य पूर्णतया आत्मनिष्ठ है जिसमें बाह्य उत्तेजना, प्रेरणा और सम्भ्रम अन्तर्वृत्ति के साथ एकाकार हो जाते हैं। गीतिकाव्य की सफलता इस एकात्मक अन्विति और इकाई में है।

गीतिकाव्य आवेग के क्षण की सशक्त वाणी है, वैसा आवेश जो जीवन को सप्राणता देता है, जो इस जड़त्व से बचाता है। अभ्यासगत जीवनों में ऐसे ही क्षणों का मोल है किन्तु ऐसे क्षणों की विवेचना कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और उसके विकास की विवेचना है, उसी व्यक्तित्व की जिसकी गीति-काव्य में अभिव्यक्ति है। जीवन की घटनाओं की भूमिका में ही व्यक्तित्व के विकास की लड़ी प्राप्त होती है। सरिता उपलों से टकराती, इतराती-उतराती, कहीं सिमटती कूलों में उलझती, किनारों को चूमती आगे बढ़ती है, कहीं पार्वत्य भूमि की कठोरता के कारण आकुल विह्वल तीव्र राग का वेग है, कहीं सम भूमि का सम-स्वर है। जीवन भी कुछ इसी प्रकार उलझता-सुलझता आगे बढ़ता है, संचरण करता है, सरकता है, पर जीवन की घटनाओं के घात प्रतिघात से उत्पन्न होनेवाली क्रिया प्रतिक्रिया उसके प्रतिबिम्ब हैं। व्यक्तित्व और चेतना के विकास का अध्ययन परिस्थिति और संस्कार, देश और काल व्यक्तित्व की स्पष्ट रेखाएं और आकार देते हैं। व्यक्तित्व के विकास के लिये चेतना और प्रेरणा का मूल स्रोत देखना होगा। गीति काव्य व्यक्तित्व प्रधान, आत्मनिष्ठ काव्य है,

इस रूप मे गीतिकार निराला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और चेतना की छानवीन होनी चाहिये। ऐसे विस्तृत और पूर्ण अध्ययन का यहाँ अवसर नही, अतः केवल इनकी ओर संकेत मात्र से ही संतोष करना पड़ेगा।

निराला निश्चित रूप मे एक विशिष्ठ मनोवैज्ञानिक 'टाइप' है। यह सत्य है कि व्यक्तित्व की स्पष्टता इसी विशिष्टता मे है; यह भी सत्य है कि प्रत्येक कवि शब्द को सार्थक करने वाले व्यक्ति मे यह वैशिष्ट्य किसी-न-किसी मात्रा मे रहता है किन्तु निराला का यह वैशिष्ट्य निजीपन के साथ है और समसामयिक प्रवाह से अनेक अशो मे विच्छिन्न और विभिन्न है। निराला की चेतना वस्तु-निष्ठता का मात्र स्पर्श भर करती है, वह उससे आविल नही होती। निराला की प्रतिभा 'कुक्कुर-मुत्ता' की भाँति अपने आप जगी जिसे 'गुलाव' जैसी सावधानी खातिरदारी नही मिली। कहा जाता है 'कठिनाइयाँ मनुष्य को वनाती या विगाडती हैं' किन्तु परिस्थितिगत विशेषताएँ इस प्रातिभ ज्योति को मलिन न कर सकी। जीवन की कठोर वास्तविकता, कठिन संघर्ष ने उदग्र कर्मठता दी और वेदान्त-ज्ञान ने निस्संगता और निर्लिप्तता किन्तु यह निर्लेप-भावना वैसी नही जो आत्म-हनन से आत्म-हत्या की ओर वढती है। इस प्रकार की परिस्थिति-विशेष मे पलनेवाला व्यक्ति अन्तर्मुख हो उठता है। वेदान्त 'जगन्मिथ्या' की शिक्षा देता है किन्तु 'एकमेवद्वितीयम्' द्वारा सृष्टि की मूलसत्ता की ओर संकेत करता है। इस प्रकार 'जगन्मिथ्या' के कारण उत्पन्न निराशा के लिये सार भूत मूल सत्ता की इकाई द्वारा विश्वास और आशा का सन्देश भी। वेदान्त के अध्ययन ने जगत् और जीवन की विषमता के प्रति निस्संगता और असलग्नता निराला को दी। निराला जीवन-संघर्ष से भागते नही, मात्र उससे अनाविल और असलग्न है—

> दुख ही जीवन की कथा रही,
> क्या कहूँ, आज जो नहीं कही!

अन्तर्मुख अपने आप मे ही अपना संसार वना लेता है। वह एक प्रकार उस घोघे की भाँति है, जो पीठ पर ही अपना संसार ढोता चलता है। निराला मे अपने व्यक्तित्व का मोह है, निजीपन की रक्षा की आकाक्षा है, अपनी प्रतिभा पर विश्वास है और अपनी रचना पर आस्था, इस प्रकार चेतना का आग्रह। महादेवी का करुण माधुर्य इतना व्यापक और गहन है कि जीवन अथवा वस्तु उसमे विलीन हो जाते हैं, उनका अपना विभिन्न अस्तित्व नही रह जाता, यहाँ तक कि उनका प्रिय भी सूक्ष्म, अमूर्त और भावगत हो उठता है। पन्त मे वालसुलभ औत्सुक्य और चापल्य है। विज्ञान-वेत्ता की भाँति वस्तु का विश्लेपण पन्त नही करते, महादेवी की भाँति उसे आत्मसात् भी नही कर लेते किन्तु उससे आकृष्ट अवश्य है, फलस्वरूप उत्सुकतापूर्ण आकर्षण के कारण निस्संगता नही आ पाती। निराला के लिये वस्तु अथवा विषय मे आकर्षण है, कारण, अन्तर्वृत्ति से सम्वद्ध होकर, चेतना के जागरण का प्रतीक होकर वह काव्य मे अभिव्यक्ति होता है, किन्तु पन्त जैसी चपल उत्सुकता नही, वल्कि संवेगपूर्ण निस्संगता है। व्यक्तित्व की इस विभिन्नता के कारण गीति-काव्य के स्वरूप मे अन्तर आया है। महादेवी के गीत मे करुण माधुर्य है, पन्त के गीतों मे सुकुमार लालित्य है और निराला मे ओजस्वी लावण्य है। निराला ने पन्त को लिखे गये पत्र में लिखा है—"हिन्दी मे अपनी कल्पना-शक्ति के लिये ही आप वेजोड़ समझे जाते हैं और अपनी

अपराजित भाषा के लिए, इसी मौलिक गागर की ओर हिन्दी के नवयुवकों के हृदय के नदी-नद बहे हैं, वे आपसे कुछ हमारा हो गये हैं, उन्हें इसी ओजस्विनी वाणी का कल्पनामृत पिलाइये।" इन पंक्तियों में निराला ने ओजस्विता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस ओजस्विता का मूल कारण परिस्थितियों और रूढ़िगत और ग्रस्त संस्कार से विद्रोह—

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते॥

—शब्दक

है, किन्तु निराला का यह मूर्ति-तोडक विद्रोह भावना नहीं, उसमें इतनी निस्संगता कहाँ? बल्कि उदग्र कमठ का जीवन-दर्शन है, जिसके लिये पन्त ने लिखा—

छन्द बंध ध्रुव तोड, फोडकर पर्वतकारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर सी नि:सृत।

[यहाँ निराला की आलोचना अभीष्ट नहीं जिसमें आर्थिक पृष्ठभूमि में विकसित वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक विकास की छान-बीन की जाय, यहाँ केवल निराला के व्यक्तित्व का सांकेतिक रूप में निदर्शन ही अभीष्ट है।]

अत: इस निस्संगता के कारण चित्रों में पूर्णता आ गयी है, क्योंकि ऐसी अवस्था में आत्मनिष्ठा का प्रभाव रहने पर भी वस्तु के देखने का अवसर मिलता है। गीति-काव्य में विषय का इतना ही महत्व रहता है कि कवि की जाग्रत भावना की अनुरूपता उसमें है, अत: प्रेरणा के क्षण की स्पष्टता उसके माध्यम से प्रकट होती है। पल्लव की आलोचना करते हुए निराला ने शब्दों की चित्रमत्ता और चित्र की पूर्णता की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। निराला के गीतों में यही चित्रमत्ता है, शब्दचित्रों की पूर्णता है और शब्दलांछित चित्रों में पूर्णता। शब्द का साहित्य में अन्यतम स्थान है। नाद ब्रह्मरूप में स्वीकृत है। शब्द के द्वारा ही अर्थ की भावभूमि में प्रवेश पाने का अधिकार मिलता है, अत: शब्दों की संयमता में ही कवि की क्षमता है। चाहे इसे साधारणीकरण कहा जाय अथवा निवेदन, अथवा प्रेषण। व्यक्तित्व की विभिन्नता के कारण प्रसाद, पन्त, महादेवी और निराला द्वारा चित्रित चित्रों में बड़ा अन्तर आ गया है। महादेवी की करुण मधुर व्यापक भावना इतनी विशद है कि विषय आत्मसात् हो जाते हैं। अत: उनके चित्र विशद पट भूमि पर अंकित होते हैं और रेखाएँ सुस्पष्ट न रहकर पृष्ठ भूमि में घुलमिल जाती हैं। पन्त की चपल उत्सुकता चित्रों को रंगीनी और मोहक रूप से अधिक आविष्ट होती है। प्रसाद की भावना ही चित्र का रूप धरती है, अत: उसमें भी अस्पष्टता की झलक आ जाती है, किन्तु निराला के अंकित चित्रों में विशिष्ट वस्तुनिष्ठता है जो उन्हें चित्रमता देती है। इस प्रकार निराला के गीतों में आत्म-निष्ठता वस्तुनिष्ठता के संयोग से अधिक सक्षम हो सकी है। इस वक्तव्य को स्पष्ट करने के लिये आधुनिक कवियों की चित्रशाला में चलना होगा।

महादेवी ने 'वसन्त-रजनी' का चित्र आँका है ।

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि
अलिगुञ्जित पद्मों की किंकिणि
भर पदगति में अलस तरंगिणि

तरल रजत की धार बहा दे,
मृदु स्मित से सजनी।
विहँसती आ वसन्त-रजनी।

महादेवी ने अपने इस चित्र के लिये विशद भूमिका का आश्रय लिया है। पल्लवो का मर्मर संगीत वसन्त-रजनी की नूपुर ध्वनि है और सरसी के खिले पद्मों के गुञ्जरित भौरों की रागिनी किंकिणि है। गति के कारण होने वाली झंकार मे शरद्कालीन सरिता की शिथिल-तन्द्रिल झंकार है। नूपुर, किंकिणि और पदगति, केवल इनके चित्रण मे महादेवी ने वनप्रान्त, सरसी मे अलि-गुञ्जरित पद्मवन और सरिता की मन्थर गति का चित्र उपस्थित किया। पाठक की दृष्टि एक चित्र पर जम नही पाती कि दूसरा चित्र उपस्थित हो जाता है। चित्र अपने आप मे पूर्ण है, किन्तु इनका पारस्परिक सम्बन्ध दूरान्वित है। महादेवी के गीतो में अस्पष्टता अनेक अंशों मे इसी कारण है। पन्त-अंकित चित्र है—

खैंच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप,
शैल की सुधि यों बारम्बार;
हिला हरियाली का सुदुकूल,
झुला झरनों का झलमल हार।
जलद पद से दिखला मुखचन्द्र
पलक पल पल चपला के मार;
भग्न उर पर भूधर सा हाय!
सुमुखि धर देता है साकार।

महादेवी के अंकित चित्र की विशदता यहां नही है, यद्यपि चित्र को विस्तार देने का प्रयास है, किन्तु हरियाली के चित्रो मे एकात्मता नही है। सुदुकूल, झरनो के झलमल हार, जलज-पटल से दीखने वाले मुखचन्द्र के लिये भोलापन लिये औत्सुक्य है। चित्रमत्ता मे मुख चन्द्र दिखलाना और झलमल हार झुलाना अधिक सौन्दर्य अथवा सरसता नही देता। चित्रो मे स्पष्ट रेखाएँ हैं, महादेवी की-सी अस्पष्टता नही।

केवल स्मितिमय चाँदनी रात,
तारा किरनों से पुलक गात,
मधुपों मुकुलों के चले वात,
आता है चुपके मलय वात,

सपनों के बादल का दुलार।
तब ले आता है बूँद चार।

—प्रसाद

'प्रसाद' के इस गीत मे 'वासन्ती रजनी' का चित्र है। महादेवी की 'मधुर नूपुर ध्वनि' नही है और न है 'अलि गुञ्जित पद्मों की किंकिणि' बल्कि 'स्मितिमय चाँदनी रात' में 'मधुप और मुकुल' के चलने वाले 'घात' हैं। जीवन के सपन—अकांक्षाएँ आँखों म ओस बूँदें ढलका जाती हैं। जीवन के सपने कवि की अन्तवृत्ति के परिचायक हैं जिसका चित्र वह प्रकृति के प्रांगण मे देखता है।

सखि, वसन्त आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय वसना नव वय लतिका
मिली मधुर प्रिय उर तरु पतिका,
मधुप-वृन्द बन्दी
पिक स्वर नभ सरसाया
लता-मुकुल-हार-गन्ध भार भर
बही पवन मन्द मन्द मन्दतर
जागी नयनों मे वन
यौवन की माया।
आवृत सरसी-उर सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे
स्वर्ण शस्य अञ्चल
पृथ्वी पर लहराया।

महादेवी मे रूपकातिशयोक्ति का जो मोह है वैसा यहाँ नही। चित्र के उपकरण इस प्रकार सतुलित और गुम्फित हैं कि एकात्मता उनमे अन्विति और प्रभाव देती है। सरसिज, अलि, पिक, लतिका, पवन आदि वसन्त के सारे उपकरण एक लडी मे पिरोये दीख पडते हैं।

गीतिकाव्य भावात्मक है और विषय का सम्यक चित्र भावना को उभरने नही देता। फल स्वरूप गीतिकाव्यात्मकता अपने निखरे रूप मे नहीं आती। 'निराला' के काव्य चित्रो मे जो पूर्णता है उसका कारण निस्संगता ही है। भावुकता को अतिभावुकता की सीमा मे खींच ले जाने वाले के लिये इन गीतो में सरसता नहीं दीख पडेगी किन्तु अतिभावुकता बुद्धि को कुंठित कर देती है। जीवन के ऊहापोह और हलचल म दो क्षणों के लिये शान्ति भले मिल जाय, जीवन की चेतना उसमें नहीं उभरती। 'प्रसाद' की 'वासन्ती रजनी' उन सपनों की याद दिला आँखों में आँसुओं की बूँदें झलका देती है, महादेवी की इस अपरूप 'वसन्त रजनी' म 'सुन प्रिय की पदचाप हो गयी

पुलकित यह अवनी !' और यहाँ 'स्वर्ण-शस्य-अंचल पृथ्वी पर लहराया,' दोनों में पुलक है, हर्षोत्कर्ष है और संकेतात्मकता द्वारा 'निराला' अपनी अन्तर्वृत्ति की अभिव्यक्ति करते है।

इस निस्संगता ने जहाँ वस्तुगत स्थिति को स्पष्ट रूप से प्रकट किया, वहाँ दृश्य के प्रति असंलग्नता दी। फलस्वरूप कवि सासारिक नही, संसार का नही। व्यवहारिकता उसे स्पर्श नही कर सकती, वह वाह्य परिस्थितियों से समझौता कर घुलमिल कर चल नही पाता, वह मात्र स्वप्न द्रष्टा नही। वास्तविकता की कठोर भूमि पर टिकी कवि की भावना मे निजत्व है, ओज है, शक्ति है। उसकी चेतना मात्र वस्तुगत नही रह जाती। अतः निराला विशिष्ठ मनोवैज्ञानिक 'टाइप' के हैं जिनमें वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता का नूतन समन्वय होता है, किन्तु वस्तुनिष्ठता आत्मनिष्ठता की पूरक मात्र है जो उनके जीवन को नयी चेतना और नयी प्रेरणा देती है। निराला की प्रतिभा सदा प्रयोग करती रही है। छन्द, भाव, भाषा, टेकनीक और माध्यम के सम्बन्ध का प्रयोग उनका सदा चलता रहा है और किसी एक क्षेत्र में वे जमकर नही रह सके। मूलतया निराला मे उनका यह व्यक्तित्व जीवन की सम्पूर्णता और अन्विति के लिये प्रयोगशील है, फलस्वरूप वेदान्त की बौद्धिक चेतना से प्रबुद्ध व्यक्तित्व सौन्दर्य और प्रेम की कल्पना और चित्रण मे सलग्न रहता है। कारण है 'मानवता का विकास'। मानवीय मापदण्ड से ही व्रजभाषा की शृंगारिकता का प्रतिपादन निराला ने किया जिसमे विश्ववाद, चेतनवाद, वेदान्तवेध अनन्तवाद की चेतना है। निराला के सौन्दर्य और शृंगारपरक गीतो में वही भावुकता और जीवन की पूर्णता के दर्शन होंगे—

> नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली।
> जागी रात सेज प्रिय पति संग रति सनेह रंग घोली
> दीपित दीप प्रकाश, कञ्ज छवि मञ्जु मंजु हँस खोली
> मली मुख चुम्बन रोली
> प्रिय कर कठिन उरोज परस कस कसक मसक गयी चोली,
> एक वसन रह गयी मन्द हँस अधर दशन अनबोली
> कली सी काँटे की तोली।
> मधु ऋतु रात, मधुर अधरों की पी मधु सुध बुध खोली
> खुले अलक, मुँद गये पलक दल, श्रम सुख की हद होली
> बनी रति की छवि भोली।
> बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली
> उठी सँभाल बाल, मुख लट, पट, दीप बुझा हँस बोली,
> रही यह एक ठिठोली।

यह सौन्दर्यपूर्ण शृंगारिक चित्रण सम्पूर्ण रूप मे मानवीय है। 'गोपी-पीन-पयोधर-मर्दन-चंचल-कर-युगशाली' और 'प्रिय कर-कठिन-उरोज-परस कस कसक मसक गयी चोली' मे साम्य रहते हुए भी पूर्ण चित्र मे एक नूतनता और विभिन्नता है। विद्यापति की सुन्दरी नायिका कामासक्त नायक की मधुर भर्त्सना करती है—

हे हरि ! हे हरि ! सुनिये सुवन भरि,
श्रवन विलास क वेरा।
गगन नखत छल से अवेकत भेल,
कोकिल कर इछ फेरा ॥
चकवा मोर सोर कए चुप भेल
उठिये मलिन भेल चदा।
नगर क धेनु डगर कए सचर
कुमुदिनि वस मकरदा।
मुख पेर पान से हो रे मलिन भेल,
अवसर भल नहिं मंदा।
'विद्यापति' मन ए हो न निक थिक,
जग भर करइछ निन्दा ॥

इसम असयमित वासना का वरान है और निराला के उपयुक्त गीत मे शृगार की अभिव्यक्ति मात्र। इसके साथ ही विद्यापति के गीत मे नैतिकता के आग्रह की भलक दीख पडती ह, जिसका अभाव निराला मे है। निराला का यह सौदयगीत पूर्णतया शृगारिक होते हुए भी उसकी अतिकामुकता से मुक्त है। निराला के सौदयपूर्ण गीतो का रविबाबू के शृगारिक गीतो की भूमिका मे रखकर देखना चाहिये। रवि बाबू के गीतो मे जहाँ स्त्रैण माधुय की कोमलता है, वहाँ निराला के गीतो म पुरुषोचित ओजमय प्रवाह। निराला ने 'पत और पल्लव' मे लिखा था 'हिन्दी की मधुरता के साथ इस समय विशेष ओज की भी जरूरत है'। रविबाबू के गीतो म जो पूर्णता है, वही निराला म भी है। पन्त म जहा इकाईपन, एकात्मता का अभाव है, वहाँ निराला के गीतो का प्रभाव उसकी पूर्ण अन्विति के साथ है, निराला के गीतो की शृगारिकता 'भीन वसन मेंह भनकत काया' की भाँति दार्शनिकता और रहस्यपरता की अभिव्यञ्जना होती है। निराला के सौंदय गीतो की विशेषता अमूर्त्त को मूर्त्त आधार से अभिव्यक्त करने मे नही, बल्कि मूर्त्त से अमूर्त्त की व्यजना म है।

सौंदय के गीतो मे प्रेम का उन्मेष है। वह रूप जगाकर उर मे' की परिणति 'प्यार करती हू अलि' म है "इसलिये मुझे भी करते हैं वे प्यार" की सभावना जग सकी है। इस प्रेम-वासना में सौंदय रा आकषरा है किन्तु वासना का उच्छखल, उन्मत्त विलास नही। इस प्रेम वर्णना मे तुलसी-जैसा सयम है, उसम 'घर तजौं, वन तजो, कहैया औ सुनैया तजौं, बाप अरु भैया तजौं पै कन्हैया नहिं तजिहौं' का उन्माद न होकर भी त्याग और सयम की भावना है—

रुके नहीं धनि, चरण घाट पर
देखा मैंने मरण बाट पर
टूट गये सब आद ठाट घर

छायावादी युग ने सौन्दय को स्थूलता के घेरे से मुक्त कर छायात्मकता, भावात्मकता दी। सौन्दय

की यह भावात्मक प्रतिक्रिया अनेक अंशो में अतिवाद के क्षेत्र में प्रवेश करने लगी। महादेवी के रूपचित्रो मे जो अस्पष्टता दीख पडती है, वह अनेक अंशो मे इसी कारण है। शब्द-झंकार और लय-रूप द्वारा छायवादी पंत के शब्दचित्रों में नूतन स्फूर्ति मिलती है। पत पर उन फरासीसी कवियों का प्रभाव दीख पडता है, जो शब्द झंकार से ही भाव-मूर्ति उपस्थित करना चाहते हैं। शब्द-झंकार का अपना महत्व गीत-काव्य मे है, किन्तु ऐसा नही होना चाहिये कि शब्द-झंकार में पाठक अथवा कवि उलझ कर अमन-मूर्ति से दूर जा पडे अथवा उसे एकदम भूल जाय। कवि की कलाकारिता उसके शब्द चयन में ही है। कवि कलाकार इसलिये नही कि उसमें भावनाएँ, विचार, अनुभूति और अतृप्त वासनाएँ हैं और अभिव्यक्त करने की आकांक्षा एवं अभिव्यंजना की क्षमता है वल्कि इसलिये कि वह शब्द शिल्पी है। काव्य श्रेष्ठकला इसलिये है कि इसका माध्यम सुकोमल, ललित और अनेक तल-स्पर्शी है। आज के हिन्दी-कवि शब्द और शब्द-शक्ति का महत्व स्वीकार नही करते, फलस्वरूप अधकचरे और अनर्थक साहित्य की सृष्टि होती जा रही है। शब्द अर्थ के माध्यम हैं, हाँ; सौन्दर्य की कल्पना और चेतना के वाहक भी मानसिक मूर्त्त विम्बों के साक्षात्कार कराने के साधन हैं और संवेदशीलता के आधार, इनके साथ ही संगीत के स्वर हैं और झंकार के प्राण। इसलिये भावना की प्रवल जागृति के साथ सहज अभिव्यक्ति और स्वच्छन्दता का सरल सौन्दर्यिक प्रवाह काव्यगत चेतना की आधार-शिला है। शब्द-चित्रपूर्ण हो, उनमे सौन्दर्यगत चेतना और पूर्णता हो किन्तु नक्काशीपन नही हो; अन्यथा कविता फूहड स्त्री की भाँति विरसता ही उत्पन्न करती है।

कवि की सफलता और समता शब्द और अर्थ की संतुलित अभिव्यक्ति मे है। अर्थाभिव्यक्ति से अक्षम शब्द अनुपयोगी हैं और शब्दहीन अर्थ अरूप, शब्द अर्थ की सीमा है और विस्तार भी। निराला के गीतो मे शब्द और अर्थ का यह संतुलन है। रविवावू के गीतो मे सरस कोमलता है, महादेवी मे अतिकरुण माधुर्य है, पंत की शब्द-झंकार में अपनी मधुरता है, किन्तु निराला के गीतो मे कुछ ऐसा नही मिलता और सम्भवतः ऐसे सौन्दर्य और माधुर्य के आकांक्षी पाठक को निराशा ही हाथ लगेगी; किन्तु इसके स्थान मे प्रौढ ओज और सशक्तता है। निराला ने पंत और पल्लव मे लिखा था-'हिन्दी की मधुरता के साथ इस समय विशेष ओज की भी जरूरत है और निराला के सौन्दर्य-चित्रो और रूप गीतो में भी यह प्रौढ ओजस्विता है—

मौन रही हार
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार।
कण-कण पर कंकण, प्रिय,
किण्-किण् रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिणी;
और मुखर पायल-स्वर करें बार-बार—
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार.

पत के शब्द घिस घिसाकर शालिग्राम बनकर निकलते हैं इनके नाद सौदर्य म शरत्कालीन गगा की शात स्नेहसरल स्निग्ध धारा है जिसम श्रान्त-क्लान्त निश्चल-सी गति है, 'बाघाहीन, विराट, विप्लव के प्लावन' की भिप्रगति है। शब्द आपस मे टकराते बढ़ते हैं, इस टक्कर के कारण जहाँ उनकी गति म अवरोध दीख पडता है वहाँ प्राणवान सशक्त व्यक्तित्व का सकेत है। निराला की भाषा प्राणवन्त, सतेज और प्रबल प्रवाहमय है।—गीतिकाव्य। निराला के नाद-सौन्दर्य और शब्द-झंकार प्रयासकृत नही बल्कि अचेतन मानसिक की रचनात्मक सृष्टि हैं।

गीतिकाव्य म रागात्मिका अनुभूति की इकाई और समत्व अपेक्षित है अन्यथा उसम न तो सवदनशीलता रहती है और न उससे उत्तेजना प्राप्त होती है। सन्ध्या की धूमिल लाली, ऊषा की सहास मधुरिमा, अमावस्या का शिथिल अन्धकार, उगती शशिकला की चन्द्रिम मुस्कान, जीवन के हास अश्रु कवि चेतना को उद्वेलित करते रहते हैं और अप्रयास चेतना शब्दो की जाली बुन जाती है, गीत मुखर हो उठते हैं, वाणी स्वय फूट पडती है। प्रबन्ध काव्य में रस के विभिन्न तत्वो की वर्णना और व्यञ्जना, शब्द की पूर्ण शक्ति के साथ होती है। गीतिकाव्य केवल कुछ रेखाओ द्वारा चित्रो का सकेत करता है, अत उसम केवल एक भावना, अनुभूति अथवा मूड की व्यजना हो सकती है। रस विरोध की अथ व्याप्ति को कुछ अधिक विस्तार देकर, यह मानना पडेगा कि गीति काव्य मे यह दोष अक्षम्य है। अनुभूति और चेतना के विकास म आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिवेश का प्रभाव पडता है। साधन और अवसर की समानता के कारण प्रकृत शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति भी पूर्णतया विकसित नही हो पाता। आर्थिक समस्याओ की पेचीदगी म पडकर मनुष्य पिस रहा है, मानवता कराह रही है, उसकी मुक्ति का माग अवरुद्ध है, उसके बन्धन दिन दिन जकडते जा रहे हैं। मानव जीवन उत्पीडित, आक्रान्त और त्रस्त है। ऐसी विषम परिस्थिति और वातावरण मनुष्य के सहज और मुक्त विकास मे बाधक हैं, कवि-चेतना पर इनका अलक्ष्य प्रभाव है निराला के व्यक्तित्व का विकास इस भूमिका मे देखना होगा। आलोचक चेतना और व्यक्तित्व के विकास की आलोचना नही कर सकता, कारण वह अन्यथा हो नही सकता। केवल इसकी जाँच ही सभव है कि उसका पूर्ण व्यक्तित्व उसम उभर सका है अथवा नहीं! जीवन क रक्षण और उनसे उत्पन्न अनुभूति और विचार तथा तज्जनित भावनाओ की क्रिया प्रतिक्रिया के रूप म चेतना और व्यक्तित्व का विकास है। गीतिकाव्य म अत जीवन पर पडने वाले प्रभाव के एक पहलू का सौन्दर्यपूर्ण कलात्मक चित्र होता है। गीतिकाव्य अन्तर्वृत्ति-व्यजक और अनुभूति प्रधान है। सूर्य की किरणें जिस प्रकार रगीन शीशे से झाँककर उसी का रग झलकाती हैं, उसी प्रकार कवि की अन्तर्वृत्ति नूतन ससार और भावभूमि लेकर उपस्थित होती है और व्यक्तित्व की छाप लेकर अभिव्यक्त होती है। निराला के व्यक्तित्व म तटस्थता और निस्सगता के साथ ही बौद्धिक चेतना और वेदान्त ज्ञान की अन्विति देखी गयी है। फलस्वरूप निराला के गीत मात्र सौन्दर्य-बिम्ब और रूप विधान ही नही देते, केवल भावना की मूर्त-अमूर्त-विधान खडा नही करते बल्कि उसके साथ बौद्धिक चेतना का समन्वय भी करते हैं। इस प्रकार निराला के गीतो मे बौद्धिक चेतना और भावना का सतुलन सौन्दर्य और कला विधान क माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। महादेवी क गीतो म यह सम्मिश्रण अपने चरम रूप म अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु बौद्धिक

चेतना अनुभूति के आश्रित है, उसका अंग और आधार है और निराला मे दोनों का सम्यक् सन्तुलन है, यह दूसरी बात है कि कुछ गीतों मे बौद्धिकता से प्रौढ और प्रबल आग्रह गीति-काव्य की आत्मा के विरुद्ध पड़ता है। निराला कीट्स की भाँति 'सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य' नही स्वीकार करते, किन्तु अनुभूति और विचार को सौन्दर्य की भूमिका में अभिव्यक्त करते हैं जिसमे सहज स्वच्छन्द प्रवाह है और स्वतन्त्र बौद्धिक चेतना मे सजग एवं दृढ व्यक्तित्व की छाप जिसके नाद-सौन्दर्य और रूपचित्र पर हैं। इस रूप मे निराला के गीत पूर्णतया मौलिक है जिनपर किसी बाह्य उत्तेजना का प्रभाव नही। वह कवि की अन्तर्चेतना, बौद्धिकता और भावना का फल है। निराला के गीतो की बौद्धिकता क्या प्रयासकृत है? चिंतन की गहराई जिस सहज रूप मे अभिव्यक्त हुई है, कि वह सहज दीख पड़ती है; विचारों की सूक्ष्मता वेदान्त ग्रन्थ खोलकर उसकी उक्तियो को काव्य के चौखटे मे बैठाने की चेष्टा जैसी नही है, विचारो की सूक्ष्मता जो नितान्त अरूप नही, जिनकी अमूर्त्तता मे मूर्त्त भावना का स्वरूप है, जिसकी उत्तेजना संस्पर्श कर झंकार उत्पन्न करती है, जिसमे सहज प्रकाशन की यह प्रवृत्ति है, जिसकी चेतना अलकार हे व्यर्थ का नही।

निराला की प्रकृति-शक्ति उलझी और मिश्रित अनुभूति को उसकी पूरी सीमा और क्षेत्र में, साधारण उथले भावों से लेकर गंभीर आध्यात्मिक और सौन्दर्य की वासनात्मक चित्रण पूर्ण भावना और सौन्दर्यिक कल्पना की संतुलित अभिव्यक्ति मे है। चिन्तन, भावना और कल्पना का ऐसा सुन्दर संगम दुर्लभ ही होता है। निराला के प्रौढ गीतो मे विचार की अनुभूति हैं।

अतीत का वर्त्तमान के साथ गहरा सम्बन्ध है, बल्कि अतीत के आधार पर ही वर्त्तमान का निर्माण होता है और वर्त्तमान भविष्य की आधरशिला है। इतिहास की चेतनपूर्ण गति है, घटनाओं का क्रम मानवीय मानदण्ड का फल है और चेतना का विकास घटनाओ और व्यक्तियो के जीवन मे प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। मानव दिक् और काल की सीमाओ से आवृत्त है। कला मनुष्य की इस मुक्ति-आकांक्षा का मूर्त्त रूप है, कलाकार 'निरवधि काल' और 'विपुला पृथ्वी' की सीमाओं के बन्धन से मुक्ति चाहता है। इस प्रकार परम्परा का विरोध क्रान्तदर्शी कवियो द्वारा होता हैं। युग की स्पष्ट प्रवृत्तियों की ओर कवि की दृष्टि जाती है किन्तु उसकी पैनी दृष्टि केवल इन्हे ही नही देखती बल्कि अन्तर्हित मानवीय चेतना के क्षीण स्पन्दन के दर्शन करती है, कवि उस चेतना का अग्रदूत है। निराला के सहज व्यक्तित्व मे अतीत और परम्परा का विद्रोह, काव्यक्षेत्र मात्र मे नही, बल्कि जीवन के क्षेत्र में भी। एक ओर छन्द-बन्धन को ललकार है, शृंगार मे ओजस्विता है, भावना में बौद्धिक चेतना, शब्द में अर्थ-संयुक्त झंकार, शृंगार की छायात्मक मे रेखा-पूर्णता है और दूसरी ओर मानवता के प्रति करुणा का अजस्र प्रवाह और स्वच्छन्द हृदय का निर्बाध भाव-प्रवाह। इस प्रकार सौन्दर्य-चित्रों के विश्ववाद और चेतनावाद को आत्मसात् कर कवि ने नवीन मानववाद को वाणी दी। परम्परा और रूढि का तिरस्कार कर भी अतीत की अन्तश्चेतना से जाग्रत कवि अतीत को नवीन संस्पर्श देता है। धर्म, रूढि, का तिरस्कार कर आत्मिक स्वतन्त्रता की वाणी से निराला के गीत मुखरित है। कवीन्द्र रवीन्द्र का मानववाद बुद्ध और गांधी की करुणा मिश्रित भावना का फल है, वह मानवता को दिया गया दान है, मानव का अधिकार नही; वह भिखारी को दी गई भीख है, त्याग का जिसमें आग्रह है। प्रगतिशील पंत का मानववाद बुद्धि जनित है, उस पर मार्क्स के दर्शन का प्रभाव है, आत्मा का सहज प्रकाश नही। निराला के गीतो में मानवोचित सहृदयता और आवेग;
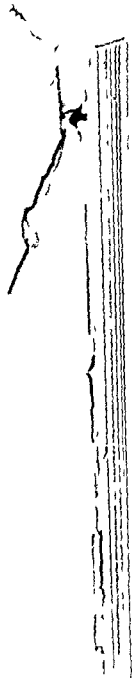
जो बाहर से आरोपित नही, बल्कि जो स्वत प्रकाशमान् और उद्भासित है । अनुभूति चिन्त सजग है । यह चेतन सजगता निराला के गीतो म मुखरित है ।

निराला क गीता मे दाशनिक अनुब ध की चर्चा होती आ रही है, उनकी ज्ञान-गरिमा स अनेक पाठक सशक और अनेकानेक आलोचक चिन्तित दीख पडते है । का य फैशन के क्षेत्र से दाशनिकता आज तिरस्कृत सी लगती है, आज का आलोचक जीवन की रट लगा रहा है, यद्यपि जीवन केवल इसी शब्द की सीमा म सकुचित नहीं रह सकता । दाशनिक और कवि समानदर्शी और अनेक अशो मे समानधर्मी है । किन्तु दोनो की शैली भिन्न है । दाशनिक अनुब ध चिन्तन का फल है और काव्यात्मकता भावना और अनुभूति का । कि तु चि तन और भावन अथवा कल्पना एक ही मानस की क्रियाएँ हैं । अनेक काल से यह भ्रम लाया जा रहा है कि कविता हृदय का विषय हैं और ज्ञान-विज्ञान मस्तिष्का का । फलस्वरूप ज्ञान विज्ञान विषय की चर्चा देख पाठक उस अकाव्यात्मक अथवा दाशनिक अथवा बुद्धिज य कह अपनी झिझक प्रकट करता है । हृदय रक्त-सचालन क्रिया का यत्र विशेष मात्र है अत कविता को हृदय का विषय करने में उसके भावात्मक पक्ष की प्रतिष्ठा मात्र समझनी चाहिए । चिन्तन की प्रौढता भावना और कल्पना को ओजस्विता देती है, भावात्मकता चिन्तन को काव्यात्मकता । काव्यात्मक का य के सिद्धान्त की चर्चा इधर अधिक चल पडी ह जिसमे भारतीय रसवादियो की शैली का आग्रह भी आ मिला है । रसानुभूति मात्र उपकरणा म सकुचित नही । दाशनिक और कवि मे अ तर ह कि दाश िक का ज्ञान चि तन और प्रौढ विचार तार्किक पद्धति का फल है । कवि की दाशनिकता भावात्मक चि तन है, उसक विचार अनुभूति हैं । काव्य तक सम्मत और तार्किक अनुब ध का अनुयायी नहा । दाशनिक विचार करता है कि तु अनुभूति का वहिष्कार उसकी प्रणाली से है सभव सत्य की उपलब्धि के बाद उसमे भावात्मक आवेश जागरित हो कि तु कवि का चिन्तन भावना के रू से अभिव्यक्त होता है । कबीर के अधिक पदो म लालित्य, माधुय और कला चातुय का अभाव देखकर ही लाग उन्हे अका यात्मक कहते है । कुछ पदो के अथ गाभीय दा ानिक अनुब ध के कारण नही । चिन्तन जहाँ भावा मक है उन पदो मे काव्यात्मकता चमक उठी है निराला के गीता म चि तन की चेतना है और उनकी दा ानिकता का रहस्य है । और कवियो को अपे ा जीवन को स्पष्ट रू म देख सकने और अनुभव करने की शक्ति निराला मे है । अत निराला का दा ानिकता म जीवन दशन का स्पष्ट प्रभाव है ।

गीतिका य सगीतात्मक है । ऐसे तो छ द बन सगीत का आधार लेकर गतिशील है । सगीत का शास्त्रीय निवाह कला के क्षेत्र से निकलकर कलाबाजो के क्षेत्र म प्रवश पा चुका है । उल्लास-विषाद म फूट पडने वाले सगीत और भिन्न भिन्न रागिनियो म बधे अदायगी वाले सगीत मे अन्तर है । पहले मे जनकठ म बसने वाला सगीत है, और दूसर म दरबारीपन की गध । गीतिकाव्य का विकास जनगीतो से हुआ है । अगरेजी क प्रगीत गीत अथवा सगीतात्मक हैं और कबीर, सूर, मीरा आदि के पद सगीत प्रधान । पदशैली और गीतिकाव्य का मौलिक भेद का विषय और वणन शैली मे है अधिकाश पद गीतिकाव्य की श्रेणी म नही रखे जा सकते । सगीत और काव्य का चिर सम्बध रहा है किन्तु दोनो के क्षेत्र म अन्तर भी कम नही रहा है । का य के लिये सगीत मात्र सहायक रहा और सगीत के लिय शब्द आधार मात्र । अथ की उस चिन्ता नहा रही, भावना की अभिव्यक्ति अथ के कारण बल्कि सगीतात्मक अभिव्यक्ति क कारण रही । का य में भावना और अथ की प्रधानता थी,

संगीत की गौणता और संगीत मे शास्त्र की रक्षा और अर्थ की गौणता। निराला के गीतो मे काव्य और संगीतो का सन्तुलन है। संगीत निर्वाह की रक्षा के लिये काव्यत्व की हत्या नही हुई है और न काव्य के लिए सगीत का मान-मर्दन। शुद्ध प्रगीतात्मक शब्द-झंकार और स्वर मैत्री का संधान है। 'गीतिका' की भूमिका मे निराला ने लिखा है,—प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की संगति की रक्षा के लिए किसी तरह जोड़ दी जाती थी; इसलिए उसमे काव्य का एकान्त अभाव रहता था। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर भी मुखर करने की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट बढ के कारण पूर्ववर्त्ती गवैये शब्दकारो पर जो लांछन लगाता है, उससे भी बचने का प्रयास किया है। दो-एक स्थलो को छोडकर अन्यत्र सभी जगह से छन्दशास्त्र की अनुवर्त्तिता की है। जो संगीत कोमल मधुर और उच्चभाव है, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। इस प्रकार निराला के गीतो मे सगीतात्मकता अपनेपन के साथ है।

निराला के गीतो मे चिन्तन-जाग्रत और प्रबुद्ध भावना एव चिन्तन के साथ कल्पनागत सौन्दर्य की सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट रेखाओ से पुष्ट चित्र है जिनमे संयम और निस्संगता का आग्रह है। सगीत की वह धारा है जो मात्र शब्द-अलकार तक सीमित नही और न जो कलाबाजी ही बन :सकी है। सतुलित चिन्तन, अनुभूति और कल्पना के साथ संगीत और सौन्दर्य समन्वय है जिसमे अतीत की अन्तश्चेतना और वर्त्तमान की जागरूकता है; मानवता का संस्पर्श है, आत्मा का उल्लास है। जीवन के हास-अश्रुओ मे नूतन सौन्दर्य है, सौन्दर्य मे स्वच्छन्द ओजस्विता है लावण्य है।

निराला की कवि-दृष्टि सौन्दर्य को एकान्त, सीमित तथा आबद्ध नही देखती। सौन्दर्य-भावना निरपेक्ष नही। राग-द्वेषात्मक अनुभूति के अतिरिक्त सौन्दर्य-बोध की सहज प्रवृत्ति के सम्बन्ध मे मतभेद भले हो किन्तु सौन्दर्य के प्रति आकर्षण एव सौन्दर्य को सत्य और शिव मे देखता है।

ऊषा की स्वर्णिम मधुरिमा, ज्योत्स्ना के रजत विलास, निर्झरी के उन्मुक्त संगीत और रूपसी के विह्वल अग-विलास भ्रू-भगिमा के सौन्दर्य से निराला के गीत मुखरित है। सौन्दर्य उन्मुक्त स्वरूप के निराला पुजारी हैं, किन्तु निराला के सौन्दर्य चित्रो मे विरसता पूर्ण वीभत्स नग्नता नही। उन्माद यौवना-विलास मे भी सयम और निस्संगता है, तटस्थता है।

———

कहानीकार निराला

डा० सियाराम तिवारी

कथावस्तु

कथावस्तु के क्षेत्र म कहानीकार निराला सकुचित नहीं हैं। समाज के प्राय प्रत्येक स्तर को उन्होंने अपनी कहानियों म स्थान दिया है। निराला साहित्यकार से पहले महामानव थे, अत उन महाप्राण साहित्यकार का ध्यान स्वभावत ही उपेक्षितों, उत्पीड़ितों शोषितों और विपन्नों की ओर चला जाता था। कविता म इस वर्ग के लिए लिखने का बहुत अवकाश न था, इस कसर को उन्होंने कहानियो म पूरा किया है। निराला की कुल बाईस कहानियों म से लगभग आधी दर्जन कहानियों में पीड़ितों की गाथा है। यह उत्पीड़न केवल आर्थिक नहीं हैं, सामाजिक भी है। सामाजिक नियमों से पीड़ित होने वालो म नारियाँ ही हैं, जो वास्तविक भी है। इसीलिए निराला की कहानियो में नारी-पात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, यथा, (लिली), ज्योतिर्मयी, कमला, श्याम हिरनी, देवी, पुष्कर कुमारी (सुकुल की बीवी) चम्पा य सब सामाजिक नियमों से पीड़ित और आर्थिक समस्या से ग्रस्त हैं। नारी जीवन से सम्बन्धित उनकी कहानियाँ मात्र परिमाण में ही सर्वाधिक नहीं हैं, बल्कि उत्कर्ष म भी सर्वोच्च हैं। इस परिधि के बाहर केवल एक ही उत्कृष्ट कहानी है चतुरी चमार, अन्यथा उनकी सारी प्रसिद्ध एव श्रेष्ठ कहानियाँ इसी के अन्तर्गत आ गयी हैं।

निराला ने कहानियाँ लिखने म दो पद्धतियों को अपनाया है—ऐतिहासिक और आत्मचरित पद्धति। लगभग एक-तिहाई कहानियाँ आत्मचरित पद्धति पर लिखी गयी हैं, शेष ऐतिहासिक शैली में है। उल्लेखनीय है, कि निराला की श्रेष्ठ कहानियाँ 'चतुरी चमार' 'सुकुल की बीवी' आत्म-कथा की शैली में ही लिखी गयी है। पत्र-शैली म आद्यन्त कोई कहानी निराला ने तो नहीं लिखी है, पर कहानियों म पत्रों का भरपूर उपयोग किया है। 'प्रेमिका परिचय', 'सखी', 'क्या देखा' आदि कहानियाँ उदाहरण हैं।

निराला की कहानियो म कला प्रमुख नहीं है। इसीलिए उनमे आरम्भ, चरमोत्कर्ष और अंत, कथानक के इन तीन महत्वपूर्ण स्थलों का कलात्मक संयोजन नहीं मिलता। समग्र प्रभाव की दृष्टि से ही निराला की कहानियाँ परीक्षणीय है तथापि उनके आरम्भ और अंत का विश्लेषण सम्भव और समीचीन, दोनों है। उनकी अधिकांश कहानियों का आरम्भ चित्रात्मक और इतिवृत्तात्मक है। चित्र—वे नायिका के रूप स्वभाव का तथा प्राकृतिक दृश्यों का अंकित करते हैं। इन चित्रांकनों म निराला की रोमांटिक प्रवृत्ति स्पष्ट है। संस्कृत तत्समयी भाषा मे दृश्य एवं नायिकाओं के बड़े मनोहर चित्र उरेहे गये हैं। निराला की कहानियों का आरम्भ प्रसाद की भाषा की याद दिलाता है। पर निराला एक-दो अपवादों को छोड़ कर, आदि से अंत तक भाषा के इस रूप का निर्वाह नहीं

करते, शीघ्र ही वह कथ्य की यथार्थता के अनुरूप भाषा पर आ जाते है। जो हो, ये चित्र बड़े छोटे होते है और इनके द्वारा निराला पाठक के हृदय-मंथन को तीव्रतर करने का प्रयास करते हैं। आरम्भ में नायिका की मनोरम झांकी दिखाकर उसके प्रति पाठक को आकृष्ट कर लेते है और तब उसकी करुण दशा दिखाकर पाठक को विचलित कर देते है 'कमला' ऐसी ही कहानी है। कहानी का आरम्भ कमला के इस प्रकार के रूप वर्णन से हुआ है—

'कमला सोलवें साल की अधखुली धुली कलिका है। हृदय का अमृत-स्नेह से भरा हुआ, खिली नावो-सी आंखे चपल लहरों पर आदृश्य प्रिय की ओर परा और अप्सरा की तरह वही जा रही है।'

इस चित्र के पास ही पाठक के मन मे कमला के प्रति एक आकर्षणमयी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है, पर आगे चलकर जब वह देखता है कि अपने विवेकहीन पति द्वारा अपने सारे गुणो के बावजूद परत्यक्त होती है तो वह विचलित हो जाता है। अगर ऐसी कहानियो का आरम्भ इस प्रकार नही होता, तब भी इनका महत्व इतना ही गहन होता, इसमे सन्देह है।

निराला ने दृश्य चित्रण अपेक्षाकृत कम कर किये है। रूप चित्रण पेंसिल स्केच प्रतीत होते हैं, किन्तु दृश्य-चित्रण मे गहरे रंगो की तूलिका चली है। आरम्भिक दृश्य-चित्रण की दूसरी विशेषता है कि यहाँ मनोरम और भीषण, दोनो ही दृश्य आये है, किन्तु इनके अनुसार कहानी के परवर्ती अंश मे कोई परिवर्तन नही आया है। उदाहरणार्थ 'न्याय' और 'हिरनी' को लिया जा सकता है। 'न्याय' मे रक्षा हेतु नियुक्त पुलिस की भक्षक नीति की कहानी है। और 'हिरनी' मे एक अनाथ बालिका पर जमीदार की रानियो का अत्याचार है, अर्थात् दोनो का प्रतिपाद्य उत्पीड़न है, पर दोनो का आरम्भ दो प्रकार के दृश्य चित्रणो से हुआ है। 'न्याय' मे उषाकाल का मनोहारी चित्र है तो 'हिरनी' का आरम्भ कृष्णा नदी की बाढ और उसकी संहारकारिणी लीला से होता है। भाषा दोनो की तत्समयी है। इस तरह एक ही उपकरण से निराला ने व्यंग्य का भी आश्रय लिया है, तथा 'क्या देखा' मे ऐसे स्थलो पर भाषा अवश्य बदल गयी है।

निराला की कहानियो का आरम्भ अनेक प्रकार का हैं। इतवृत्तात्मक, सम्वादात्मक, नाटकीय भूमिका के साथ एक नवीन प्रकार का आरम्भ भी है। 'देवी', 'सुकुल की बीवी' कला की 'रूपरेखा' और 'जानकी' इन कहानियो का आरम्भ निराला ने आत्मचरित से किया है। इनके परिणामस्वरूप इन कहानियों मे असंदिग्ध विश्वसनीयता आ गयी है।

उच्चकोटि की कहानी वह होती है जो समाप्त होने के साथ अगर पाठक की सारी उत्सुकता भी समाप्त हो गयी तो वैसी कहानी का प्रभाव वह नही हो सकता। समाप्ति के साथ जो कहानी पाठक की कुतुहल-वृत्ति और चिन्तन-वृत्ति को कुरेद जाती है, वह कहानी पाठक के स्मृति-पट पर चिपक जाती है और ऐसी ही कहानियो को पाठक आजीवन नही भूलता। समस्या-प्रधान कहानी के लिए यही उपयुक्त है, कि वह अपनी समाप्ति में पाठक की चिंतन-वृत्ति को उकसा जाय। कहानीकार समस्या का समाधान न देकर उसको संकेतित करके छोड़ दे और पाठक स्वयं उस समाधान पर पहुँचे।

निराला ने अपनी कहानियो के अंत पर बिलकुल ही ध्यान नही दिया है। लगता है, कहानी कहते-कहते जब मौज मे आया, उन्होने कहानी बन्द कर दी है। 'चतुरी चमार' को देखने से यह
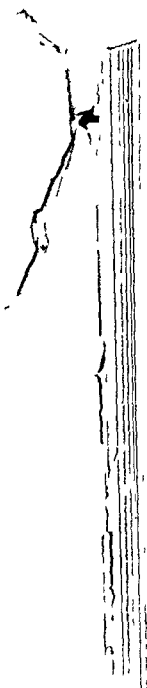
स्पष्टत परिलक्षित होता है। कुछ ही कहानियाँ ऐसी हैं जो समाप्त होने पर पाठक को चिंतनशील और जिज्ञासु छोड़ जाती है। 'हिरना', 'देवी', 'श्रीमती गजानन शास्त्रिणी', 'कला की रूपरेखा', 'दो दाने' ऐसी कहानियाँ है। इसके बाद कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जो अपनी समाप्ति म कुतूहल तो छोड़ जाती हैं, पर किसी समस्या पर सोचने के लिए बाध्य नही करती। उनम प्राय कहानीकार ने हा समाधान दे दिया है और पाठक को अपनी ओर से सोचने का कोई अवसर नही मिलता। निराला की अधिकाश कहानियाँ कुतूहल रहित हैं। 'पद्मा और लिली' म कहानीकार ने अतर्जातीय विवाह बधन की जो समस्या खडी की थी, अन्त म उसका समाधान इस तरह होता है—नायक-नायिका अविवाहित रह जाते हैं। इसी पर्यवसान के कारण विद्वानो ने इस कहानी को रोमांटिक, छायावादी, आदर्शवादी और न जाने क्या क्या कहा है, पर ध्यातव्य है कि निराला वहा तक गये हैं जहा तक उनके युग ने उन्हे जाने दिया। 'कमला', 'श्यामा', अथ, 'प्रेमिका परिचय', 'परिवतन', 'सफलता', 'भक्त और भगवान', 'सुकुल की बीवी', क्या देखा' आदि कहानियो का अन्त कुतूहल रहित है। 'श्यामा' अथ, 'प्रेमिका-परिचय' और परिवतन कहानियाँ वैसी है जैसे पहेलियो से अन्त म उनका समाधान छिपा हो। कतिपय कहानिया के अन्त अस्पष्ट और रहस्यमय हो गये हैं। 'सखी' एक तो चुटकुला प्रतीत होती है, फिर इसका अन्त अस्पष्ट है। इसी तरह स्वामी सारदानन्द जी महाराज मे का अन्त भी रहस्यमय है।

निराला की कहानियाँ आकार मे लघु हैं। कुछ कहानिया का परिसर तो इतना संकुचित है कि वे लघु कथा मे परिगणनीय हैं। 'सखी', राजा साहब को ठेंगा दिखाया गया और 'जानकी' ऐसी ही कहानिया हैं। कहानियो के लघु आकार के कारण घटनाओ और विवरणों मे क्रमबद्धता की स्वभावत ही रक्षा हो गयी है। सारी कहानिया एकोमुखी हैं और इस एकोमुखता तथा उनके आकार की लघुता म अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। आकार की इसी लघुता के कारण निराला की कहानियों मे सघर्ष अथवा द्वन्द्व का भी अभाव मिलता है। पात्रो के वैयक्तिक एव परिस्थितिगत सघर्ष पर निराला का ध्यान नही गया, इसलिए उनकी कहानिया छोटी हो गयी अथवा उन्हे अपनी कहानियो का आकार लघु रखना था, अत सघर्ष के समावेश की उन्होने जान बूझ कर उपेक्षा की, ये दोनो ही बातें सोची जा सकती है।

निराला की कहानियो मे आकस्मिकता प्राय सर्वत्र है। जासूसी कथाओ जैसा आकस्मिक प्रवेश प्राय ही देखा जाता है। 'सखी' म लीला जब गुण्डो के चगुल म जाने ही वाली थी कि श्यामनाथ अप्रत्याशित रूप से वहा उपस्थित होकर उसकी रक्षा कर लेता है। 'क्या देखा' मे तो जासूसीपन स्पष्ट ही है।

कहानी का शीर्षक कथानक से पृथक होकर भी उसका एक अग है। शीर्षक चयन से ही कहानीकार का कथा विन्यास-कौशल आभास होता हैं। कहानी की सारी विशेषताओ को वह शीर्षक मे भर देता है। इसलिए शीर्षक को आधी कहानी समझना चाहिए। शीर्षक ऐसा हो कि उसे पढते ही कहानी पढने की उत्सुकता हो जाय। और वह वस्तु को दूर तक व्यजित करें। निराला की अधिकाश कहानियों के शीर्षक सपाट हैं। अर्थात नायक-नायिकाओ के नाम ही शीर्षक रूप मे रख दिये गये हैं। "पद्मा और लिली", ज्योतिर्मयी "कमला", "श्यामा हिरणी", "चतुरी चमार", "न्याय" 'सुकुल की बीवी' आदि तथ्य बोधक शीर्षक है। "सफलता" "भक्त भगवान" "स्वामी

सारदानंद जी महाराज और मैं कला की रूपरेखा", आदि भावात्मक शीर्षक है।"कला की रूपरेखा" मे आकर्षण और वस्तु व्यंजना, दोनो का अभाव है। यह शीर्षक कहानी का नही आलोचनात्मक निबंध का मालूम पडता है। निराला "सखी" सदृश एक छोटे शब्द का शीर्षक रखा है तो राजा साहब को ठेंगा दिखाया जैसे एक वाक्य का शीर्षक भी चुना है। बंगाल के अकाल पर लिखी गयी कहानी का शीर्षक 'दो दाने' बडा ही सटीक है।

पात्र और चरित्र-चित्रण

निराला की कहानियो के अधिकाश पात्र समगति है। आरम्भ से अन्त तक वे अपने मूल रूप मे है। परिस्थिति के झकोरे उनमे कोई परिवर्तन नही ला पाते। ज्योतिर्मयी विजय से उपेक्षित होकर भी दृढ बनी रही। इसी तरह वीरेन्द्र के बहुत ललकारने पर भी विजय का दब्बूपन और पिछडापन नही गया। कमला कपोतव्रत स्वीकार करती है, पर अपने मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही आने देती। बकिम सारी बाधाएँ झेल लेता है, पर अपना स्वभाव नही छोडता। चतुरी चमार-जैसापात्र बदलने वाला नही है। श्रीमती गजानन शास्त्रिणी के विकास की रूपरेखा भी समगति ही है। सच तो यह है कि लघु परिसर के कारण बहुत-सी कहानियों मे चरित्र का इतना विकास ही नही हो सका कि उसमे परिवर्तन का अवसर हो। फिर भी परिस्थिति के घात-प्रतिघात के पात्रो मे परिवर्तन के उदाहरण अलभ्य नही है। राजेन्द्र को नही पा सकने के बाद पद्मा मे पारवर्तन हुआ है। 'सफलता' का नरेन्द्र भी ठोकर खाते-खाते बदल गया।

समगति पात्र पायः प्रतिनिधि हुआ करते है। निराला के पात्रों की विलक्षणता इस बात मे है कि उनके बहुत समगति होकर भी प्रतिनिधि नही, बल्कि वैयक्तिक ही हैं। ऊपर इस बात का संकेत किया जा चुका है कि निराला की बहुत सी कहानियो मे पात्रो मे परिवर्तन कदाचित् कहानियो के लघु परिसर के ही कारण नही हो सका। यही कारण है कि उनकी प्रकृति की वैयक्तिकता तो अक्षुण्ण रही, पर उनके चरित्र की उच्चावचता कहानी मे लक्षित नही हो सकी ज्योतिर्मय, पुष्कर कुमारी, श्रीमती गजानन शास्त्रिणी, विशम्भर आदि पात्रों की वैयक्तिकता स्पष्ट है। इस तरह निराला की कहानियो मे सभी प्रकार के पात्र आ गये है।

उसी प्रकार सभी सामाजिक स्तर के पात्र इनकी कहानियो मे आये है। 'देवी' की पगली भिखारिन है तो 'राजा साहब को ठेगा दिखाया' मे राजा साहब जैसे पात्र भी है। 'सफलता का नरेन्द्र यदि एक लेखक है तो दूसरी ओर हिरनी सदृश सारे अत्याचारो को सहन करने वाली मूक नारी भी हैं। नारियो मे ज्योतिर्मयी और कमला की तरह सदाचारिणी उपेक्षिताएँ और विधवाएँ है तो दूसरी ओर श्रीमती गजानन शास्त्रिणी की तरह दुराचारिणी सुहागिनी भी है। निराला की कहानियो के सभी पात्र निरपवाद रूप से अपनी आन पर रहने वाले है, कोई झुकना जानता ही नही है। यह निराला का स्वभाव ही उनमे उतरा है। पात्रो के नाम उनके सामाजिक स्तर के अनुकूल है। समाज के निम्न वर्ग के व्यक्तियो मे पाये जाते है, यथा चतुरी। श्यामा अवश्य ही इसका अपवाद है। वह सुघुआ की बेटी है जो लोध जाति का है, दीन और विपन्न है। जमीदार का लगान नही चुकाने के कारण उसे सिपाही सुघुआ को पीटते है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। सुशिक्षित उच्चवर्गो से आये व्यक्तियो के नाम संस्कृत तत्सम शुद्ध है, यथा पद्मा जो आनरेरी मजिस्ट्रेट की कन्या है।

निराला के पात्रो म चरित्र चित्रण म अपनी कलम का उपयोग प्राय न के बराबर किया है। तात्पय यह कि चरित्र चित्रण के लिए उन्होने अप्रत्यक्ष विधि का अवलम्बन लिया है। अप्रत्यक्ष विधि के अनेक साधना म पात्रो के काय कलाप के द्वारा उनका चरित्र चित्रण अधिक किया है। पद्मा के स्वभाव मे कहानीकार ने एक शुद्ध कही अपना ओर स नही कहा है। जब उसके पिता उसके विवाह की सूचना देते है तो पद्मा से इसका तीव्र प्रतिवाद कराकर उसकी दृढता का परिचय दिया गया है। सम्वाद के द्वारा चरित्र चित्रण के भी उदाहरण निराला की कहानियो म मिलते हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से निराला की कहानियाँ प्रौढ कला की देन हैं। प्रेमचद जैसे समथ कलाकार चरित्र चित्रण का प्रत्यक्ष प्रणाली से अपना पिंड नही छुडा सके, पर निराला प्रारम्भिक कहानियो म भी चरित्र चित्रण की यह सामान्य पद्धति देखने म नही आती। प्रारम्भ मे ही कहानी कला का इस प्रौढता को उन्होने प्राप्त कर लिया था।

कथोपकथन

कथोपकथन से कहानी म तीन काय होते हैं—चरित्रचित्रण म सहायता, घटनाओ को गतिशील बनाना और भाषा शैली का निमाण। निराला ने अपनी कहानियो मे कथोपकथन से ये तीनो काय लिए हैं। उनका कहानिया मे कथोपकथन अपनी सारी गरिमा के साथ उपस्थित है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'तू राजेन को प्यार नही करती ?' आख उठाकर रामेश्वरजी ने पूछा।

'प्यार ? करती हू।'

'करती है ?'

'हाँ, करती हूँ।'

'बस, और क्या ?'

'पिता !—'

पद्मा की आबदार आँखो से आँसुओ के मोती टूटने लगे जो उसके हृदय की कीमत थे, जिनका मूल्य समझनेवाला वहाँ कोई न था।

माता ने ठोढी पर एक उगली रख रामेश्वर जी की तरफ देखकर कहा—'प्यार भी करती है, मानती भी नही, अजीब लडकी है।'

'चुप रहो।' पद्मा की सजल आँखें भौंहो स सट गयी, विवाह और प्यार एक बात है ? विवाह करने से होता है, प्यार आप होता है। कोई किसी को प्यार करता है, तो वह उसम विवाह भी करता है ? पिताजी जज साहब को प्यार करते हैं, तो क्या इन्होने उनमे विवाह भी कर लिया है ?

इस उदाहरण म सम्वाद का सौन्दय, औचित्य और उसका काय, सब एक साथ उपस्थित है। रामेश्वर जी जब कडककर पूछते हैं कि 'बस और क्या ?' तो पद्मा 'पिता' कहकर निरुत्तर हो जाती है। उसका यह मौन बडा ही मनोवैज्ञानिक है। व्यक्ति-मन म जब कोई भाव अत्यन्त अधिक हो जाता है, तो वाणी मूक हो जाती है। पद्मा जब देखती है कि उसके माता पिता उसके मनोभाव को नही समझ रहे हैं तो इस अत्याचार की प्रतीति से उसकी जीभ जकड जाती है और वह 'पिता'

मौन बोल पाती है। दो व्यक्तियो का आवेशयुक्त वार्तालाप जब किसी एक बिन्दु पर आकर गतिरुद्ध हो जाता है तो पुनः गतिशील बनाने के लिए एक तीसरे व्यक्ति की अपेक्षा होती है। पद्मा की माता यहाँ यह कार्य सम्पादित करती है। इस कथोपकथन मे पद्मा विवाह और प्यार की जो तुलना करती है, उसके चरित्र पर भी प्रकाश पडता है। इससे उसकी तार्किक बुद्धि स्पष्ट है। फिर इस कथोपकथन की भाषा भी पात्रोचित है। उच्च शिक्षा-सम्पन्न व्यक्तियो की भाषा जैसी होनी चाहिए उसी के योग्य भाषा यहाँ प्रयुक्त हुई है। इस कथोपकथन का औचित्य भी विचारणीय है। इसके पूर्व जब रामेश्वर जी को ऐसी शका हो गयी कि पद्मा राजेन्द्र को प्यार करती है और उसी से विवाह करेगी, घटना की गति रुक सी रही थी। इस कथोपकथन के बिना उस अवरुद्ध गति को खोलना कठिन था। इस तरह कथानक के विस्तार के लिये कथोपकथनो का उपयोग निराला ने खूब ही किया।

कहानी की भाषा का निर्धारण उसके पात्रो द्वारा प्रयुक्त भाषा से होता है। लेखकीय उक्ति की भाषा को कहानी की भाषा नही माना जा सकता। कुशल कथाकार अपनी कृति मे पात्र भाषा और निजी भाषा को पृथक-पृथक रखता है। जयशकर प्रसाद ने अपनी कहानियो और उपन्यासों मे इस सूझ का परिचय नही दिया है। निराला इस कौशल से अवगत है और इस दृष्टि से कही भी शिथिलता नही देखी जाती है।

देश काल परिस्थिति

निराला की कहानियो मे स्थानीय रग का प्रायः अभाव दीखता है। केवल एक स्थान पर (लिली मे संकलित 'प्रेमिका परिचय' शीर्षक कहानी मे) लखनवी फैसन का वर्णन आया है। पर काल-तत्व निराला की कहानियो मे प्रचुरता से उपलब्ध होते है। सामयिक समस्याओ के प्रति निराला इतने सजग है कि जहां प्रसंग नही मिला, वहा भी वे अभीष्ट तत्कालीन समस्या की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करने से बाज नही आये हैं। 'सखी' शीर्षक कहानी मे सखियो के वार्तालाप मे छायावाद का उल्लेख है—

'बात क्या है', अनजान की तरह देखते हुये लीला ने पूछा।

पूरा रहस्यवाद उर्फ छायावाद। निर्मला ने कहा "वाद-विवाद मे देर हो रही है। प्रकाशवाद यह है कि इनके पास मिस्टर श्यामलाल आई० सी० एस० का पत्र आया है कि आप मंजूर करें आपको अपना सर्वस्य तीन हजार मासिक-प्रेम का परमनेण्ट शिक्षा के लिये देकर मिस्ट्रेस बनने की प्रार्थना करता हूँ। अब तो आया समझ मे ?"

इस उद्धरण मे छायावाद की अस्पष्टता पर व्यग्य किया गया है। तथाकथित छायावादी कविताएँ जब प्रकाश मे आने लगी थी तो उसकी अस्पष्टता को पाठको, परम्परा को एक व्यंग्यपूर्ण नाम दे दिया गया—छायावाद। 'छायावाद' नाम के इस व्यग्य-बोध छायावाद के साथ साथ प्रगतिवाद को भी उन्होने आड़े हाथो लिया है और कहा है कि उसने साहित्यिकता को विकर्त किया है—

अपनी कन्या का, जिन्हे हम शास्त्रिणी जी लिखते हैं, नाम उन्होने सुपर्णा रखा है। गांव

को जीभ मे इसका यह रूप नहीं रह सका, प्राग्रेसिव राइटस की साहित्यिकता की तरह 'पन्ना' बन गया है।

निराला का अभिप्राय यह है कि 'सुवर्णा' शब्द की जीभ मे विकृत होकर 'पन्ना' हो गयी उसी तरह साहित्य को प्राग्रेसिव राइटस ने हाथ पडकर विकृत हो गया।

द्रष्टव्य है कि अपनी कहानियो मे निराला समसामयिक साहित्यिक गतिविधि के प्रति अत्यन्त सजग है, किन्तु अन्य गतिविधियो से वे बिलकुल उदासीन भी नहीं हैं। भारतीय पराधीनता और स्वतन्त्रता सग्राम का उल्लेख उन्होने कई स्थानो पर किया है। 'चतुरी चमार' और 'श्रीमती गजानन शास्त्रिणी' मे राष्ट्रीय आन्दोलन की झाकी मिलती है। 'कला की रूपरेखा' मे भारतीयों के प्रति अग्रेजो के घृणा भाव की ओर सकेत किया गया है। 'कमला' मे हिन्दू मुस्लिम दगे का वर्णन आया है।

निराला ने अपनी कहानियो मे पीठिका निर्माण की कुशलता का परिचय दिया है। अधिकाश कहानिया किसी प्रकृति चित्र अथवा किसी विचार के विश्लेषण की पृष्ठभूमि पर सुस्थित है। इस कथाकार का विवेचन पीछे एक अन्य प्रसग मे हो चुका है। निराला की विशेषता यह है कि उन्होने कहानी के बीच बीच मे भी ऐसे चित्र जडे हैं। ऐसे चित्र कहानी के अन्तगत नये परिच्छेद के आरम्भ मे आते हैं। कहानी के भीतर स्थित प्रत्येक परिच्छेद अपनी सीमा मे एक प्रकार की पूर्णता और सौन्दर्य लिये हुए रहता है। अत किसी चित्र की पृष्ठभूमि पर उसको खडा करने मे वही कला है जो सम्पूर्ण कहानी के आरम्भ मे किसी चित्र का देने मे है।

भाषा शैली

भाषा के सम्बन्ध मे निराला अतिवादी नही है। अवसर के अनुकूल उन्होने सभी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है। उनकी कहानियो की भाषा के दो रूप देखे जाते हैं—सस्कृत तत्सममयी भाषा और अरबी फारसी के तत्सम शब्दो से भरी हुई भाषा।

आदर्श-प्रेरित कहानियो की भाषा सस्कृत तत्सममयी है। भाषा और अरबी फारसी के तत्सम शब्दों से भरी हुई भाषा।

आदर्श-प्रेरित कहानियो की भाषा सस्कृत तत्सममयी है। 'लिली सग्रह' की कहानियो की भाषा इसी प्रकार की है। 'हिरनी' शीर्षक कहानी के आरम्भ मे इस प्रकार की भाषा का चरम रूप देखा जाता है—

"कृष्णा की बाढ बह चुकी है, सुतीक्ष्ण, रक्त लिप्त, अदृश्य दाता का लाल जिह्वा, योजना तक, क्रूर भीषण मुख फैलाकर प्राण सुरा पीती हुई मृत्यु ताण्डव कर रही है। सहस्रा गृह-शून्य, क्षुधा विनष्ट नि स्व, जीवित ककाल साक्षात प्रेतो से इधर उधर घूम रहे है। आर्तनाद, चीत्कार करुणानुरोधों मे सेनापति अकाल की पुन पुन शख ध्वनि हो रही है। इसी समय सजीवन शान्ति की प्रभा सी एक निर्वास बालिका दायमना दो दात्रा के बीच खडी हुई चिदबर को देख पडी।"

"वर-कन्या के लिये प० सत्यनारायण जी ने एक सेकण्ड क्लास कम्पार्टमेन्ट पहले से रिजर्व्ड करा रखा था, लोगों के लिये इण्टर क्लास अलग।"

"तुम लोग कमजोर हो। किस्मत का कायनी हो। मैं होती तो चपत का जवाब दूने वस

की चपत कस कर देती—उन्ही की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती ऊपर से न्यौता भेजती कि आइउ, जनावमन् मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइये।"

तात्पर्य यह है कि निराला शुद्धतावादी नही है। अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से उन्हे कोई परहेज नही है, बल्कि विदेशी भाषा के शब्दो का प्रयोग जब निराला करते हैं तो उसके प्रचलित विकर्त रूपों को छोडकर तत्समरूपो को ही ग्रहण करते हैं। 'ताज्जुब' 'ताल्लुकेदार' जैसे शब्द हिन्दी में प्रचलित हो गये हैं, पर निराला ने इनके लिये अपनी कहानियो मे सर्वत्र 'तअज्जुब' और 'तअल्लुकेदार' जैसे मूल रूपो का ही प्रयोग किया है।

दूसरे प्रकार की भाषा 'चतुरी चमार' जैसी ठोस यथार्थवादी कहानियों मे देखी जाती है। इसका कारण कदाचित यह है कि यथार्थवादी कहानियो मे व्यग्य के लिये सस्कृत तत्सम शब्द उपयुक्त साधन नही है। 'चतुरी चमार' का आरम्भ ही इस प्रकार की भाषा से हुआ है—

'चतुरी चमार' डाकखाना चमियानी, मौजा गढाकाला जिला उन्नाव का एक कदीमी वाशिंदा है। मेरे नही, मेरे पिता जी के, बल्कि उनके भी पूर्वजो के मकान के पिछवाडे कुछ फासले पर, जहाँ से होकर, कई और मकानो के नीचे और ऊपर वाले पनालो का, बरसात, और दिन-रात का, शुद्ध-शुद्ध जल बहता है, ढाल से कुछ ऊँचे एक बगल चतुरी चमार का पुश्तैनी मकान है।

जिस तरह पीछे हमने देखा है कि सस्कृत तत्सममयी भाषा के मध्य निराला विदेशी शब्दों को बैठाने मे नही हिचकते, उसी प्रकार प्रस्तुत उद्धरण मे यह द्रष्टव्य है कि अरबी फारसीमयी भाषा के बीच भी वे संस्कृत तत्सम शब्दों को स्थान देने मे कोई सकोच नहीं करते। सब मिलाकर कहा जायगा कि निराला की प्रवृत्ति सस्कृत तत्सम शब्दो की ओर है जिसमे विदेशी भाषा के मूल शब्दो और पूरे-पूरे वाक्यो का भी सकारण प्रयोग है।

उद्देश्य

निराला की कहानियाँ उनके सम्पूर्ण क्रान्तिकारी विचारो और कार्य-कलापों की वाहिका है। जीवन मे उन्होने जो क्रान्ति की, उसे उनकी कहानियो मे ही देखी जा सकती है। उनकी कहानियो मे समाज को जितना नही देखा जा सकता है, उतना उनको देखा जाता है। कहानियो के ढांचे मे उन्होने व्यक्तिगत अनुभवो को ठूंस-ठूंस कर भर दिया है।

'लिली' सग्रह मे 'अर्थ' और 'प्रेमिका-परिचय' को छोडकर सभी कहानियो की आधार-शिला कोई न कोई सामाजिक समभ है। इनमे से 'पद्मा और लिली' तथा 'कमला' इन दो कहानियो को छोड़कर शेष कहानियां ठोस यथार्थ की भूमि पर खडी है। इन कहानियो का परिवेश यद्यपि सामाजिक है, तथापि इनकी परिणति समाधान नायक-नायिका आजन्म अविवाहित रह कर करते हैं। कमला सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी अपने भाई-बन्धुओ द्वारा द्वेषवश प्रचारित मिथ्यापवादो के कारण अपने विवेकहीन पति द्वारा परित्यक्त है। वह बिना किसी शिकवा शिकायत के, पति को जीतने का बिना कोई प्रयास किये, अपना जीवन बिताती है और हिन्दू-मुस्लिम दंगे मे अपने पतिदेव की बहन के मुसलमानो द्वारा अपहृत कर लेने के बाद उसका विवाह असम्भव होने पर अपने भाई से उसका विवाह कर महान उदारता का परिचय देती है। ज्योतिर्मयी और 'श्यामा' मे क्रमशः विधवा-विवाह और अन्तर्जातीय (अस्पृश्य) विवाह की समस्या करने का प्रयत्न करती है। जिस पुरुष को वह अपना हृदय समर्पित करती है, वह दब्बू निकलता है और ज्योतिर्मयी के सारे गुणो को

स्वीकार करने के बावजूद वह मात्र इसलिए उसे नहीं अपना पाता है कि ज्योतिर्मयी विधवा है। वीरेंद्र नामक एक उत्साही एवं उदारमाना मित्र युवक के प्रयास से अन्त में दोनों का परिणाम हो जाता है। श्यामा लोध जाति की एक विधवा युवती है जिससे बंकिम नाम का ब्राह्मण युवक विवाह करता है। 'परिवर्तन' और 'हिरनी' में जमीदारों के अत्याचार की झाकी दिखायी गयी है।

'चतुरी चमार' संग्रह की कहानियों में 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' 'सफलता' तथा 'भक्त और भगवान' ये तीन कहानियाँ किसी न किसी प्रकार निराला के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हैं। 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' में निराला ने अपने संघर्षशील जीवन की कहानी कही है। महिषादल राज्य की सेवा को त्याग कर चले जाने के बाद निराला को जीविका के लिये जो संघर्ष करना पड़ा था, उसी के वर्णन से कहानी का आरम्भ होता है। इस संघर्ष में ही उनका साहित्यिक संघर्ष भी वर्णित है। 'सफलता' शीर्षक कहानी में भी नरेंद्र की जीवनकथा के माध्यम से निराला ने अपने ही साहित्यिक संघर्ष की कहानी कही है। अन्तर यही है कि नरेंद्र तो अपनी सफलता का रहस्य पा गया था, पर निराला न पा सके। तत्कालीन सस्ती साहित्यिक प्रवृत्ति पर गहरा व्यंग्य निराला ने इस कहानी में किया है। 'भक्त और भगवान' में निराला ने अपनी साहित्यिक और वैयक्तिक जीवनी पर प्रकाश डाला है।

इस संग्रह की शेष कहानियाँ भी समाज की अनेक समस्याओं को सामने लाती हैं। 'चतुरी चमार' जमीदारों का अत्याचार, अस्पृश्यता, राष्ट्रीय आन्दोलन, निरक्षरता आदि अनेकानेक समस्याओं पर प्रकाश डालता है। 'सखी' में प्रेम और विवाह की समस्या तो है ही, इस ओर भी संकेत है कि नारियाँ इतनी अबला होती हैं कि पुरुषों की कुदृष्टि से बचने के लिये भी उन्हें किसी पुरुष की ही अपेक्षा होती है। 'न्याय' में यह दिखाया गया है कि भारतीय पुलिस रक्षक के बदले भक्षक हो रही है। 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' में जमींदारों का अत्याचार वर्णित है। जो निरीह हैं, जो अन्याय का प्रतिकार करने की कौन कहे, उसके विरुद्ध अपना मुँह भी खोलते हैं, समाज वैसे व्यक्ति पर दया न कर उसका सब तरह से शोषण करता है। 'देवी' की पगली शोषित, उपेक्षित और उत्पीडित की सबसे बड़ी प्रतिनिधि है।

'सुकुल की बीवी' संग्रह की चारों कहानियाँ सामाजिक यथार्थ का उद्घोष करती हैं। 'सुकुल की बीवी' का प्रतिपाद्य सामाजिक संकीर्णता के कारण विवाह में बाधा है। समाज नारी का रूप-गुण नहीं, गोत्र देखता है, पर यह गोत्रत्व कितना मिथ्या है, निराला अपने जीवन में दिखाते रहे हैं और यहाँ भी दिखाया है। 'श्रीमती गजानन शास्त्रिणी' आधुनिक युग की राजनीतिक नेत्रियों पर सटीक बैठने वाली कहानी है। अनुचित पथ पर चलकर महान् बन जाने वाला सत्पथ पर चलकर छोटा रह जाने वाले को गलत समझता है। श्रीमती गजानन शास्त्रिणी ऐसी ही देवी हैं। 'श्रीमती गजानन शास्त्रिणी' आधुनिक युग की राजनीति पर बहुत बड़ा व्यंग्य है। 'कला की रूपरेखा' में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर व्यंग्य है। उसके अधिवेशन में स्वयं सेवक का काम करने वाले व्यक्ति को जाड़े से बचने के लिये चादर और पैर की रक्षा के लिये चप्पल की भिक्षा मांगनी पड़ती है तथा लखनऊ से अपने घर मद्रास लौटने के लिये उसके पास पैसे नहीं हैं। जब निराला उससे पूछते हैं कि क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी-सी मदद नहीं कर सकते, तब वह बड़े भोलेपन

से कहता है—नहीं, कांग्रेस का यह नियम नहीं है। मैं मिला था। मुझे यह उत्तर मिला है। उसका इन तीन वाक्यों में कांग्रेस का सारा खोखलापन अनावृत हो गया है। 'क्या देखा' में रहस्य-पूर्ण ढंग से वेश्या समस्या को उपस्थित किया गया है। 'जानकी' एक मनोवैज्ञानिक समस्या को उपस्थित करती है। इसमें यह दिखाया गया है कि अपरिचित रहने पर जो अत्यन्त मोहक लगता है, उसकी चारित्रिक विशेषताएँ ज्ञात होने पर उसकी मोहकता नष्ट हो जाती है। व्यक्ति का पहला प्रभाव रूप का पड़ता है, पर वह अस्थायी होता है। 'दो दाने' में निराला पुनः व्यक्ति से समाज पर आ गये हैं और बंगाल के अकाल के समय जीने के लिये शरीर बेचने वाली नारी की कहानी कही गयी है।

निष्कर्षतः, निराला की कहानियों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—सामाजिक, वैयक्तिक और मनोवैज्ञानिक। निराला की विशिष्टता माध्यम वर्ग की कहानियों में है। अप्रकट रूप में कथाकार अपनी कथा-कृतियों में अपने कथा को रखा करता है, निराला ने अप्रकट रखने की कोई आवश्यकता नहीं समझी है। इन कहानियों में निराला ने अपने को इतना प्रकट कर दिया है कि वे कहानियाँ आत्मचरित-सी प्रतीत होती है।

स्वीकार करने के बावजूद वह मात्र इसलिए उसे नही अपना पाता है कि ज्योतिमयी विधवा है। वीरेन्द्र नामक एक उत्साही एव उदारमाना मित्र युवक के प्रयास से अन्त मे दोनों का परिणाम हो जाता है। स्यामा लोध जाति की एक विधवा युवती है जिससे बकिम नाम का ब्राह्मण युवक विवाह करता है। 'परिवतन' और 'हिरनी' मे जमीदारो के अत्याचार की भाकी दिखायी गयी है।

'चतुरी चमार' सग्रह की कहानियो मे 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' 'सफलता' तथा 'भक्त और भगवान' ये तीन कहानियाँ किसी न किसी प्रकार निराला के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हैं। 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' मे निराला ने अपने सघषशील जीवन की कहानी कही है। महिषादल राज्य की सेवा को त्याग कर चल जाने के बाद निराला को जीविका के लिये जो सघष करना पडा था, उसी के वरान से कहानी का आरम्भ होता है। इस सघष म ही उनका साहित्यिक सघष भी वर्णित है। 'सफलता' शीषक कहानी मे भी नरेन्द्र की जीवनकथा के माध्यम से निराला ने अपने ही साहित्यिक सघष की कहानी कही है। अन्तर यही है कि नरेन्द्र तो अपनी सफलता का रहस्य पा गया था, पर निराला न पा सके। तत्कालीन सस्ती साहित्यिक प्रवृत्ति पर गहरा व्यग्य निराला ने इस कहानी मे किया है। 'भक्त और भगवान' मे निराला ने अपनी साहित्यिक और वैयक्तिक जीवनी पर प्रकाश डाला है।

इस सग्रह की शेष कहानियाँ भी समाज की अनेक समस्याओ को सामने लाती हैं। 'चतुरी चमार' जमींदारो का अत्याचार, अस्पृश्यता, राष्ट्रीय आन्दोलन, निरक्षरता आदि अनेकानेक समस्याओं पर प्रकाश डालता है। 'सखी' म प्रेम और विवाह की समस्या तो है ही, इस ओर भी सकेत है कि नारियाँ इतनी अबला होती है कि पुरुषो की कुदृष्टि से बचने के लिये भी उन्हे किसी पुरुष की ही अपेक्षा होती है। 'न्याय' मे यह दिखाया गया है कि भारतीय पुलिस रक्षक के बदले भक्षक हो रही है। 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' म जमीन्दारो का अत्याचार वर्णित है। जो निरीह है, जो अन्याय का प्रतिकार करने की कौन कहे, उसके विरुद्ध अपना मुँह भी खोलते हैं, समाज वैसे व्यक्ति पर दया न कर उसका सब तरह से शोषण करता है। 'देवी' की पगली शोषित, उपेक्षित और उत्पीडित की सबसे बडी प्रतिनिधि है।

'सुकुल की बीवी' सग्रह की चारों कहानियाँ सामाजिक यथाथ का उद्घोष करती है। 'सुकुल की बीवी' का प्रतिपाद्य सामाजिक सकीर्णता के कारण विवाह मे बाधा है। समाज नारी का रूप-गुण नही, गात्र देखता है, पर यह गोत्रत्व कितना मिथ्या है, निराला अपने जीवन म दिखाते रहे हैं और यहाँ भी दिखाया है। 'श्रीमती गजानन शास्त्रिणी' आधुनिक युग की राजनीतिक नेत्रियों पर सटीक बठन वाली कहानी है। अनुचित पथ पर चलकर महान् बन जाने वाला सत्पथ पर चलकर छोटा रह जाने वाले को गलत समभता है। श्रीमती गजानन शास्त्रिणी एसी ही देवी हैं। 'श्रीमती गजानन शास्त्रिणी' आधुनिक युग की राजनीति पर बहुत बडा व्यग्य है। 'कला की रूपरेखा' में भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस पर व्यग्य है। उसके अधिवेशन म स्वय सेवक का काय करने वाले व्यक्ति को जाडे से बचने के लिये चादर और पैर की रक्षा के लिये चप्पल की भिक्षा मागनी पडती है तथा लखनऊ से अपने घर मद्रास लौटने के लिये उसके पास पैसे नहीं हैं। जब निराला उससे पूछते हैं कि क्या काग्रेस के लोग आपकी इतनी-सी मदद नहीं कर सकते, तब वह बडे भोलेपन

से कहता है—नही, कांग्रेस का यह नियम नही है। मैं मिला था। मुझे यह उत्तर मिला है। उसका इन तीन वाक्यो में कांग्रेस का सारा खोखलापन अनावृत हो गया है। 'क्या देखा' मे रहस्य-पूर्ण ढंग से वेस्या समस्या को उपस्यित किया गया है। 'जानकी' एक मनोवैज्ञानिक समस्या को उपस्थित करती है। इसमें यह दिखाया गया है कि अपरिचित रहने पर जो अत्यन्त मोहक लगता है, उसकी चारित्रिक विशेषताएँ ज्ञात होने पर उसकी मोहकता नष्ट हो जाती है। व्यक्ति का पहला प्रभाव रूप का पडता है, पर वह अस्थायी होता है। 'दो दाने' मे निराला पुनः व्यक्ति से समाज पर आ गये हैं और बंगाल के अकाल के समय जीने के लिये शरीर बेचने वाली नारी की कहानी कही गयी है।

निष्कर्षतः, निराला की कहानियों को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है—सामाजिक, वैयक्तिक और मनोवैज्ञानिक। निराला की विशिष्टता माध्यम वर्ग की कहानियो में है। अप्रकट रूप मे कथाकार अपनी कथा-कृतियो मे अपने कथा को रखा करता है, निराला ने अप्रकट रखने की कोई आवश्यकता नही समझी है। इन कहानयों मे निराला ने अपने को इतना प्रकट कर दिया है कि वे कहानियाँ आत्मचरित-सी प्रतीत होती हैं।

रेखा-चित्रकार निराला

श्री प्रभाकर श्रोत्रिय

रेखा चित्र का अभिनव गद्य विधा है। साहित्यकार की चित्रकार बनने की अदम्य भावना ने इसे जन्म दिया है। जैसे चित्रकार कुछ उभरी और कुछ हल्की रेखाओं के संयोग से किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का रूपांकन करता है, ठीक वैसे ही रेखा चित्रकार शब्दों के सहारे उन्हें मूर्तिमत करता है। कुछ समीक्षक इसमें रंगों के भरे जाने की बात कहते हैं जो उचित नहीं है। रेखा चित्र की सार्थकता तो रेखाओं के द्वारा आकार उपस्थित करने में ही है। हाँ, उन्हीं सीमित रेखाओं के माध्यम से अधिकाधिक भाव व्यक्त करना लेखक की कला-प्रवीणता है। अतः मूर्तिमत्ता इस कला की पहली विशेषता है। यहां मूर्तिमत्ता का आशय स्थूलता अथवा स्थिरता न होकर मूर्त विधान-मात्र से है।

इसकी दूसरी विशेषता है यथार्थ चित्रण। आधुनिक समग्र गद्यविधाएं इस बात में रेखा चित्र से समता रखती हैं, क्योंकि यथार्थ की ठोस एवं कठोर अभिव्यक्ति के लिये गद्य का जन्म हुआ है। फिर भी इस उद्देश्य की पूर्ण सार्थकता रेखा चित्र में उपलब्ध होती है। यही एक ऐसी अकेली विधा है जिसमें कल्पना का किंचित स्पर्श भी सौन्दर्य के विपरीत अर्थ देती है, जब कि अन्य विधाओं में उसका कुछ न कुछ अंश श्रीवद्धन में सहायता करता है। अतः अकल्पित यथार्थ की सबसे अधिक सुन्दर अभिव्यक्तिमयी मूक कला ही रेखाचित्र है। यहां प्रेरणा, सृजन और लक्ष्य, तीनों सम्पृक्त रहते हैं। इसलिये देश, काल और पात्र सम्बन्धी किंचित अनौचित्य इसमें अक्षम्य है।

व्यंग्य इसकी एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है, अन्यथा चित्र उपस्थित करना तो काव्य का प्रसिद्ध गुण है ही यह और बात है कि वह रंगीन होता है। तीर की अनी की तरह इसके व्यंग्य चुभने वाले होते हैं। इसीलिये भाषा की सामर्थ्य इसका एक मात्र आधार है।

उपन्यास और कहानी के लिये जो गत्यात्मकता आवश्यक मानी जाती है, वह रेखा चित्र के लिये नहीं। कुशल कलाकार गत्यात्मक पदार्थों का भी चित्रित कर सकता है। अतः रेखा-चित्र जैसी उन्मुक्त कला में स्थिरता अथवा गतिशीलता का इतिवृत्तात्मकता। ग्रहण अथवा बहिष्कार का आग्रह हमारे मत में अनावश्यक है।

चित्रकला में यथार्थ उभरता है, उसकी प्रेरणा भी यथार्थ से ही मिलती है। 'स्केच' किसी-किसी अवस्था व्यक्ति या वस्तु का नहीं खींचा जाता। प्रेरणा का सम्बन्ध हृदय की भावात्मक वृत्ति से है। अतः भावना जहाँ अनुकूलता पाती है, अथवा सार्थकता पाती है वहीं से प्रेरणा ग्रहण करती है। अतः रचयिता का व्यक्तित्व भी रेखाओं में उभर कर आता है। यही

केवल वस्तु-चित्रण नही होता, भाव-चित्रण भी होता है ..रंगों के माध्यम से नही, रेखाओं के माध्यम से।

रेखा-चित्रकार की दृष्टि कैमरे के लेंस की भांति सीमित परन्तु सूक्ष्म और पैनी होती है। वह दृष्टरूपी लेंस की परिधि मे जाने वाले अर्थात् दृष्य-स्वरूप का ही सूक्ष्म अंकन करता है, अदृश्य का नही, क्योंकि अदृश्य के अकन मे कल्पना की आवश्यकता होती है जो रेखा-चित्र के क्षेत्र से सर्वथा निष्कासित है। फोटोग्राफ की तरह उसमे लम्बाई और चौडाई होती है, मोटाई नही—अर्थात् यह चित्र-कला है, मूर्त्तिकला। स्थूल नही, या स्थूलता का अभाव इन रेखाओ से—चित्र ही तरह . अवश्य हो जाता है।

'सीमित दृष्टि' व्यक्ति-चित्रण के क्षेत्र मे रेखा-चित्र को जीवनी से पृथक् करती है और 'फोटोग्राफिकता' कहानी और उपन्यास से। कुछ कहने-सुनने के लिए पात्रो की सृष्टि आवश्यक नही, लेखक ही बहुत काफी है—यह वृत्ति रेखाचित्र को नाटक नही बनने देती, वह तो 'पाठको के हृदय-मंच पर खेला जाने वाला नाटक ही की होती है।'

वैसे सभी विधाएँ रेखा-चित्र मे आशिक रूप से संगमित रहती है—काव्य की रसात्मकता, निबंध की भावुकता, नाटक की अभिनेयता, कहानी की संक्षिप्तता, जीवन-चरित की जागरूकता, सस्मरण की विश्वसनीयता, उपन्यास की जिज्ञासा आदि के संयाग से जो आकार उपस्थित होता है—वही तो रेखा-चित्र है। इसलिए स्वयं लेखकीय प्रतिभा और व्यक्तित्व मे भी इसी प्रकार की त्रिविधता का संगम अपेक्षित है। 'निराला', हिन्दी मे, इस दृष्टि से रेखा-चित्र-निर्माण के एकान्त अधिकारी थे।

इस विधा की परिधि क्या हो...यह विवाद का विषय है। हमारे मत मे चित्र की परिधिकर्त्ता की बाहों से अधिक नही हो सकती। इसलिये सीमा निश्चित करना ठीक नही है। लम्बी कहानी की तरह विधा भी विस्तृत हो सकती है। परन्तु उपन्यास की सीमा छूने से इसकी मुक्ति अमर्यादित होकर अपना ही वैशिष्ट्य खो देगी।

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का रेखाचित्र 'बिल्लेसुर बकरिहा' एक कहानी की भाँति है। उसमे इतिवृत्तात्मकता भी है, परन्तु अपने अकल्पित यथार्थ तीक्ष्ण व्यंग्य, लेखक की अत्यधिक वैयक्तिकता, देश-काल का सचेत अकन, भाषा की अकृत्रिमता तथा रूपाकन के कारण यह एक रेखा-चित्र ही है।

सारी पुस्तक पढने पर बिल्लेसुर का जो चित्र उभरता है, वह है कि बिल्लेसुर कठिनाइयो और संघर्षो का अभ्यस्त एक ऐसा सतर्क व्यक्ति है जो अपनी निर्भीकता और अरसिकता के कारण न तो कभी किसी से परास्त होता है और न कठिनाइयो मे निराश ही। अर्थ ही उसके लिये धर्म है, वही काम्य है और वही मोक्ष है। सक्षेप मे, उसका जीवन अर्थ की धुरी पर घूमने वाला चक्र है। इसी के लिए यह बर्दवान जाकर सत्तीदीन 'सुकुल' की भैंस चुराने और चिट्ठियां बाँटने से लेकर गाँव मे खेती करने और बकरी चराने तक के विभिन्न कार्य करता है। अपनी सतर्कता के कारण वह सर्वत्र सफल होता है। यदि उसके आसपास का वातावरण इतना दूषित न होता कि वह ऐसा करने के लिये बाध्य हो, तो संभवतः उसकी ये वृत्तियाँ निन्दनीय होती। परन्तु दुनियाँ ने ही उसे ऐसा बना दिया कि वह सबको सदेह की दृष्टि से देखने का अभ्यस्त हो गया

'दूध का जला छाछ भी फूक फूंक कर पीता है'—वाली उक्ति उसके जीवन मे घटित हो गई। विवाह के सम्बन्ध मे त्रिलोचन ने जो धोखेबाजी की उसी ने बिल्लेसुर को विवश किया कि मन्नो की सौत की बात भी खूब जांच ले और सहज ही विश्वास न करे। इसी प्रसग मे उसके कुशल सामारिक होने का पता लगता है।

वह अपने रास्ते आता और अपने ही रास्ते जाता है। उसने कभी किसी का बुरा न किया, न सोचा, लेकिन कही भी अपनी हानि नही होने दी। त्रिलोचन के सब 'पासे' बेकार कर दिए—बैल बिल्लेसुर ने खरीदे नही, विवाह के मामले म सच्चाई का भेद लगाकर आया था, सो भी खाली हाथ लौटा दिया।

उसका चरित्र नारियो के सम्बन्ध म दुबल नही है। जगन्नाथ जी के दशन करने के साल भर बाद भी जब सत्तादीन सुकुल की बीवो के बच्चा नही हुआ तो वह देवता पर कुपित हुई और दिव्य शक्ति को छोडकर मनुष्य शक्ति की पक्षपातिनी बन गई। यह मनुष्य शक्ति बिल्लेसुर था। उसे यह जानकर ग्लानि हुई और वहाँ से भाग खडा हुआ। इस स्थिति का लाभ न उठाकर उसने अपने चरित्र की दृढता प्रमाणित की है।

प्रतिशोध लेने के उसका अपना अलग ढग है गाँव वाले दिल का गुबार बिल्लेसुर को 'बकरिहा' कहकर निकालने लगे, जवाब मे बिल्लेसुर बकरी के बच्चो के वही नाम रखने लगे जो गाँव वालों के नाम थे।

धम जैसा पहले कहा गया है उसके लिए अर्थ-पूर्ति का साधन है सास को खिलाने के लिए बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे। भोजन करके उठते वक्त हाथ म ले लेते थे जहा धम ने साधन बनने स इन्कार किया वही उसने उसे महावीर जी के सिर की तरह तोड़कर छिटका दिया।

बिल्लेसुर के परम्परागत सस्कारों और उसके स्वभावगत् औचित्य को प्रकट करने के लिए पृष्ठिभूमि म उसके तीन भाइयो—मन्नी, ललई और दुलारे, सत्तीदीन सुकुल, उसकी पत्नी, त्रिलोचन, मन्नी की सास, गगादीन तथा गाँव वालों के आंशिक चित्र खीचे गए हैं। सकट के समय कोई द्वार झांकता नहीं और जब ब्याह के समय प्राप्ति की आशा होती है तो ये हाल है—"नाई रोज तेल लगाने और बाल बनाने को पूछने लगा। कहार एक रोज आकर अपने आप दो घडे पानी भर गया। बाह्मना बत्ती बनाने के लिए रुई की चार पिंडियां दे गया। चमार आकर पूछ गया कि ब्याह के जोड़े नरी के बनाए या मामूली। चौकीदार पासी रोज आधी रात का हाँक लगाता हुआ समझा जाने लगा कि पूरी रखवाली कर रहा है। गगावासी एक दिन दो जोड़े जनऊ दे गया। एक भट्टजी आए और सीता-स्वयबर के कुछ कविता भूषण की अमृत वाणी सुना गए। गर्ज यह है कि इस समय कोई नहीं चूका।" 'स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती' का कितना सुन्दर उदाहरण है।

निराला जी का बहुत-सा समय गावो म बीता था, अत ग्रामीण जीवन का उन्हे सूक्ष्म अध्ययन था। यही कारण है कि ग्राम-चित्रण म कहा असगति नहीं आने पाई है। आचार, विचार, व्यवहार, भाषा सभी म ग्रामीणता मुखर है। इतिवृत्तात्मकता भी रेखांकन की सहायक बन गई है आरम्भ स अन्त तक बिल्लेसुर का चरित्र एकसमान अपना स्थिर है।

अन्विति यहा वहुत अधिक है—वातावरण, व्यक्ति, घटनाएँ, भावा, सभो शक्ति भर मूल चित्र को उभारते है। दीनानाथ के द्वारा जब दीनानाथ 'वकरे' को हत्या कर दी जाती है तब विल्लेसुर की मनःस्थिति का चित्रण करने के लिए कितने अनुकूल वातावरण का सृजन किया गया है—'सूरज डूब गया। विल्लेसुर की आंखो में शाम की उदासी छा गई। दिशाएं हवा के साथ साँय-साय करने लगी। नाला वहा जा रहा था, जैसे मौत का पैगाम हो। लोग खेत जोत कर धीरे-धीरे घर लौट रहे थे जैसे घर की दाढ के नीचे दवकर पिस मरने के लिए। चिडिया चहक रही थी, अपने अपने घोंसले की डाल पर वैठी हुई, रो-रोकर साफ कह रही थी, रात में घोसले मे जगली विल्ले से हमे कौन वचायेगा? थोडे मे शब्दो और सकेतो से सारा वातावरण उपस्थित और चित्रित कर देने का कौशल लेखक मे अत्यधिक है—सत्तोदीन की स्त्री ने किये उपकार की निगाह विल्लेसुर को देखा। विल्लेसुर खुराक और चार-पाच का महीना सोचकर अपने दीनत्व को दवा रहे थे। इतने से आगे वहुत कुछ करेंगे, सोचते हुए, उन्होंने सत्तोदीन की स्त्री से हामी की आख मिलाई। जमादार गम्भीर भाव से उठाकर हाथ-मुँह धोने लगे।' लेखक अभीष्ट अर्थ और वाछित लक्ष्य को उभारने मे समस्त उपकरण जुटाने की सामर्थ रखते हैं। कला का नियम भी यही है कि प्रत्येक उपकरण मूल लक्ष्य को उठाए, अपना ही राग न अलापे। इस दृष्टि से 'विल्लेसुर वकरिहा' सफल रेखा चित्र है जब कि लेखक का दूसरा रेखा-चित्र 'कुल्लीभाट' असफल। वहाँ लेखक का व्यक्तित्व विलकुल अलग हो गया है, कही-कही वही प्रधान भी हो गया है। वस्तुतः लेखक का व्यक्तित्व कुल्लीभाट की रेखाओ मे ही उतरता तो 'कुल्लीभाट' इस कृति से श्रेष्ठ होता, क्योकि जिनसे तीक्ष्ण और वेधक व्यग्य उसमे है, इसमे नही। 'विल्लेसुर वकरिहा' के व्यंग्य केवल छूते है .'कुल्ली भाट' के व्यग्य की भाँति वेधते नही। लेकिन 'विल्लेसुर वकरिहा' मे लेखक कही सामने नही आये। उनका व्यक्तित्व विल्लेसुर के माध्यम से ही व्यक्त हुआ। विल्लेसुर का आचार उसकी श्रमशीलता, अतिथि सत्कार, वाक्पटुता, चातुर्य, धार्मिकता, संघर्षशीलता, समाज के प्रति उपेक्षा, प्रतिशोध और यहा तक कि उसका घर-द्वार, वेश-भूषा सभी मे निराला जी की तथा स्थिति का वोध होता है। हाँ, उनके विश्वविश्रुत औदार्य कवित्व के प्रगट होने का स्थान विल्लेसुर का चरित्र नही था।

विल्लेसुर जब वन-ठन कर विवाह की चर्चा के लिए निकलते है तो लगता है—जैसे निराला अपनी स्वर्ण-जयन्ती मे जा रहे हो, जब गाँव वाले विल्लेसुर को पानी वन्द करने की धमकी देते है और वह उसकी दाम्भिक उपेक्षा करता है तो लगता है कि निराला के शब्दों मे ही जैसे उसका व्यक्तित्व कह रहा हो—मैं पानी पाँडे थोडे ही हूँ, जो ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे सबको पानी पिलाता फिरूँ। चतुरी चमार पृ० १२। विल्लेसुर का, सास के सामने अगरासन रखना कुछ वैसी ही औपचारिकता है जैसी पं० पथवारी दीन की पत्नी को यज्ञ कराने के लिये निराला जी का पडित वन जाना। इस प्रकार यहां लेखक का व्यक्तित्व पृथक् नही रहा और न उसने मूल व्यक्तित्व पर अमर वेल वन कर रहने का ही अकलात्मक कार्य किया! कही कोई कल्पना नही की गई। सर्वत्र शुद्ध यर्थार्थ प्रकट हुआ है। अतः 'विल्लेसुर वकरिहा' सब दृष्टियो से एक सफल रेखा-चित्र है।

आकार की दृष्टि से 'कुल्ली भाट' निराला के रेखाचित्रो मे सबसे वड़ा है। परन्तु लेखक के पृथक संस्मरण उसमे से हटा दिये जाय तो विल्लेसुर वकरिहा ही सबसे वडा रेखा-चित्र ठहरता है।

कुल्ली भाट लेखक के श्रद्धेय प० पथवारीदीन भट्ट हैं। असवर्द्धित सत्य ने इस चरित्र को बडा मार्मिक बना दिया है। मनुष्य हृदय की विकसनशील सनातन वृत्ति का सुन्दर दिग्दर्शन यहाँ होता है। रेखा चित्रकार को कलाकार की तरह ऐसा ही चरित्र अथवा वातावरण चित्रित करना चाहिये जो कला को सार्थकता दे, भावो को उद्दीप्त कर सके, क्योंकि चरित्र का चयन ही इस कला मे प्रथम आवश्यक बात है। दूसरी विधाओ म लेखक कल्पना के माध्यम स कला क लक्ष्य को पूर्ण कर लेता है, परन्तु कल्पना विहीन कृति 'चयन' बडा आवश्यक है। इस दृष्टि स लेखक का यह कथन बडा ही सार्थक है—बहुत दिनो की इच्छा एक जीवन चरित्र लिखूँ, अभी तक पूरी नही हुई, चरित्र नायक नहीं मिल रहा था। नायक क योग्य गुण पाकर उन्होन प० भट्ट की जीवनी लिखी। यह जीवनी इसलिय नही है कि इसम ब्योरेवार जीवन चरित्र नही है। आरम्भ म दिये गये कमरे के लैंस का उदाहरण यहाँ चरितार्थ होता है। त्वरित गाला, रेखांकन क योग्य भाषा और उपयुक्त वातावरण की सृष्टि द्वारा पृष्ठभूमि का अकन आदि इस रेखा चित्र के निकट ला खडा करत हैं।

'कुल्लीभाट'—लखक की ससुराल डलमऊ म रहत थे, वही लेखक की उनसे प्रथम भेंट एक इक्के के मालिक के रूप म हुई। पहली दृष्टि म ही लेखक को वे एक 'मचलती सभ्यता के लखनवी युवक' दिखाई पडे। सारा गाँव कुल्ली के चरित्र को शका की दृष्टि से देखता था। ससुराल म भी 'कुल्ली के इक्के पर आना' एक गम्भीर घटना के रूप म लिया गया। हमेशा कठिनाइयो म रुचि लेने वाले युवक लेखक। सासजी के मना करने पर भी कुल्ली के साथ किला देखने गये। चन्द्रिका नौकर जो साथ था, उसे रुह लने के बहाने टरका दिया। कुल्ली का यह प्रथम परिचय लखक को बडा आकर्षक लगा। दूसरे दिन कुल्ली के घर का मिठाई खान का निमन्त्रण स्वीकार करके समय पर पहुँचे। सुन्दर गलीचा बिछे पलग पर लेखक को बिठाया गया, मिठाई खिलाई गई। इत्र दिया गया। फिर लेखक ने देखा कि "कुल्ली का चेहरा सहसा विकृत हो गया। कुल्ली अधीरता से एक दफे उचके और फिर वही रह गये। फिर भरसक प्रेमभरी दृष्टि से देख कर कहा दरवाजा बन्द करता हूँ।" भोले लखक न सोचा इसको कोई रोग है। पूछा—"क्या डाक्टर को बुलाऊँ?" कुल्ली ने कहा—"ओह तुम बडे निठुर हो।" लेखक की समझ मे नही आया कि इसमे निठुरता की क्या बात है। फिर कुल्ली एकाएक उचके, अबकं भरसक जोर लगा कर यह कहते हुए—"मैं जबरदस्ती " लेखक का हँसी आ गई। कुल्ली ने स्पष्ट किया—"मैं तुमसे प्यार करता हू।" लेखक को आश्चय हुआ कि यह कहने की क्या आवश्यकता है। बडी सहजता से बोले—"मैं भी तुम्हें प्यार करता हू।" अनुकूल उत्तर पाकर 'प्यार की रस्म' के लिये आह्वान करते हुये कुल्ली बाहे फैला कर बोले—"तो आओ " अब भी लेखक के कुछ पल्ले नही पडा, बोले—"आया तो हूँ।" कुल्ली घुट कर रह गय, नासमझी पर खेद व्यजक आश्चय भरे निराश स्वरों मे उन्ह पूछना पडा—"तो क्या और कहो भी नहीं " इन अजीबोगरीब हरकतो और प्रश्नो ने लेखक को झुंझलाहट से भर दिया। वे झल्लाकर चल आय। फिर जब तक वहाँ रहे, भेंट न हुई। शायद फिर मय समझ गए हो।

दूसरी बार कुल्ली 'सम्वेदना' क स्वरूप बनकर लेखक स मिले। डलमऊ म गगा के निकट, अवधूत टीले पर लखक की पत्नी, बच्चे तथा परिजनो की मृत्यु पर शोक प्रकट करने आये थे।

ही ऐसी बन्दूक माई की जान पड़ा कि एक क्षण भी नहीं ठहर सकूँगा। हिम्मत करके खड़ा रहा। विद्या और अविद्या का आधा आधा भाग कुल्ली की देह में पूर्ण रूप से प्रकाशित था। कुल्ली लगन को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्हीं के शब्दों में उन्होंने अपने जीवन की व्याख्या कर दी—यह हाल है। वही बन्दूक मिलती होगी लेकिन इधर न मिलेगी। लेकिन ऊपर से नहीं पड़ने दे रहा। मुझे इसका रूप देख पड़ता है। हृदय के ऊपर बहुत अच्छा हूँ। महात्मा के सेवक ने दौड़-धूप की। लखनऊ कांग्रेस के प्रेसीडेंट के यहाँ गए, वे पैरों मरते जाते रहे थे। बात—'वैसे नहीं है।' बड़ी मुश्किल से साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से सवार ने गाड़ी रोक लिए। कुल्ली को नगर के अस्पताल में ले जाया गया, लेकिन बचे नहीं, प्रयाण कर गए। उनकी मुसलमानिन को हवन कराने के लिए सब पंडितों ने मना कर दिया। तब नायक 'निराला' को सबसे पहले—पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी बनना पड़ा। हवन करवाया।

सचमुच रेखाचित्रकार ने बड़ी ही निर्बेजोड़ पात्र का चयन किया है। मानव चरित्र के ऊर्ध्वमुखी विकास का यह वास्तविक चित्र अपनी प्रभावशीलता में अप्रतिभ है। राजनीति और धर्म के ठेकेदारों पर कठोरतम प्रहार किए गए हैं। समाज के सच्चे सेवक सहन—मरते हैं, और ढोंगी लोग सुख को भोग लेते हैं, पक्के मकान बनवाते हैं। मृत्यु के समय कुल्ली की देह में अपने ही जीवन की व्याख्या दूध और पानी की तरह अद्भुत प्रतीकात्मक है।

रेखाचित्र के अनुकूल भाषा सधी हुई व चुस्त है। निरर्थक शब्दों का बहिष्कार किया गया है। कहीं भी अनौचित्य नहीं आ पाया। भाषा की चुस्ती का एक उदाहरण लीजिये - प्रथम बार जब लेखक लखनऊ में पहुँचे तब कुल्ली का क्या स्वरूप था, इसका चित्रण उसकी तड़क भड़क के अनुरूप शब्दावली में किया गया है—चल। गेट पर टिकिट कलक्टर के पास एक आदमी खड़ा था। बना चुना, बिलकुल लखनऊ ठाठ, जिसे बंगाली देखते ही गुण्डा कहेगा। तेल से जुल्फें तर जैसे अमीनाबाद से सिर पर मालिश कराकर गया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीली सिर के दाहिने किनारे रक्खी। रंगी मूँछें। दाढ़ी बनाई। चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्केट। हाथ में बेंत। काली मखमलिया किनार की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई। पैरों में मेरठी जूते। उम्र पच्चीस के साथ दो साल इधर-उधर। देखने पर अंदाजा लगाना मुश्किल है कि हिन्दू है या मुसलमान। सांवला रंग, मजे का डील डौल साधारण सी निगाह में तगड़ा और लम्बा। एक शब्द भी निरर्थक नहीं है। रेखाचित्र में अपेक्षित भाषा का आदर्श स्वरूप यहाँ दिखाई देता है। कोई चित्रकार चाहे तो इस आधार पर कुल्ली का वास्तविक चित्र बना सकता है। ग्रामीण जीवन का यथार्थ स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। तीखे और चुभने वाले व्यंग्य मानव जीवन और भारत की तत्कालीन राजनीतिक अस्वस्थ स्थिति पर किए हैं। लेखक के चरित्र सम्बन्धी असम्बद्ध स्थलों को हटा देने पर 'कुल्लीभाट' निस्संदेह सुन्दर रेखा चित्र बन जाता है।

'चतुरी चमार' निराला जी के अनुसार कहानी-संग्रह है। आधिक्य के अनुसार नामकरण की दृष्टि से यह ठीक भी है। परन्तु इसमें दो रेखा चित्र आ गए हैं–१—चतुरी चमार २—देवी। दोनों रेखा चित्र सारे संग्रह में अपनी विशेषता के कारण अलग से पहचाने जा सकते हैं। दोनों चरित्रों के अंकन में लेखक का व्यक्तित्व तन्मयता के साथ समाविष्ट हुआ है। दोनों ही अपनी अपनी स्थितियों के द्वारा अपने समाज पर तीव्र व्यंग्य है। दोनों का चरित्र अगतिशील है। एक ग्राम्य जीवन से चुना

गया है, अन्य नगर-जीवन से। कटुयथार्थ दोनों चित्रों की विशेषता है। भाषा लेखक की वही चिर-परिचित है। संवादों में कहीं कलाबाजी नहीं है।

'चतुरी चमार' एक निम्न श्रेणी का चरित्र नायक है जो निराला के अब तक के रेखाचित्रों में अनजान है। वर्ग भेद के बीच पनपने वाले निरीह, मूक उज्ज्वल-चरित्र श्रमिक का प्रतीक है। जाति का चमार जिसे परंपरा से ब्राह्मण के घर के पिछवाड़े जरा दूर पर उस स्थान पर रहने का 'अधिकार' मिला है। जहां गाव भर के पनालों का जल मिलता है सारी स्थिति इसी से स्पष्ट है वर्ग-भेद का यह विषम डंक सारे हिन्दुस्तान के ग्रामों को डसे हुए है।

अपनी कला से चतुरी होशियार है। उसके एक जोडी जूते जंगल की ऊबड-खाबड धरती पर भी दो हजार कोस चलने का काम दे सकते हैं।

सन्त-साहित्य का वह 'पडित चतुर्वेदी' आदि से कहीं अधिक मर्मज्ञ है। उसका हृदय इतना उदार है कि इस ज्ञान कोष को जो चाहे निःशुल्क पा सकता है। लेखक का पडोसी है—इसलिये लेखक उससे परिचित है। लेखक ने उसके सुपुत्र 'अर्जुनवा' को पढाने का कार्य लिया है। उसके बदले चतुरी को बाजार से उनके लिये मास लाना और माह मे दो बार चक्की का आटा पिसवाने का काम देना पड़ता है।

पासंगिक रूप से यहाँ लेखक ने ग्राम के दिनो मे अपने चिरंजीव के आने का उल्लेख भी किया है। आप अर्जुनवा के काका लगते है, यद्यपि उमर मे काफी छोटे हैं—यह आपका परम्परागत अधिकार जो है। लेखक ने अपने सुपुत्र को प्राचीन परम्परागत ब्राह्मण अथवा उच्चवर्ग के रूप मे चित्रित किया है। कहीं-कहीं उसने अपने सस्मरण भी दे डाले है, परन्तु वे 'कुल्ली भाट' मे दिये गये सस्मरणो की भांति पृथक और अनुपयुक्त नही लगते। उसमे परिवर्तनशील युग में प्रबुद्ध वर्ग के भीतर की उदार भावना और प्राचीन रूढियो को तोडने के लिये उद्यत होने की प्रवृत्ति दीख पडती है।

एक बार चतुरी ने लेखक से शिकायत की —"काका" जमीदार के सिपाही को एक जोडा हर साल देना पड़ता है। एक जोडा भगतवा देता है, एक पंचमवा। जब मेरा हो जोडा दो साल चलता है तब ज्यादा लेकर कोई चमडे की बर्बादी क्यो करे?" कह कर डबडबाई आंखो से देखकर जुडे हाथो से सेवई-सी बटने लगा। लेखक ने आई हंसी को मुश्किल से रोका, कहा—"चतुरी वाजिब-उल-अर्ज' मे पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हे जूते देते रहने पड़ेंगे। चतुरी सोचकर मुस्कराया, बोला—'अब्दुल-अर्ज' मे दर्ज होगा, क्यो काका? लेखक ने स्वीकृति दी। चतुरी अवसर की ताक मे था।

गाँव मे भी देश व्यापी क्रान्ति की लहर आई। जमीदारो के शोषण चक्र चले। चतुरी भी पिसा और उस पर मुकदमा दायर किया गया। सब कुछ बिक गया, आखिरी दम तक लड़ता रहा। गाँव वालो ने भी मदद स हाथ खीच लिये। पर हारा नही, झुका नही। एक दिन अदालत से लौट कर हँसते हुए असहाय चतुरी ने लेखक से कहा—"काका! जूता और पुर वाली बात अब्दुल-खर्ज मे दर्ज नही है।" नैतिकता ही एक मात्र ऐसा मत्र है जिसे सुरक्षित समझकर भारतीय कृषक और श्रमिक अब तक सन्तुष्ट हैं, जी रहे हैं। शोषक वर्ग की नैतिक पराजय और अपनी नैतिक विजय से चतुरी को जितना गर्व, सन्तोष और जितनी प्रसन्नता हुई—उतनी सम्भवतः मुकदमा जीत

कर भी न होती। साथ ही उसे यह सन्तोष भी हुआ कि मैं तो भले ही पिसा—आने वाली पीढियाँ तो नहीं पिसेंगी।

कहानी म स्थानीयता खूब निखरी है। इसम देश के सक्रान्तिकालीन ग्राम्य जीवन का चित्र है। किस प्रकार एक वग-भेद को मिटाने को आतुर है—लेखक न अपना चित्र इसी सन्दभ मे दिया है—दूसरा रूढियो की जडे जमाने म यस्त है—लेखक के चिरजीव का चित्र खीचने का यही हेतु है श्रमिक और कृपक गणो म आत्म विश्वास उत्पन्न हो रहा है। यह उनके सदियो के अधकार के बाद प्रकाश का स्वर्णिम चरण हैं, आवश्यक प्रसगो को उभारा गया है। वस्तु चित्रण के साथ लेखकीय भावों का श्रेष्ठ सुदर सयोग है। भाषा म यत्र-यत्र कुछ दोष आ गये हैं। फिर भी 'चतुरी चमार' एक सफल रेखा-चित्र है।

उपयुक्त तीनो रेखाचित्रो के माध्यम स तीन विभिन्न प्रकार की समस्याए चित्रित की गई है। तीनो विशिष्ठ व्यक्ति अपने वग का प्रतिनिधित्व करते है। 'चतुरी चमार' की प्रेरणा मे नीच पात्रो को साहित्य म नायकत्व पर प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति प्रधान थी। उसी लडी मे 'देवी' एक और कडी जोडती हैं। इसका चित्रण प्रगतिशील साहित्य की पराकाष्ठा है। सारी दुनिया जिसे पगली और गूगी कहती है—हमारे लेखक की दृष्टि म वह 'देवी' है। अपनी मूकता और विचित्र चेष्टाओ स वह समाज और राजनीति पर तीव्रतम यग्य करती है। पव विवेचित तीनो चित्र ग्राम जीवन म गृहीत हैं। 'देवी' नगर जीवन स चुनी हुई चरित-नायिका है। इसके द्वारा एक साथ जितने मार्मिक व्यग्य किए गय हैं उनकी सानी मे निराला के 'कुल्ली भाट' के अतिरिक्त दूसरे रेखा चित्रो को नही रखा जा सकता।

लेखक भावनात्मक प्राणी है, और लोगो की भाति वह 'पगली' को बाहरी आँखो से ही नही, हृदय की आखो स देखता है। इसीलिए वह उसके स्याह चेहरे के भीतर स निकलती हुई, 'बडी तेज भावना' को देख सका है। वह पगली की भाषा समझता है, इसका कारण यह है कि वह उसे पगली नहीं, देवी—सत्यामिका समझता है जो समाज के आडम्बरपूर्ण आवरण के भीतर का सत्य को देख लेती है और अपनी मूक भाषा म अथवा कभी हसकर अपने मन की बात प्रगट कर देती है। [illegible] ही उसकी [illegible] है। इसीलिए स्वय पगली के व्यक्तित्व का [illegible] कर [illegible] हैं और इतना मार्मिक, [illegible] साहित्य को दे गए है।

देवी का [illegible] और [illegible] म भी वहा समझते है। वह सावनी थी, दुनिया की [illegible] का लुभाने वाला उसम कुछ नही था। दूसरे लोग उसकी [illegible] की ओर [illegible] कर सकते थे, पर मेरी आँखो म [illegible] वह [illegible] देख पडा, जिसे मैं कल्पना म [illegible] साहित्य म लिखता हूँ [illegible] नहीं, [illegible] थी। [illegible] की भाषा के साथ [illegible] का अभिप्राय भी [illegible] का [illegible]। [illegible] एक बच्चा भी था, [illegible] का। उसम [illegible] का [illegible] दिखाई दिया। [illegible] का कवि [illegible] है—'देश म [illegible] [illegible] है। [illegible] का क्या होगा? [illegible] भी [illegible] है। [illegible] देश की सहानुभूति का [illegible] है! हमारी ही [illegible] की [illegible] हुई [illegible] जाती थी। [illegible] हमारा [illegible] का चित्र है। [illegible] के मन म यही [illegible] हमारे [illegible]

सडक पर चौराहे पर शिक्षा दे रही है—'यह मा अपने बच्चे को लेकर बैठी हुई धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज, जिस विषय को भी मनुष्यो ने आज तक अपनाया है, उसी की भिन्न रुचिवाले पथिक को शिक्षा दे रही है।' इसी आधार पर लेखक ने पगली के इर्द-गिर्द उसकी हँसी और मूक सकेतो के माध्यम से धर्म, राजनीति आदि के जघन्य पक्षो पर आघात किये हैं।

एक दिन नेता जी का जुलूस जा रहा था, भीड के लोग जय जयकार कर रहे थे। पगली मुँह फैलाकर भौहे सिकोडकर आखो की पूरी ताकत से देख रही थी—समझना चाहती थी, वह क्या है। भीड ने पगली के बच्चे को कुचल दिया। पगली ने बच्चे को उठाया, धूल झाडी अग्नि नेत्रो से भीड को देखती रही। नेता जी जनता से दस हजार की थैली लेकर जरूरी जनहित के कार्यो मे खर्च करने के लिए चल दिये। यहा राजनीति पर व्यग्य किया गया है कि जिनका हित प्रधान है, वे तो कुचल दिये जाते है और जो कुछ गौण है उसे प्रधान बना दिया जाता है। पगली जैसे निरीह स्त्री की उसके अर्द्धनग्न बच्चे की सहायता से बढ कर किस सहायता की कल्पना की जा सकती है।

धर्म केवल बाह्य प्रदर्शन मात्र रह गया है। रामायण की कथा सुनकर आये व्यक्ति पगली पर टीका-टिप्पणी करते हुए चले जाते हैं। किसी से सक्रिय सहायता करने की नही बनती। यदि यही भावना है तो तुलसी कृत रामायण पढने-सुनने का क्या अर्थ है?

पलटन भी दम्भ से जमीन को कुचलती हुई 'प्रदर्शन' करके चली गई। सिपाही जितनी ही जोर से पैरो को उठाते, उतनी ही अधिक जोर से पगली हस देती थी। उसका हँसना कितना सार्थक था कि वे रक्षक भी उन गुण्डो से पगली को नही बचा पाये जो बेचारी के दिन भर इकट्ठे किये पैसो को रात को छीन ले जाते थे। रक्षको ने भी केवल दम्भी प्रदर्शन के अतिरिक्त किया ही क्या। निस्सहाय मनुष्य की न धर्म सहायता करता है, न राजनीति, न पलटन।

एक दिन लेखक के एक मित्र ने मजाक-मजाक मे सकेत से पगली से दो रुपये मागे और व्याज देने का आश्वासन दिया। पगली खिलखिला कर हँसी और कमर से तीन पैसे निकाल कर निःसकोच देने लगी। पगली ने जो कुछ हँस कर कहा, वह अनेक मुख से भी कदाचित ही कहा जा सके। जो कुछ उस क्षुद्रा ने किया, शायद ही कुबेर कर सके। समाज ने उसके पास छोडा ही क्या? हँसी वह सम्भवतः इसीलिये थी और उसके पास जो कुछ भी था, सर्वस्व दे दिया। उसकी चेष्टाएँ उच्चकोटि के दार्शनिक से मिलती-जुलती थी।

एक बार उसकी अनुपस्थिति मे उसका बच्चा गिर गया। लेखक ने उठा लिया। मित्र ने कहा—"अरे, यह गन्दा रहता है।" मानवीय सहानुभूति अवश्य ही इस व्यग्य से कराह उठेगी।

प्रकृति भी इस निरीह, मूक, असहाय मानवी के प्रति निर्दय हो उठी। निरन्तर गर्मी की तेज लू, बरसात की मार और शीत का प्रकोप सहते-सहते पगली बहुत अशक्त हो गई। चल फिर भी नही सकती थी। अस्पताल ले जाया गया। जिस स्वयसेवक ने उसको तागे पर चढने मे मदद की थी, उसकी टांग मे मोटर की टक्कर से चोट लग गई। साधहीनो, दीनो की सहायता करने

वाले की टाँग भी यह व्यवसायिक दुनिया तोड़ देती है। पगलों का बच्चा अनाथालय में भर्ती कर दिया गया—शायद उसके लिए यही विश्वविद्यालय था।

शायद ही देवी से श्रेष्ठ रेखा चित्र हिन्दी में लिखा गया हो। निराला जी के रेखाचित्रों में भी यह निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ है। उच्चकोटि के चुभने वाले व्यंग्य, निर्दोष भाषा, सहज शैली—चित्रात्मक शब्द जड़े हुए, सभी दृष्टियों से यह सुन्दर बन पड़ा है। बिल्लेसुर बकरिहा के बाद इसी में लेखक का व्यक्तित्व सबसे अधिक उभरा है।

निराला के सभी रेखाचित्रों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका व्यक्तित्व चरित्र-नायक की रेखाओं में उभर आता है। इसके अतिरिक्त चित्रमयी भाषा, तीक्ष्ण व्यंग्य और कल्पनाविहीन या शुद्ध यथार्थ उनकी अन्य विशेषताएँ हैं।

आत्मचरित और संस्मरण लेखक निराला

डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित

'निराला' जी का साहित्य उनके वैयक्तिक आत्मस्पर्श से अनुस्यूत है। लेखक ने अपने जीवन के परिपार्श्व मे रखकर विविध व्यक्तियों और घटनाओं की परीक्षा की है। कुल्लीभाट-प्रमुखरूप से एक चरितोपन्यास अथवा एक व्यक्तित्व का रेखाकन है, किन्तु यथावस उसके बीच का लेखक का व्यक्तित्व अधिक भास्वर हुआ है। प्राय: आत्मसस्मरणों के सामने बाह्य इतिवृत्त शिथिल हो गए है और निरायास लेखक का 'आत्म' प्रतिविम्बित हो उठा है। निराला जी के कथा साहित्य में उनका युग-विद्रोही स्वरूप प्रकट हुआ है। उन्होने आत्मसाक्ष्य देकर सर्वत्र युग-विश्वासो पर मार्मिक प्रहार किया है; यथा—चाय पीने का लत है, मैं अण्डे खाता हूँ, वत्तख के नही मुर्गी के!" एक मित्र ने जिन्होंने एक वेश्या को पत्नी के रूप मे रख कर सामाजिक श्रेय प्राप्त किया है—बड़े भगवद्भक्त है, मुझे मछली पकवाकर खिलाई।"[1] इन उक्तियों में आत्मस्वीकारोक्ति तो है ही किन्तु मूलतः युग प्रतारणा और जर्जर व्यवस्था के विद्रोह का कर्कश स्वर है। इस सन्दर्भ मे लेखक का साहस विस्मयकारक है—"मेरा मुसलमान दूकानदार आदर की दृष्टि से मुझे देखकर अण्डे फोडने चला। अण्डे उबले हुए रखे थे।"[2] एक मुसलमान सज्जन उत्सुकतावश लेखक का 'इस्मशरीफ' दौलतखाना और रोजगार के सम्बन्ध मे पूछताछ करने लगते है, जिसके प्रत्युत्तर मे निराला जी की प्रत्युत्पन्नमति और उनकी व्यावहारिक विचित्रता (निरालापन) का परिचय मिलता है।' इस्मशरीफ को लेकर लेखक को एक पुरानी घटना याद आती है, जब इसके द्विविधाग्रस्त अर्थ को लेकर उसने अपना 'इस्म-शरीफ' बताया था—'मेदनीदल'; जो व्यक्ति का भी नाम हो सकता है और स्थान का भी। इस बार उसे मुसलमानी नाम याद नही आ रहे है, महम्मद-महम्मद की रट लगी है। साथ ही बंकिम चन्द्र के प्रमुख नायक का नाम स्मरण नही हो रहा है, निरुत्तर होना उचित न था, अतः व्याज रूप से आश्वासन दिया जा रहा है—"मैं विराट रूप से मुँह चलाए जा रहा था, सिर हिलाता हुआ उन्हें आश्वासन दे रहा था...मियाँ का धैर्य छूट गया। मेरी पागुर बन्द नही हो रही थी।"[3] किसी प्रकार 'वकूफहुसेन' नाम निकला और सुपरिचित चकित हुए। अपने वाग्जाल मे दूसरो को फासकर विमूढीकृत करने से कदाचित कुतूहल विमिश्रित आनन्द अथवा पीड़क तोष प्राप्त होता

---

१. कला की रूपरेखा —सुकुल की बीबी पृष्ठ सख्या ६१
२. वही " " ६३
३. वही " " ६५

है। मिया को इस प्रकार के मनगढ़न्त उत्तर देता हुआ लेखक स्वविषयक छद्म सूचनाओं से दिङ मूढ कर रहा है, यथा—कम मेहनत के लिए वह पजाबी कारोबार करता है, लखनऊ में रेशम का व्यापार है जिसका आयात स्वीटजरलैण्ड से किया जाता है। मियाँ ने स्वीटजरलैण्ड का नाम सम्भवत पहली बार सुना था, अत चुप रह जाते हैं।

इसी प्रकार 'सुकुल की बीबी' मे उल्लेखनीय आत्म संस्मरण है। बाल्यसखा और सहपाठी 'सुकुल' को दीर्घ अन्तराल के पश्चात् देखकर लेखक अतीत की बिखरी स्मृतियों को समेटने लगता है। सुकुल के व्यक्तित्व पर स्मृत्यालोक के सहारे लेखक सहसा दृष्टि निक्षेप कर जाता है और सभी चित्र की रेखाएँ उभरने लगती हैं। 'सुकुल' सर कट जाए पर चोटी न कटे' मत के समर्थक हैं। वे इस देहात्मबोध की प्राय अध्यात्मवादी व्याख्या करते, रुष्ट होने पर चाणक्य जैसी भयकर प्रतिज्ञा करते। उनकी शिखा विस्तार के साथ शिक्षा विस्तार होता रहा, फलत उच्च शिक्षा पाकर परीक्षाएं देते हुए परीक्षक नियुक्त हुए हैं, दूसरी ओर लेखक के समक्ष "विशाल परीक्षा भूमि सामने प्रश्नो की अगणित तरग माला"[6] है। प्रवेशिका परीक्षा और तद्विषयक प्रमाद की विचित्र गतिविधि अनध्यवसायी प्रवृत्ति और अल्हड़ता का सकेत देता हुआ लेखक बड़े रोचक संस्मरण प्रस्तुत करता है—"मैं प्रकृति की शोभा का निरीक्षण करता हुआ कवि बन चला था सहपाठी इस बात का लोहा मानते वश मर्यादा की रक्षा के लिए विवाह सम्पन्न हो चुका था। परीक्षा के निकट आने पर प्रकृति म कही कविता न रह गई, अभिभावकों का भय, स्नेह की वर्षा मे अविराम बिजली की कड़क, पत्नी के वक्रिम दृगो का वैमनस्य हलाहल क्षिप्त होने लगा। कल्पना मे पृथ्वी अन्तरिक्ष पार करने लगा वैसी उडान आजतक नही उडा, वह मसाला ही नही मिला।"[5]

प्रवेशिका परीक्षा म 'गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तो से सरस करके' वह अपने निर्लेपन का परिचय देता है—'परीक्षा तट से लौटते वक्त सभी तो रिक्त हस्त लौटे, मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया और यथावसर उसका उपयोग किया।'[1] परिणाम घोषित होने से कुछ पूर्व वह जमींदारों की बारात मे सम्मिलित होने का सुन्दर बहाना बनाकर, यथेष्ट धन और वस्त्र प्राप्त कर ससुराल की ओर प्रयाण करता है और वहाँ भी बड़े नाटकीय रूप से मुहर्रमी सूरत बनाकर एक कल्पित दुर्घटना की सूचना देता है। सारे सम्बन्धी शोक विह्वल हो जाते है, तदुपरांत भरसक आर्थिक सहायता देते हैं। पुष्कल धन पाकर लेखक कलकत्ता रवाना होता है और वहाँ एक नये जीवन का समारम्भ होता है। सुकुल के साक्षात् के व्याज से इन पूर्वस्मृतियो को निराला जी ने सुचारु रूप मे सयोजित किया है और अन्त मे सुकुल का छद्म सम्बन्धी बनकर उनकी प्रणयिनी पुष्कर कुमारी (पुखराज) से विवाह संस्कार सम्पन्न कराने का क्षिप्र सकेत भी दिया है।

'देवी' कहानी के अन्तर्गत निराला जी ने इसी प्रकार के स्फुट आत्म-संस्मरण प्रस्तुत किये हैं। उनका कवि "मकड़े की तरह शब्दो का जाल बुनता हुआ, मक्खियाँ मारता हुआ," लखनऊ

---

४ सुकुल की बीबी पृष्ठ सख्या १७
५ वही " १४
६ सुकुल की बीबी " २३

होटल में उन उन दिनों प्रवास कर रहा है और चक्रव्यूह की तैयारी करके फाकेमस्ती में परियों का ख्वाब देखता रहा है। आर्थिक स्थिति अव्यवस्थित होने के कारण दैनिक साधनो तथा आवश्यकताओं की विशेष अपूर्ति है। उसकी दृष्टि एक पगली पर अकस्मात् पड़ जाती है और वह वास्तविक आत्मप्रतीति तथा सच्ची सहानुभूति प्रकट करता है। उन दिनो लम्बे बाल होने के कारण निराला जी को लोग 'मिस फैशन' कह कर मजाक बनाते—"मैं स्वयं दूसरो की समझ की खूराक पाने के लिये बाल न कटवाता..., सोचता हूँ, आवाज कसने वालो पर एक हाथ रखूं तो छठी का दूध याद आ जाये।"[1] पल्टन के सिपाही जब उसके नंगे बदन को देखकर उपहास करते है, तो उसकी गर्वोक्ति है—"मेरे ग्रीक कट, पाँच फुट साढ़े ग्यारह इच लम्बे जरूरत से ज्यादा चौड़े और चढ़े मोढो के कसरती बदन को देखकर किसी को आतंक न हुआ।"[2] इस उक्ति से निराला जी का देहात्मबोध, दैहिक दम्भ और उनके कुठित अहम् का हेतु प्रकट होता है। सवेदना के क्षणो मे लेखक जीवन और जगत की कटु स्थितियों को चित्रों मे उतार देता है। होटल मालिको का भृत्यो के प्रति कलुषित व्यवहार, समाज के अभिजात वर्ग द्वारा इन लघु मानवो की उपेक्षा और प्रत्येक को उसके भोग्य भाग्य पर छोड़ देने की धिक्कृत चेष्टा पर मार्मिक आघात किया गया है। वस्तुतः निराला जी के युग-विद्रोह के यही विष कारण हैं। वर्ग भेद, आर्थिक विशेषमता और सवर्णियो का कपटाचरण उसकी जुगुप्सा का केन्द्र है। सामाजिक स्थिति की विषम भावना प्रायः प्रदर्शन का स्वाग रचकर आत्म भावनाओं का संगोपन करती है। स्वयं 'वनिता-विनोद', रतिशास्त्र' और 'काम कल्याण' को मस्क करते हुए बीवी के हाथ मे 'सीता' और 'सावित्री' आदि देकर बगल मे 'चौरासी आसन' दबा लेते हैं और बड़प्पन की बू निकालते है। साम्य मात्र वाग्जाल है—'ब्रह्मर्षि एवं राजर्षि बनते रहे हैं किन्तु शूद्रर्षि और वैश्यर्षि की मान्यता आज तक प्रतिफलित नही हुई है।'[3] इन कथनो में जो व्यग्र व्यंग्य और विद्रूप है वही लेखक के 'निरालेपन' का नियामक है। निराला जी के संस्मरणो में इस प्रकार की आत्मस्वीकारोक्ति प्रायः उपलब्ध हो जाती है। जिनके आधार पर हम उनके जीवन दर्शन और अन्तर्मानस का प्रामाणिक परिचय प्रत्यक्ष कर सकते है। संस्मरणो मे तथोक्त सारी घटनाएँ आत्मभुक्त अनुभूतियो की रेखांकन है। लेखक का यह कथात्मक आत्मचरित वैचारिकता और प्रभावोत्पादकता से ओतप्रोत है। निराला जी की कृतियो में इस प्रकार के सूत्र कथन प्रायः अनेक सदर्भों में अन्तर्घटित हुए हैं। इनका सम्यक् उद्घाटन करके अनेक रहस्यो का अन्वेषण किया जा सकता है। निराला जी के औद्धत्य और उनकी विक्षिप्ति का कारण इन आत्म संस्मरणो मे प्रकट है। निश्चय ही ये परम प्रामाणिक आत्म साक्ष्य है जिनके परिप्रेक्ष्य मे उनके सारे साहित्य को परखकर समुचित न्याय किया जा सकता है।

'चतुरी चमार' मे लेखक एक निरीह व्यक्तित्व की प्राण-प्रतिष्ठा करता है और अपने विधुर जीवन तथा अन्तर्बाह्य संघर्ष का रेखाकन भी। चतुरी अदम्य साहस और अटूट संकल्प का दृढ व्रती व्यक्ति है जो सामन्तवादी नौकरसाही के विरुद्ध संघर्ष करता है और अन्ततः सफल होता है। विश्रांति

---

१. देवी पृष्ठ २
२. वही " ६
३. " " ८

के क्षणो मे वह कबीर की 'उलटवासियो' की 'गिरह सीधी करता' है और लेखक की स्वर्गीया पत्नी की प्रशसा करता हुआ सवेदना प्रकट करता है। इसी सदभ म निराला जी ग्राम्य समाज की कुछ विचित्र घटनाओ का सकेत देते हैं और साथ ही अपनी साहित्यिक गतिविधि का भी—"साहित्य की तरह समाज मे भी दूर-दूर तक मेरी तारीफ फैल चुकी थी।"[1] समसामयिक स्वदेशी आदोलन में भी लेखक कुछ रुचि दिखाता है और गाव मे कांग्रेसी झण्डे की स्थापना, कृषकों की सहायता, दारोगा की तहकीकात और फिर अपनी अन्तिम विजय के सूक्ष्म सकेत स्पष्ट करता है। इन चित्रों में बैसवाडा लोक जीवन की आंचलिक रेखाएँ अत्यधिक भास्वर हुई हैं। उसने बडे व्याज से जातीय दम्भ से ग्रस्त 'कनवजियापन' का साहसपूर्ण भण्डाफोड किया है—"धतपकत मसालेदार मास की खुशबू से जिसकी भी लार टपकी, आप निमन्त्रित होने को पूछा।"

'क्या देखा' कहानी म इसी प्रकार का आत्मस्फुरण व्यक्तित्व का साम्य बनकर उपस्थित हुआ है। घटना यद्यपि कल्पित अधिक है और अनुभूत कम, तथापि वेश्या प्रेम विषयक विश्वास और सन्देह का द्वन्द्व बडा विश्वस्त है। छद्मवेष का रहस्य गोपन करके लेखक त्याग और सघष तथा तत्सम्बन्धी इतर प्रयासों का उल्लेख करता है—"कालिदास से लेकर अब तक जितने अच्छे कवि हुए, सब के लिये कहते हैं, जब साहित्य की बीमारी बढ़ी दवा एक यही रही–जिससे कुछ फायदा पहुँचा।"[3] घटना वैचित्र्य के कारण तथ्य की अपेक्षा यहाँ कल्पना अधिक प्रस्फुत हुई है और अतिरजना के अनुपात मे ये सस्मरण कहानी जैसे ज्ञात होते हैं, तथापि इसमे चित्रित लेखक का अन्तद्वन्द्व बडा सहज एव सजीव है।

निराला जी के आत्म-सस्मरण योजनाबद्ध रूप से 'कुल्ली भाट' म अकित हुए हैं। यह चरितोपन्यास वास्तविक अर्थो मे लेखक का स्वपरोक्षित रेखाचित्र है। अपने निकट सम्पर्क प्राप्त व्यक्तित्व का रेखाकन उसने परम मुक्त एव युगपत रूप से किया है। 'सोलहवां' पार कर वे पारिवारिक जीवन मे उतरते है। सास जी के आमन्त्रण पर 'गवही' लेने ससुराल पहुँचते हैं। गन्तव्य स्थान पर वह अपने चरितनायक का साक्षात्कार करता है और स्थूल रेखाचित्र प्रस्तुत करता है—"गेट पर टिकट कलेक्टर के पास एक आदमी खडा था, बना चुना, बिल्कुल लखनऊ ठाठ, जिसे बगाली देखते ही गुण्डा कहेगा। तेल से जुल्फे तर जसे अमीनाबाद स सिर पर मालिस कराकर आया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीली, सिर के दाहिने किनारे रखी। ऐंठी मूँछे, दाढी चिकनी। चिकन का कुर्ता, ऊपर वास्कट, हाथ मे बेंत। काली मखमली किनारी की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन स पहनी हुई। पैरो म मेरठी जूते। उम्र पचीस के साल दो साल इधर-उधर। देखने पर अन्दाजा लगाना मुश्किल है—हिन्दू या मुसलमान। सावला रग। मजे का डील-डौल। साधारण निगाह मे तगडा और लम्बा भी।[4] लेखक ने इस प्रथम दशन से

---

१ चतुरी चमार पृष्ठ ३१

२, वही " ३३

३ क्या देखा, सुकुल की बीवी पृ० ११६

४ कुल्लीभाट पृष्ठ २१

कुल्ली का जो स्वरूपांकन किया है वह वस्तुतः बडा विस्मयमूलक है। आश्चर्य तो यह है कि—"उसे एक बार देखकर दोबारा नही देखा, कारण वह मेरा आदर्श नही था, मुझसे दो इन्च छोटा था और वदन मे भी हल्का।"[१] कुल्ली के इक्के पर आने से सासु और पत्नी सभी आशंकित हो उठती है, इसलिए कुल्ली के प्रति लेखक जिज्ञासु हो उठता है और 'उसका साफ आसमान देखने को उत्सुक' हो जाता है। कुल्ली का वाह्य व्यवहार और शिष्टाचार प्रभावकारी है, उसके अनुरोध पर वह 'डलमऊ' के ऐतिहासिक स्थानो को देखने का कार्यक्रम निश्चित करता है। उसे विदित है कि 'कुल्ली नेक आदमी नही' है। उसके साथ रहने से भले ही अपनी 'वदनामी' हो पर उसकी 'नेकनामी' हो सकती है; इसलिये सम्बन्धियो द्वारा आपत्ति प्रकट करने पर उसका मन संकल्प और दृढ हो जाता है क्योकि—"मैं वचपन से आजादी पसन्द था। सदैव अवरोध के सीधे मार्ग पर चला हूँ। दवाव नही सह सकता था, खासतौर से वह दवाव जिसकी वजह न मिलती हो।"[२] प्रमाणार्थ वह दो संस्मरण उद्धृत कर देता है, प्रथम यवनी के घर भोजन करने पर पिता का फौजी प्रहार एव सामाजिक ताड़ना सहन करना। द्वितीय—योरोपियनो के कागज के स्थान पर वैगन के पत्तो से वाडी मे पाखाने की हाजत रफा करना और पुनः जल सतरण तथा प्रहार का ताप स्वीकार करना। भ्रमणकाल मे कुल्ली की आशिक मिजाजी, मानसिक उत्तेजना और ऐन्द्रिक मनोवृत्ति का आभास मिलता है। विश्राम के क्षणो मे कुल्ली के उद्गार हैं—"दोस्त क्या हवा चल रही है?" पुनः वे उदात्त स्वर मे कहते है—"दोस्त तुम्हारा चेहरा वतलाता है कि तुम गाते हो, कुछ सुनाओ वक्त की चीज।" गाने के साथ ये सिर हिलाते है, जिसका ताल से कोई सम्बन्ध न था। पान देते हुए वे सस्नेह अंगुलि-पीडन करते है और स्वयं उत्तेजना का आनन्द लेते है। उनकी रसिकता सहसा इस सीमा पर पहुंच जाती हैं—"पान भी क्या खूबसूरत बनाता है तुम्हे। तुम्हारे होठ भी गजब के हैं। पान की वारीक लकीर रचकर क्या कहूँ, शमशीर वन जाती है।"[३] इन मनोविकारो को लेखक ने सूक्ष्म अन्तरदृष्टि से ग्रहण किया है और बड़ी स्पष्टता, साहस तथा व्यक्तिगत ईमानदारी के साथ प्रकट किया है। यहाँ कुल्ली के चारित्रिक खोखलेपन का श्याम पक्ष है। दीर्घकाल के उपरान्त पुनर्मिलन होने पर कुल्ली का दूसरा श्वेत पक्ष उद्घाटित होता है। इस कालान्तर मे घटित लेखक की विपत्ति, जीवन संघर्ष, पत्नी और स्वजनो की मृत्यु, साहित्य साधना तथा अन्य सवेदनीय स्थितियो की मार्मिक सूचना मिलती है। कुल्ली का इतिवृत्त भी आमूल विखरा हुआ, असम्वद्ध और स्थूल है। मरघट की अन्यमनस्कता तथा अव्यवस्थित मनोदशा से खिन्न होकर कुल्ली कुछ खिच जाते है और इस बीच एक 'यवनी' से सम्बन्ध स्थापित करके 'नामर्द हिन्दुओ के सामने आदर्श' रखते हैं। पुनः अछूतोद्धार, स्वदेशी आन्दोलन, पाठशाला आदि सामाजिक सेवा के कार्यों मे प्रवृत्त हो जाते हैं। यह चरित नायक के जागरूक व्यक्तित्व का सक्रिय पक्ष है। क्रमशः उसका सुधारक और विरोधी पक्ष प्रकाश मे आता है—"सच्चा मनुष्य निकल आया, जिससे बडा मनुष्य नही

---

१. कुतली भाट पृष्ठ २१
२. " ३३
३. " ४८

होता ।"१ मनुष्यत्व रह रहकर विराम पा रहा है । अहर्निश कठोर कार्य करने से उनका स्वास्थ्य क्षीण हो जाता है और कुल्ली मृतप्राय हो जाते हैं, फिर भी 'मुख पर स्निग्ध कान्ति क्रीड़ा कर रही है ।' कुल्ली को जीवन रक्षा का कर्तव्य बोध भले ही उनके सहधर्मी राजनीतिज्ञों को न हुआ हो पर कुल्ली की अन्त्येष्टि जन साधारण की सहानुभूति के साथ सम्पन्न होती है । एकादशाह के लिये जब व्यावसायिक 'पुरोहित' जन विरोध के कारण तैयार नहीं होते तो लेखक ही मन्त्र पाठ द्वारा दिवगत आत्मा की शान्ति और विधवा पत्नी की शुद्धि का अनुष्ठान करता है ।

आलोच्य कृति में प्रधानत व्यक्ति चरित्र ही प्रतिपाद्य रहा है पर लेखक का आत्म-चरित्र भी यहां अत्यधिक मुक्त रूप में प्रकट हुआ है "और कदाचित अधिक विस्तार पर गया है ।"२ कुल्लीभाट वस्तुत रेखाचित्र युक्त जीवन चरित्र है अथवा चरितोपन्यास है । यहां मात्र रेखांकन ही नहीं है अपितु सम्पूर्ण जीवन की द्रुतशील घटनाएं भी सगठित की गई हैं । कुल्ली का चरित्र बड़े रगीन ताने बानों से निर्मित हुआ । उसमे नायकत्व प्रधान है । मानवोचित दुर्बलताओं और सब सताओं का सच्चा सवाहक है । वह महापुरुष नहीं, महात्मा नहीं, केवल मनुष्य है । कुल्ली के व्याज से लेखक ने मनुष्य जीवन के समस्त पहलुओं, श्वेत-श्याम दोनो पक्षो और उसके अन्तरग जीवन की समस्त मुद्राओं का सहजोद्घाटन किया है । समस्त घटनाए स्मृति सचारी के आश्रय से आत्म सस्मरणों द्वारा उभारी गई है जो परम सजीव रोचक और प्रभावोत्पादक हैं । चरित्र नायक के रूप म परम्परित महामानवों को त्यागकर कुल्ला जसे 'लघुमानव' को वरण करना लेखक का सत्यकल्प और सत्साहस है । आभिजात्य के स्थान पर उसने 'जनसामान्य' की प्रतिष्ठा की है और युग की नयी आस्था तथा 'नवमानवतावादी' धारणा की परिपुष्टि की है ।

इसी प्रकार का एक अन्य हास्यप्रधान 'स्केच' है—"बिल्लेसुर बकरिहा ।" कृति में प्रचुर मात्रा म आंचलिक तत्व विद्यमान हैं और आद्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण अनुभूत तथ्य उपलब्ध हैं । प्राक्कथन के रूप मे लेखक की घोषणा है—"हिंदी भाषा साहित्य मे रस का अकाल है, पर हिंदी बोलने वालो मे नहीं । उनके जीवन म रस की गगा जमुना बहती है। बिल्लेसुर चार भाई आधुनिक साहित्य के चार चरण पूरे कर देते हैं ।"३ लेखक मन्नी, ललई, दुलारे की गतिविधि का पर्याप्त वृत्तात प्रस्तुत करके बिल्लेसुर का रेखाङ्कन करता है । धनार्जन हेतु हिन्दुस्तान की जलवायु के अनुसार सविनय कानून भग "करते हुए बदवान की यात्रा करते हैं और 'सत्तीदीन' की शरण मे जाते है, जो 'अपनी अपार मूर्खता के कारण महाराज के खजाची' बन गए थे । अपना 'कनवजियापन' भुला कर यह व्यक्ति अस्तित्व के लिए सघर्ष करता है । "बिल्लेसुर जीवन सग्राम मे उतरे ।" गायों की सेवा सुश्रूषा, अर्थ प्राप्ति हेतु गुमास्तों के नाम तहसील की चिट्ठिया लगाना—"नगे सिर, बिना छाता, धूप म दौडते हुए रास्ता पार करते, कण कटु बातें बर्दाश्त करते लौटते थे हाफते हुए, मुंह का थूक सूखा हुआ । होंठ सिमटे हुए । पसीने-पसीने । दिल धड़कता हुआ ।"४ निरतर सघर्षशील अशांत

---

१ कुल्ली भाट पृष्ठ १००
२ " भूमिका
३ बिल्लेसुर बकरिहा पृष्ठ १
४ " " ११

परिस्थितियों भी वे अपनी जिन्दगी की किताव पढ़ते गए, "किसी भी वैज्ञानिक से वढ़कर नास्तिक... अविश्वास करते-करते खास शक्ल के वन गये थे।" तदुपरांत विल्लेसुर की नियमित अजीविका, जगन्नाथ यात्रा, गुरुमंत्र और विफल मनोरथ होकर गांव का प्रत्यागमन—यहां से उनका पुनर्जीवन आरंभ होता है। विल्लेसुर परिस्थिति से जूझते हैं पर रहस्य नही प्रकट करते। उनके धन के सम्बन्ध मे भांत भांति के अनुमान किए जा रहे है। कन्यादाय वंचको और सरकारी कृषको की भीड़ लगी है पर स्वेच्छा से वकरी-पालन का उद्योग अपनाते हैं—"लम्वे पतले वांस के लग्गे मे हंसिया वांधा, वढा कर गूलर, पीपड़-पाकर आदि पेड़ो की टहनियां छाटकर वकरियो को चराने के लिए...।"१ उनकी जिन्दगी के रास्ते पर रोज ही ठोकरें लगती हैं, कभी वचते हैं; कभी चूकते है। वे अपत्तियो को झेलते हुए लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे है—"दमदार पहले से थे, वकरियो के साथ रहकर और हो गए थे।"२ विल्लेसुर का जीवन दर्शन अत्यधिक स्वस्थ और संतुलित है। गंभीर क्षति सहन करके भी उनका व्यक्तित्व पात्र प्रशांत है। कृशकाय व्यक्ति संघर्ष और सहिष्णुता का अप्रतिम आदर्श है। उनका जीवन आद्यन्त व्यवहारिक अथवा नितांत प्रायोगिक है, न कि मात्र सैद्धान्तिक। वे आत्मज्ञान की चरमावास्था का साक्षात्कार कर चुके है और कर्त्तव्य कठोर संसार मे अपना करणीय भी तदनुकूल निर्धारित कर चुके हैं। एक युग चिन्तक तत्ववेत्ता अथवा दार्शनिक की अपेक्षा उनकी जीवन प्रणाली अधिक सार्थक है; अन्तर केवल इतना है—"हमारे सुकरात के जवान न थी पर इसकी फिलासफी लचर न थी।" वे स्वार्थवश ईश्वर पर विश्वास करते हैं पर ईश्वर के 'विश्वासघात' करने पर और स्वयं अपूर्ण मनोरथ होने पर मूर्ति भजन ही कर डालते हैं। 'दुःख का मुह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरत को चुनौती दे चुके थे, कभी हार नही खाई।"३ फावडे से कृषि कार्य करना अपने भाई मन्नी की सासु को प्रभावति करके उसके माध्यम से विवाहोत्सव आयोजित करना अपने धनी होने का राज आजीवन अप्रकट रखना और अन्ततः सुखमय वैवाहिक जीवन व्यतीत करना उनके प्रत्यक्ष जीवन की सिद्धि है। विल्लेसुर का जीवन चरित एक निस्संवल व्यक्ति के अस्तित्व की शपथ है। वस्तुतः वह वड़ा उत्प्रेरक और प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है। यह रेखाकन लेखक का दृष्ट सत्य है। उसके सूक्ष्म निरीक्षक का समर्थ साक्ष्य है, उसकी मर्यानुभूति का लक्ष्य है। विल्लेसुर हमारे समसामयिक युग-जीवन के शतशत सामान्य प्राणियो के मध्य एक परम उपेक्षित अथवा नगण्य व्यक्ति है किन्तु अपनी सवेदना शक्ति के सहारे लेखक ने उसका संस्कार किया है। उसके उद्याम संघर्ष, प्रकृष्ट पुरुषार्थ और 'जीने की कला' को प्रश्रय लेखक ने अक्लांत मानवता के उस पक्ष का अभिषेक किया है जो जीवन का सनातन सत्य है। विल्लेसुर का यह आदर्शरूप लेखक को अभिप्रेत अवश्य रहा है पर रेखाकन मे उसने कही भी आदर्श को आरोपित नही किया है। सर्वत्र उसके व्यक्तित्व का स्वच्छन्द अथवा स्वाभाविक विकास हुआ है। उसके जीवन के सत् असत् सभी पक्ष प्रस्फुटित हुए है जिससे यह अति यथार्थवादी और मानतावादी 'चरित' प्रणोदित है।

---

१. बिल्लेसुर बकरिहा पृ० २२
२. " " २६
३. " " ३१

परम्पराजन्य 'नायकों', उनके अनुगामियों और वीरपूजा (हीरो वरशिप) की मान्यता पर आघात किया है। 'कुल्ली' के व्याज से लेखक ने राजनयिकों के छद्म आचरण और उनकी तथाकथित 'महत्ता' पर शंका व्यक्त की है, 'बिल्लेसुर' के माध्यम से एक निरीह जीवन-संघानी और तत्वदर्शी प्रयोक्ता का रूपांकन किया है जो जीवन का माप द्रष्टा है— गुरुराज से अधिक केवल वह वाक्प्रवचना नहीं कर पाता। 'चतुरी' से अधिक सन्त साहित्य का वेत्ता और धीर-गम्भीर व्यक्ति का अनुमान नहीं किया जा सकता। इन चित्रों द्वारा जहाँ उपेक्षित मानव के प्रति सम्वेदना प्रकट की गई है, वहीं अभिजात वर्ग की भर्त्सना या अवहेलना भी की गई है। इन कुरूप पात्रों की सृष्टि द्वारा लेखक ने आत्मभावनाओं का प्रक्षेपण किया है इसलिए ये इतने जीवन्त और मर्मस्पर्शी हैं। ये पात्र उसके ही प्रतिरूप हैं, जिनके व्याज से वे अपनी वृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण करते हैं।

'निराला' का व्यक्तित्व प्रबल अहमन्यता से परिपूरित है। इस आत्मचैतन्य का कारण है— उनका आभिजात्य और देहात्मबोध। संस्मरणों में सर्वत्र उन्होंने अपने पाँच फुट साढ़े ग्यारह इंच लम्बे, जरूरत से ज्यादा चौड़े पुष्ट मांसल शरीर का उल्लेख किया है। शारीरिक गठन, दैहिक शक्ति आकार प्रकार एवं बाह्य सौन्दर्य के प्रति वे प्रायः अभिभूत हैं जिसके स्फुट संकेत ध्यातव्य हैं—"तब मेरे बाल बढ़े थे नवजवान और नवयुवतियाँ मुझे सहृप देख देख जाने लगीं।"[1] गांधी जी की प्रार्थना सभा में किसी का धक्का लग जाने से वे उसकी गर्दन दबाने की सोचने लगते हैं।[2] अपने नंगे बदन पर पल्टन के सिपाहियों द्वारा उपहास करने पर वे निश्चय करते हैं—'एक हाथ रखूं तो छठी का दूध याद आ जाए।"[3] 'मेरी इच्छा हुई कलाई पकड़कर घसीटूं!' इसी प्रकार लम्बे बाल रखकर 'मिस फैशन' कहलवाना और ज्ञात रूप से कुल्ली भाट जैसे भ्रष्ट 'रसिक' से सम्पर्क स्थापित करना इसी 'सौन्दर्य बोध' (रूप प्रशंसा जन्य आनन्द) का निमित्त है। स्थिति की परवशता के कारण यह सूक्ष्म अथवा सुकुमार सौन्दर्य जब अभ्यास नहीं सिद्ध हो पाता (अपेक्षाकृत पन्त से पराभूत हो जाता है) तो प्रचण्ड पौरुष के विराट सौन्दर्य को वे वरण करते हैं और पन्त जी के "स्त्रीत्व चिह्नों" का उपहास करते हैं, जिसमें अन्यथा रूप से आकुल असंशय का या कुण्ठा की प्रतिध्वनि है। इसी 'स्वरूप' की अन्तिम परिणति 'महाप्राणत्व', ऋषि कल्प केशों, जर्जर कलेवर, ईसू तुल्य विक्षिप्त अंग भंगिमा 'भग्नमूर्ति' और रौद्र रूप में होती है। अस्तु, निराला जी के विद्रोह का प्रमुख कारण हैं—उनकी अहंचेतना और यौन कुण्ठा ग्रन्थियाँ, उसका हेतु है—उनका चेतन अथवा अवचेतन देहात्मबोध। इसी कायिक पुष्टि हेतु वे सामिष पदार्थों का भक्षण करते हैं। इन घोषणाओं का कारण यह नहीं कि निराला जी सुस्वादु सामिष व्यंजना के कायल हैं, बल्कि वे इन उक्तियों द्वारा खान-पान के विवेकी 'कनवजियों' को चुनौती देना चाहते हैं। कथा साहित्य में प्रकट रूप से उन्होंने जातीय विश्वासों और परम्पराओं को झकझोरा है। अतृप्त अहम् विक्षुब्ध कुण्ठा का रूप धारण कर लेता है। गांधी द्वारा भग्न मनोरथ होने पर वे व्यग्र एवं भावाकुल हो उठते हैं, अहम् जागृत हो जाता है—"अब किसकी आलोचना से, किसी की तारीफ से आगे आने की अपेक्षा मुझे नहीं

---

१ प्रबन्ध प्रतिमा पृष्ठ ३५
२ प्रबन्ध प्रतिमा " ३६
३ देवी " ६

रही। मैं खुद तमाम मुस्किलों को भेलता हुआ अड़चनो को पार करता हुआ सामने आ चुका हूँ।"१ निराला जी अपने सापेक्षिक लघुत्व को स्वीकार नही कर सकते; तभी गाधी के 'महात्मापन' की अवज्ञा करते हैं—"स्वयं एक स्वतंत्र साहित्यिक, एक पहुँचा दार्शनिक, पैसा ही जीवन जैसा गांधी जी का, महत्व की दृष्टि से बढकर नही तो घट कर भी नही ..।"२

उपर्युक्त उक्तियाँ लेखक की मानसिक पीठिका एवं अन्तर्वाह्य प्रकृति की परिचायक है। आकृति विज्ञान के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा उनकी प्रकृति का निरूपण किया जा सकता है जिसकी पुष्टि इन आत्मसाक्ष्यों द्वारा सम्भाव्य है।

आलोच्य साहित्य त्रिकोणात्मक है—(१) अन्यपरक चरित, (२) आत्मचरित, (३) रेखांकन। इन संस्मरणों की त्रिवेणी प्रायः एकात्म हो गई है, अतः उसे पृथक् कर पाना व्यावहारिक रूप से दुष्कर है। उनका यह साहित्य कथा साहित्य के अन्तर्गत ग्राह्य है। 'निराला' जी के रेखाचित्र आत्मचरितात्मक साहित्य के बहुत निकट है। जीवन चरित्र की भाँति ये एकनिष्ठ अथवा एकागी नही हैं। इनके पात्र उस वर्ग भावना के प्रतिनिधि और उस विशेष विचार पद्धति के संवाहक है जिनके चरित्रो मे जीवन प्रधान है, नायकत्व नही। कुल्ली भाट के रूप मे वस्तुतः एक ऐसा चित्र शब्दवद्ध हुआ है जो पतन के गर्त से उठता हुआ कीर्ति के शिखर पर प्रतिष्ठित होता है। प्रथमतः वही अपने जीवन का अधिकाश मौज वहार और नाना दुर्व्यसनो मे व्यतीत करता है किन्तु अन्ततः बडी कर्मठता सहित हरिजनोद्धार, अनाथ-शिक्षा एवं स्वातंत्र्य-संग्राम की ओर अभिमुख होता है। इन तथाकथित निम्नस्तरीय पात्रो के व्यक्तित्व सामाजिक दृष्टि में निन्दनीय है फिर भी कुल्ली का 'वज्र कठोर अन्तस्' सघर्ष क्षेत्र से उपराम नही होता। 'विल्लेसुर' अति सामान्य स्थिति और लघु स्तर का प्राणी है। किन्तु आज का उपयोगितावादी दृष्टिकोण, आत्मवल और युयुत्सा उसमे आचूड विद्यमान है। जीवन को अनवरत संघर्ष मानकर उससे जूझना ही परम लक्ष्य है। एक निरक्षर व्यक्ति का यह दूरदर्शी, व्यावहारिक एवं प्रायोगिक दृष्टिकोण वस्तुतः बड़ा अद्भुत है। यथोचित साधनो और अभीप्सित सुविधाओ के अभाव मे भी उसकी जिजीविषा और उसकी विजय-घोषणा अत्यन्त प्रेरक तथा प्रभावोत्पादक है। आलोच्य कृतियो मे समसामयिक परिवेश तत्कालीन जन-जीवन तथा आंचलिक तत्व का अत्यधिक विश्वस्त स्वर है। बैसवाड़े की लोक सस्कृति, आचार-विचार तथा प्रथाएं यथा सदर्भ वड़े जीवत रूप मे यहाँ प्रकट हुई है। इन चित्रो मे अनुभूति की सत्यता भी है और कथ्य की अतिरजना भी; अस्तु यह विधा रोचक भी है और स्वाभाविक भी। उपर्युक्त कृतियाँ रचनातंत्र की दृष्टि से भी विवेचनीय है। वस्तु के अन्तर्गत मूल घटनाओ मे कुतूहल और चमत्कार है। कथोपकथनो मे क्षिप्रता, प्रत्युत्पन्नगति और व्यग्य-विनोद का पुट है। चरित्र के निखार हेतु परिस्थिति योजना की भी सफल सृष्टि हुई है। भाषा मे कवित्व अपेक्षाकृत न्यून है, तथापि यत्र तत्र भावुक स्थलो पर उसका प्रस्फुटन हुआ है, यथा—"आँखो मे शाम की उदासी छा गई ..दिशाएं हवा के साथ साय-सांय करने लगी। नाला वहा जा रहा था, जैसे मौत का पैगाम

---

१. प्रवन्ध प्रतिभा " ३९
२. वही " २७

हो। चिड़िया चहक रही थी, रात को घोसले की डाल पर बैठी हुई।" यह कवित्व शैली प्रकृति चित्रण मे तो सराहनीय है ही अन्यत्र भी बडी प्रभावकारी सिद्ध होती है। एक उक्ति वैचित्र्य द्रष्टव्य है। 'कुल्लीभाट' की भूमिका मे नायकत्व पर विचार करते हुए वे कहते हैं—"तुलसीदास जी पुरुष थे, महापुरुष नहीं, महापुरुष अकबर था, दीन ए-ईलाही चलाया, हर कौम की बेटी ब्याही, चेले बनाये।" लेखक की शब्दावली विषयानुकूल एव पात्रानुकूल है। आत्मवृत्तान्कों मे 'आत्मश्लाघा' से दूर रहना निराला जी की विशिष्ट साधना है।

निराला जी का आत्मचरितात्मक साहित्य गम्भीर जीवन दृष्टि, अनुभूतिप्रवणता, मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघात सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और कथ्य की सत्यता पर आधारित है। लेखक का एतद्विषयक एकान्त चिन्तन भी ध्यातव्य है। इन चित्रो की नीव मे उसकी सम्वेदनशीलता का रस है, जिसका बडे सन्तुलन एव सयम के साथ उपयोग हुआ है। रेखाचित्रो मे अपेक्षाकृत स्थूलता अधिक है, यद्यपि वे हैं अत्यन्त सजीव एव सस्फूर्त। सस्मरणो मे लेखक का साहस युग विद्रोह उक्ति वैचित्र्य और कथ्यगत कौशल सराहनीय है। गम्भीर व्यग्यो और हास्य प्रसगो के कारण ये और भी प्रेषणीय हो गये हैं। यत्र तत्र आत्मप्रकाशन का लोभ-सवरण न कर पाने के कारण कुछ असन्तुलन या अननुपात को स्थान मिला है। लेखक के चरितनायक और आत्मचरित प्राय समानुपातिक हैं। उक्त अश अन्यथा रूप से निराला जी की आत्मकथा सदृश ज्ञात होता है। जीवनी रूप मे भी पृथक रूप से निराला जी की कतिपय कृतिया उपलब्ध होती हैं—यथा 'भीष्म', 'भक्त प्रह्लाद' आदि। किन्तु इन प्रारम्भिक अपरिपक्व अथवा आशुलिखित कृतियो में उत्कृष्ट कला के लक्षण नहीं हैं, अवश्य ही इनमे लेखक की बहुविध कला का सर्वाङ्गीण परिचय मिल सकता है। समग्रत निराला जी का यह चरितात्मक साहित्य महत् है। लेखक ने उपेक्षित तथा गर्हित पात्रों की ओर दृष्टि विशेष करके उन्हें नायकत्व की कोटि मे प्रतिष्ठित किया है और आभिजात्य के स्थान पर 'लघुमानव' को साहित्यिक महत्ता भी प्रदान की है। 'निराला' वस्तुत हिन्दी के गोर्की है। गोर्की, प्राय जीवन की मुद्रा का देखना था जबकि 'निराला' जीवन, मात्र जीवन के चितेर हैं। मेरी विनम्र धारणा है कि निराला के इस अन्तस्साक्ष्य का पूर्व परिचय प्राप्त किये बिना उनके अवरोधगामी, अवढरदानी, विद्रोही, अहमवादी, विक्षिप्त अवधूत अलमस्त (अर्थात् असामान्य) व्यक्तित्व को एव उनके वैविध्यपूर्ण कृतित्व को सम्यक रूप मे नहीं समझा जा सकता है।

व्यंग्यकार निराला

श्री बेढब बनारसी

विश्व के अनेक महान साहित्कारों की भाँति निराला की प्रतिभा भी बहुमुखी थी। जिस ओर उनकी लेखनी चली, विजयिनी होकर लौटी। उनके साहित्य का मूल्यांकन हुआ नही; क्योकि उसके लिए उपयुक्त कसौटी तैयार नही थी। किसी के जीवन मे या तो उसके चाक चिक्य से लोग इतने प्रभावित हो जाते हैं कि स्पष्टता नही दीख पडती, या उसकी प्रकृति मे इतना घवरा जाते है कि वास्तविकता समझ मे नही आती। जीवन का मूल्यांकन तभी हो पाता है जब हम तटस्थ होकर अध्ययन कर सकें। अनेक बार दुहराई बात है, किन्तु सत्य है, कि साहित्य तथा साहित्यकार का जीवन अलग नही किया जा सकता दूसरी बात उसी के साथ यह भी है कि अब तक हम साहित्यकार को न समझें उसका साहित्य नही समझ सकते। यह छिपा नही है कि निराला और सघर्ष का चोली-दामन का साथ था। और संघर्ष में जीवन ही व्यंग्य हो जाता है।

जहाँ हम कवि की प्रतिभा के सरोवर मे 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' ऐसे स्निग्ध सुरभिमय सरोज देखते है, जहां कोमल नलिनियो के समान सरस रागमय गीतो का समूह मिलता है, उसी जगह जीवन के विविध अंगो पर कटाक्ष तथा व्यंग्य भी मिलते है। उन्होने 'कुल्ली भाट' नामक उपन्यास मे लिखा है—'मैं व्यग्य बहुत लिख चुका हूँ, जैसे का वैसा ही नही समझता।' इस लिये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन्होने जानबूझ कर ऐसी रचनाएँ की है जिनसे समाज के शरीर पर कभी-कभी छुरी का प्रहार होता रहे। यह पहली प्रकाशित रचना है जिसमे आत्म चरितात्मक प्रकाश करते हुए निराला ने समाज पर रूढिवादी अनुदार समाज के गलित अंग पर कटाक्ष किया है। 'कुल्ली भाट' मे विनोद का पुट है किन्तु अनेक स्थनो पर जो चोट की है वह वास्तव मे जागरण के लिए चुटकी है। ससुराल जाते हुए राह की लू तथा धूप से परीशान होकर लिखते है—प्रकाश वह दिखा कि मोह दूर हो गया। रवि बाबू को आराम कुर्सी पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड पर मुझे गलियारे मे। जब इनकी सास ने अपनी पुत्री के बारे मे पूछा—मेरी लडकी कैसी है तो इन्होने उत्तर दिया—'मैने आपकी लडकी को छुआ तो नही है, बातचीत ही की है लेकिन अभी तक अच्छी तरह देखा नही। क्योकि जब मेरे देखने का समय होता है तब दिया गुल कर दिया जाता है। दूसरे दिन दियासलाई ले तो गया, जलाकर देखा भी लेकिन सलाई के जलते ही आप की लड़की ने मुंह फेर लिया।' पर एक स्थान मे लिखते है—'सास जी के ज्ञान पर आश्चर्य हुआ! खास तौर पर इसलिए कि उनकी बात का तात्पर्य मेरी समझ मे नही आया।' अपनी पत्नी के खडी बोली के ज्ञान के सबंध मे लिखते हैं—'श्रीमती जी पूरे उच्छ्वास से खडी बोली के ज्ञान के धुरधर साहित्यिको के नाम गिनाती गईं। जैसे लेख मे उद्धरण देख कर पाठक लेखक की विद्वता और विचारो की उच्चता पर दंग हो जाता है, वैसे ही मैं भी खडी बोली

के साहित्यिकों के नाम मात्र से ही खड़ी बोली के गाल पर जहाँ का वहीं रह गया।'

इस प्रकार इस उपन्यास में जीवन के अनेक क्षेत्र पर चिकोटियां मिलेंगी। उन्हीं दिनों सन् १९३६ मे कांग्रेस ने पहले-पहल शासनसूत्र अपने हाथ म लिया था। जमीदार, किसान तथा हिन्दू मुसलमान समस्या भी सामने थी। कभी कदाचित दगे भी हो जाया करते थे। इन सब पर चुटीली शैली की सजीवता और आत्मकथा की रोचकता इसमे वतमान है। आज भी वह पढ़ा जाय तो उसम ताजगी है।

उनकी कहानियो मे भी व्यक्ति तथा समाज पर व्यग्य स्थान-स्थान पर मिलता है। निराला के कवि ने निराला के कहानीकार के छोप लिया। उनकी ख्याति कहानीकार के रूप मे नहीं हुई। प्रेमचन्द्र अथवा प्रसाद की भांति वह 'होरी' या 'गुण्डा', का निर्माण नहीं कर सके। पर कहानियों में प्रर्याप्त मात्रा मे व्यग्यवाणो की वर्षा की गई है। कुछ कहानियों ने ख्याति पाई, जैसे 'चतुरी चमार' निराला कहते हैं—"चतुर के जूते अपरिवतन के चुस्त रूपक कसे टस से मस नही होते।" एक स्थान पर कहते हैं "वश का अभाव है तो भाषा को प्रभावशाली करना चाहिए, नहीं तो थानेदार साहब पर अच्छी छाप न पडेगी।" इसी प्रकार 'सुकुल की बीबी' तथा 'अथ' नामक कहानियो मे भी सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं पर छींटे मारे गये हैं। उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि "मैं आरभ से ही अस्वस्थ सामाजिक रूढ़ियो का विरोधी रहा हूँ।" उनके साथी तथा मित्र जानते हैं कि वह स्वस्थ परम्परा के विरोधी नही रहे, अपितु उसी के पोषक थे किन्तु अनुचित और अव्यवहारिक रूढ़िया उन्हें अरुचिकर थी। इसीलिए 'सुकुल की बीबी' के रूप में एक मुसलमान युवती को कनौजिया बना डाला। और स्वय फतवा दिया क्योंकि वह युवती किसी प्रताडित माता की कन्या थी। 'अथ' म अन्धविश्वास को मार्मिक ढग से खिल्ली उडाई गई है। 'लिली' नामक कहानी सग्रह म भी अनेक स्थानों पर व्यग्य मिलेगा, यद्यपि इसमें लेखक सरल गभीरता की ओर झुक गया है।

निराला की सबसे प्रसिद्ध व्यग्य की रचना 'कुकुरमुत्ता' है। यह जब प्रकाशित हुई। कुछ लोगो ने इसे पागल की बकवास समझे, कुछ लोगो ने साधारण-सा मजाक समझा। किन्तु ज्यों ज्यो समय बीता लोगो ने देखा कि इस विनोद के अन्दर भी कुछ है। कुकुरमुत्ता का सहरा लेकर कवि पूँजीवाद पर आक्रमण किया है उपेक्षित निम्नवर्ग की वकालत की है तथा उसकी उपयोगिता दिखाई है। मैं इस गहन समस्या पर विवाद उठाना नही चाहता कि पूँजीवाद का क्या भविष्य है। मैं उसका अधिकारी नही हूँ। इतना जानता हूँ, कि पूँजी और पूँजीवाद म अन्तर है। यहां पर कवि की रचना सबध म ही कुछ चाहता हूँ।

इस रचना मे 'गुलाब' और 'कुकुरमुत्ता' को लेकर कवि कुकुरमुत्ता को ही महत्ता देता है। गुलाब म सौरभ है, सुन्दरता है, आकर्षण है किन्तु—कुकुरमुत्ता कहता है——

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रगो आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट

वास्तव में यह वाणी है—दवे, निराश्रित, असहाय, गरीबो की। अपने लिए कुकुरमुत्ता कहता है —

और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मै
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता
तू रंगा और मै धुला
पानी में, तू बुलबुला
तू ने दुनिया को बिगाड़ा
मै ने गिरते को उभाड़ा
तूने रोटी छीन ली जनखा बना कर
एक की दीं तीन, मैंने गुन सुना कर

और इस प्रकार के भाव कविता मे अनेक स्थलो पर आये है। अन्त मे जब नवाब साहब कुकुरमुत्ते के कबाब के स्वाद से प्रभावित होकर अपने बावर्ची से उसका कबाब बनवाना चाहते हैं और माली से कुकुरमुत्ता लाने के लिये कहते है तो उसका उत्तर मजेदार है। माली कहता है :—

माली ने कहा हजूर
कुकुरमुता अब नहीं रहा, अर्ज हो मन्जूर
रहे है अब सिर्फ गुलाब।
गुस्सा आया कांपने लगे नवाब
बोले—चल, गुलाब जहाँ था उगा
सब के साथ हम भी चाहते हैं कुकुरमुता
बोला माली, फरमाए मुआफ खता
कुकुरमुत्ता अब उगाए नहीं उगता

इस प्रकार इस रचना मे सामाजिक असमानता का अच्छा खासा व्यंग्य किया गया है। लोगो ने इसकी रचना के समय समझा कि 'निराला' अपनी ऊँचाई से उतर आये है और स्तर के नीचे की रचना करने लगे है। सहृदय पाठक समझ सकते हैं कि यह न तो स्तर से गिरने की बात थी, न प्रयोग के प्रागण मे उतरने की बात थी, यह उस मनोभाव का चित्रण था जो समाज की माग थी और जिसकी कवि के हृदय मे पीडा था। सम्भवतः लोग समझते है व्यंग्य लिखना बहुत सरल है और जो कुछ गाली-गलौज लिख दिया वही व्यंग्य हो जाता है। बात ऐसी नही है। प्रतीकों का समुचित प्रयोग और अप्रस्तुत के माध्यम द्वारा व्यंग्य के व्यक्तित्व का निर्माण सुन्दर ढंग से हो तो वास्तविक व्यंग्य हो सकता है। विद्वान् पाठको के सामने यह कहना कि निराला की प्रतिभा इस ओर सफल रही, अनावश्यक है।

———

आलोचक निराला

प्रो० नलिन विलोचन शर्मा

रीतिकाल मे कवि, कवि होने के साथ ही आचार्य का दायित्व स्वीकार करना भी आवश्यक पाते थे। इसकी परम्परा सस्कृत मे पायी जाती है कविराज जगन्नाथ मे इसकी पराकाष्ठा देखने को मिलती है। कवि का आचार्य भी बनाना उसकी महत्वकाक्षा का परिचायक हो सकता है। रसगगाधर मे जगन्नाथ ऐसा स्पष्ट कहते भी हैं। लेकिन इसकी अनिवार्य आवश्यकता भी हो सकती है, इससे भी इनकार नही किया जा सकता।

श्रोता या पाठक सामान्य रूप से क्वचित्-कदाचित् उतने सुशिक्षित होते हों कि उनकी रसज्ञता के सम्बन्ध मे कवि पूर्णत आश्वस्त रह सके। बौद्धिक ह्रास के युग मे तो ऐसे श्रोता या पाठक कम होते ही जाते हैं, तब, जैसा रीति कवियो को करना पडा, कवि का ही यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने प्रतिपालक या श्रोता या पाठक को साहित्यशास्त्र मे प्रशिक्षित भी करता चले, अन्यथा क्षति तो उसी की होगी।

छायावाद युग में कवि आलोचक बनने को भी बाध्य होता है। ऐसे कवियो मे निराला बहुधा आचार्य का स्तर भी अपनाते हैं। दूसरे शब्दो मे, निराला रीति कवियों की तरह अपने श्रोताओ या पाठको प्रशिक्षित ही नही करना चाहते, रसगगाधरकार की तरह खडन-मडन तथा सिद्धान्तोद्भावन की महत्वाकाक्षा से प्रेरित होकर आलोचना लिखते हैं और इसके लिए जैसे श्रेष्ठ पृष्ठाधार की अपेक्षा होती है, वह उनके पास है, इसका वह प्रमाण देते हैं।

'प्रसाद' ने साहित्य शास्त्रीय समस्याओ पर सैद्धान्तिक दृष्टि से थोडा बहुत लिखा है। पत जी भूमिकाओ और निबन्धो के रूप में हिन्दी कविता पर बहुधा अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। महादेवी जी ने भी अपनी पुस्तको मे ऐसी भूमिकाए जोडी हैं जो छायावाद मात्र की भूमिकाए मानी जा सकती हैं। पत और महादेवी वस्तुत आलोचक न होकर छायावाद के समर्थ प्रवक्ता मात्र हैं। छायावाद की वकालात करते हुए पत जी ने पुरानी कविता पर जो आक्षेप किये थे उनके लिए वे अपने समसामयिक और समानधर्मा निराला से ही समर्थन पाने मे असफल रहे, किन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि पत या महादेवी की भूमिकाओं को यदि पुरानी कविता के अनुरागी और छायावाद के विरोधी आलोचकों ने पढ़ने के योग्य समझा होता और यदि उन्होंने पाठकों से भी इन भूमिकाओ की ताईद की होती तो वे स्वय भी छायावाद के रहस्य को यत्किचित समझ सके होते और पाठक इतने प्रशिक्षित हो जाते कि दोनो छायावाद को क्लिष्ट घोषित और मान करके उसकी वास्तविक विशेषताओ और त्रुटियों के परीक्षण एव रसज्ञता के अभाव का ऐसा परिचय नहीं देते कि कुछ दिनो बाद उनकी स्थिति हास्यास्पद हो जाती—आज रत्नाकर और

पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और राम चन्द्र शुक्ल और उनके युग की नयी पीढी हमारी दृष्टि में, इस कारण ही, हास्यास्पद तो है।

छायावाद पर भयंकर प्रहार व्यूह रचकर ये और इन जैसे दूसरे महारथी करते थे। छायावाद के अभिमन्यु थे निराला, लेकिन इस अन्तर के साथ कि चक्र-व्यूह-भेदन के बाद वे पराजित नही हुए। छायावादी और उनके विदेशी पूर्ववर्ती रोमाटिक कवियो मे कोमलता और मधुरता के लिए जो आग्रह पाया जाता है वह केवल भाषा तक ही सीमित नही है। इन गुणों की तलाश रहने वाले कवि शरीर और वेश-भूषा और केश-विन्यास-प्रणाली मे भी कोमल मधुर होने का अभिनय करते थे और कुछ हद तक होते भी थे। कहते है, 'ब्लैकउड' मैगजीन मे प्रतिकूल आलोचनाएँ होने के कारण कीट्स क्षय-ग्रस्त हो गया था। कीट्स और पंत मे अनेक दृष्टियो से उल्लेखनीय समानताएँ हैं, शायद इस बात में भी सादृश्य ढूँढा जा सकता है कि वे भी छायावाद-काल मे बहुत दिनो तक बीमार रहे थे।

'निराला' अपने छायावादी काव्य मे भी अंशतः छायावादी है और १९२० के अपने एक लेख में आत्मविश्वासपूर्वक यह कह सकते थे कि उस बगला भाषा मे आवश्यकता से अधिक कोमलता थी, और गांभीर्य का अभाव था, जिस बँगला भाषा को कोमलता ने और उसमे रचित काव्य ने हिन्दी के कवियो के लिए मृग-मरीचिका उत्पन्न कर दी थी। निराला छायावादियो में बंगला सबसे अधिक जानते थे, बँगालियो की तरह जानते थे। इसलिए इस भाषा की त्रुटियों से वे पूर्णतः परिचित थे। इसके काव्य का भी उन्हे निकट परिचय था—हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ के काव्य पर अवश्य उनकी पुस्तक पहली पुस्तक थी—इसलिए बंगला काव्य के सम्बन्ध मे भी उनके मन मे कोई दुर्बलता न थी। निराला ने 'पल्लव' की अपनी प्रसिद्ध आलोचना मे, बगला के लिए, विशेषतः रवीन्द्रनाथ के लिए, दूर का परिचय रहने के कारण, पंत में जो मोह था, उसका बड़ा निर्मम विश्लेषण किया है, और यह प्रदर्शित किया है कि बंगला के मधुर वाग्जाल को लाने से पत की कविता की अर्थ-सम्पत्ति मे तनिक भी वृद्धि नही हुई है। इसी आलोचक-दृष्टि ने निराला की रक्षा बंगलाकाव्य से की है। ऐसा नही है कि उन पर पत से कम प्रभाव रवीन्द्रनाथ का हो, किन्तु कवि निराला का जो आलोचक शेषांश था उसने सदैव इस प्रभाव में डूब जाने से उन्हे बचाया और उन्होने इसे संतुलित करने के लिए, अनजाने ही सही, शेक्सपियर और इकबाल से अपने को उसे आयु में सिक्त किया जिसमें साधारणतः मनुष्य पाता है कि वह सीख तो बहुत कुछ सकता है, किन्तु जज्ब बहुत ही कम कर पाता है।

निराला पर, हुए सुपरिचित तथ्य का हमने अभी उल्लेख किया है, बड़े सधे प्रहार हुए थे। लेकिन निराला को उस तरह हमारी सहानुभूति की अपेक्षा नही जिस प्रकार पत को हो सकती है। निराला निर्दय प्रहारो का निर्दयतर उत्तर देने के योग्य साधनों से लैस रहे हैं और कभी-कभी तो, आलोचक के रूप मे, वे मक्खी को मारने के लिए भी तलवार चला देते है, जैसे भुवनेश्वर पर लिखे उनके आलोचनात्मक संस्मरण के मूल मे एक नवयुयक की उत्तरदायित्व-शून्य और उपेक्षणीय हिमाकत का प्रतिशोध लेने की भावना ही तो थी। लेकिन उन्होने बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे सम्पादक के नेतृत्व मे अपने विरुद्ध होनेवाले आन्दोलन का जो सामना किया था, वह अपना बचाव भर ही

नही था, छायावाद रहस्यवाद और इससे भी बढ कर साहित्यगत 'विलष्टता' के समर्थन मे एक ही सशक्त प्रत्याक्रमण था।

निराला ने कविता मे भी अपने आलोचक रूप के इन पक्षो का परिचय दिया है। एक तरफ वन-बेला है, जिसमे वे आत्म-दया से ग्रस्त हैं और एक प्रसिद्ध भारतीय नेता पर बडे ही अनुदार और व्यक्तिगत आक्षेप तक करते हैं, लेकिन दूसरी तरफ सरोज स्मृति जैसी कविता है जिसमें साहित्य और समाज की सवथा निस्सग आलोचना करने मे वे समर्थ हुए हैं और तब, जब कि विषय पुत्री की स्मृति है और आत्मदया यदि किसी स्थिति म क्षम्य हो सकती है तो शायद ऐसी ही स्थिति मे।

निराला ने अपनी गद्य और कभी-पद्य म भी, लिखी, आलोचनाओं मे ऐसे कटीले शब्दो का भी व्यवहार किया है जो पर्चेबाजा को ही शोभा दे सकते हैं, किन्तु बहुधा पर्चेबाजी अदम्य आलोचना म परिणत हो गयी है। इसका कारण यह है कि निराला के पास न तो पुरानी कसौटी का अभाव है, न कि जरूरत के मुताबिक नई कसौटी गढ लेने की उस शक्ति का, जिसके बिना आलोचक शास्त्रज्ञ आचाय मात्र बनकर रह जाता हैं।

पत्रकार निराला

श्री विष्णुचन्द्र शर्मा

पत्रकार निराला साहित्यकार निराला से अलग नही थे। 'सरस्वती' पत्रिका से इन्होने हिन्दी का ज्ञान और अनुभव का विस्तार किया। अपनी बात के लिये ही वे लेखक हुए और अपने समय की जटिलताओ को सुलझाने की इनके पत्रकार ने कोशिश की। साहित्य को समाज की 'नाना अर्थ भूमियो' का माध्यम बना कर निराला जी ने कवि, कथाकार, निबंध-लेखक और आलोचक की बहुवस्तेस्पर्शिनि प्रतिभा का विकास किया है। यही इनके कार्यो का "मुक्त मार्ग" था। इनकी पत्रकारिता का जीवन इनके कठोर संघर्ष और हिन्दी की प्रगति का इतिहास है।

सन् १६१६ में 'सरस्वती' मे इनका पहला लेख छपा, पर उसी पत्रिका ने इनकी पहली कविता "जूही की कली" को अस्वीकृत भी किया। अध्ययन काल में इन्होने संस्कृत, बंगला, उर्दू और अंग्रेजी का गूढ अध्ययन किया और अपने पद्य और गद्य पर कठोर श्रम किया। स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुवादो से इन्होने काव्य पर अभ्यास किया।

स्वामी विवेकानन्द के दर्शन के सृष्टि के रहस्य की जिज्ञासा का भाव, निराला जी को वेदान्ती बनाया। विराट की कल्पना और अद्वैतवाद की गूढता ने इनकी रचना को पहले अस्पष्ट अवश्य बनाया। "समन्वय" (सन् १६२२ ई०) का सम्पादन काल निराला के लिये ऐसा ही था। मनुष्य की दृष्टि यहाँ भो इन्हे उदार बनाती है। समाज की करुण स्थिति और नैतिकता की प्रचीन आस्था इनके विचारो मे रम गयी थी। "अनमिका" (१६३७) के प्राक्कथन" में निराला जी ने लिखा है, कि वे (श्री महदेव प्रसाद सेठ) मेरी रचनाओ के पहले प्रशसक है। तब मेरी कृतिया पत्र-पत्रिकाओं से वापस आती थी, मैं उदास और निराश हो गया था...। उसमे मेरा परिचय "समन्वय" संपादन काल मे हुआ। फिर भी वेदान्तिक साहित्य से खीच कर हिन्दी मे परिचित और प्रगतिशील मुझे उन्होने किया—अपना "मतवाला" निकाल कर। मेरा उपनाम "निराला" "मतवाला के ही अनुप्रास पर आया।"

"मतवाला का निराला ढंग" :—

"मतवाला" (२६ अगस्त सन् १६२६ ईसवी) हिन्दी इतिहास की एक घटना है। समाज के खोखलेपन को वह एक चुनौती थी—

खींचों न कमानों को, न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल है, तो अखबार निकालो।

'सरस्वती', 'माधुरी' 'प्रभा', कलकत्ता समाचार आदि पत्रो के रहने पर भी हिन्दी की प्रगति का स्वाभाविक विकास नही हो रहा था। पत्रिकाएं विचारों की अस्पष्टता और भाषा की अव्यवस्था के कारण हिन्दी पाठको की जिज्ञासा पूर्त्ति नही कर पाती थी। "मतवाला" के संपादक-

मण्डल का उद्देश्य नई बातों को जनता तक पहुँचाना था। अखबार के जरीए वे 'देश की आतरिक दशा बदलना' चाहते थे। उन्होंने अपने पहले अग्रलेख मे लिखा है, कि उसमे सच्ची और स्वाभाविक सूचना रहेगी। लेकिन बतलाने का ढग निराला होगा। जो मेरी ही तरह स्वतत्र "मतवाला" होगा, वही उस ढग को समझने वाला होगा। राष्ट्र, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, धर्म, समाज, शासन प्रणाली, साहित्य और व्यापार आदि समस्त विषयो का निरीक्षण और सरक्षण ही मेरी योजना का अभिसन्धान है। मैं उसे पूरा करने के लिये सकोच, भय, ग्लानि, चिन्ता और पक्षपात का उसी प्रकार त्याग कर दूगा, जिस प्रकार यहाँ के नेता निजी स्वार्थ का त्याग करते हैं। 'मतवाला' का 'मतवाले की बहक', 'चलती चक्की' और 'कसौटी' आदि कालमो मे सच्चाई और स्वतत्र मत का ही पक्ष लिया गया। 'मतवाला' के निराले व्यग ने भारतेन्दु युग के पत्रकारो की याद ताजी कर दी।

निराला जी ने लिखा है जिन पत्रो को कोई कौडी के मोल नही पूछता, उनके सम्पादक पत्र की प्रसिद्धि के लिए किसी प्रतिष्ठित पत्र या मनुष्य के विरोध मे लिखना आरम्भ कर देते है। पर निरालाजी ने झूठी प्रसिद्धि की कभी कामना नही की और न कभी बिना कारण किसी से विरोध मोल लिया। उनके विरोधी कम नहीं थे, पर 'स्वार्थ समर' मे हार कर भी वे अपनी ईमानदारी मे जीवित रहे। 'सरोज स्मृति' कविता मे उन्होने लिखा है—

> हारता रहा मैं स्वार्थ समर
> पर—
> सोचा है नत हो बार बार
> यह हिन्दी का स्नेहोपहार
> यह नहीं हार मेरी भास्वर
> यह रत्नहार, लोकोत्तर वर

उनके विरोधी जहाँ रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वान थे, वही हल्के-फुल्के और भी बहुत से लेखक थे। निबधो में विचारक निराला उनका खण्डन-मण्डन करते। हिन्दी की प्रगति के जरीये निराला जी देश की प्रगति का स्वप्न देख रहे थे। उनका दृढ आत्म विश्वास इससे स्पष्ट है—

> लडते थे हँसते प्रखर
> जो रहे लगते सदा समर
> एक साथ जब शतघात घूर्ण
> अतिथि मुझ पर तुले तूर्ण
> देखता रहा मैं खड़ा अपल
> वह शर क्षेप, वह रण कौशल।

इस विरोध में भी निराला जी ने 'मतवाला', 'रंगीला' (सन् १९२७ ईसवी) और 'सुधा' (सन् १९२९ ईसवी) पत्रिकाओं का सम्पादन किया। 'मतवाला-मण्डल' इनकी अध्ययन-वृत्ति, पैनी दृष्टि, तीव्र व्यग्य, गहरी भाषा, व्याकरण की पकड और कवि तथा लेखक की मौलिक रचनात्मक

शक्ति के प्रशंसक थे। 'मतवाला' का मुख्य पृष्ठ निराला की कविताओं से ही सजता था। साप्ताहिक 'मतवाला' कलकत्ते मे अपने व्यंग्य और रोचक टिप्पणियों के कारण जनता का प्रिय पात्र हो गया। निराला की निम्नलिखित पंक्तियाँ कवि की मस्ती और पत्र की लोकप्रियता का उदाहरण है—

अमिय-गरल शशि-सीकर रवि-कर।
राग-विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका
प्यार है यह 'मतवाला।'

'मतवाला' ने निराला को कवि बनाया; उनके पाठको को अध्ययन की दृष्टि दी, साधक बनाया, उनकी रुचि बदली। इसका पता 'सम्मेलन पत्रिका' प्रयाग (भाद्रपद सम्वत १९८०) से लगता है—'मतवाला' इस युग की चीज है। इसकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ, अग्रलेख, मतवाले की बहक, चलती चक्की आदि शीर्षक बडी ही पैनी आलोचना, रंगीली और चुटीली भाषा तथा मतवाली और निराली अदा के साथ देखने मे आते हैं। भीषण साहित्यिक हास्य इसका प्राण है। हमे तो पढ कर पूज्य भट्ट जी के 'हिन्दी प्रदीप' के कतिपय लेखों की झलक मिलती है। यह अपने मीठे नशे की झोंक में बड़े-बड़े गम्भीर प्रश्नों पर जो निर्भीक आलोचना कर जाता है, वह देखते ही बनता है।

'मतवाला' की ये सारी विशेषताएँ एक प्रकार से निराला के भविष्य की ही विशेषताओ का बीज रूप थी।

निराला जी ने हिन्दी-साहित्य के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति के विचार से ही पत्रो का सम्पादन किया। पर, प्रारम्भ से ही उन्हे बात कहने के लिये सम्पादको से, प्रशासको से और आलोचको से विरोध बोल लेना पडा। छायावादी के भाव, भाषा और छन्द का मजाक लेने वाले कम नही थे। किन्तु अपनी मस्ती के साथ ही एक-एक को चुनकर निराला ने जवाब दिया, उनकी हर चुनौती स्वीकार की। डाक्टर रामविलास शर्मा ने लिखा है, कि बहुत दिनो के बाद अवरुद्ध साहित्य के प्रतिभा को प्रकाश में आने का अवसर मिला, शाम को भाग छानना दिन भर सुरती फाकना, थियेटर देखना, साहित्यिको से सरस वार्तालाप करना, मुक्त छन्द मे कविता लिखना, छन्द नामो से हिन्दी के आचार्यो की भाषा में व्याकरण और मुहावरो की भूलें दिखाना और यों समस्त हिन्दी को चुनौती देना उनके जीवन का कार्य था। उस समय ऐसा लगता था कि मुन्शी नवजादिक लाल, बाबू शिवपूजन सहाय और पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ।

साल भर बाद ही निराला जी 'मतवाला' से अलग हो गये। कलकत्ते से विदा होते समय उन्होने बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे, पण्डित सकल नारायण शर्मा और पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी से अपनी योग्यता के प्रमाण पत्र लिये। अपने विरोधियो से उन्हे यह सब इसलिये करना पडा क्योकि हिन्दी के (नामी गिरामी) लेखक अभी इन्हे स्वीकार नही कर सके थे।

निराला जी ने 'मतवाला' मे श्रीमान गरगज सिंह वर्मा 'साहित्य शार्दूल' के नाम से 'चाबुक' लिख कर हिन्दी के आलोचकों को मुंहतोड जवाब दिया। 'जनाब आली' के नाम से लम्बी यथार्थ वादी कहानी लिख कर रचनात्मक क्षेत्र मे भी अपना महत्व बना लिया। 'मतवाला' की प्रसिद्धि के बाद से निराला की रचनाएँ जहाँ-तहाँ छपने भी लगीं। अब 'सुधा' और 'माधुरी' से पारिश्रमिक भी मिलने लगे।

सन् १६२७ से १६३० तक निराला जी बराबर अस्वस्थ रहे। इनके जामाता श्री शिवशेखर द्विवेदी के प्रबन्धत्व में मासिक 'रंगीला' पत्र निकला। निराला इसके सम्पादक होकर कलकत्ता गये, पर वहाँ दो-तीन ही मास रह सके। अकेले निराला जी ने इसे 'मतवाला' के स्तर तक पहुँचा दिया था। इसके प्रथम अंक के मुख पृष्ठ पर 'प्रसाद' जी की 'बीती विभावरी जाग री' गीत छापा। पत्र के मुख पृष्ठ पर निराला की निम्नलिखित पंक्तियाँ छपती थी

पुरुष प्रकृति तम ज्योति
दिवस-निसि कल्प तल्प पर
एक 'रंगीला रूप खिला
सब विश्व चराचर

निराला जी सन् १६२६ ई० से 'गंगा पुस्तक माला' प्रकाशन म काम करने लगे। यही से प्रकाशित 'सुधा' के वे सम्पादक हुए। उसमे 'निरुपमा' उपन्यास के दो अध्याय छपे। एक उपन्यास 'उच्छृंखल' नाम से विज्ञापित हुआ। लेकिन उसकी कल्पना निराला जी के मन में ही रही। इसी तरह 'उषा' नाटिका का विज्ञापन भी 'सुधा' म छपा, पर लिखा नही गया। ऐसे निराला जी ने कई पत्रिकाओं म सम्पादकीय और दूसरे तरह के नोट लिखे हैं, लकिन उसका श्रेय लिया उन प्रकाशकों ने। पूंजी के बल पर सम्पादक भी बन गये थे, (डाक्टर राम विलास शर्मा)–'जन साहित्य' का 'निराला अंक'। कविताएँ और लेख छापने म भी उन्हें प्रकाशकों की व्यक्तिगत या वर्गगत रुचियो से लोहा लेना पडा। भला कौन विश्वास कर सकता है कि अभी सोलह-सत्रह साल पहले उन्ह श्री सुमित्रानन्दन पन्त और स्वर्गीय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पर अपने लेख नष्ट कर डालने पडे होगे? ये सुन्दर लेख इसलिये नष्ट किये गये कि जिसके लिये लिखे गये थे, उन्हें वे स्वीकार न थे।

मुन्शी नवजादिक लाल के शब्दों म निराला एक योगभ्रष्ट योगी थे। वे कोई पेशेवर पत्रकार का जीवन नहीं बिता सके। साहित्य मे आने के लिये इन्हें पत्र की आवश्यकता पडी और जहाँ भी इनके अभिमान को चोट लगी, उन्होंने उस पेशे को ही छोड दिया। अपनी रचनाओं मे इन्होंने चापलूस पत्रकारों और सम्पादकों पर व्यंग्य किया, जो किसी भी नेता या धनी के पीछे पागल होकर घूमते है। इस क्षुद्र मनोवृत्ति पर प्रहार करते हुए लिखा है कि कुछ लोग पत्रकारों के उत्तरदायित्व को नीचा कर रहे हैं। एक नेता के स्वागत का यह रूप इसका प्रमाण है—

मैं देता कुछ, रस अधिक,
किन्तु जितने पेपर

सम्मिलित कण्ठ से गाते
मेरी कीर्ति अमर
अमर चरित्र
लिखा अग्रलेख अथवा
छापते विशाल चित्र ।

ये पत्रकार मनुष्यता का सम्मान नही करते बल्कि बडे धनी कुमारो के पीछे बावले हो जाते है। उनके आने पर—

पत्रों के प्रतिनिधि दल में
मच जाती हलचल,
दौड़ते सभी, कैमरा हाथ,
कहते सत्वर
निज अभिप्राय.... ...

इसके विपरीत 'मतवाला' और 'रंगीला' का महत्व इस बात मे औरो से अलग है कि इसके लेख कार्टून, कविता आदि का व्यंग्य व्यक्तिगत दोष से ऊपर उठकर समाज की पैनी आलोचना करने मे आगे रहा। इसके जरीये ही निराला जी ने पत्रकार और सम्पादकों के गम्भीर उत्तरदायित्व की ओर संकेत किया। राष्ट्रीय चेतना का विकास निराला जी के पत्रकार रूप मे ही उभरा। ऐसे ही जुलाई सन् १९३८ मे श्री सुमित्रानन्दन पन्त के 'रूपाभ' को निराला जी का सहयोग एक लेखक के रूप में मिला। 'बिल्लेसुर बकरीहा' और 'चमेली' स्केच और उपन्यास इस पत्र मे ही छपे। श्री नरेन्द्र शर्मा ने लिखा है कि 'निराला के सहयोग से पन्त जी के पत्र को निस्संदेह प्रतिष्ठा और सार्थकता मिली।'

नेहरू और गाधी जी के 'इण्टरव्यू' पत्रकार निराला के जरीये ही हिन्दी मे पहले पहल चले। इस काल मे ये दो निबन्ध आज भी बेजोड़ है। लेखको में 'काव्य-साहित्य' में श्री रामचन्द्र शुक्ल की 'काव्य मे रहस्यवाद' नामक पुस्तक की आलोचना 'पन्त और पल्लव' (माधुरी मे , की। आलोचनात्मक लेखमाला और सामाजिक प्रश्न पर 'चरखा' लेख (श्रीकृष्ण सन्देश—सन् १९२५ मे) कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गाधी जी के विवाद की चर्चा चलायी है, जा ऐतिहासिक महत्व के है। इनमे निराला जी के पत्रो के प्रति सजग थे। एक पत्रकार के रूप मे हर क्षण हिन्दी के भविष्य का ध्यान रहता था। इसी कारण चलतू चीजो मे वे साहित्य रचना का उत्तरदायित्व निभाते रहे।

एक जगह निराला जी ने लिखा है कि—"हिन्दी साहित्यको का अन्याय सीमा को पार कर जाता है। उन्हें अपनी सूझ के सामने दूसरे सूझते नही। हमे उनकी आँखों मे उँगली डालकर उन्हे समझाना है और बहुत शीघ्र वैसे संकीर्ण विचार वालो को साहित्य के उत्तरदायी पद से हटा कर अलग कर देना है, तभी साहित्य का नवीन पौधा प्रकाश की ओर बढ सकेगा...!" 'हिन्दी में

यदि चारो ओर से परकोटा घेर कर अन्य देशो तथा जातियो की भाव राशि को रोक रखी गयी तो इस व्यापक साहित्य के युग मे हिन्दी का भाग्य किसी तरह भी नही चमक सकता और उसे साहित्य का महाकवि तथा बडे-बडे साहित्यिको के आने की जगह चिरकाल तक बनो ठनी रह—होता रहेगा।

पत्रकार के रूप म निराला जो ने थोडे समय तक ही काम किया, किन्तु देश की राजनीतिक दासता से स्वतन्त्रता तक निराला जी का विकास एक पत्रकार की संश्लिष्ट शैली और विचारो की स्पष्टता का ही विकास था। अर्थ शून्य पाण्डित्य का प्रदर्शन न कर निराला जी यथार्थ के प्रति और कला के प्रति सदा सच्चे बने रहे क्योकि शुद्धाडम्बर चिन्तन की दुर्बलता को और विचारो की उलझन को प्रगट करता है। पत्रकार निराला कवि हृदय की तरह सहज और गम्भीर था। इसलिए वे लेखक और पत्रकार के रूप मे अलग अलग नहीं थे।

निबन्धकार निराला

डा० सरला शुक्ल

महाप्राण निराला के व्यक्तित्व को निकट से जानने का सौभाग्य मुझे नही मिला, किन्तु साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य मे अंकित रहता ,है इस दृष्टि से कविवर का स्वरूप-दर्शन उनके गीतों, कहानियो एवं उपन्यासो में किया जा सकता है। परन्तु उनके स्वभाव की अक्खड़ता, सत्यवादिता, स्पष्टोक्ति, सिद्धान्तप्रियता एवं सर्वोपरि रसज्ञता मृदुता के जितने दर्शन उनके निबन्धों में होते हैं, उतने अन्यत्र नहीं। निबन्ध व्यक्ति के चिन्तन एवं भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप है। निबन्ध आकार मे लघु, सुसंगठित एवं आत्मसम्पूर्ण रचना है। निबन्ध चाहे वर्णनात्मक हो, चाहे विचारात्मक या भावात्मक, लेखक उसमे अपना हृदय खोल कर रख देता है। वह अपनी अनुभूति या चिन्तन को निस्संकोच पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। लेखक और पाठक के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाला निबन्ध सबसे सरल और प्रशस्त मार्ग है। निबन्धकार उपदेशक के रूप मे स्वयं को श्रोतागणो से पृथक् करके विधि-निर्माण का प्रयास नही करता। वह तो केवल अपने विचार और भावनाएँ उन्मुक्त भाव से अपने निबन्ध मे ग्रथित करता है। जिसकी युक्तियाँ और तर्क पाठक को अभिभूत करते हैं। निबन्ध मे दुराव को कोई स्थान नही। निन्बध मे आपसी बातचीत का आनन्द मिलता है और एक सौजन्यपूर्ण घरेलू वातावरण का सृजन होता है।

निराला के निबन्धो में उपरोक्त सभी तत्व वर्तमान है। अपने निबन्धो के सम्बन्ध मे उन्होने स्वयं कहा है —'लेखो मे अज्ञान, हेकड़ो, असाहित्यिकता के भी निदर्शन हैं, मैं चाहता तो छपते समय कुछ अंशों मे उनकी नोकें मार देता, पर मनुष्य ज्ञानी नहीं, इसीलिये दुर्बलता की पहचान मैंने रहने दी। इसका दर्शन दुर्बलता न होकर सबलता भी हो सकता है, कारण उस भाषा, उस प्रकाशन का एक कारण भी तब निकलेगा।"—लेखक के ये वाक्य उसके जीवन तथा साहित्य के प्रति सच्चाई के द्योतक है। निबन्धकार अपने विचारो को यथातथ्य रूप में प्रकट करना ही अभीष्ट समझता है। ऐसा करने में कुछ लेखक या नेता उसके विरोधी या आलोचक हो जायेंगे इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं, वह चिन्ता की सीमा से परे चिन्तन में तल्लीन एक ऐसा साधक है जिसकी साधना खुलकर जनता के समक्ष आती है और सहज ही गृहीत होती है। लेखक स्वीकार करता है—"भारत मे विचार शुद्धि के लिये धन ही नही, समाज, शरीर और मन भी देना पड़ता है, तब विश्वमानवता की पहचान होती है। हमारे पीड़ित, अशिक्षित, पतित, निराश्रय, निरन्न मानवो का तभी उद्धार होगा, तभी भारत की भारती जाग्रत कही जायगी, तभी उसकी अपनी विशेषता सर उठायेगी।"

'प्रबन्ध प्रतिमा' लेखक के विचारात्मक निबन्धो का संग्रह है जिसमें राजनीतिक, साहित्यिक एवं समाज के बहुविधि विकास एव चिन्तन की झलक मिलती है। लेखो की सूची विषय विविधिता की द्योतक हैं। चरखा, गान्धी जी के बातचीत, नेहरू जी से बातें, महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर, नाटक-समस्या, अधिकार-समस्या, साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म, रचना-सौष्ठव,

भाषा विज्ञान, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां, सामाजिक पराधीनता, विद्यापति और चण्डीदास, कविवर श्री चण्डीदास, कवि गोविन्ददास की कुछ कविता, कला में विरह में जोशी-बन्धु, हिन्दी साहित्य उपन्यास, वर्तमान हिन्दू समाज, प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, मेरे गीत और कला, बंगाल के वैष्णव कवियों की शृङ्गार वर्णन, हमारा समाज—कवि के बहुमुखी चिन्तन के परिचायक हैं। इन सभी निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की सिद्धान्तमयता सम्मुख आती है। कहीं भी वह किसी राजनीतिक नेता का, साहित्यिक रचयिता का या सामाजिक परम्परा का इसलिये विरोध नहीं करता कि उससे उसका कुछ व्यक्तिगत हानि या लाभ है, प्रत्युत इसलिये कि उसका उससे सैद्धान्तिक विरोध है। किसी एक व्यक्ति के एक रूप या सिद्धान्त से उसका विरोध हो सकता है तो उसका दूसरा पक्ष कविवर को आकर्षित भी कर सकता है जिसकी वे भरपूर सराहना करते हैं।

निराला का निबन्ध 'गांधी जी से बातचीत' अपने निर्लेपन में अद्वितीय है। भाषा एवं राजनीति का दार्शनिक विवेचन करते हुए उनकी भाषा सहज ही गम्भीर एवं व्यंग्य-वाचाल हो जाती है। साहित्य की स्वतन्त्रता कभी भी बाहरी उपकरण को बहुत ज्यादा साथ नहीं ले सकती। बाहरी वस्तु सापेक्षवाद की तरह रहे, लेकिन किसी की अपेक्षा में वही रहता है जो सत्ता वाला है या सत्ता स्वयं अपेक्षा में रहती है जब बहिर्मुखी होती है—हमारे यहाँ ज्ञान सापेक्ष नहीं, निरपेक्ष है और 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' यह सदा सत्य है। इस मत से जाँच करने पर महात्मा जी की कुल क्रियाएँ एक सापेक्षता लिये हुए हैं। वे जैसे स्वतन्त्रता के लिये लागू होती हैं वैसे ही महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के लिये। उदाहरण में हिन्दी को लें। हिन्दी राष्ट्र भाषा है। यह आवाज गांधी जी की बुलन्द की हुई है। पाठक यह भी जानते हैं कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बताने वाले गांधी, तिलक के मुकाबले सर उठाते हुए देश के सामने आने वाले गांधी हिन्दी के प्रश्न पर स्वयं बदल गये हैं। उनके इस एक आवाज उठाने के साथ तमाम हिन्दी भाषी उनके साथ हो गये। नेता को यही चाहिये। जिन्होंने हिन्दी के द्वारा हिन्दी भाषी पन्द्रह करोड़ जनता की भावना जय स्वतन्त्रता बात की बात में मार दी। लोग लट्टू की तरह बकने लगे—हिन्दी राष्ट्र भाषा है। वस्तु और विषय की यह पराधीनता है। गांधी जी की यही स्वाधीनता।

इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व करने के बाद गांधी जी १९३५-३६ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के फिर सभापति होते हैं। यहीं इन्दौर में महात्मा जी ने एक आवाजी मारी—"कौन है हिन्दी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय ?"

बाद में महात्मा जी लखनऊ आये। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय का 'दरवाजा खोलने' और निराला जी ने सोचा, चूंकि महात्मा जी लखनऊ में टिके हुए थे, इसलिये पता लगाना लाजिमी हो गया कि उन्होंने यह आवाज लगाई या आवाजाकशी की। लेकिन मेरे लिये उस समय महात्मा जी रहस्यवाद के विषय हो गये, कहीं खोजे हुए नहीं मिले। अन्त में निराला जी की महात्मा जी से भेंट हुई। कुछ अंश उद्धृत हैं—'कमरे के भीतर जाने के साथ मेरी निगाह महात्मा जी की आँखों पर पड़ी। देखा, पुतलियों में बड़ी चालाकी है।'

निराला—सभापति के अभिभाषण में हिन्दी के साहित्य और साहित्यिकों के सम्बन्ध में जहाँ तक मुझे स्मरण है आपने एकाधिक बार पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम सिर्फ लिया है। इसका हिन्दी के साहित्यिकों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, क्या आपने सोचा था ?

महात्मा जी—मैं तो हिन्दी कुछ भी नही जानता।

निराला—तो आपको क्या अधिकार है कि आप कहे कि हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन है!

महात्मा जी—मेरे कहने का मतलब कुछ और था।

निराला—यानी आप रवीन्द्रनाथ का जैसा साहित्यिक हिन्दी में नही देखना चाहते, प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर का नाती या नोवुल पुरस्कार प्राप्त मनुष्य देखना चाहते है, यह?

मैंने स्वस्थचित्त हो महात्मा जी से कहा—वंगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है, जैसी हिन्दी। रवीन्द्रनाथ का पूरा साहित्य मैंने पढा है। मैं आपसे आधा घन्टा समय चाहता हूँ, कुछ चीज चुनी हुई रवीन्द्रनाथ की सुनाऊँगा और कला का विवेचन करूँगा, साथ ही कुछ हिन्दी की चीजें सुनाऊँगा।

महात्मा जी—मेरे पास समय नही है।

मैं हैरान होकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति को देखता रहा, जो राजनीतिक रूप से देश के नेताओ को रास्ता वतलाता है, वेमतलव पहरो तकली चलाता है, प्रार्थना मे मुर्दे गाने सुनाता है, हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति है, लेकिन हिन्दी के कवि को आधा घन्टा वक्त नही देता—अपरिणामदर्शी की तरह जो जी में आता है खुली सभा मे कह जाता है, सामने वगले झांकता है।"

एक साहित्यिक के दृष्टिकोण से निराला ने खुलकर महात्मा जी की आलोचना की। वही निराला महात्मा जी के निधन पर १२ दिन तक उपवास करते रहे और किसी को कानोकान खवर नही। वहुत दिन वाद वनारस के किसी दैनिक मे अपने उपवास का समाचार पढ कर वे खिन्न हो गये। 'मैंने प्रचार के लिये उपवास नही किया है। मैंने इसलिये उपवास किया है कि हमारे राष्ट्र पिता को हमारे ही एक भाई ने गोली से मार डाला। इससे हम पर वहुत वडा कलंक लग गया है। इस वात का मुझे वड़ा दुख है, मैं इसका प्रायश्चित कर रहा हूँ। मेरे ख्याल से दुष्ट व्यक्ति की हत्या भी निन्दनीय है, गाधी जी तो महान सन्त और राष्ट्रसेवक थे।' कविवर का हृदय सत्य को सहज और निरपेक्ष भाव से ग्रहण करने की क्षमता रखता था, तभी वे जीवन पर्यन्त साधना में संलग्न रहे। साधना उनकी मूक तथा आलोचना वाचाल थी, यद्यपि दोनो के मूल मे कल्याणकारी निर्माणकर्त्री करुणा का उत्स था।

'कला के विरह मे जोशी वन्धु' तथा 'साहित्यिक सन्निपात' या 'वर्तमान धर्म' निवन्धों में उनकी सूक्ष्म विवेचना-शक्ति का परिचय तो मिलता ही है। साहित्यिक आलोचना की व्यक्तित्व प्रधान व्यंग्यात्मक शैली का भी दर्शन होता है। आधुनिक हिन्दी के उस प्रारम्भिक युग मे किस प्रकार साहित्यिक मतवाद पनप रहे थे एव खण्डन-मण्डन की प्राचीन शैली के नवीन संस्कार हो रहे थे, इसका अच्छा परिचय इन निवन्धो मे मिलता है। 'विद्यापति और चण्डीदास' निवन्ध मे कवियो का सरस तुलनात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही साहित्य को श्लीलता और अश्लीलता के मानदण्ड से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है।

'नाटक समस्या', रचना 'सौष्ठव एवं भाषा विज्ञान' जैसे निवन्धो मे निराला ने साहित्यकार भावों का उदात्तीकरण, भाषा की अनुरूपता एवं परिष्कार पर अपने विचार प्रकट किये हैं। इसी संग्रह में एक महत्वपूर्ण निवन्ध 'मेरे गीत और कला' भी है। इस निवन्ध मे भी अनायास ही वे एक जगह अपने गीतो की स्वच्छन्दता का वर्णन करते हुए अपने व्यक्तित्व की वन्धनहीनता की चर्चा

कर जाते हैं—मैं खड़ी बोली का बाल्मीकि नहीं, न 'बाल्मीकि की प्रिये दारा यह कैसे तुमको भाया' मेरी पंक्ति है, पर 'भयो सिद्ध करि उलटा जापू' अगर किसी पर खप सकता है तो हिन्दी के इतिहास में एक मात्र मुझ पर। कबीर उल्टवासी के कारण विशेषता रखते हैं पर वहाँ छन्दों का साम्य है, उल्टवासी नहीं, यहाँ छन्द और भाव, दोनों की उल्टी गंगा बहती है।

यह सब उलटा-पलट मैंने जानबूझ कर नहीं किया, और यह उलटा-पलट है भी नहीं, इससे सीधा और प्राणों के पास तक पहुँचता रास्ता छन्दों के इतिहास में दूसरा नहीं।

प्रकृति के स्वाभाविक चाल भाषा जिस तरफ भी जाय, शक्ति, सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुयता, मृदुलता और छन्द साहित्य की तरफ यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जायगा कि प्राणशक्ति उस भाषा में है। अपनी भाषा और छन्द के अतिरिक्त कवि ने वर्ण विन्यास, पद-साहित्य आदि की भी विस्तृत आलोचना की है। अपने गीतों में उद्धरण देकर उनके अर्थ स्पष्ट किये हैं और यह प्रमाणित कर दिया है कि कला बन्धनहीन होने पर भी इसी सृष्टि की वस्तु है।

'बंगाल के वैष्णव कवियों का शृंगार वर्णन' सरल शैली में लिखा हुआ विवरणात्मक निबन्ध है।

"अधिकार-समस्या, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ, स्वाभाविक पराधीनता, हमारा समाज आदि सामाजिक निबन्ध हैं जिनमें लेखक ने विभिन्न समस्याओं पर अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' में वे लिखते है कि 'अब वह समय नहीं रहा कि हम स्त्रियों के वह रूप रखें, जिसके लिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'चित्र लिखे कपि देखि डराती' लिखा था पुरुष के अभाव में स्त्री हाथ समेट कर, निश्चेष्ट बैठी न रहे। उपार्जन से लेकर सन्तान-पालन, गृह कार्य आदि वह संभाल सकें, ऐसा रूप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिये। पहले दोनों भाव और काम अलग-अलग थे, अब दोनों के भाव और कार्यों का एक ही में साम्य होना आवश्यक है। इस तरह गार्हस्थ्य धर्म में स्वतन्त्रता बढ़ेगी। परावलम्बन न रह जायगा। स्त्रियाँ भी मेधा की अधिकारिणी होंगी। हृदय और मस्तिष्क, दोनों में एकीकरण होगा। संसार में जितने प्रकार की प्राप्तियाँ हैं, शिक्षा सबसे बढ़कर है। अशिक्षित अपढ़ होने के कारण ही हमारी स्त्रियों को संसार में नरक-यातनायें भोगनी पड़ती है—उनके दुखों का अन्त नहीं होता।"

उनके सम्पूर्ण निबन्धों में हम देखते हैं कि एक प्रबुद्ध साहित्यिक के नाते जो भी प्रश्न उनके सम्मुख आता है, चाहे वह वह सामाजिक हों, राजनीतिक या काव्य भूमि से सम्बन्ध रखने वाला, सबसे उपयुक्त हल ढूँढ निकालना, सब पर निरपेक्ष भाव से चिन्तन, करना उनकी अनोखी सामर्थ्य है।

किसी भी व्यक्ति को उसके समस्त परिवेश में जानने का सबसे पूर्ण और मधुर माध्यम उनका साहित्य है। साहित्य की उस परिधि में उसका असीम और दुर्बोध अन्तर्मन भी स्पष्टता से एक सीमित परिधि में अवतीर्ण होता है। इस दृष्टि से निराला के निबन्ध उनके व्यक्तित्व के खुले पृष्ठ हैं।

निराला का निबन्धार्णव

डा० वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' खड़ीबोली हिन्दी-काव्य के गौरव हैं। गद्यकार के रूप में उनका अपना विशिष्ट मौलिक स्थान है। अक्टूबर सन् १९२० ई० में प्रकाशित 'सरस्वती' में 'वंग भाषा' का उच्चारण शीर्षक निबन्ध निराला जी का पहला प्रकाशित है। उनकी सर्वप्रथम साहित्यिक गद्य-रचना 'रवीन्द्र-कविता-कानन' नाम से निहालचन्द्र एण्ड कंपनी, कलकत्ता से सन् १९२८ ई० में प्रकाशित हुई। इसके द्वारा रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उस युग मे हिन्दी-जगत् को समझाने का उन्होने सफल प्रयत्न किया.। उन्होने लिखा कि रवीन्द्रनाथ सूर्य हैं और वंगभाषा का साहित्य सुन्दर पद्म। रवीन्द्रनाथ के उदय के पश्चात ही वंग-साहित्य का परिपूर्ण विकास हुआ। यहां उन्होंने रवीन्द्रनाथ के जीवन-परिचय के साथ उनकी प्रतिभा का विकास, स्वदेश प्रेम, संकल्प, शिशु सम्बन्धिनी रचना, शृंगार, संगीत काव्य का साधु उल्लेख किया है। रवीन्द्रनाथ के वंगला अक्षरो को देवनागरी में लिपि बद्ध करके :—

> "कि गाहिवे, कि सुनावे ! वल मिथ्यः आपनार सुख
> मिथ्या आपनार दुःख ! स्वार्थमग्न जे जन विमुख"

आदि पद्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा, महाकवि रवीन्द्रनाथ के इस पद्य में यदि कोई विन्दु मे सिन्धु की छाया देखना चाहे तो उसे निराश होना होगा। उसमे वह आनन्द है जो सिन्धु में अगणित विन्दुओ को देखकर होता है। अस्तु ! पहले संसार के उत्पीड़न को देखना, उत्पीड़न के यथार्थ मर्म को खोलना, उत्पीडित को उत्पीड़न के सामने लाकर खड़ा करना। उनके अगणित असन्तोषो को अपने गीत के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति कराना, तव स्वयं निर्माण की प्राप्ति कराना, तव स्वयं निर्माण के पथ पर निकलना और सत्यं शिवं सुन्दरं की मूर्ति अपनी निरुपमा सौन्दर्यमयी से मिलना, इस क्रम में कैसा सुन्दर संगीत है, इस पर पाठक ध्यान दें (देखें, 'रवीन्द्र-कविता-कानन' पृ० ८१)।

मुक्त-छन्द-रचना के साथ ही निराला जी ने निवन्ध-रचना भी आरम्भ कर दी थी। इस विषय मे सन् १९३४ ई० मे गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, से प्रकाशित 'प्रबन्ध-पद्य' के निवेदन में स्वयं निराला ने निवेदित किया है कि मैंने अमित्र पद्यों के साथ प्रवन्ध लिखने का श्री गणेश किया था। मेरे अधिकांश शिक्षित शुभेच्छु मित्रों को निवन्ध पसन्द आये थे। उन्होने साहित्य एवं दर्शन पर लेख-आलोचनाएँ आदि लिखते रहने के लिए मुझे प्रोत्साहन दिया था। 'समन्वय' मे 'दार्शनिक' के नाम के निवन्धो को देख कर स्वामी माधवानन्द जी (संपादक-'समन्वय') महाराज ने

मुझे प्रसिद्ध नाम से प्रकाश मे आने की आज्ञा दी थी। मेरे सामयिक सहृदय मित्रों ने भी मुझे आँखों पर रक्खा, बढ़ावा दिया। मैं अन्त करण से उनका कृतज्ञ हूँ। इस आकार मे मेरे प्रबन्धों की पृष्ठ सख्या हजार से ऊपर होगी। ज्योतिश्चल सालाप छायाचित्र नाटको की तरह बाजार की चीज न होने के कारण मासिक और साप्ताहिक साहित्य के पृष्ठों म मुँह छिपाकर, अभ्यास चक्रधर जनविष्णुओं के रक्षण से बाहर दैत्यों की सज्ञा मे पडे रहे। आज इसीलिए इतने सकुचित हैं। निश्चय ही वे समग्र निबन्ध किसी सग्रह मे नही आ सके हैं। उनमे से कुछ ही दार्शनिक निबन्ध उनके नाम से प्रकाशित निबन्ध-सग्रहो में सकलित हुए हैं। 'समन्वय' पत्र म 'एक दार्शनिक' के नाम से अकित दार्शनिक विवेचन और मीमांसाएँ निराला के दार्शनिक पहलू पर प्रकाश डालने वाली हैं। 'समन्वय' एक आध्यात्मिक पत्र था। इसमे श्री रामकृष्ण परमहस तथा स्वामी विवेकानन्द आदि केप्रवचन छपते थे। इस पत्र का श्री गणेश सवत् १९७- म हुआ था। यह पत्र महादेव प्रसाद जी के बालकृष्ण नामक प्रेस मे छपकर रामकृष्ण मिशन कलकत्ता से प्रकाशित होता था। 'समन्वय' के सम्पादक के रूप मे निराला जी का नाम यद्यपि नही जाता था, फिर भी समस्त कार्यों को निराला जी ही सम्पादित करते थे। निराला जी का लगभग ८ ९ वर्ष 'समन्वय' से सम्बन्ध रहा। वहाँ प्रकाशित 'विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास' 'श्री सारदानन्द जी महाराज से वार्तालाप' 'युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण' 'वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द' शीर्षक निबन्ध और निराला जी का 'समन्वय' का सम्पादकत्व उनके दार्शनिक रूझान क परिचायक हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य मे निराला नव जागरण के लिए ही प्रतिनिधित्व नहीं करते, वह वेदान्ती चेतना के भी प्रतिनिधि हैं। उनकी सास्कृतिक चेतना मे भारतीय अध्यात्मवाद और आध्यात्मिक साधन का रस गहरा छना है। साहित्य उनकी कर्मभूमि हैं, अध्यात्म मातृभूमि। आध्यात्मिक चेतना के काव्य मे निराला श्री रामकृष्ण परमहस से प्रभावित है, तो भारतीय इतिहास, सामाजिक दर्शन, राष्ट्रीयता तथा जातीयता के प्रश्नो का समाधान उन्होने विवेकानन्द से पाया है। दोनों उनके लिए समान रूप से सत्य हैं। वास्तव मे स्वामी विवेकानन्द की चेतना म ही आध्यात्मिकता और मानववादी दर्शन का पूर्ण समाहार है। मनुष्य को दिव्यता का प्रतीक मानकर उन्होने मानव जीवन के विकास को ब्रह्म की आत्मविवृत्ति का रूपक बना दिया है।

क्रान्तिदर्शी निराला का भावुक हृदय उनकी कविताओं व गीतो मे छलका है, तो एक श्रेष्ठ चिन्तक के आधुनिक नवजागरण मे योगदान की तेजस्वी गाथा उनके गद्य-साहित्य मे अकित है। विशेषत उनके निबन्धों मे महामानव निराला के हृदय स्पन्दन को और अधिक समीपता से सुना जा सकता है। प्रबन्ध-पद्य (लखनऊ १९३४) प्रबन्ध प्रतिमा इलाहाबाद १९४०), चाबुक (इलाहाबाद) और चयन (वाराणसी १९५७) निराला के निबन्धो के प्रकाशित सग्रह हैं। इनमे से प्रथम तीन का सम्पादन उन्ही के द्वारा हुआ। 'चयन' के सम्पादक डा० शिवगोपाल मिश्र हैं। उनके सारे निबन्ध अभी प्रकाश मे नहीं आए हैं।

इन सग्रहो म सगृहीत दार्शनिक, राजनीतिक साहित्यिक और सास्कृतिक लेखो के अध्ययन से पता लगता है कि गम्भीर निबन्धों मे निराला आचार्य की भाँति व्यावहारिक जीवन से दृष्टान्त देकर समझाते हुए लिखते हैं। वेदान्त म पगे निराला ने लिखा कि विकास के देखने या करने के अस्तित्व म शक्ति का ही अस्तित्व है। शास्त्रानुसार शून्य और शक्ति अभेद हैं। फर्क इतना ही है कि

जब शून्य में स्थिति है, तब शक्ति का ज्ञान नही, क्योंकि 'वह नही कांपता' सिद्ध है और जब शक्ति का परिचय है, तब 'शून्य' का ज्ञान नही वह कांपता है' सिद्ध है, (देखें प्रबन्ध पृ० १७) । साहित्य की चिरनवीनता, स्वतन्त्रता एवं व्यापकता की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं कि हम साहित्य में बहुत बहुत दिनो की भूली हुई उस शक्ति को आमन्त्रित करना चाहते है, जो अव्यक्त रूप मे सब में व्यक्त, अपनी ही आँखों से सबको देखती हुई, अपने ही भीतर उसे डाले हुए, पानी की तरह सहस्र ज्ञान-धाराओ में बहती हुई स्वतन्त्र, किरणो की तरह सब पर पडती हुई मधुर उज्जवल, अम्लान, मृत्यु की तरह नवीन जन्मदात्री, सर्वशाखाओं को तरह अगणित प्रसार से फैली हुई प्रत्येक मूर्ति में चिरकमनीय है (देखें प्रबन्ध पद्य) । उस अद्वितीय उपासक साहित्यकार निराला को कहा जा सकता है निराला की सारी सांस्कृतिक निष्ठा उसीसे सप्राण है ।

निराला के साहित्यिक निबन्धो मे विशेष आकर्षण है । साहित्य और भाषा, एक वार, पंत जी और पल्लव, हमारे साहित्य का ध्येय, काव्य मे रूप और अरूप, साहित्य का फूल अपने ही वृन्त पर, नाटक समस्या, साहित्यिक सन्निपात, रचना सौष्ठव, भाषा-विज्ञान, विद्यापति चण्डीदास, कवि गोविन्द दास की कुछ कविता, कला के विरह मे जोशी बधु, हिन्दी में उपन्यास, मेरे गीत और कला, बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार वर्णना आदि निबन्धो में उनकी सत्यवादिता, स्पष्टोक्ति, सिद्धान्तप्रियता, रसज्ञता मृदुता के दर्शन होते है । यहाँ निबन्ध चाहे वर्णनात्मक हो चाहे विचारात्मक भावात्मक । लेखक अपना हृदय पाठक के समक्ष खोलकर रख देता है । ग्रथित निबन्धों की युक्तियों और तर्कों से पाठक अभिभूत हो जाता है । इनके निबन्धो मे आपसी बातचीत का आनन्द मिलता है और एक सौजन्यपूर्ण घरेलू वातावरण मे हम अपने को बैठा हुआ पाते हैं ।

इन निबन्धों के द्वारा निराला की बहुमुखी प्रतिभा उनके अपने कविता-ग्रन्थो की अपेक्षा अधिक प्रखरता से प्रकाश में आई है । 'साहित्य और भाषा' के प्रसंग मे उन्होने लिखा है कि प्रायः यह शिकायत होती है कि छायावादी कविताएँ समझ मे नही आती, उनके लिखने वाले भी नही समझते, न समझा पाते हैं । इस तरह के आक्षेप हिंदी के उत्तरदायी लेखक तथा संपादक गण किया करते हैं । कमजोरी यही पर है । हिन्दी मे बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो छायावादी कविता समझते हैं । उन्होने समर्थन भी किया है । मैं अपनी तरफ से इतना ही कहूँगा कि छायावाद की कविताएँ भाषा-साहित्य के विकास के विचार से अधिक विकसित रूप है...। जो लोग यह कहते है कि खड़ी बोली की कुछ प्रचीन काल की कृतियो की तुलना मे आधुनिक कविताएँ (मेरा मतलब दोनों तरह की अच्छी कविताओं से है) नही ठहरती, मैं उन्हे अत्युक्ति करते हुए समझता हूँ । मुझे दृढ विश्वास है, यह मेरी नही, उन्ही की अल्पज्ञता है । वे साहित्य के साथ अन्याय करते है (देखें प्रबन्ध पद्य पृ० २७) आज हमारे साहित्य को देश तथा साहित्यिकों के समाज मे वह महत्व प्राप्त नहीं जो उसे राजनीति के वायुमण्डल में रहनेवालों में जन्मसिद्ध अधिकार के रूप मे प्राप्त है । इसीलिए हमारे देश के अधिकांश प्रांतीय साहित्यिक राजनीति से प्रभावित हो रहे है । सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत कर 'हमारे साहित्य का ध्येय' निराला जी ने यों उद्घोषित किया—जीवन के साथ राजनीति का नही साहित्य का संबन्ध है । संस्कृत जीवन कुम्हार की बनाई मिट्टी है, जिससे इच्छानुसार हर तरह के उपयोगी बर्तन गढ़े जा सकते है, जिसकी प्राप्ति के लिए हम प्रायः एक दूसरा अख्तियार कर बैठते है, वह साहित्य के भीतर से अध्यवसाय के साथ काम करने पर अपनी परिणति आप प्राप्त करेगा

(प्रबन्ध पद्म पृ० १४६)। राजनेताओं की स्वतन्त्रता उन्हें काम्य नहीं लगती। इस प्रसंग में निराला जी का युक्तियुक्त कथन है कि सम्पत्ति शास्त्र और गणित शास्त्र कभी ईश्वर की परवाह नहीं करते। उनके आधार पर चलने वाले नेता भी आत्मिक शक्ति या अज्ञात रहस्यों पर विश्वास करना अपने को पंगु बनाना समझते हैं, और उनके लिए यह स्वाभाविक है भी, जब सम्पत्ति और गणित के साथ देश की मिट्टी में उन्हें जड़ मिलता है और उनकी स्वतन्त्रता भी बहुत कुछ जड़ स्वतन्त्रता है। साहित्यिक के प्रधान साधन हैं सत् चित् और आनन्द। उसका रूप है अस्ति भाति और प्रिय। उनकी स्वतन्त्रता इनकी स्फूर्ति से व्यक्ति के साथ समष्टि के भीतर से आप निकलती है (प्रबन्ध पद्म पृ० १४८)।

नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में समष्टि के बीच स्फूर्ति निराला के व्यक्तित्व, लगन और तेज में स्वामी दयानन्द सरस्वती का अंश कम नहीं है। उनके व्यंग्य कम तीखे नहीं। उन्होंने लिखा है—स्वामी जी के व्यंग्य बड़े उपदेश पूर्ण हैं। आर्य संस्कृति के लिए आपने निस्सहाय होकर भी दिग्विजय किया और उनकी समुचित प्रतिष्ठा की। स्वामीजी का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा की ओर नहीं देखा, वेदों की प्रतिष्ठा की है। (प्रबन्ध प्रतिमा पृ० ५६)। पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का अंगरेजी और बंगला के माध्यम से संधान पाने वाले निराला ने भारतीय संस्कृति और शिक्षा को ही मनुष्य को मनुष्य बनाने में समर्थ पाया और गर्वपूर्वक कहा कि चरित्र, स्वास्थ्य, त्याग और शिष्टता आदि में जो आदर्श महर्षि दयानन्द जी महाराज में प्राप्त होते हैं उनका लेशमात्र भी अभारतीय पश्चिमी शिक्षा संभूत नहीं, पुनः ऐसे आर्य में ज्ञान तथा कर्म का कितना प्रसार रह सकता है, वह स्वयं इसके उदाहरण हैं, मतलब यह है कि जो लोग कहते हैं कि वैदिक अथवा प्राचीन शिक्षा द्वारा मनुष्य उन्नतमना नहीं हो सकता, जितना अंगरेजी शिक्षा द्वारा होता है, स्वामी दयानन्द सरस्वती इसके प्रत्यक्ष हैं। महर्षि दयानन्द से बढ़कर भी मनुष्य होता है इसका प्रमाण प्राप्त नहीं हो सकता, यहीं वैदिक ज्ञान की मनुष्य के उत्कर्ष में प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है, यही आदर्श में आर्य में देखने को मिलता है (प्रबन्ध प्रतिमा पृ० ५३ ५४) निराला में ऐसे निगूढ़ आर्यत्व की छांह में ही महामानव उठा।

समाज के व्यवहारिक दोषों के प्रति निराला के विद्रोही मन ने 'सामाजिक पराधीनता' के प्रसंग में स्पष्ट उल्लेख किया है (म्लेच्छों के शासनाधिकार में समाज शूद्रत्व को प्राप्त होता है और उस समय सभी वर्ण शूद्र हैं। केवल घर में ऐंठ दिखाने के लिये, गुलामों की तरह, एक दूसरे से बढ़ कर होने की स्पर्द्धा करते हैं। कोई अंगरेजी राज्य की सुविधा प्राप्त कर शूद्र से क्षत्रिय बन रहा है, कोई वैश्य से ब्राह्मण। ऐसा पहले भी हुआ है, पर इस समय शूद्रत्व ही हमारे समाज का प्रबल संस्कार है (प्रबन्ध प्रतिमा पृ० १३८)। वर्तमान हिन्दू समाज में हिन्दू जाति के जीवन और उसमें प्रचलित सनातन धर्म का दयनीय उल्लेख कर निराला जी ने स्वामी विवेकानन्द के स्वरों में हमें सम्बोधित किया। वे कहते हैं कि समस्त हिन्दू जाति वेदान्ती है। यहाँ बहुत बड़ा भाव छिपा हुआ है—बहुत बड़ा सुधार इस उक्ति में है। यहाँ जाति जाति का कोई भेद नहीं। यहाँ वर्ण भेद नहीं। कारण सभी 'अमृतस्य पुत्रा' हैं। स्वामी विवेकानन्द के प्रबल समर्थन भरे शब्दों को उद्धृत कर निराला ने समाज में विस्तृत वर्णभेद को अन्तर्मन से फटकार बताई है—'ऐ भारत के उच्चवर्ण वालों, तुम्हें देखता हूँ तो जान पड़ता है, चित्रशाला में तसवीरें देख रहा हूँ। तुम लोग छाया-मूर्तियों

की तरह विलीन हो जाओ, अपने उत्तराधिकारियो को (शूद्रों को) अपनी तमाम विभूतियाँ दे दो, नया भारत जग पड़े ('प्रबन्ध प्रतिमा' पृ० २३०-३१)। सामाजिक परिकल्पना के सम्बन्ध में निराला ने लिखा कि समाज एक ऐसा शब्द है जो अपने अर्थ से उत्तम प्रगति सूचित करता है और प्रगति हर एक मनुष्य-समुदाय के लिये आवश्यक है, यदि वह संसार में रहता है। संसार अपने शब्दार्थ से स्वयं गतिशील है।...इसमे यह बात महत्व की देख पडती है, कि पहले जिस व्यक्तिगत उच्छृङ्खलता के कारण देश और समाज की अधोगति हुई थी, अब उसी के विपरीत समाज के जन-समूह सम्बद्ध होने लगे। जब तक पूर्ण समीकरण नही हो जाता, समिष्ट व्यष्टि मे नही बट जाती तब तक पुनर्निर्माण होता भी नही। इस प्रकार होने वाले इस समय के सम्मेलनो मे मेल की भावना का ही महत्व मिलेगा, ऊपर अनेक भाव दोषावह ठहरेंगे जिनसे स्पर्द्धा-परिणाम निकलते हैं। समाज का सर्वोत्तम बाह्य निष्कर्ष इस समय राजनीतिक संगठन है जहाँ मनुष्य मनुष्य के ही वेश से उतरता है, समय और मनुष्यता के साथ पूर्णरूपेण मिल जाता है। ..राजनीत तथा सामाजिक प्रवर्तनो से जो सच्चे मनुष्य निकलेगे, वे ही यथार्थ नेताओ की तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की सृष्टि अपने गुण-कर्मानुसार करेगे और उस स्वतन्त्र भारत में इस वर्ण व्यवस्था से केवल परिचय ही प्राप्त होगा, उच्च-नीच निर्णय नही। समाज की वहा रीतियाँ बाह्य स्वातन्त्र्य देकर अन्तर्जाति संगठन करेगी (प्रबन्ध प्रतिमा पृ० ३४४-४५)। राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन तो अनेक सम्पन्न हो चुकें। काश ! स्वतन्त्र भारतीय समाज में निराला जी द्वारा प्रत्याशित वर्णातीत सच्चे मनुष्य व यथार्थ नेताओ का अभ्युदय हुआ होता।

श्रेष्ठ कलाकार केवल भावुकता से संचालित नही होता, उसके पीछे सुदृढ जीवन दर्शन होता है और गम्भीर सास्कृतिक चैतन्य। परन्तु वह वहाँ भी स्थित होता है जहाँ अतीत वर्तमान को काटता हुआ भविष्यत् की ओर बढता है और उसके परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र का समस्त साहित्य पूर्वापरता छोड कर हस्तामलकवत् रहता है। यदि स्वामी विवेकानन्द धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में हमारी आधुनिकता का आरम्भ करते है तो हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे निराला से साहित्यिक समीक्षात्मक नव-जागरण का आरम्भ होता है। निराला वेदान्ती है, परन्तु कवि भी है। उन्होने बड़ी खूबी के साथ विचार और अनुभूति, दर्शन और काव्य मे पटरी बिठायी है। उनका कथन है कि मनुष्य मन की श्रेष्ठ रचना काव्य है। विचार को ऊँची दृष्टि से उसकी निष्कलुषता तक पहुंचा कर शब्द योग से उसका सयोग प्रत्यक्ष करने के पश्चात यहाँ के लोगो ने उसे ब्राह्मी स्थिति करार दिया। अन्यान्य देश वालो ने भी तरह-तरह के तरीके अख्तियार कर एक अप्रत्यक्ष दिव्य शक्ति को ही काव्य के कारण के रूप में सिद्ध किया (चाबुक पृ० ४८-४६)। समीक्षक निराला कवि के व्यक्तित्व के प्रश्न को काव्यालोचन से बाह्य समझते है, क्योंकि वह मूलतः दार्शनिक या आध्यात्मिक है। काव्य का केन्द्र है कल्पना, चित्र तथा ओज। इन्ही को लेकर समालोचक को कृति का अनुसरण करना है, क्योंकि जिस तरह व्याकरण भाषा का अनुगामी है, समालोचक उसी तरह कृति का। कृति की दुर्दशा करके, यदि उस कृति के फूल खिले है और उनमे सुगन्ध है, समालोचक अपना जितना भी जबरदस्त ठाठ खडा कर दे, वह कभी टिक नही सकता। इसोलिये समालोचक को कृति के साथ ही रहना चाहिए (चाबुक पृ० ४८)। साहित्यकार को अन्य भाषा व साहित्य से आने वाले स्वस्थ प्रभाव को ग्रहण करना ही होता है। इस सम्बन्ध मे उनका कथन है कि हिन्दी मे यदि चारो ओर से

परकोटा घेरकर अन्य देश तथा अन्य जातियो की भावराशि रोक रखी गई, तो इस व्यापक साहित्य के युग मे हिन्दी के भाग्य को किसी तरह भी नही चमका सकते और उसके साहित्य मे महाकवि तथा बडे-बडे साहित्यिको के आने की जगह चिरकाल तक "बनी रहे—ठनी रहे" होता रहेगा (चाबुक 'काव्य साहित्य')। अन्य भाषा साहित्यो से उपयोगी तत्व को निराला ने सदा ग्राह्य माना।

निराला सचाई को पकड कर चले है। उनके निर्भीक और तथ्योद्घाटनो से भरे कथनो की व्यग्यात्मक शैली निराली होने के साथ-साथ प्रभावशालिनी भी है। उनकी इस शैली का जैसा विकास 'पन्त और पल्लव' निबन्ध मे मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। एक तो पन्त जी ने निराला को 'पल्लव' के प्रकाशन के पश्चात उसकी प्रति नही भेजी जो वस्तुत पन्त जी का अपराध था, दूसरे भूमिका में निराला जी की हलकी आलोचना भी कर डाली, फिर मुक्त छन्द का भी आविष्कारक अपने को ही मान लिया। इस निबन्ध में निराला का सामर्थ्य, विश्लेषण शक्ति, हृदय की उदात्तता और बुद्धि की न्यायप्रियता परिलक्षित होती है। यत्र-तत्र भावोच्छवास भी है जो कही-कहीं अति करुण हो गया है, जैसा कि उन्होने लिखा है कि प्रतिमा की दौड मे पन्त जी ने बेकसूर निराला को मारा है, इसमे सत्य का अन्श भी है, इसलिये यह वाक्य और भी करुण हो गया है। काश! कवियो मे स्पर्द्धा ईर्ष्या का रूप धारण न कर पाती। सौंदर्य की सृष्टि में सक्षम इतने बडे कलाकार यश की दुर्बलता पर विजय प्राप्त नही कर पाते, यह शायद विडम्बना ही है। यश वस्तुत उदात्त व्यक्तियो की अनुदात्त दुर्बलता है।

निराला की मान्यता है कि खाद्य पदार्थो के विषय मे अत्यधिक विधि निषेध को मानकर चलना हमारे जातीय जीवन की प्राणवत्ता के अभाव का परिचायक है। हर अक्लमन्दी की बात का विरोध निराला के समय मे भी 'भारतीय सस्कृति' के नाम पर हुआ करता था। जिनके प्रबल पूर्वजों में विधि निषेध का नाम नही था, उन्ही की औलाद विधि निषेध से इतनी अधिक पीडित है कि निराला का अन्तत क्रोध आ जाता है और वह आवेश व्यग का बाना पहिन कर यो प्रकट होता है—पर हमारे साहित्य मे क्या हो रहा है यह भारतीय, यह असस्कृत! नस-नस मे शरारत भरी है। हजार वर्ष से सलाम ठोकते ठोकते नाक मे दम हो गया, अभी सस्कृति के लिये फिरते हैं। ऐसा प्रबल और खरा रूप निराला के निबन्धों में सबसे अधिक उजागर हुआ है।

बिहारी और रवीन्द्रनाथ की तुलना मे रीति परम्परा के और छायावादी काव्य के प्रेमकाव्य के अन्तर पर अच्छा प्रकाश पडता है। दोनों कवियों के शृंगार चित्रण का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—'हिन्दी की प्राचीन प्रथा के अनुसार बिहारी ने किसी एक भाव को एक ही दोहे मे समाप्त कर दिया है परन्तु रवीन्द्रनाथ के भावो का तार पन्क्ति की कुछ लडियो के समाप्त न होने तक बंधा रहता है। या तो पढने मे कितने ही भावो का समावेश जान पडता है, परन्तु उनमें एक पारस्परिक सम्बन्ध बना रहता है। दूसरी बात यह है कि बिहारी नायिकाभेद बतलाते हैं, परन्तु रवीन्द्रनाथ स्त्रियों के स्वभाव का चित्रण करते हैं। निराला ने हिन्दी के मन को बिहारी से रवीन्द्रनाथ की ओर मोडने की इस प्रक्रिया में उसे स्वय अपनी ओर मोड लिया है।

विभिन्न विषयक इन निबन्धों को पढने से ज्ञात होता है कि निराला एक अत्यन्त निष्ठावान,

सांस्कृतिक चेतना से युक्त, प्रवुद्ध निवन्धकार है। दार्शनिक और विचारक से वढकर उनका समालोचक का स्वरूप इन निवन्धों में अधिक निखरा हुआ है। गद्य मे लिखित अपने से सम्वद्ध अथवा राजनीति, समाज या साहित्य से सम्वद्ध इनकी आलोचनाओ मे ऐसे भी कुछ शब्दों का व्यवहार हुआ है जो पर्चेवाजों को ही शोभा दे सकते है, परन्तु वहुधा उनकी पर्चेवाजी अदम्य आलोचना में परिणत हो गयी है। इसका कारण है कि निराला के पास न तो पुरानी कसौटी का अभाव है, न जरूरत के मुताविक नयी कसौटी गढ लेने की उस शक्ति का, जिसके विना आलोचक शास्त्रज्ञ आचार्य मात्र वनकर रह जाता है। यह निश्चय मानिये कि निराला के निवन्धो के अध्ययन के अभाव में उनके व्यक्तित्व को समग्रता से हस्तगत नही किया जा सकता। निराला के हृदय की ऋजुता ने, उनके मन की निश्छल अभिव्यक्ति ने और उनकी सुसस्कृत वुद्धि ने निर्वन्ध हो इन निवन्धों मे ही प्रसार पाया है।

जूही की कली

श्री अनिल कुमार सिन्हा

निराला की इस कविता के रचना-काल को ले कर काफी विवाद है। अभी हो हम इस सत्य की परख कर लेते हैं। साधारणत यही माना जाता रहा है कि इसका प्रथम प्रकाशन 'मतवाला' के अठारहवें अंक (१९२३) में हुआ था। डा रामविलास शर्मा ने भी अपने 'निराला' में इसी बात का प्रतिपादन किया है। बहुत से विचारकों का कहना है कि यह कविता निराला की प्रथम कविता है। कुछ ऐसे भी कहने वाले हैं जो इस रचना को निराला की पत्नी की मृत्यु के बाद की बताते हैं। 'परिमल' के सप्तम संस्करण का निवेदन लिखते हुए श्री दुलारेलाल भार्गव लिखते हैं—'उनकी प्रारंभिक रचनाएँ, जो सरस्वती—सम्पादक ने लौटा दी थी, हमने 'माधुरी' के प्रथम वर्ष के अंकों में ही छापी थी। 'तुम और मैं' और 'जूही की कली' आदि ऐसी रचनाएँ हैं। हमें वे इतनी पसन्द आई थी कि हमने उन्हें 'माधुरी' के प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया था। तब तक 'मतवाला' का प्रकाशन आरम्भ नहीं हुआ था।'

श्री शालिग्राम उपाध्याय का कहना है कि 'जूही की कली' निराला की प्रारम्भिक और प्रौढ रचना है कि जिसे कई पत्रिकाओं से सम्भवत वापस आना पडा था। वह सर्वप्रथम 'अनामिका' (१९२३) में अन्य आठ कविताओं के साथ संग्रहीत थी। (छायावादी कवि निराला जनभारती, मासिक, (सं० २०१६)। आदि

इस प्रकार हमारे सामने मतों का वैभिन्य स्पष्ट है। महत्व हमें प्रकाशन को ही देना चाहिए, क्यों कि प्रथम रचना को जानने का एक मात्र स्रोत रचनाकार का स्वयं प्रकाशित मत ही है। अन्य किसी साधन से हम किसी की रचना कौन प्रथम हैं, कौन बाद की, नहीं जान सकते। 'जूही की कली' प्रथम रचना है इसका कोई प्रमाण नहीं है। कविता की प्रौढ़ता से वह कई रचनाओं के बाद लिखी गई प्रतीत होती हैं। इसीलिए 'जूही की कली' निराला की प्रथम कविता है, यह अविचारणीय बात है और प्रथम प्रकाशित रचना ही किसी लेखक या कवि की प्रथम रचना हो ऐसा कहना भी हास्यास्पद ही है, क्योंकि क्या गारंटी है कि प्रथम प्रकाशित रचना ही किसी लेखक की प्रथम रचना है? उसने अपनी प्रथम प्रकाशित रचना के पहले भी 'रफ' की तरह कई रचनाएँ लिखी हो और अनुपयुक्त समझकर नष्ट कर दिया हो, तब प्रथम रचना का दायित्व किस पर जाएगा? इसलिए किसी भी लेखक की प्रथम रचना के विषय में बात करना थोथी बात है। किसी लेखक की प्रथम प्रकाशित रचना के सम्बन्ध में हम विचार कर सकते हैं, या उसकी प्रारम्भिक और उत्तर कालीन रचनाओं का विचार कर सकते हैं। इसीलिए 'जूही की कली' प्रथम रचना ही है, कहना थोथी बात है। वह पहली प्रकाशित रचना है यह भी कहना कठिन है, क्योंकि जब-जब 'जूही की कली' के प्रकाशन की बात कही गई है, फिर जब वह कई बार संपादकों

के पास से लौट आई थी तो प्रथम प्रकाशित रचना भी नही हो सकती। इसीलिए 'जूही की कली' के विषय मे इतना ही कहना तर्क संगत है कि वह निराला की प्रारम्भिक रचनाओ' मे से है।

अब रही पत्रिका मे प्रकाशन की बात। 'मतवाला' में वह प्रथम बार प्रकाशित हुई थी इसका कोई ठोस प्रमाण नही है। 'माधुरी' मे वह प्रथम बार प्रकाशित हुई थी इसका ठोस प्रमाण स्वयं पत्रिका संपादक का वक्तव्य है। अतः यही विश्वसनीय है। हमें इसे 'माधुरी' मे ही प्रथम बार प्रकाशित मानना चाहिए।

अपनी रचनाओ में निराला आद्यन्त मानवतावादी है, भौतिक जगत् के प्राणी है। इसीलिए पत्नी की मृत्यु का वियोग उन्हे नही हुआ होगा, ऐसा कहना बेकार है। इस वियोग की अवस्था मे शृङ्गारिक चेष्टाओ के आधार पर उन्होने काव्य की रचना की होगी, ऐसा तर्क संगत प्रतीत नही होता। इसलिए यह कहना एक भूल है कि अपनी पत्नी के देहावसान के बाद उन्होने 'जूही की कली' की रचना की थी।

श्री शालिग्राम उपध्याय का कहना सही है, क्योंकि 'जूही की कली' को हम प्रारम्भिक प्रौढ रचना तो मानते ही हैं, साथ ही प्रकाशको और निराला द्वारा स्वय मान्य हैं कि 'अनामिका' मे उनकी कुछ रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं; बाद मे वे 'परिमल मे आई'। इन आठ कविताओं मे 'जूही की कली' भी थी। अतः व्यवस्थित रूप से 'जूही की कली' का संकलन प्रथम बार 'परिमल' मे ही हुआ।

रचना-काल, प्रकाशन और सकलन की दृष्टि से 'जूही की कली' के इस संक्षिप्त विवेचन के बाद अब हमे काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से इस रचना पर विचार कर लेना चाहिए। कोई रचना अपने बल पर अपने रचयिता को अमरत्व प्रदान करती है तो विशेष महत्व की अधिकारिणी बनती है। इस दृष्टि से 'जूही की कली' भी विशेष महत्व की अधिकारिणी बनी है।

प्रस्तुत कविता मे प्रकृति के विभिन्न तत्वो के आधार पर एक वातावरण तैयार किया गया है। वल्लरी, जूही की कली, पत्रांक, निशा, पवन, चाँदनी रात, सर-सरिता, गिर कानन, लता कुंज आदि विरह विधुर नायक, हिंडोल, सुकुमार देह, नम्रमुख, रङ्ग खेल आदि के आधार पर कविता की ठाट खड़ी की गई। इसीलिए इस कविता के दो स्पष्ट, भिन्न, किन्तु एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित अंश हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। पहला अंश है—दूसरे पूर्ण विराम तक। उसके बाद सब दूसरा अंश ही है। पहले अंश मे प्राकृतिक सौन्दर्य और प्रकृति की स्वाभाविक गतिविधियाँ वर्णित हुई है। इन्ही के आधार पर बाद के अंश में सौन्दर्य का स्थल स्वाभाविक यथार्थवादी पक्ष चित्रित है। यानी कविता का पहला अश जैसे एक पीठिका है, जिसके आधार पर समूची कविता खडी हुई है—"जूही की कली' नम्रमुख होकर हँसी खेली है।

यहाँ प्राकृतिक उपमानो को लेकर नायक-नायिका की जिस भौतिक प्रकृतियो का वर्णन है वह विशेष महत्वपूर्ण है। इसी प्रक्रिया के कारण इसमे कथ्य आया है : अपनी प्रिया से बिछुड़ा नायक चाँदनी रात मे पल्लव पर्यंक पर सोती नायिका के पास पहुंचता है और मिलन का व्यापार प्रतिपादित करता है। इस छोटी-सी कविता मे इतना कथ्य भी बहुत है। महत्व कथ्य का नही वस्तु और वातावरण के एकतान प्रतिपादन का होता है। इसीलिए महान साहित्यिक रचनाएँ कभी कथानक के आधार पर अमरता नही प्राप्त करती—प्रतिपादन के आधार पर करती है।

सवेग और मन स्थिति और जग-व्यापार तो प्राय प्रत्येक युग म एक ही रहते हैं—केवल दृष्टिकोण और प्रतिपादन की दृष्टि से स्थिति बदलती हैं, फलत प्रत्येक युग म साहित्य के नए दृष्टिकोण और रूप सामने आते हैं। यही साहित्य की चिरतनता है। प्रस्तुत कविता के साथ भी ऐसी ही चिरतनता जुडी हुई है।

प्रस्तुत कविता का क्रियात्मक पक्ष भौतिक और प्राकृतिक दोनो हैं। भौतिक दृष्टि से पवन (नायक के रूप में) जिस उद्वेग से ग्रस्त होता है वह स्वाभाविक और विश्वसनीय है। किन्तु इस उद्वेग की शान्ति के लिए पवन जिन क्रियाओ को सम्पादित करता है—जसे गिरि कानन, लता-कुज, पवत आदि को पार कर 'जही की कलो' के पास आना, वह एकदम प्राकृतिक व्यापार है। भौतिक जीवन में किसी नायक को (तुलसीदास को छोडकर) ऐसा व्यापार करना सम्भव नही है। किन्तु जब पवन पवतादि को पार कर जही की कली' पर पहुँचता है तब उसका व्यापार मानवीय है, भौतिक है, और उसके बाद पवन की क्रियाएँ एक विह्वल प्रेमी की क्रियाए हैं। बाद म 'जूही की कली' की ओर से भी इन क्रियाओं मे योग मिलता है जिसमे भौतिकता का रग और गाढ़ा हो जाता। यानी इस कविता मे प्राकृतिक उपमानों के आधार पर भौतिक जगत का व्यापार वर्णित है। भौतिक जगत की स्थूल क्रियाओ से इस कविता का मात्र इतना ही सम्बन्ध है बाकी सब कुछ प्रकृति का ही है। कविता का पूरा वातावरण प्राकृतिक है। इसीलिए इसे सौदय प्राकृतिक कविता कह सकते हैं, और गुणो के आधार पर इसमे मानवीकरण का गुण आ गया है।

प्राकृतिक कविता होने के कारण से सम्बन्धित कई बाते हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। कविता जैसे ही हम समाप्त करते हैं, हमे लगता है कि इसमे रात्रि के उत्तराकालीन का वणन है। है? समूचा वातावरण रात्रि की निस्तब्धता का है। आभास हम प्रात काल का भी होता है, नम्रमुखी हँसी खिली' से। प्रारम्भ मे ही कवि ने कुशलता से पवन का मलयानिल कहकर उसकी वेला सकेतित कर दी है। प्राय होता ऐसा ही है की मलयानिल रात्र के ढाई-तीन बजे से चलना प्रारम्भ होता है। और यह सहज अनुमेय है कि जूही को कली (वाटिका मे) के पास आने मे कुछ समय लगा ही होगा। फिर पत्राक म शिथिल सोती हुई जूही की कली' का वणन है। निद्रा की अवस्था मे कोई शिथिल तभी होता है जब खूब गाढी नीद आ पडी हो, ऐसा प्राय उत्तरकाल मे ही होता है। फिर चादनी की धुली हुई 'आधी रात से तो सब कुछ स्पष्ट ही हो जाता है। यानी कवि आधी रात से ही अपनी कविता को प्रारभ करता है और प्रात की किरण फूटने के पहले ही समाप्त कर देता है। कविता का विराम और यात्रा रेखा यही हैं। प्रात काल सूर्योदय के पहले) का आभास हमे 'जूही की कली के व्यापार से होता है। अनुभवी विशारदो का कहना है कि पुष्प प्राय रात्रि के उत्तरकाल म (प्रात काल म) ही पुष्पित होते हैं—विशेषत जूही, हरसिगार आदि। इसकी पुष्टि लोकगीत की एक पक्ति से भी होती है—'जूही फुलेला अधिरतिया हो रामा।' इस कविता म भी अन्त म ही 'जूही की कली हसी खिली हैं—यानी फूटी है। और प्रात कालीन वायु के साथ डोली है—'खेल रग, प्यारे-सग।"

'जूही की कली' के प्रात काल फूटने का प्रमाण कविता के मध्यभाग से भी मिलता है। विह्वल मलयानिल कठिन किन्तु तीव्र यात्रा कर अपनी प्रिया से मिलने आता है। किन्तु उस समय वह दृग बन्द किए शिथिल थी—पत्राङ्क म। अधीर नायक मलयानिल ने नायिका के सुहाग भरे

कपोल चूमे–सारी लता हिंडोले जैसे डोल गई, किन्तु नायिका नही जागी। यानी जूही की कली को मलयानिल रात्रि के उत्तरकाल में आकर कई बार स्पर्श करता है, किन्तु समय नही होने के कारण वह विकसित नही होती (प्रकृति मे असमय विकसित होने के उदाहरण नही मिलते)। नायक का प्रयास विभिन्न प्रकार से चलता रहता है—स्वभावतया देर लगी होगी और आधी रात बहुत आगे बढ गई होगी, तब नायिका चौंक कर जागी और मलयानिल के व्यापार मे सहयोग दिया। यहाँ चौंक कर जागने मे कली का व प्रातःकाल प्रस्फुटित होने का अत्यन्त सटीक चित्र उपस्थित होता है। इस प्रकार मलयानिल चलने से इस कविता मे भौगोलिक वातावरण भी संकेतिक हो गया है। प्राकृतिक उपमानो को लेकर काव्य-रचना करने वाले स्वच्छन्दावादी कवि वर्डस्वर्थ ने भी अपनी एक लुसी सम्बन्धी कविता मे लिखा कि 'रोल्ड राउन्ड इन अर्थस डायनल कोर्स, विथ राक्स एण्ड स्टोन्स एण्ड ट्रीज।' यहाँ भी भौगोलिक स्पर्श व्यक्त है। उसने अपनी प्रेयसी को अनन्त व्यापी बना दिया है वहाँ भी पवन और जूही की कली को अमरत्व प्रदान हुआ है। इस प्रकार इस कविता में कवि की सूक्ष्म अनन्त व्यापिनी दृष्टि का आभास मिलता है। वह प्राकृतिक उपमानों की गतिविधियो को एक अन्वेषक की तरह परख कर सच्चे प्रयोक्ता की तरह उनका उपयोग करता है। कवि की काव्य-कला का यह अन्यतम प्रभाव है। इसीलिए निराला की कविता मे प्रकृति भी काव्य बन गई। पन्त और महादेवी जैसे प्रमुख कवि ऐसा करने से प्रायः वंचित रह गए हैं।

प्रस्तुत कविता मे पवन और जुही की कली को नायक-नायिका के रूप मे कल्पित कर जो सौन्दर्य व्यापार और वातावरण उपस्थित किया गया है, वह हमारा ध्यान सबसे तेजी से खीचता है। शेफालिका, वनबेला, प्रेयसी, सरोज-स्मृति, राम की शक्ति पूजा तथा उनके गीतो मे जो सौंदर्य भावना निरन्तर विकसित होती चली गई है उसका मूल 'जुही की कली' जैसी कविताएँ ही है। अतः सौन्दर्य भावना की दृष्टि से इस कविता पर विचार करना अपेक्षित है।

'जुही की कली' के सौन्दर्य-वर्णन मे परिस्थितियो की अनुकूलता बडा काम करती है। सबसे पहले तो यह कि नायक (तरुण ही होगा) वासन्ती दूधिया (चाँदनी पूर्व) अर्द्ध रात्रि मे प्रिया-संग छोड़ कर किसी दूर देश मे पड़ा हुआ है। फिर उसे प्रिया-मिलन के अनेक चित्र घेर लेते है, तब उसमे आवेग की स्थिति उत्पन्न होती है। केलि-रंग विशारदो के अनुसार ऐसा आवेग रात्रि के उत्तर काल मे ही होना चाहिये। अतः यहाँ का वर्णन अत्यन्त सटीक और शास्त्रीय है।

जिन पंक्तियो को लेकर श्री जानकीवल्लभ शास्त्री ने कहा था, कि ऐसी सौन्दर्य-दीप्त-भाषा का प्रयोग आधुनिक हिन्दी मे हुआ ही नही, उसका भी कारण है। नायक के निर्दय होने मे मनोवैज्ञानिक उद्वेग और उत्तेजना का वर्णन है। नायक आया। उसने बंकिम विशाल नेत्र वाली नायिका के कपोल चूमे, प्रतीक्षा की, किन्तु वह नही जागी। इसलिये नायक निर्दय हुआ। ये सारे वर्णन क्रमबद्ध और मनोवैज्ञानिक है। इसलिये अश्लील है।

बाद मे नायिका को जागने का चित्र है। उसने जब देखा कि नायक पास है, तब नम्रमुख होकर हंसी बाद में खिली। इस हंसने और खिलने मे एक प्रतीक्षा और स्वीकृति की छाप है। रात्रि मे जैसे नायिका को भी प्रतीक्षा थी कि नायक आए, इसीलिये वह हँसी किन्तु वह नायिका सीता और शकुन्तला के देश (भारतवर्ष और प्रकृति) की है, इसीलिये 'नम्रमुखी' हुई। इस प्रकार इस

सवेग और मन स्थिति और जग-व्यापार तो प्राय प्रत्येक युग मे एक ही रहते हैं—केवल दृष्टिकोण और प्रतिपादन की दृष्टि से स्थिति बदलती हैं, फलत प्रत्यक युग म साहित्य के नए दृष्टिकोण और रूप सामने आते हैं। यही साहित्य की चिरन्तनता है। प्रस्तुत कविता के साथ भी ऐसी ही चिरन्तनता जुडी हुई है।

प्रस्तुत कविता का क्रियात्मक पथ भौतिक और प्राकृतिक दोनों हैं। भौतिक दृष्टि से पवन (नायक के रूप में) जिस उद्वेग से ग्रस्त होना है वह स्वाभाविक और विस्मरणीय है। किन्तु इस उद्वेग को शान्ति के लिए पवन जिन क्रियाओ को सम्पादित करता है—जसे गिरि कानन, लता-कुज, पवत आदि को पार कर 'जूही की कली' के पास आना, वह एकदम प्राकृतिक व्यापार है। भौतिक जीवन मे किसी नायक को (तुलसीदास को छोडकर) ऐसा व्यापार करना सम्भव नही है। किन्तु जब पवन पवतादि को पार कर 'जूही की कली' पर पहुँचता है तब उसका व्यापार मानवीय है, भौतिक है, और उसके बाद पवन की क्रियाएँ एक विह्वल प्रेमी की क्रियाए हैं। बाद मे 'जूही की कली' की ओर से भी इन क्रियाओ मे योग मिलता है जिसमे भौतिकता का रग और गाढा हो जाता। यानी इस कविता मे प्राकृतिक उपमानों के आधार पर भौतिक जगत का व्यापार वर्णित है। भौतिक जगत की स्थूल क्रियाओ से इस कविता का मात्र इतना ही सम्बन्ध है बाकी सब कुछ प्रकृति का ही है। कविता का पूरा वातावरण प्राकृतिक है। इसीलिए इसे सौन्दर्य प्राकृतिक कविता कह सकते हैं, और गुणो के आधार पर इसमे मानवीकरण का गुण आ गया है।

प्राकृतिक कविता होने के कारण से सम्बन्धित कई बाते हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। कविता जैसे ही हम समाप्त करते हैं, हमे लगता है कि इसमे रात्रि के उत्तराकालीन का वर्णन है। है! समूचा वातावरण रात्रि की निस्तब्धता का है। आभास हमे प्रात काल का भी होता है नम्रमुखी हँसी खिली' से। प्रारम्भ मे ही कवि ने कुशलता से पवन को मलयानिल कहकर उसकी वेला सकेतित कर दी है। प्राय होता ऐसा ही है की मलयानिल रात्र के ढाई-तीन बजे से चलना प्रारम्भ होता है। और यह महज अनुमेय है कि 'जूही का कली (वाटिका में) के पास आने मे कुछ समय लगा ही होगा। फिर पत्राक मे शिथिल सोती हुई जूही की कली' का वर्णन है। निद्रा की अवस्था मे कोई शिथिल तभी होता है जब खूब गाढी नीद आ पडी हो, ऐसा प्राय उत्तरकाल मे ही होता है। फिर चादनी की धुली हुई 'आधी रात' से तो सब कुछ स्पष्ट हो हो जाता है। यानी कवि आधी रात से ही अपनी कविता को प्रारभ करता है और प्रात की किरण फूटने के पहले हो समाप्त कर देता है। कविता का विकास और यात्रा-रेखा यही हैं। प्रात काल सूर्योदय के पहल) का आभास हम 'जूहा की कली' के व्यापार से होता है। अनुभवी विशारदा का कहना है कि पुष्प प्राय रात्रि के उत्तरकाल म (प्रातःकाल म) ही पुष्पित होत हैं—विशेषत जूही, हरसिंगार आदि। इसकी पुष्टि लोकगीत की एक पक्ति से भी होती है—'जूही फुलेला अधिरतिया हो रामा।' इस कविता म भी अन्त म ही 'जूही की कली' हँसो खिली हैं—यानी फूटी है। और प्रात कालोन वायु के साथ डोली है—'खेल रग, प्यारे-सग।"

'जही की कली' के प्रात काल फूटने का प्रमाण कविता के मध्यभाग से भी मिलता है। विह्वल मलयानिल कठिन किन्तु तीव्र यात्रा कर अपनी प्रिया से मिलने आता है। किन्तु उस समय वह दृग बन्द किए शिथिल थी—पत्राङ्क म। अधीर नायक मलयानिल ने नायिका के सुहाग भरे

कपोल चूमे—सारी लता हिंडोले जैसे डोल गई, किन्तु नायिका नही जागी। यानी जूही की कली को मलयानिल रात्रि के उत्तरकाल मे आकर कई बार स्पर्श करता है, किन्तु समय नही होने के कारण वह विकसित नहीं होती (प्रकृति में असमय विकसित होने के उदाहरण नही मिलते)। नायक का प्रयास विभिन्न प्रकार से चलता रहता है—स्वभावतया देर लगी होगी और आधी रात बहुत आगे बढ गई होगी, तब नायिका चौंक कर जागी और मलयानिल के व्यापार मे सहयोग दिया। यहाँ चौंक कर जागने मे कली का व प्रातःकाल प्रस्फुटित होने का अत्यन्त सटीक चित्र उपस्थित होता है। इस प्रकार मलयानिल चलने से इस कविता मे भौगोलिक वातावरण भी संकेतिक हो गया है। प्राकृतिक उपमानों को लेकर काव्य-रचना करने वाले स्वच्छन्दावादी कवि वर्डस्वर्थ ने भी अपनी एक लुसी सम्बन्धी-कविता मे लिखा कि 'रोल्ड राउन्ड इन अर्थस डायनल कोर्स, विथ राक्स एण्ड स्टोन्स एण्ड ट्रीज।' यहाँ भी भौगोलिक स्पर्श व्यक्त है। उसने अपनी प्रेयसी को अनन्त व्यापी बना दिया है वहा भी पवन और जुही की कली को अमरत्व प्रदान हुआ है। इस प्रकार इस कविता में कवि की सूक्ष्म अनन्त व्यापिनी दृष्टि का आभास मिलता है। वह प्राकृतिक उपमानो की गतिविधियों को एक अन्वेषक की तरह परख कर सच्चे प्रयोक्ता की तरह उनका उपयोग करता है। कवि की काव्य-कला का यह अन्यतम प्रभाव है। इसीलिए निराला की कविता मे प्रकृति भी काव्य बन गई। पन्त और महादेवी जैसे प्रमुख कवि ऐसा करने से प्रायः वंचित रह गए है।

प्रस्तुत कविता मे पवन और जुही की कली को नायक-नायिका के रूप में कल्पित कर जो सौन्दर्य व्यापार और वातावरण उपस्थित किया गया है, वह हमारा ध्यान सबसे तेजी से खीचता है। शेफालिका, वनवेला, प्रेयसी, सरोज-स्मृति, राम की शक्ति पूजा तथा उनके गीतो मे जो सौंदर्य भावना निरन्तर विकसित होती चली गई है उसका मूल 'जुही की कली' जैसी कविताएँ ही है। अतः सौन्दर्य भावना की दृष्टि से इस कविता पर विचार करना अपेक्षित है।

'जुही की कली' के सौन्दर्य-वर्णन मे परिस्थितियो की अनुकूलता बड़ा काम करती है। सबसे पहले तो यह कि नायक (तरुण ही होगा) वासन्ती दुविया (चाँदनी पूर्ण) अर्द्ध रात्रि मे प्रिया-संग छोड कर किसी दूर देश मे पड़ा हुआ है। फिर उसे प्रिया-मिलन के अनेक चित्र घेर लेते है, तब उसमे आवेग की स्थिति उत्पन्न होती है। केलि-रंग विशारदों के अनुसार ऐसा आवेग रात्रि के उत्तर काल में ही होना चाहिये। अतः यहाँ का वर्णन अत्यन्त सटीक और शास्त्रीय है।

जिन पंक्तियो को लेकर श्री जानकीवल्लभ शास्त्री ने कहा था, कि ऐसी सौन्दर्य-दीप्त-भाषा का प्रयोग आधुनिक हिन्दी मे हुआ ही नही, उसका भी कारण है। नायक के निर्दय होने मे मनोवैज्ञानिक उद्वेग और उत्तेजना का वर्णन है। नायक आया। उसने वंकिम विशाल नेत्र वाली नायिका के कपोल चूमे, प्रतीक्षा की, किन्तु वह नही जागी। इसलिये नायक निर्दय हुआ। वे सारे वर्णन क्रमवद्ध और मनोवैज्ञानिक है। इसलिये अश्लील है।

वाद मे नायिका को जागने का चित्र है। उसने जब देखा कि नायक पास है, तब नम्रमुख होकर हंसी वाद मे खिली। इस हँसने और खिलने में एक प्रतीक्षा और स्वीकृति की छाप है। रात्रि मे जैसे नायिका को भी प्रतीक्षा थी कि नायक आए, इसीलिये वह हँसी किन्तु वह नायिका सीता और शकुन्तला के देश (भारतवर्ष और प्रकृति) की है, इसीलिये 'नम्रमुखी' हुई। इस प्रकार इस

कविता मे प्राकृतिक उपमानो को लेकर भौतिक काय-व्यापार के साथ जो गति प्राप्त हुई है वह इस कविता के सौन्दय-पक्ष को व्यक्त करती है।

प्रस्तुत कविता के शीषक से ही पाठक और श्रोता के मन म सौन्दयमयी अनुभूतिया जागती हैं। इसे ही कवि-व्यवहार कहते हैं। कवि, विषय को तीव्र करने के लिये, वातावरण को प्रसगानुकूल रखने के लिये प्रारम्भ से ही सजग है। स्नेह, स्वप्न मग्न, अमल कोमल तनु तरुणी, दृग बन्द किये, वासन्ती निशा, मधुर बात आदि ऐसी शब्दावलियाँ हैं जो सौन्दय भावना को जगाने म सक्षम होती है। प्रारम्भ मे शब्दावली विजन वन वल्लरी से ही उसने निस्तब्धता का वातावरण तैयार किया है। इस प्रकार कविता मे शान्ति की अपूव माधुरी व्याप्त है। सबसे बडी बात यह है कि कहीं भी सौंदय की आवेगात्मक स्थिति नही उत्पन्न की गई है। पवन म आवेग जरूर चित्रित है, उसका व्यापार ही विह्वल प्रेमी का व्यापार है, किन्तु पाठक पर उस आवेग का कही कोई प्रभाव नहीं पडता है। इसलिये इस कविता में सौन्दय क साथ शालीनता का अद्भुत मेल हुआ है। इस दृष्टि से निराला खडी बोली के कवियो मे सर्वोपरि हैं। शायद इसीलिये वे 'सरोज स्मृति' म सरोज का साकेतिक किन्तु अत्यन्त स्पष्ट सौन्दय वर्णन करने में सफल हुए हैं। वे सौन्दय वणन मे यह नहीं भूलते कि वे काव्य रचना कर रहे हैं। इसीलिये उनका सौन्दय वर्णन साथक है।

सौन्दय वणन की साथकता मे यहाँ, भाषा कवि की निर्लिप्तता और सद्दृष्टि तथा वस्तु की क्रम बद्ध सयोजना का उत्तरदायी है। साकेतिक रूप स हमने इन तत्वो का विवेचन ऊपर किया है। भाषा की दृष्टि से यह कविता अद्भुत है। सरल शब्दो मे वातावरण तयार किया गया है। तत्सम शब्दो के प्रयोग स काव्य प्रवाह कही खण्डित नहीं होता। इसीलिय भाषा मे एक गरिमा आ गई है। जसे-जैसे कविता बढती है भाषा सरल किन्तु तीव्र और सूक्ष्म होती चली गई है। इस प्रकार इस कविता को भाषा म 'ईथिरियल' गुण समाविष्ट हो गया है। इसलिये यह कहते हुए हम हष का अनुभव करते हैं कि कोमल-कठोर, सरल दुरूह का विचित्र मेल निराला की प्रतिभा की विशेषता है। दुरूह अनुभूतियो को सरल भाषा मे तीव्र रूप मे प्रस्तुत करना निराला की अद्भुत काव्य क्षमता का प्रभाव है। निराला की यह सामान्य विशेषता यहा भी दृष्टव्य है।

'परिमल' की भूमिका मे निराला ने अपनी मुक्त छन्द सम्बन्धी कविताओ के विषय मे मुख्य रूप से कहा है। उन्होने स्वीकार किया है कि मुक्त छन्द' वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है। उनम नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पडता है।... मुक्त-छन्द का समथक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रस्तुत कविता भी मुक्त-छन्द वाली कविता ही है। समूची कविता म एक अन्तरव्यापी लय है और काव्यात्मक अनुभूति से पूर्ण है। जिस प्रकार विधवा, भिक्षुक, सन्ध्या-सुन्दरी आदि कविताएँ काव्य जगत की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ है उसी प्रकार 'जुही की कली' भी एक उपलब्धि है। इसके आधार पर हिन्दी काव्य साहित्य की ऊचाई का ज्ञान होता है। निराला का स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व जैसे इस कविता म व्याप्त है। अत काव्य-रूप की दृष्टि स इस कविता को हम 'लघु प्रगति' की सीमा म रख सकते हैं। यहाँ श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का एक कथन दृष्टव्य है। उन्होंने निराला के लघु-प्रगीतो म निराला जी का काव्य-सौन्दय सर्वाधिक

प्रस्फुटित हुआ है। इनमे दृश्यांकरण के साथ-साथ भावालेखन का तत्व समाहित है। अतएव विशेष प्रभाव सम और सुसम्पन्न बन सके है।'

इस कविता की गति चित्र और संगठन उसे महाकाव्यात्मक गरिमा प्रदान करते है। जैसे एक जीवन चित्रित हुआ है। वह जीवन प्रकृति का है, भौतिक जीवन के प्रथम चरण का है। इसीलिये निराला अपनी इस कविता से समूची छायावादी परम्परा को तोड़ते है। वे जैसे पाठक, कवि और आलोचकों को चुनौती देते है, कि देख लो कविता कहाँ है! निर्बन्ध अभिव्यक्ति का मार्ग खोलने के लिये जैसे निराला इस कविता की रचना करते हों। इस दृष्टि से इस कविता का सामाजिक महत्व है। साथ ही इसके अन्तर मे क्रान्ति का स्वर भरा हुआ है। जो उद्बोधन के रूप में 'जागो फिर एक बार' मे व्यक्त हुआ है। इस प्रकार 'जुही की कली' मे विविध रूप प्रदर्शित हुआ है।

गति की दृष्टि से प्रस्तुत कविता में नाटकीय गति आ गई है। प्रथम अंक के बाद नायक का व्यापार नाटकीय है। इस अंश में कविता वैसे बढी है जैसे दृश्य-काव्य का कोई अंश बढता हो। इस दृष्टि से भी प्रस्तुत कविता बहुत महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार यहाँ संक्षेप मे 'जुही की कली' पर विचार किया है और निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं कि यह निराला की ऐसी रचना है, जिसके आधार पर हम उनके काव्य-बोध और काव्य-वैभव की परख कर सकते है। जिस भाषा मे यह कविता सौभाग्य से हो गई है, उसको इसके रचयिता पर गर्व करना चाहिये।

सरोज-स्मृति

श्री चन्द्रमौलि उपाध्याय

शोक गीत पश्चिमी काव्य-साहित्य की एक मार्मिक विधा है, जिसका आधार कोई युवा-दिवंगत तथा मार्मिकता उस व्यक्ति के अभाव की पीडा हुआ करती है। किन्तु शोक गीतों मे पश्चिम का कवि शोक की सवेदनशील अभिव्यजना तक ही सीमित न रहकर, दार्शनिक आधार शिला पर प्राय स्थित होकर, इहलोक-परलोक की सीमाओ के बीच अमर हुई दिगवत आत्मा के जीवन-सत्यो से किसी सन्तोषप्रद सशक्त जीवन दर्शन की स्थापना भी करता आया है जिसमे कवि तथा दिवगत व्यक्ति से सम्बद्ध युग तथा समाज की चिन्ताओ के शिखर भी ऊपर उठ जाते हैं, जिनके चतुर्दिक कवि का व्यक्तिगत शोक फेनोच्छवसित पयोदधि की भाति वेदना की तिमिराच्छन्न रात्रि मे उमडता हुआ रक्ताभ ऊषा के आगमन पर स्थिर एव शात हो जाता है। यह पश्चिम के सभी शोक गीतो के विषय मे सच न होने पर भी लगभग सभी सशक्त शोक गीतों के विषय मे सच है। इन गीतो के विषय मे एक और तथ्य ध्यान देने योग्य है—दिवगत व्यक्ति के नाम तथा जीवन को न ग्रहण कर कवियो ने पौराणिक या ऐतिहासिक नाम तथा आख्यान लेकर मृतात्मा के इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का प्रतीकात्मक वर्णन किया है, इस कला के कारण मृत्यु तथा उसकी पीडा का पर्दा इतिहास की सुदूरता में अधिक पीडामय तथा रहस्यमय लगने लगता है। इस प्रकार शोकगीत पश्चिमी कविता की एक अत्यन्त 'रोमाण्टिक' विधा है, जिसमे भूत, वर्तमान, भविष्य, इहलोक, परलोक आदि सब व्यथा के सूत्र मे बधे हुए दार्शनिक शिखरो की ओर बढकर उनके पीछे विलीन हो जाते हैं।

'सरोज-स्मृति' हिन्दी का एक मात्र प्रसिद्ध शोकगीत है—जिसे जीवन की समस्त पीडाओं, सघर्षों एव अन्तर्द्वन्द्वों से गुजरे हुए कवि निराला ने अपनी पुत्री सरोज की युवा मृत्यु पर लिखा है। हिन्दी साहित्य मे महान् युग परिवर्तन लाने वाले इस कवि को कितने सघर्षों के पश्चात प्रतिष्ठा तथा मान्यता साहित्य जगत मे प्राप्त हुई तथा कितने आर्थिक-सकटो का सामना करना पडा, सर्वविदित है। जिस समय सरोज का निधन हुआ, वे 'सुधा' की प्रूफरीडरी से लेकर सम्पादकत्व तक के सारे काम ५०) मासिक वेतन पर करते थे और सरोज के जीवन काल भर शायद वे जीविका के लिये अनेक दरवाजे खटखटा चुके थे। कवि के साहित्य की सघर्ष तरणी किनारे पहुँच कर अब कुछ स्थिर होने वाली थी और वह तटवर्ती भूमि पर उतर कर कुछ विश्राम की सास लेने वाला था कि सरोज की चिता मिली। इस समय तक अपने कवि-मन के अनेक और उतार-चढाव की अनुभूतियों, मोहभगों, विद्रोहों आदि की मन स्थितियों से गुजर चुका था। वह अपने जीवन की सघर्षमयता, नश्वरता तथा उदारता आदि को अच्छी तरह पहचानता था, युगीन चेतनाओं से उसका भरपूर नाता हो चुका था और वह एक सम्पूर्ण कवि था जिसने जीवन का सर्वस्व निछावर कर माँ सरस्वती की

अर्चना की थी। यह पुत्री सरोज की मृत्यु थी, जिसे वह अपनी 'जीवित कविता' समझता था। पुत्री के वियोग मे निराला को जो मूक-व्यथा हुई, उसी का उछ्वास है 'सरोज स्मृति'। एक सर्वाङ्ग शोकगीत लिखने की दृष्टि से नही, वल्कि एक कथा की मार्मिक तथा यथार्थ अभिव्यक्ति की ही दृष्टि से यह कविता लिखी गई होगी, जिसे अपने-आप शोकगीतात्मक संवेदन प्राप्त है, यद्यपि छन्द स्वच्छन्द तथा अनुभूतियों का रूप अत्यन्त यथार्थवादी तथा कटु होने के साथ-साथ करुण है, जिससे पाठक मे करूणा तथा सहानुभूति का उद्भव होता है। एक व्यथा कवि के मन मे हमेशा है कि वह सरोज के लिये कुछ नही कर सका। कविता के दार्शनिक पक्ष का जहाँ तक प्रश्न है, यह पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य है :—

> चढ़ मृत्यु तरणि पर तूर्ण चरण
> कह 'पितः, पूर्ण आलोक वरण
> कहती हूँ मैं, यह नही मरण
> सरोज का ज्याति. शरण-तरण।

किन्तु 'सरोज-स्मृति' ने निराला जी की दार्शनिकता का धरातल न पाकर उनके जीवन के वास्तविक तथा कटु सत्यो के व्यावहारिक पक्षो तथा व्यावहारिक चिन्तनो का अधिक सस्पर्श पाया है और इसलिये हमें इस कविता मे केवल सरोज के नही, अपितु कवि के भी व्यक्तित्व का पूर्ण दर्शन होता है। जहाँ आत्मज की साक्षात् मृत्यु समक्ष खडी हो, वहाँ कवि का मन ही बोल सकता है बुद्धि नही, क्योकि निराला ऐसे मौको पर पलायनवादी नही, जो दर्शन की ओट सिर्फ इसलिए लें, कि उन्हें मृत्यु और कटुता का विस्मरण चाहिए। इसलिए कविता के अन्त मे स्वर धीमा पड़ गया है, व्यथा तीक्ष्ण हो गई है और आकुल मन से कवि ने पुत्री का तर्पण कर दिया है।

'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'वनवेला' और 'गीतिका' की शृंखला के उत्कट आत्म-निवेदन उनकी नाटकीयता आदि मे डूवते-से लगते है। हम मुख्य पात्र से कवि के तादात्म्य को एकाएक नही समझ पाते। किन्तु वास्तव मे इन सभी मे निराला का संघर्षशील व्यक्ति उत्तम शिखरो पर छँटते हुए कुहासे के बीच चढता गया है और वह सबसे ऊँचे शिखर 'राम की शक्ति पूजा' पर अन्ततः पहुँचा है। 'राम की शक्ति पूजा' मे मानव-मन पराजित होकर भी पराजय स्वीकार नहीं करता, युद्ध तथा विजय के लिये पुनः चेष्टा करता है। उस कविता का यही आशावादी सन्देश है। 'सरोज स्मृति' में एक दूसरा नायक है, जो 'राम की शक्ति पूजा' के राम की तरह अपने से प्रवल शत्रु का युद्ध कौशल देखता है, 'देखता रहा मैं खडा अपलक वह शरक्षेप वह रण कौशल युद्ध के वाद का सन्नाटा है—

> व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
> क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कण्ठ फल

'राम की शक्ति पूजा' मे श्यामा अवतरित होकर राम के वदन मे लीन हो गई है। 'सरोज-स्मृति' मे कवि पर श्यामा की छाया पड़ती है—

> वांछित उस किस लांछित छवि पर
> फेरती स्नेह की कूची भर

सघपशाल निराला का उस समय तक का जीवन अपनी सारी वेदनाओ, अदम्य उद्धतपन तथा सरोज की मृत्यु से उपजी करुणा को लेकर 'सरोज-स्मृति' मे लडखडाता हुआ-सा लगता है। दु ख इतना घनीभूत हो गया है कि शक्ति जवाब दे गयी है। युद्ध भूमि का पूरा चित्र कवि की करुण पलको के नीचे उतरा हुआ है। सरोज का शव पाश्व म है और कवि के हाथ शिथिल हो गये हैं। इस व्यथा से अभिभूत निराला ने कितनी निबलता महसूस की होगी, यह इन पक्तियो से स्पष्ट हैं—

तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार—
जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह अक्षम अति, तब में सक्षम
तारूँगी कर गह दुस्तर तम ?

फिर आगे —

धन्ये में पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका।

जीवन के 'स्वाय-समर' म कवि हमेशा पीछे रहा है, क्योकि वह 'क्षीण का न छीना कभी अन्न' की भावना से जीवन की डगर मारता आया है और उसम अन्तर्निहित विश्व पीडा को समझता है, इसलिये सरोज को अनुचित ढग से कमाई हुई सम्पत्ति से 'पहना कर चीनांशुक रख सका न—दधिमुख'। ध्यान देने की बात यह है कि विश्व इसी व्यापक पीडा तथा शोषण की अनुभूति का परिणाम है कि कवि निराला ने वस्त्रहीन रह कर भी कितने भिक्षुको तथा दरिद्रो को रजाई ओढ़नो दी है।

जीवन के महासमर म उन्होने जो भी कटु अनुभूतियाँ की हैं, उनके प्रति वे इस कविता मे पूर्णत सजग, ईमानदार तथा कटु रहे हैं। यत्र-तत्र व्यग्य का वार बहुत तीक्ष्ण होकर व्यक्त हुआ है, किन्तु उसम व्यथा का चित्रण हमें सरोज की स्मृति से दूर कभी नही ले गया है, लगता हैं जसे सरोज बैठी है और भावुक मन पीडित कवि अपनी सारी कथा जो उसे उसके बचपन म नहीं सुना सका, अब सही-सही सुना रहा है। फिर भी कुछ अनकहा रह गया है—"क्या कहूँ आज जो नही कही।" किन्तु निराला अपने जीवन म क्या रहे देखना हो, तो इन पक्तियों को उठाया जा सकता है—

खण्डित करने को भाग्य अक
देखा भविष्य के प्रति अशक
कुण्डली दिखा बोला—ए—लो
आई तू दिया। कहा गेलो
सग्रत किया मैंने असिन्न
जिम ओर कुण्डली छिन्न-भिन्न

पत्नी की मृत्यु के पश्चात् पुनर्विवाह पर 'सासु जी' द्वारा जोर दिये जाने पर और भाग्य-अंक-कुण्डली में दो विवाह लिखा देख कर निराला ने कुण्डली बच्चो को खेलने के लिये दे दी। उसने उसे फाड़ दिया, और निराला ने पुनः कभी विवाह नही किया। भाग्य की रेखाओ को भी बदलने की शक्ति निराला के व्यक्तित्व मे व्याप्त है। लेकिन 'सरोज स्मृति' मे यह पर्वत डिलाने वाला व्यक्ति कन्या के निधन से शिथिल हो गया है। वात्सल्य अपनी पूरी शक्ति लगाकर करुणा की वल्लरी पर चढ कर रो गया है।

अपने जीवन पर विहंगम-दृष्टि डालते हुए निराला ने सम्पादको तथा कान्यकुब्जो पर जम कर व्यंग्य किया है। वे ऐसे हिमांचल नही कि सामाजिक रूढियो के प्रति अन्धतापूर्वक आस्थावान होकर 'ऐसे शिव से गिरिजा विवाह' कर दें। इसके अतिरिक्त युगीन तथा चिन्ताओं के प्रति घूमकर कवि अधिक व्यापक नही हो पाया है, पास मे बैठी हुई सरोज की दिवंगत आत्मा उसे अपने पास से नहीं हटने देती।

सरोज, दुःख तथा निर्धनता की एक पुत्री है, जिसका जीवन पिता से दूर, माता के अभाव में, नानी के यहाँ बीता है। उसकी नानी तथा 'मामा-मामी' उसके प्रति अगाध 'प्यार' रखते हैं। भाई से लड़ते-झगड़ते, मानते-मनाते, नानी के घर मे वह इस प्रकार बड़ी हुई जैसे कोई विजन-वल्लरी हो। सभ्य तथा शिष्ट कहे जाने वाले आज के समाज से दूर सरोज प्रकृति तथा ग्रामीण परिवेश मे अपने आप बढ कर बड़ी हुई, स्वभाव-मन-शरीर तथा संस्कारो का स्वयं स्वाभाविक विकास हुआ। वह निर्दोष सौन्दर्य, सत्य तथा सीधी-सादी अनुभूतिमयी कविता की प्रतीक है। कवि ने उसे साथ ही 'गीते' नाम से सम्बोधित करके उसके जीवन कर्म की निःसंगता पर भी बड़ा मार्मिक इंगित किया है। कवि कभी-कभी जाकर उसे देख आता है और उसी के लिये उसने पुनः विवाह नही किया है। 'उपार्जन मे अक्षम' कवि अपने जीवन का अकेला पंथ चलाता गया और सरोज नानी के घर बडी होती गई। स्वर फूटा, शिक्षा का प्रबन्ध न होने पर भी पिता से प्राप्त सहज स्वरमयता फूट पडी--

> हर पिता-कण्ठ की दृप्तधार
> उत्कलित रागिनी की बहार
> बन जन्म सिद्ध गायिका तन्वि
> समझा मैं—क्या संस्कार प्रखर।

सरोज की शिक्षा-दीक्षा उसे क्या बनाती, ऊपर की पंक्तियों मे स्पष्ट है। 'मुक्तछन्द' अबाध गति से लिखता हुआ कवि 'हिन्दी के स्नेहोपहार' को ढोता है और सरोज युवा हुई—'लावण्य भार थर-थर।' पुत्री की युवावस्था तथा शृंगार, विवाह आदि का जो वर्णन निराला जी ने किया है, वह 'सरोज-स्मृति' के वात्सल्य को अत्यन्त उदात्तता तथा स्पष्टता प्रदान करता है एवं उसके करुणापक्ष को अत्यधिक निखार देता है। पति-गृह जाती हुई सरोज मे उन्होने उसकी मां का प्रतिबिम्ब देखा है और नारी पुरुष के शाश्वत रागात्मक सम्बन्ध की ओर इंगित किया है। निराला ने उसे जो सम्बोधन दिये हैं—'गीते, शुचिते, जीवित कविते, धन्ये' आदि। उसकी सारी कोमलता

इन सम्बोधनो मे निहित होकर उसकी मत्यु को अत्यन्त हृदय-स्पर्शी बना देती है। नियति के निमम आघात से निरुपाय हुआ कवि अन्त मे कहता है—

कन्ये गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण।

किन्तु कवि ने पूरी कविता मे दुर्दैव या दुर्भाग्य के प्रति कही घुटने नही टेके हैं, बल्कि 'खण्डित करने को भाग्य अक' की बात कही है। वेदान्ती कवि सचमुच उसकी दिवगत आत्मा को 'ज्योति शरण' मानता है।

सरोज-स्मृति हिन्दी में अपने ढग की अनूठी तथा कारुणिक कविता है, जिसके अग-प्रत्यग में सरोज की कोमलता तथा कवि के जीवन के सघर्षों की आँधियाँ एक साथ प्रखर होती हैं। निराला की आत्मनिष्ठा तथा समाजनिष्ठा दोनो वृत्तियाँ उसमे सजग रही हैं, यद्यपि वह अपने व्यक्तिगत जीवन तथा स्वाभाविक अनुभूतियो से परे युगचिन्ताओ के दार्शनिक शिखरो पर नही चढ़ा पाया है। यथार्थ का पक्ष ही सही अनुभूतियो के धागो म बँधा हुआ उतरता गया है, किन्तु ऐसे भी दिलतोड सत्य होते हैं जिसकी चर्चा करते कण्ठ रुँध जाते हैं। सरोज की परिचर्या का समुचित प्रबन्ध अर्थाभाव में नही हो पाया था, इसकी चर्चा कवि नही कर कर सका है और यह कह कर समाप्त कर देता है—'क्या कहूँ आज जो नही कही।'

यमुना के प्रति

प्रो० निर्मल तालवार

यमुना की स्वप्निल आंखो मे, आँखो की पल्लव छाया मे यौवन की माया-सा मोहन का ध्यान स्पष्ट है। कवि-मन उन्हे (आँखों को) देखता है। वैसे ही जैसे गन्ध-लुब्ध मुग्ध-हृदय मधुप-बाल कुसुमों की सुषमा को वार वार देखता हो। ऐसा है लावण्य यमुना की आंखों का—वे आँखें भाव-शून्य नही है, केवल सुन्दर ही नहीं है, वे रसवत्ता से पूर्ण है, स्वयं भरी हुई है और दूसरों को मुग्ध भी करती है—सहसा राधा की, मोहन के सम्मोहन मे डूबी हुई आँखों का विम्ब यमुना में साकार हो उठता है।

यमुना की लहरो पर प्रतीक्षा मे लीन पथिक-प्रिया की आकुल-व्याकुल तान मुखरित हो उठी है। पर क्या वह प्रतीक्षा पूर्ण हुई? नही न वंशीधर; न नटनागर, और श्याम-विरह मे विभ्रान्त गोपियां आँसुओं मे खो गई। यमुना ने देखा था, राधा और कृष्ण का अपने तट पर मिलन; यमुना ने देखी थी गोपियो के साथ कृष्ण की आनन्दमयी लीला—तभी तो वह समझ रही है। विरह विधुरा गोपियो का अवसाद और राधा की तीव्र वेदना। इसीलिए तो उसकी लहरों पर आकुल-तान है। लहरें प्रतिविम्ब हैं; विम्व है गोपियो के अधर।

यमुना का स्वर मन्द होना नही जानता? उसका संगीत अपनी मधुरता में अक्षुण्ण रहता है। पर साथ ही वह वर्तमान का स्वर नही है। यही कवि ने तादात्म्य अनुभव किया है, यमुना के साथ। याद है उसे भी अपने अतीत की आनन्दमयी घड़ियाँ। वह वर्तमान मे अतीत की मधुरता खोजता है, वही यमुना भी करती है—

> निर्निमेष नैनों में छाया किस विस्मृत-मदिरा का राग
> जो अब तक पुलकित-पलकों से छलक रहा यह मृदुल सुहाग?

वह अतीत कवि का ही नही, यमुना का ही नही, केवल राधा का नही, सभवतः सृष्टि मात्र का है। यही महाकवि निराला की प्रतीक योजना स्पष्ट हो जाती है। यमुना प्रतीक है। चिरन्तन प्रेमी-हृदय का। वह शाश्वत है। काल का आवरण उसके विम्व को धूमिल करने मे असमर्थ है। 'अलस-प्रेयसी-सी प्रिय की शिथिल सेज के पास अतीत के गूढ विलास की कहानी ही यमुना की अगणित असंख्य लोल लहरिया दोहरा रही हैं। ताल-ताल के कम्पन मे अतीत के ही गान भास्वर हो रहे हैं। उस सृष्टिगत अतीत से ही मिलने के लिए क्या यमुना की धारा नही बढ रही है?

> किस अतीत-सागर को वहते खोल हृदय के द्वार
> बोहित के हित सरल अनिल-से नयन-सलिल के स्रोत अपार?

अतीत विस्मृति, से किसी को स्मृति, किसी का प्यार और किसी का मादक राग स्पन्दित और रोमांचित हो जाता है, अभिसार निशा की उत्सुकता मूर्त हो उठती है और साथ ही युग-युग का सामाजिक कठोर वातावरण प्रेम की मूर्ति को घेर लेता है। लोकमर्यादा ने राधा के प्रेम पर भी। वह चित्र भी यमुना के वक्षस्थल पर उभर आता है—

> कि नियमों के निर्मम बन्धन जग की संसृत का परिहास
> कर, बन जाते करुणा-क्रन्दन ? कह, वे किसे पाश ?

यह रहस्य जगत का ही है—कलियों की मुदित पलकों में अधीर गन्ध का सिसकना, पल्लव-दृग-नीर का ढुलकना जगत के रहस्य का ही उद्घाटन करता है। कवि का प्रेम, प्रेम-दर्शन से भी यह स्पष्ट हो गया है। मानव के आनन्द का प्रधान-केन्द्र है, प्रेम शाश्वत और चिरन्तन है, कालातीत है, निर्मम बन्धनों के बाद भी उसकी गति अबोध है। यमुना इसी प्रेम की चारणी है। न जाने प्रेम के कितने संदर्भ उसकी लहरों में समाये हैं, न जाने कितनी प्रेम गाथाएँ उसकी उर्मिल-लहरों में समाये हैं, न जाने प्रेम गाथाएं उसकी उर्मिल लहरें निरन्तर गाती हैं। समीर लघु-स्पर्श भी उसके वक्ष स्थल के सुप्त गान को छेड़ने में समर्थ है। प्रेम ने यमुना में ही आश्रय और आधार पाया है, तभी तो कवि प्रश्न करता है—

> उमड़ चला है कह किस तट पर
> क्षुब्ध प्रेम का पारावार ?
> किसी निकुंच वीचि चितवन पर
> अब होता निर्भय अभिसार ?

और जिनके 'क्षुब्ध प्रेम' को आधार नहीं मिला, जो यही कहती रही—'अँखियाँ हरि दरसन की भूखी' अथवा 'हम तो कान्ह केलि की भूखी' उनको भी यमुना से ही सहानुभूति मिली। यमुना से उनकी दशा छिपी नहीं है—बाट जोहती प्रेमिकाओं को, उनके भटकते मृग-दृगों को और मरु-मरीचिका में विभ्रान्त, आकाश में खोई उदास दृष्टि को यमुना ने देखा है। उनकी 'विगलित विकल वासनाओं ने क्रन्दन-मलिन पुलिन का रोर' श्रव्य है। यमुना का सरस प्रवाह उसी ओर बह गया है और इसी प्रवाह के साथ प्रेमियों के नयनों का मनोहर स्वप्न उसके हृदय सरोवर का इन्दीवर, निस्सीम व्योम का चन्द्र तारा की निर्मल छवि, प्राची का गौरव रवि और कवि का उत्साह-सभी उसी अतीत में खो गये हैं। अतः संयोग के संदर्भ ही नहीं वियोग के भी अनेक रूप कालिन्दी की श्यामल लहरों में छिपे हुए हैं। श्यामवर्ण में उभरते चित्रों को देख कर कवि का मन विकल हो उठता है, यह भाव उसे अस्थिर कर देता है—

> खींच रहा है मेरा मन वह कि अतीत का इंगति मौन
> इस प्रसुप्ति से जगा रही तो बता, प्रिया सा है वह कौन ?

और 'प्रिया-सी' के साथ ही कवि को प्रिया से प्रिया सी लिपटी हुई अनेक अनेक स्मृतियाँ जाग उठीं। वह सहसा सजीव कम्पन युत सुरभि समीर, मधुर वितान, वह सहसा स्तम्भित वन (स्थल), वह कम्पन-चपल यौवन-मन, वह निश्छल सहज चितवन पर प्रिय का अचल अटल विश्वास आदि न जाने कितने चित्र सजग हो उठे और मूर्त हो उठी प्रेम की प्रतिमा—

वह स्वरूप-मध्याह्न तृषा का
प्रचुर आदि रस वह विस्तार,
सफल प्रेम का जीवन के वह
दुस्तर सर-सागर का पार।

वह अतीत अब नही रहा। कवि विकल होकर यमुना से, यमुना की अनेक प्रेम कहानियों से पूछता है—

कहाँ यहाँ अस्थिरतृष्णा का
बहता अब वह स्त्रोत अजाम ?
कहाँ-कहाँ अधिकृत अधरों पर
उठता वह संगीत !

पर क्या उसका ही अतीत खो गया है। नही ! प्रतिध्वनि गूँज उठती है—राधा का अतीत भी खो गया, सूर के रूप मे वाग खो गये और यमुना ने जिन प्रेम गाथाओं को गाया है, वे सब अतीत का अंग बन गई। कवि का अचल मन भी गिरि के मन की तरह द्रवित हो उठा; और गिरि के उर से सन्ताल गल-गल कर बहने लगे, यमुना के तटो से अटक रहे थे, सिर पटक कर प्रलाप कर रहे थे, अब वे भी सागर की ओर वह गए, और

फिर फिर फिर भी ताक रहे हैं,
कोरों में निज नयन मरोर

गिरि के निषाद भी वह गये। यमुना के सूने तट पर,

एक रागिनी रह जाती जो
तेरे तट पर मौन उदास
स्मृति सी भग्न भवन की, मन को
दे जाती अति क्षीण प्रकाश।

कवि को सृष्टि के 'अतीत एवं अपने अतीत के साथ सहसा ध्यान आता है, क्या यमुना अपने अतीत का भी गान गाती है ? पर तादात्म्य का सफल रूप यही है जहाँ यमुना का अतीत और कवि का अतीत अपनी सीमित सीमाओं से मुक्त होकर अभिन्न हो गये है।

इस भाँति छायावाद के प्रमुख कवि निराला की कविता 'यमुना के प्रति' अपने शिल्प विधान मे, अपने भाव मे, अपने रूप मे और अपने रस मे अद्वितीय है। यह कविता कल्पना, प्रतीक और चित्र-पद्धति की दृष्टि से छायावाद को सर्वश्रेष्ठ कविताओ मे गिनी जाती हैं, चाहिये भी। यमुना को वस्तुतः कवि ने एक प्रतीक के रूप मे ही ग्रहण किया है जो अपनी मूलतः निरपेक्ष पर तत्वतः काल प्रवाह की सापेक्ष स्थिति का द्योतक है। यमुना अपने द्वितीय प्रतीक अर्थ मे 'रोमांटिक मेलंकली' की द्योतक है जो सन्ताप और वेदना के साथ काल के अखण्ड प्रवाह में अतीत वर्तमान दोनो को अपनी लहरों में आयात करती हुई जीवन की सम्पूर्णता के साथ अनागत भविष्य की ओर

बढ़ती जाती है। काव्य म जिसे आचार्य शुक्ल ने 'संश्लिष्ट योजना' और आधुनिक पाश्चात्य शास्त्रीय समीक्षा म 'गेस्टाल्ट' मनोविज्ञान म जिसे समग्र कल्पना कहा है, यमुना उस समग्र के कारण अपने 'सनातन रूप' की सृष्टि करती है। प्रतीक निर्माण मे कवि की अन्तरदृष्टि दो प्रकार का विधान करती आई है—प्रथम तात्कालिक और द्वितीय सनातन। यमुना की सनातनता उसकी सार भौमिकता म विद्यमान हैं। जहाँ वह प्रेम की शाश्वत तरगवाहिनी है, अपरिमित आतुर-व्याकुल सुरभि निश्वास सम्पन्न असख्य भावोर्मियों की मञ्जूषा।

निराला यहाँ पर विशेष से आबद्ध होकर भी विषय की विशेषता तक ही बधे नहीं रहते। यही कारण है कि जीवन के अतल-तल से उठ कर यमुना उसकी सम्पूर्ण परिधि म समा जाती है, और यही काव्यगत समग्र-कल्पना का स्वरूप है। समग्र कल्पना की उत्कृष्टता भाव-सकलन म निहित है। यह सकलन सुनिर्धारित और सुनियोजित होना चाहिये। कवि कल्पना-व्यापार द्वारा अपने समस्त भावो को एक तारतम्य देता है, इसी से छायावादियों ने कल्पना को अत्यधिक महत्व दिया और उसे प्राणशक्ति माना। भावों का यह केवल मात्र प्रदर्शन न रह कर सश्लिष्ट और सुनियोजित अभिव्यजना बन जाता है। इसी नाते काव्य रचना के इस क्षण को कवियो ने अपनी भाषा मे परिपूर्ण (पल्लव—पन्त) कहा है, जहाँ वह देश, काल और वस्तु की सकीर्ण सीमा से ऊपर उठकर सज्ञातीत, कालातीत और देशातीत हो जाता है, एव चिन्तन और भाव बोध आंशिक न रह कर अखण्डता प्राप्त कर लेता है। रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' अपनी इस समग्र कल्पना शक्ति और सश्लिष्ट योजना के लिये सुविख्यात है। कवि उर्वशी को एक सत्ता के रूप म नही परन्तु मूलत एक इकाई के रूप मे चित्रित करता है। निराला की यमुना भी यही विशिष्टता रखती है। निसर्गत एक के बाद एक उठते हुए भाव कवि को केवल विभोर ही नही करते परन्तु उसके समक्ष एक चित्र भी उपस्थित करते हैं और जल प्रपात की भाति कलकल करते हुए वे आगे बढते जाते हैं। और कवि यमुना की विषय विशेषता से ऊपर उठ कर एक अतीन्द्रीय पर सनातन सृष्टि करने म सफल होता है। और चू कि कवि का रूप विधान सापेक्ष अर्थात विषय और वस्तु म साधार होने के कारण दुरूहता और अप्रषणीयता से बच जाता है।

छायावाद मे लहर, इच्छा का, सरोवर या समुद्र, हृदय या मन का तथा क्षितिज, समीपता पर अप्राप्य का प्रतीक है। यमुना अपने सांकेतिक अर्थबोध म अनवरत कर्म सम्पन्न एक अप्रतिहत क्रिया है जिसके अन्तराल मे कवि भूत और वर्तमान को स्पष्ट कर देता है - मिलन, विरह, उल्लास, विलास, अभिसार, प्रतीक्षा शोक, विषाद सब कुछ जैसे शतत रूपो मे मूर्त होकर हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। सांकेतिक अर्थबोध की शक्ति मानसिक सत्य म विद्यमान रहती है, दृश्यमान सत्य म नही। 'यमुनाके प्रति' कविता अतएव मानसिक सत्य को लेकर चलती है। दृश्यमान सत्य को लेकर नही। अनेक आलोचकों ने छायावाद-काव्य को मानसिक सत्य के कारण दुरूह और अस्पष्ट बतायाहै, कारण उसमे सहजता एव प्रेषणीयता के अभाव म कवि-कर्म केवल भावात्मक ऊहापोह मात्र रह जाता है। परन्तु 'यमुना के प्रति' कविता म यह दोष किंचित मात्र भी नहीं है, कारण अपने रूप विधान में वह एक 'भाव कथात्मक काव्य' है जिसे प्राचीन शास्त्र की दृष्टि से निबन्ध काव्य का एक आधुनिक संशोधन स्वीकार कर सकते हैं। भावकथात्मक

काव्य का प्राण भावबन्ध होता है । 'यमुना के प्रति' कविता अर्थ से इति तक भाव में बँधी हैं । वह भावनाजन्य न होकर भावजन्य है । इस भावकथा की विशेषता उसका बिम्ब-विधान है, केवल उसका शब्द विधान नही भाषा का अलंकरण शैलीगत होता है—पद्धति मूलक पर भाव का अलंकरण विषय की अंतरंग विशेषता और नवीन चिन्तन-पद्धति प्रस्तुत करता है । मानवीकरण, विशेषण निपर्यय आदि भाषा के अलंकरण के अंग हैं । भाव का अलंकरण कल्पना-प्रतीक और चित्र पद्धति द्वारा समझा जा सकता है । छायावादी कवियों की सारी प्रेरणाओं का मूलस्रोत और आधार है—प्रकृति । उनके लिए सर्वस्व नहीं है पर प्रकृति के विना उनके भाव निराधार से हो जाते हैं । भावों का अलंकरण प्रकृति चित्रण की वह विशेषता है जो सभी कवियो में परिलक्षित है, पर भावों के अअंकरण की पद्धतियाँ भिन्न हैं । निराला ने 'यमुना के प्रति' कविता में कल्पना की विशिष्टता और प्रकृति-चित्रण की नवीन पद्धति का अनुसरण किया है । निराला का प्रकृति-चित्रण प्रसाद की भाँति तटस्थ और तात्विक; एवं महादेवी की भाँति आत्म-परक एवं आरोप-प्रत्यारोप मूलक है । 'जूही की कली' हो या 'वेला', 'वादल' हो या 'वसन्त-वयार' निराला सदैव ही अपने प्रकृति-चित्रण में संशिलष्ट और तादात्म्य मूलक रहे । यमुना चेतन और अचेतन दोनो है । वह साक्षी भी है और साक्षात् भी । सापेक्ष पर निरपेक्ष भी । वह है—जीवन की मूल-वृत्ति का प्रमाण और उसकी परिचायिका, काल की अवाध संगति अतिशयोक्ति से बच जाता है और उसके वर्णन की स्वाभाविकता सुनिर्दिष्ट और सुप्रवाहित रहती है । वह सृष्टि ही नही, उस सृष्टि की व्याख्या भी प्रस्तुत करता है । 'यमुना के प्रति' कविता में इसी तादात्म्य वृत्ति का स्वरूप परिलक्षित है ।

अत: 'यमुना के प्रति' कविता की सारभूत विशेषताएँ हैं, अर्थमूलक प्रतीक विधान, समग्र कल्पना, मानसिक सत्य, भाव कथात्मक काव्य, विशिष्ट कल्पना, प्रकृति-चित्रण की तादात्म्य पद्धति और संश्लिष्ट चित्रयोजना के साथ प्रकृत निरूपण । इसकी तुलना किसी भी श्रेष्ठतम कविता से की जा सकती है । यह कविता अपने शिल्पविधान मे, अपने भाव में, अपने रूप में और अपने रस में अद्वितीय है ।
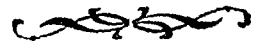
परिमल

प्रो० धीरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव

निराला उस विषपायी शिव के समान रहे हैं, जिसने स्वयं गरल-पान कर दूसरों को अमृत का अवदान दिया। नवीनता और मौलिकता प्रत्येक युग में उपेक्षित और दण्डित होती रही है, पर निराला को जैसे और जितने आघात सहने पड़े वे भी मानवता के इतिहास में सम्भवतः अतुलनीय ही बने रहेंगे। कवि होने का इतना बड़ा दण्ड शायद किसी और को नहीं मिला। उन्हें अपने जीवन काल में उपेक्षा और भर्त्सना मिली और आज मृत्योपरान्त उन्हें निष्क्रिय श्रद्धा और निरर्थक सहानुभूति भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

निराला उन कवियों में नहीं हैं, जो प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने पर अपने को दुहराते चलते हैं और क्रमशः चुकते जाते हैं। निराला की विभिन्न नामधारी पुस्तकों में इतना 'साम्य' भी नहीं है कि एक के अभाव में दूसरी समझी जा सके। जो निराला को ठीक से, तटस्थभाव से, ऐतिहासिक क्रम से पढ़ना चाहेगा, निराला काव्य की भव्य उच्चता का स्पर्श प्राप्त करना चाहेगा उसके लिए प्रथम सोपान 'परिमल' ही होगा। प्रकाशन की दृष्टि से भी यही वह पुस्तक है, जिसने निराला को नए काव्य की शक्ति रूप में पाठकों से परिचित कराया[1]। वैसे परिमल का प्रकाशन-काल भी विवाद का विषय बन गया है[2]। डा० बच्चन सिंह के अनुसार संगृहीत कविताओं की रचना तिथियों को देखते हुए इसे प्रथम काव्य-संग्रह माना जा सकता है। 'परिमल' सच्चे अर्थों में निराला का प्रथम काव्य संकलन है।

यह खेदजनक सत्य है कि परिमल' के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के परस्पर विरोधी-विचार एवं तथ्य हिन्दी आलोचना क्षेत्र में प्रचलित हैं। एक ओर यह कहा गया कि 'परिमल' के द्वारा निराला ने उस क्रान्ति को विस्तार दिया जिसका सूत्रपात 'आंसू' द्वारा हुआ था और 'पल्लव' ने जिसे गहराई दी थी,[3] वहीं यह भी कहा गया कि 'परिमल' न तो कभी पाठ्य पुस्तक रही और न सौ-पचास उदीयमान कवियों को छोड़कर और कोई उसे पढ़ने जाता है[4]। जहाँ तक दृष्टि कोण का वैभिन्य है, वह तो साहित्यालोचन में सदैव रहा है, और शायद यही उसकी सार्थकता भी है, किन्तु तथ्यों को विकृत करना न साहित्यिक ईमानदारी है, न इतिहास का

१—निराला एक अध्ययन—डा० रामरतन भटनागर

२—प्रायः सबने 'परिमल' का प्रकाशन १९३० में माना है पर डा० बच्चन सिंह ने १९२९ ई० को ही 'परिमल' का प्रकाशन वर्ष माना है। (हि० सा० कोष-भाग २ पृ० ३११)

३—निराला एक अध्ययन—डा० राम रतन भटनागर, पृष्ठ ८७

४—'चक्रवाल' की भूमिका—डा० रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ० २२

न्याय ! जिन दिनों 'चक्रवाल' की भूमिका लिखी गई थी, उन दिनो भी 'परिमल' पाठ्य-क्रम में थी और अब तो कई जगह है—उस विश्वविद्यालय में भी है, जहाँ दिनकर जी कभी छात्र थे। वस्तुतः निराला का अध्ययन बिना 'परिमल' के हो ही नही सकता। अतः यदि दिनकर की बात मान ले तो इसका स्पष्ट अर्थ यही होगा कि निराला-काव्य ही सौ-पचास उदीयमान कवियों के अतिरिक्त औरो ने नही पढा। यदि यह सत्य है तो हिन्दी कवियो की इससे अधिक कटु आलोचना दूसरी नही हो सकती। क्योकि 'परिमल' निराला का प्रथम संकलन ही नही प्रतिनिधि संकलन भी है और निराला-काव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ बीज अंकुर रूप मे 'परिमल' में ही विद्यमान हैं।

'परिमल' मे कविताओ से पूर्व कवि-लिखित 'कैफियत से भरी हुई' वृहत भूमिका भी है। वैसे, आदतन-यह चीज निराला को नापसन्द थी। पर इस कविता सग्रह से कम महत्वपूर्ण इसकी भूमिका नही है। यों, 'पल्लव' की भूमिका छायावाद का 'मेनिफेस्टो' कही जाती है, और परिस्थितिवश या आक्रोश-प्रसूत, पन्त की स्थापनाओ ने हिन्दी के कवियों-पाठकों आलोचको के बहुत सारे भ्रम दूर किए, विचारो का कुहासा छँटा, आशकाओ का धुधलका साफ हुआ, पर 'परिमल' की भूमिका एक चरण आगे है। उसने करवट लेती हुई नई कविता[1] के स्वरूप को उभार कर सामने रक्खा।

उसमे व्यंग का स्वर नही, सिंहनाद है, कुछ मणिधर की फूँत्कार है, पौरुष दीप्त कवि-कंठ का उद्‌घोष है। मुक्त छन्द का यह प्रथम तात्विक विवेचन था, जिसके अभाव मे उसे उतनी लोकप्रियता नही मिली होती जितनी आज उसे प्राप्त है। उसमें खडी बोली कविता की विजय का तूर्यनाद है। कविता-मात्र को मनुष्यता का पर्याय मानने का आग्रह है और विशेषतः हिन्दी कविता के भावी स्वरूप की भविष्यवाणी है। यह एक भावुक किशोर का विनम्र तरलोच्छ्वास नही एक प्रौढ कवि के आत्म-सम्मान, मौलिकता और दायित्व बोध का उद्‌घोष है।[2] निराला का यह दुर्भाग्य था कि वे आजीवन गलतफहमियो के शिकार रहे, पर मेरा अनुमान है कि यदि उन्होने यह भूमिका न लिखी होती तो ये और भी पहले पागल हो गए होते। आश्चर्य तो यह है कि उनके समसामयिको की तरह ही उनके परवर्त्तियो ने भी इस भूमिका को पढ़ने-समझने का कष्ट नही किया।

परिमल की भूमिका मे कवि को आलोचक और पण्डित बनना पड़ा है। यह भूमिका इस धारणा का भी खण्डन करती है कि असफल कवि आलोचक हो जाता है ? हाँ, इसके आधार पर यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि विद्रोही कवि को आलोचक बनना पडता है। जो समय से आगे चलते हैं, उन्हे अपनी सफाई मे कुछ न कुछ कहना लाजिमी हो ही जाता है। निराला आद्यन्त विद्रोही थे, पर यह भी एक आश्चर्य ही है कि अन्त मे उन्होने आत्मालोचन या परनिन्दा से भी अपने को बचाए रक्खा। 'परिमल' की भूमिका हिन्दी काव्य का 'चार्टर आफ फ्रीडम' है।

१—यहाँ 'नई कविता' से आज वाला अर्थ न ग्रहण किया जाय।

२—मेरी तमाम रचनाओ मे दो चार जगह दूसरे के भाव, मुमकिन है, आ गए हो, पर अधिकांश कल्पना, ९५ फीसदी मेरी है।—परिमल की भूमिका पृ० २१

'परिमल' की भूमिका में कवि ने सगृहीत कविताओं को छन्द की दृष्टि से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है—(१) प्रथम खण्ड मे सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं (२) दूसरे खण्ड में विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं और (३) तीसरे खण्ड में स्वच्छन्द छन्द है। यह वर्गीकरण भी इसी सत्य को प्रतिबिम्बित करता है कि कवि उन दिनों छन्द को ही काव्य तत्वों मे सर्वोपरि मानने लगा था। पर छन्द छन्द ही है, एक बाह्य तत्व, इसे हम कभी 'काव्य की आत्मा' नही मान सकते। अत निराला की कविताओं की छन्द के आधार पर की गई प्रशंसा या निन्दा आलोचकों के काव्यास्वादनक्षमता के प्रति सन्देह एवं शंका उत्पन्न करती है।

वस्तुत 'परिमल' निराला की कविताओं का प्रतिनिधि संकलन तो है ही, उसमें अपने युग की सारी प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। 'परिमल' का रचना काल भी इतना व्यापक रहा हैं कि कवि की स्वच्छन्द-वृत्ति को नानारूपधारिणी होने के बहुविध अवसर मिले हैं इसमें की कुछ कविताएँ 'अनामिका' के पहले की है, कुछ पहली 'अनामिका की'[1] और कुछ समय की जिस समय 'अनामिका' (१९३८) की बहुत सी कविताएँ लिखी जा रही थी।[2] अत 'परिमल' की कविताओं मे छन्द के अतिरिक्त वैविध्य के और भी तत्व है।

१९२३ से १९३० के बीच के जीवन मे भी बहुविध परिवतन हुए और उन्हें ऐसी परिस्थितियों से गुजरना पडा न प्रसाद का परिचय था और न पत का। 'प्रसाद' धनाढ्य थे और 'पत' दूसरो के कृपापात्र, अत जीने के लिए जो संघर्ष करना पडता है, उससे अपरिचित थे। निराला न तो मुँह मे चादी का चम्मच लिए पैदा हुए थे न वे परिवार के बोझ से उतरा ही सके। जब तक वे मतवाला मे रहे तब तक सेठ महादेव प्रसाद ने उन्हें कभी अभाव का अनुभव नहीं होने दिया, पर 'मतवाला' से अलग होने पर उनकी स्थिति दयनीय हो गई। वे विविध-संताप ग्रस्त हो गए। सन १९२६ २८ के बीच वे कई बार बीमार पडे। अर्थ के लिए अनुवाद-काय किया, छोटी मोटी जीवनियाँ लिखी, बाबू गुलाबराय की कृपा से छतरपुर राज्य मे कार्य मिल जाने पर भी, अस्वस्थतावश जम नही सके और घूम-घाम कर १९२९ में लखनऊ आ गए, गंगा पुस्तकमला कार्यालय में नौकरी मिल गई, 'सुधा' का सम्पादन करते और कहानियाँ-उपन्यास लिखते। जिसका जीवन स्वय एक महाकाव्य था वह जानबूझ कर उपन्यास लेखन की ओर प्रवृत्त हुआ। हिन्दी के अधिकाश कवियो ने पैसे के लिए ही गद्य लिखा है क्यो कि प्रारम्भ से ही गद्य लेखन काव्य सृजन से अधिक अर्थदायी रहा हैं। इस प्रकार की असतुलित अवस्था के बीच भी निराला 'परिमल' जैसी सतुलित कृति दे सके, यह भी एक विलक्षण सत्य ही है।

'परिमल' की सबसे विशेषता उसके कवि की उदार दृष्टि एव व्यापक जीवन बोध है। 'परिमल' मे जितने प्रकार और जितने विषयों में सबद्ध कविताएँ हैं, उतनी और वैसी उस युग के किसी काव्य सकलन में नहीं, 'आँसू' और 'पल्लव' मे भी नही, जिन्हें 'परिमल' से तुलनीय समझा जाता रहा है। इसमें एक ओर प्रार्थना-गीत है, दूसरी ओर प्रेम गीत, एक ओर प्रकृति

१—'अधिवास' 'जुही की कली' तुम और मैं पचवटी प्रसग आदि।

२—'यही' 'दिल्ली' 'रेखा' 'हताश' 'नाचे ऊपर श्यामा' 'गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को' आदि अनूदित कविताएँ

का रम्य चित्र है तो दूसरी ओर इतिहासाश्रित कविताएँ। 'विधवा' भी है, 'वहू' भी, 'जुही की कली' है तो 'वन कुसमो की शय्या' भी; 'शेफालिका' है तो 'रास्ते के फूल से' बातें करने मे कवि नही चूकता, 'दीन' और 'भिक्षुक' है तो 'महाराज शिवाजी' भी आ गए हैं, 'निवेदन' है तो 'आग्रह' भी, 'स्वप्न स्मृति' है तो 'जागरण' का गान भी। प्रकृति-प्रेम, अध्यात्मिक स्वर, जिज्ञासा और कुतूहल, राष्ट्रीयता और सास्कृतिक जागरण, मिलन और विरह, सहानुभूति और आक्रोश सभी 'परिमल' की पक्तियों में पढ़े जा सकते है। इस वैविध्य ने जहाँ एक ओर निराला की बहुमुखी प्रतिभा को प्रमाणित किया वही हिन्दी के पुरातन पन्थी आलोचको को झकझोरा। 'एकरसता' को जिन्होने रचना की 'एकतानता' का पर्याय समझने का भ्रम पाल रखा था, उन्हे निराशा ही हाथ लगी।

'परिमल' मे विषय-सूची के पूर्व, परम्परा के विपरीत, एक कविता है—'प्रार्थना'। इसमे —'प्रिय-कोमल-पद गामिनि !' से प्रार्थना की गई है कि 'जग को ज्योतिर्मय कर दो।' यह मंगलाचरण की प्राचीन परम्परा का आधुनिक रूप है। संबोधित देवी चाहे जो हो, इस कविता मे जो निवेदन का स्वर है और कृपाकांक्षा का भाव है, वह 'परिमल' की अन्य कविताओ मे भी है। निराला की यह आध्यात्मिकता या धार्मिकता पौरुष की पराजय नही है, न पश्चात्ताप का परिणाम है, बल्कि यह भी एक आधुनिकता ही है। 'आधुनिकता' एक जीवन-दृष्टि है, जिसने वर्त्तमान युग की अनास्था और विश्वासहीनता के विरुद्ध प्रतिक्रिया और उपचार के रूप मे धार्मिकता को भी स्वीकार किया है। यह मात्र आकस्मिक संयोग नही है कि इस सदी के सभी महाकवियों ने धर्म और आध्यात्म को एक अभिनव रूप देकर काव्य मे स्थापित किया।

'परिमल' का दूसरा प्रमुख विषय 'स्मृति' है। अतीत का मोह, भूत या इतिहास के प्रति एक सम्मोहन जिज्ञासा या कही-कही कुण्ठा के भाव निराला को इन कविताओ मे वर्त्तमान हैं। अधिकाश कविताओ मे यह स्मृति, प्रेम-स्मृति या प्रेमिका-स्मृति ही है, भले ही यह प्रेमिका कही-कही अलौकिक अदृश्य एव अमूर्त्त का ही आभास देती है, उदाहरणार्थ—'प्रिया के प्रति', 'स्मृति', 'स्वप्न' आदि। प्रेम की स्मृति ने ही बाद मे निराला से 'रेखा' जैसी[1] कविता लिखवा ली। उन दिनो कवि के मन मे अतीत-मोह ही भिन्न सन्दर्भों मे 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'पञ्चवटी प्रसंग' और 'यमुना के प्रति' जैसी कविताओ मे अभिव्यक्त हुआ है। 'पञ्चवटी प्रसंग' का आरम्भ भी एक ऐसे चित्र से होता है -

> आती है याद आज उस दिन की
> प्रियतम !
> जिस दिन हमारी पुष्प-वाटिका में
> पुष्पराज।

१—अनामिका, पृ० ६६।

बाल-रवि किरणों से हँसते नव नीलोत्पल।
साथ लिए लाल का
घूमते समोद थे नय-मनोरम तुम।
उससे भी सुन्दर क्या नहीं यह दृश्य नाथ?

कवि के मन मे अतीत का मोह है, पर उसे इसकी भी चिन्ता है कि अतीत के मन में भी ऐसा ही ध्यान है या नही—

कठिन शृंखला बजा बजाकर
गाता हूँ अतीत के गान,
मुझ भूले पर उस अतीत का
क्या ऐसा ही होगा ध्यान

('परिमल' पृ० ६२)

स्मृति-चित्रों मे इसकी भी सुविधा थी कि कवि मिलन के उद्दाम उत्तेजक चित्रों की विवरणिका प्रस्तुत करने से बच जाता था। निराला के स्मृति-परक प्रेम गीतो म प्रेम के प्रति एक रोमाण्टिसक दृष्टिकोण है, गीतो में प्रेम के प्रति एक रोमाण्टिक दृष्टिकोण है, कल्पित प्रेम-लोक के भाव विह्वल स्वप्न चित्र है, पर अमर्यादित शृंगार अत्यल्प है। प्रकृति के बहाने और अप्रस्तुत शैली में इस विधुर-युवक कवि ने यत्र तत्र काम भावना के विवेचन के प्रयास किए, पर युग की नैतिकता और आलोचना के आदर्श को यह स्वीकार नही था। छायावादी कवि प्रेम की सुरा को भी गगाजल के पात्र मे रखता था और मासल नायिका को भी। जानबूझ कर बिना हाड मांस की लिजलिजी गुडिया बनाने को विवश था। इसके कई कारणो में कुछ ये—कवियो मे स्त्रैणता की मात्रा का आधिक्य, साहस का अभाव, प्रतिकूल आलोचना से कतराने की प्रवृत्ति। यत्र-तत्र निराला की रचनाओ म भी मासल शृंगार है—'जुही की कली' 'शेफालिका' 'पंचवटी-प्रसग' मे शूपर्णखा द्वारा आत्म रूप वर्णन आदि, पर इन कविताओ के लिए कवि को उल्टा सीधी सुनना भी पडा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यदि 'सरस्वती' से 'जुही की कली' लौटा दी थी तो छन्दोनवता के कारण नहीं, इसी शृङ्गारिकता के कारण। मुक्त-छन्द मे 'पचवटी प्रसग' पढकर उन्होंने कवि को प्रोत्साहित किया था। निराला का प्रेम-वर्णन मुख्यत प्रेम-स्मृति-वर्णन ही है। हिन्दी के प्रणय-काव्य का अधिकांश अविवाहिता किशोरियों को ही दृष्टि मे रखकर लिखा गया है। विवाह को तो साहित्यकार, प्रणय की चरम परिणति के रूप मे ही स्वीकार करते रहे हैं। अत निराला ने जब अपनी 'वह' कविता म दाम्पत्य प्रेम को इस प्रकार परिभाषित किया—

यौवन उपवन का पति वसन्त
है यही प्रेम उनका अनन्त
है यही प्रेम का एक अन्त।

खुलकर अति नीरव भाषा ठण्ढी उस चितवन सें
क्या जाने क्या कह जाती हैं अपने जीवन-धन से ?

तो निश्चय ही प्रणय-काव्य में एक नूतन क्षितिज का उद्‌घाटन किया था। विधुर निराला के विदग्ध कवि-हृदय ने इसी दाम्पत्य-प्रेम को अपनी 'विधवा' कविता में रखा है। निराला काव्य मे न नारी प्रमुख है, न प्रेम; किन्तु इन दोनो का सन्तुलित अनुपात अवश्य ही प्राप्त है।

प्रेम के उदात्तीकरण या दर्शन-मण्डल के प्रयास में ही निराला की रहस्यात्मकता के बीज दिखाई पड़ते हैं—परिमल की 'तुम और मैं' कविता इस दृष्टि से विशेष महत्व की अधिकारिणी है। इसके अतिरिक्त 'पारस' 'पहचाना' 'अंजलि' 'जुही की कली' 'जागृति में सुप्ति थी' आदि में भी यह रहस्यात्मकता देखी जा सकती है। निराला का तारुण्य मे ही सन्यासियो का साथ हो जाना, आध्यात्मिक वातावरण में रहना आदि तो प्रत्यक्षतः ऐसे कारण थे जो उनकी शृङ्गार-भावना का दाम्पत्य बन्धन है। 'परिमल' की रहस्यवादी कविताओ मे निगुणिया संतो की साधना और सगुणोपासको की आराधना का संगम हैं। बार-बार प्रिया से द्वार खोलने का आग्रह, अपूर्ण-काम, अतृप्त-वासना की ही अभिव्यक्ति है; जिसका फ्रायडीय विश्लेषण अपने आप मे बड़ा ही रोचक और महत्वपूर्ण विषय है।

प्रकृति-वर्णन तो छायावाद-युग की विशिष्टता थी; निराला के 'परिमल' में भी वह प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध है। इस काव्य संग्रह का नामकरण भी कवि के प्रकृति-प्रेम का प्रमाण है। 'बदला' मे कवि ने जिस भ्रमर का चित्रण किया है; वह उसका आत्मरूप ही है; जो—

देख पुष्प-द्वार
परिमल-मधु-लुब्ध मधुप करता गुंजार।

काव्य-रूप की दृष्टि से अधिकांश प्रकृति-चित्र सम्बोधन-गीत के रूप मे ही आए है—'यमुना के प्रति' तरंगो के प्रति' 'जलद के प्रति' 'वसन्त समीर' 'वासन्ती' 'रास्ते के फूल से' 'प्रपात के प्रति' और 'बादल-राग' आदि। सम्बोधन-गीत मे कवि सम्बोधित वस्तु को जीवन्त बनाकर अधिक हार्दिकता एवं आत्मीयता के साथ उससे कुछ संलाप कर पाता है। 'बादल' और 'बसन्त' निराला के प्रिय काव्य स्थापत्य कौशल का अप्रतिम उदाहरण है। छः खण्डो में विभाजित इस कविता को भ्रमवश एक लम्बी कविता समझकर अर्थ करने का व्यर्थ प्रयास जिस नासमझ आलोचको और हठधर्मी प्राध्यापको ने किया है; उन्हे निराशा ही हाथ लगी है। वस्तुतः निराला मे यह प्रकृति एक विशिष्टता का रूप ले चुकी थी कि वे परस्पर-विरोध आलम्बनो को एक ही कविता में सहज रूप से प्रयुक्त करते थे।

निराला ने बादल पर बाद में भी बहुत कुछ लिखा। प्रायः सभी छायावादियो ने लिखा, विदेशो मे भी बहुत कुछ लिखा गया, पर मेरा विश्वास है कि 'बादल-राग' से श्रेष्ठ कुछ भी, किसी ने नही लिखा। वर्षा-गीतो में 'अलि घिर आए घन पावस के' भी एक अत्यन्त कलात्मक रचना है।

प्रकृति वर्णन वाली कविताओं में 'संध्या सुन्दरी' भी एक उत्कृष्ट कलाकृति है। संध्या का ऐसा जीवन्त वर्णन मुझे अन्यत्र नहीं मिला। भाषा की दृष्टि से भी यह एक अप्रतिम रचना है। ध्वन्यात्मक चित्रात्मक शब्द की पुनरुक्ति और गतिशील बिम्ब विधान ने इस कविता को एक अद्भुत व्यक्तित्व प्रदान किया है। चाक्षुष, कायिक और मानसिक सौन्दर्य की ऐसी छवियाँ एक ही कविता में अन्यत्र अनुस्यूत नहीं हैं।

निराला का प्रकृति-प्रेम कभी उनका साथ न छोड़ सका, भले परवर्ती रचनाओं में प्रकृति केन्द्र में न आकर पृष्ठाधार में चली गई हो। पर निराला के प्रकृति में कहीं भी वह शैशव सुलभ विस्मय या किशोर कुतूहल नहीं है जो औसत छायावादियों की विशेषता है। 'परिमल' में प्रकृति के चित्र उनमें सघनन और संगीत है।

'परिमल' में हम निराला की उस प्रवृत्ति को भी स्थान-स्थान पर पाते हैं, जिसे 'प्रच्छन्न राष्ट्रीय भावना या सामाजिकता' कहा जाता रहा है। कवि प्रकृति सुन्दरी के बाल-जाल में लोचन उलझा कर न सन्तुष्ट हो जाता है और न प्रेमिका की स्मृति को ही अपनी सबसे बड़ी पूँजी मानकर सारी दुनिया से आँखे मूँद लेता है। जहाँ एक ओर 'शरत्पूर्णिमा की विदाई' और 'कविता' जैसी काल्पनिक कवितायें हैं वहीं 'भिक्षुक' भी है। निराला को यदि प्रगतिवाद का पुरोधा कहा जाता है तो इसी रचना के कारण। 'प्रगतिवाद 'साम्यवाद' 'जनवाद' 'यथार्थ वाद' आदि शब्द जिस समय हिन्दी में गढ़े तक नहीं गए या जिनका प्रयोग साहित्य में विरले ही होता था उस समय भी निराला ने 'भिक्षुक' जैसी कविता दी, जो आज भी अपनी मार्मिकता, चित्रात्मकता के कारण अपनी समानधर्मा अन्य कविताओं से नितान्त भिन्न है। 'सन्ध्या सुन्दरी' या 'कविता' की भाषा से प्रकृत्या पृथक बड़ी ही सरल भाषा में निराला ने एक ऐसी छोटी कविता दी है, जिसमें आलोचकों को महाकाव्यात्मक गरिमा भी दीख पड़ी है। 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे जाने वाले निराला की इस पूरी कविता में तीन ही तत्सम शब्द हैं। थोड़ी सी रेखाओं द्वारा सम्पूर्ण चित्र उभारने का प्रयत्न उन दिनों कविता में तो नवीन था ही, चित्र-कला में भी वह लोक प्रिय नहीं हो पाया था। दल-मुक्त जीवन दृष्टि और मानवतावादी स्वर उस कविता की विशेषता है। अंत की दो पंक्तियों में चित्रित श्वान-मनुष्य संघर्ष हमारी संवेदना पर तीव्र आघात करता है। हमारी आर्थिक प्रगति पर सबसे कटु आक्षेप यही है कि निराला द्वारा १९२८ में चित्रित 'भिक्षुक' आज १९६४ में भी भारतीय भिक्षुक का सही प्रतिनिधित्व करता है। निराला शोषण और अत्याचार के विरुद्ध प्रारम्भ से ही अपनी आवाज बुलन्द करते रहे, और अंगारों को चाँदी के वर्क में लपेट कर पेश करते रहे। 'कण' पर लिखते हुए उन्होंने कहा—

> पड़े हुए सहते हो अत्याचार
> पद पद पर सदियों के पद प्रहार
> बदले में, पद में कोमलता लाते,
> किन्तु हाय, वे तुम्हें नीच ही हैं कह जाते।

इसमें सदा मौन रहते हो,
क्यों रज विरज के लिए उतना सहते हो ?

'बादल-राग वर्षा-गीत से अधिक एक राष्ट्रीय गीत ही है। इसी प्रकार 'जागो फिर एक बार' भी एक विशुद्ध-उद्बोधन गीत ही है। 'परिमल' का राष्ट्रीय भाव नारेबाजी की सतह पर नही उतरा है; कविता के शिखर से ही निर्झरिणी के समान फूटी है। त्याग और बलिदान की भावना को ऋषियो के महामंत्र से शृंखलित कर निराला ने सांस्कृतिक जागरण के आन्दोलन को एक नया स्वर, एक नया अर्थ दिया। इसे हम विवेकानंद का भाव भी मान सकते हैं। विवेकानन्द की आध्यात्मिकता राष्ट्रीयता से सम्पृक्त है और रामकृष्ण की 'माँ' माँ ही नही 'शक्ति' भी है। निराला ने भी शक्ति-पूजा या मातृ-भक्ति को राष्ट्रीय संदर्भ मे ही लिया है। पंचवटी के लक्ष्मण की मातृ-भक्ति भी देश-भक्ति का ही अपर रूप है—

यदि प्रभो, मुझ पर संतुष्ट हो
तो यही वर मैं मांगता हूँ,
माता की तृप्ति पर
बलि हो शरीर-मन
मेरा सर्वस्व-सार
तुच्छ वासनाओं का
विसर्जन मैं कर सकूँ,
कामना रहे तो एक
भक्ति की बनी रहे।

इस प्रकार की प्रच्छन्न राष्ट्रीयता 'गीतिका' के भी कई गीतों में देखी जा सकती है। 'भारतिजय विजय करे' तो पराधीनता काल मे कई राजनैतिक मंचो पर राष्ट्रीय-गीत के रूप मे गाया गया।

'पंचवटी-प्रसंग' परिमल में अपने ढंग की एक मात्र रचना है। काव्य शिल्प की दृष्टि से तो उसका महत्व है ही; निराला के जीवन दर्शन को समझने के लिए भी वह उपयोगी है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार उसकी रचना बंगला की रास-लीलाओ की पद्धति पर हुई है। सीधे-सादे रंगमंच की परिकल्पना कर; पद्य को गद्यवत् प्रयुक्तकर निराला ने हिन्दी गीति-नाट्यो में एक अभिनव प्रयोग किया था। स्पष्ट ही इसका अनुकरण कठिन था, पर अब पश्चिमी साहित्य मे काव्य-रूपको और गीति-नाट्यो की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर पुनः हिन्दी कवियों का ध्यान इस रचना की ओर आकृष्ट हुआ है। 'पंचवटी प्रसंग' में वह सूक्ष्म कथात्मकता और नाटकीयता भी है जिसका विकास 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी रचनाओ में हुआ।

'परिमल' की अन्तिम कविता 'जागरण' कवि के दार्शनिक सिद्धान्तों को एक स्थान पर देखने में सहायक होगी। इसकी भाषा भी विषयोचित गाम्भीर्य और औदात्य से मण्डित है।[1] भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से यह निराला की अतिदुर्बोध कविताओं में एक है। पर निराला काव्य की दुर्बोधता की चर्चा करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि यह दुर्बोधता शब्द-कोश से स्पष्ट होने वाली नहीं है। निराला जटिल और संश्लिष्ट भावनाओं को थोड़े से शब्दों में प्रकट करने की चेष्टा में अनवबोध्य हो जाते हैं। पर सर्वत्र कवि ही दोषी नहीं, अधिकतर पाठकों की मानसिक असमृद्धि और कविता की प्रक्रिया से अपरिचित भी अर्थ ग्रहण में बाधक रही है। वैसे 'परिमल' के लिए कविता अपवाद-स्वरूप ही मानी जानी चाहिये। मैं फिर दुहरा रहा हूँ कि 'परिमल' निराला का सर्वाधिक सतुलित और सुलझा हुआ सग्रह है। वैसे नकेनवाद के अन्तिम 'न' नरेश ने ठीक ही लिखा है कि 'हिन्दी साहित्य का वह एक कवि है, जिसे पचाने में हिन्दी साहित्य के पाठकों को कम से कम एक शताब्दी और चाहिये।'[2]

१—जो गहन भाव सीधी भाषा-सीधे छन्द में चाहता है, वह धोखेबाज है उस भाषा का ही ज्ञान नहीं, वह भाव क्या समझेगा।—निराला का पत्र श्री जानकी वल्लभ शास्त्री के नाम (लखनऊ १२ ८ ३७)

२—नरेश काव्यानुशासन—'साहित्य' त्रैमासिक, अप्रैल १९५१

गीतिका

प्रो० कृष्णनंदन 'पीयूष'

छायावाद के कृति-कवियों के बीच पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का व्यक्तित्व महाकाव्य की शास्त्रीय परम्परा में आता है, जिसमें विराटता का मार्मिक सामंजस्य हुआ है। किन्तु जिस महाकाव्य की रचना के बीच गीति-तत्व की भी अपेक्षा होती है, उसी प्रकार निराला के विस्तृत काव्य-परिवेश के बीच मार्मिक गीतियों की पुष्कल योजना प्रस्तुत की गई है। निराला के गीत-तत्व की रूपरेखा को अंकलित करने के पूर्व यह ध्यान मे रखना है कि निराला का सम्पूर्ण गीत-तत्व उनके विराट जीवन का ही प्रतिफल है, जिसमें उनके जीवन का भाव-अभाव कहीं-कहीं शास्त्रीय परिपेक्ष्य में और कहीं सहज बनकर उपस्थित हो गया है। निराला का काव्य विराट व्यापक है, उन्होंने जो लिखा है, उसका परिवेश विराट एवं विविध है। निराला ने ऐसा कुछ नहीं कहा जो पूर्व में नहीं कहा गया था, पर उन्होंने कुछ इस प्रकार अवश्य कहा जैसा किसी ने नही कहा था। जीवन की समग्रता के सागर में डूब कर शंख और घोंघे लाने वालों की संख्या बहुत है पर जो सागर के अतल को स्पर्श कर मोती ले आवे वही 'गोताखोर' है। निराला इस अर्थ में वास्तविक 'गोताखोर' सिद्ध हुए है। निराला का गीति-काव्य उनके जीवन की विविधता के साथ उनके विकासात्मक चिन्तन का भी प्रतीक है। उनके गीत-काव्य को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

(क) गीतिका के पूर्व के स्फुट गीत।

(ख) गीतिका के गीत।

(ग) गीतिका के बाद की भक्तिपरक गीति-रचनाएँ।

यह मेरा विवेच्य 'निराला' की विशिष्ट रचना 'गीतिका' है, अतः आगे मैं उसी सन्दर्भ मे निराला के गीतकार को मूल्यांकित करने का प्रयास करूँगा।

'गीतिका' के कवि निराला का काव्य गीत और संगीत दोनो का सामंजस्य है। निराला का सम्पूर्ण गीति काव्य इसी गीत संगीत की ध्वनियों, प्रतिध्वनियों का समीकरण करता रहा है। निराला का वास्तविक जीवन कठोर, नीरस एवं अनगढ रहा है। उसके ठीक विपरीत रूप में उनका गीति काव्य संगीतमय, सुदर्शन एवं भावप्रवीण सिद्ध हुआ है। जहर पीकर दूसरे को अमृत देने की कला में निराला माहिर रहे हैं और 'गीतिका' इसका सफल उदाहरण है। 'गीतिका' के गीत को पढते समय ऐसा प्रतीत होता है, जैसे जीवन की तपती दोपहरिया मे किसी विस्तृत बालू की राशि के बीच सहसा स्रोतस्विनी प्रवाहित हो उठी हो। झरने गाते हैं, नदियां गाती हैं, यह तो सभी कवियों को पढते समय लगता है, पर पहाड़ भी गाता है, सागर भी गाता है, यह अन्दाज निराला की गीति-कविता में ही मिलता है, इसमें सन्देह नहीं।

'गीतिका' के गीतों का विभाजन दो उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है। प्रथम,

प्रेम विषयक गीत, जिसमें निराला का व्यक्तित्व छायावादी आवरण से आवेष्टित होकर रहस्यमयता को प्राप्त करता है, दूसरा उनका शुद्ध आध्यात्मिक प्रेम सम्बन्धी गीत जिस पर विवेकानन्द, रामकृष्ण के साथ भारतीय अद्वैत तथा वेदान्त का निष्कलुष प्रभाव पड़ा है। इन गीतों में एक सूक्ष्मता को स्थूलत्व प्रदान करने की जो भावना है, रहस्य की ओर उन्मुख जो इंगित है, आत्म बोध के लिये सचेष्ट आत्मा की जो तड़प है, भाषा की लाक्षणिकता की जो समुज्ज्वल छटा है, वह सब का सब 'निराला युग' की देन है। निराला छायावादी है, यह प्रभाव चाह कर भी निराला के इन गीतों पर से हटाया नहीं जा सकता है। काव्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से 'गीतिका' के गीतों पर छायावाद का प्रभाव गहन है। छायावादोत्तर काल में गीति-कविता की जो काव्यधारा नरेन्द्र, रामकुमार, अंचल, प्रेमी इत्यादि कवियों के द्वारा प्रवाहित हुई उस परम्परा के मूल उत्स रूप मे निराला की 'गीतिका' को रख सकते हैं। निराला की 'गीतिका' इस ग्रंथ में हिन्दी की आधुनिक गीति कविता की धारा में वही स्थान रखती है, जो प्रथम साध्यनारा का होता है। सचमुच यह भी बड़े आश्चर्य की बात है, निराला अपने में इकाई होते हुए भी कैसे इतनी प्रकार की विविध काव्य-परम्पराओं के आधार बन सके! वास्तव मे देखा जाय तो निराला का व्यक्तित्व उस अक्षयवट की तरह प्रतीत होता है जो हिन्दी कविता की त्रिवेणी संगम पर स्थिति है। 'गीतिका' समाजबोध, व्यक्तिबोध और युगबोध की समस्त सत्या को वाणी मिली है। 'गीतिका' के गीतो मे रहस्यदर्शन और कल्पना का जो इन्द्रधनुषी रंग उद्वेलित हुआ है वह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कहीं-कहीं इन गीतों में जो वांछित अस्पष्टता और क्षणिक विरामों की अपूर्णता का जो चित्र मिलता है वह भी कलापूर्ण ही है। आधुनिक युग के प्रसिद्ध कलाकार पिकासो की दृष्टि से कला की पूर्णता इसी में है कि वह अपूर्ण होती है। इसी अपूर्णता के कारण ही लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। जो पूर्ण है, वह पूजनीय है, पर वह ग्राह्य नहीं है। निराला का चतुर शिल्प और उनकी कौशलता ने गीतिका के अनेक गीतो म समापन और समाहार नहीं होता है, उसका अन्त भी सम्भावनाओं पर आधारित होता है। उसकी वही लघुतरंगी धारा मन, प्राण को प्रभावित करती है, शीतलता को निवेदित करती है।

पावन करो नयन!
रश्मि, नभ-नील पर
शतत शत रूप धर,
लघु कर करो चयन।

'यामिनी जागी', 'सखि बसन्त आया', प्रिय मुद्रित दृग खोलो', 'दृगों की कलियाँ नवल खुली' 'नूपुर के स्वर मन्द रहे' म निराला का आत्मिक प्रेम ही आध्यात्मिक प्रेम के परिवेश में चित्रित होता है। वहाँ—

जागो, जीवन धनिके।
विश्व पुण्य प्रिय कवि के।
या
भर देते हो,
बार-बार प्रिय करुणा के किरणों से,
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो॥

आदि गीतों में निराला के निवेदित मन की एक स्वाभाविक आकांक्षा, जो समर्पण की लय मे गायी गयी आराधना की शब्दावली है। इन गीतो मे निराला का आध्यात्मिक कवि लौकिक धरातल पर ही अलौकिक सत्य का साक्षात्कार करने मे समर्थ हो सका है। निराला के द्वारा गुह्य अनन्त का साक्ष्य भी सरल और समर्थ होकर आया है, यह 'गीतिका' के कवि की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

'गीतिका' मे कवि के दिव्य एवं पावन दृष्टि के संस्पर्श से गीतों में आये प्रकृति-चित्र भी स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण न होकर पत्रवाहक बन गये है। कहीं तो उनका आध्यात्मिक रंग इतना गहरा हो जाता है कि शीर्षक को अर्थवत्ता ही नष्ट हो जाती है—

फिर संवार सितार लो,
बाँध कर फिर ठाट, अपने अंक पर झंकार लो।
शहद के कलि-दल खुले;
गति-पवन-भर-कॉप-थर-थर
नीड़ भ्रमरावलि ढुले;
गीति-परिमल बहे-निर्मल,
फिर बहार-बहार हो !!

निराला की 'गीतिका' के गीतो मे लयात्मकता होने के साथ ही सगीतात्मकता भी प्रचुर मात्रा मे है। इनमे संगीत की शास्त्रीयता, नृत्य की गरिमा को महादीर्घता प्राप्त होती है। गीतिका के गीतो को न केवल शब्द की सार्थकता पर कसा जाना चाहिये वरन् उसे संगीत-शास्त्र और नृत्यशास्त्र की विविध भंगिमाओ के आधार पर रखा जा सकता है। इस अर्थ में 'गीतिका' निराला के श्रेष्ठतम गीतों का प्रतिनिधि संग्रह है। कबीर के गीतों की अक्खड़ता, मीरा के गीतों की तन्मयता और भक्त कवियों की आर्द्रता से वेष्ठित इन गीतों का हिन्दी-गीति कविता के बीच महत्वपूर्ण स्थान है। 'गीतिका' का प्रत्येक गीत एक दिव्य भास्वरता से ओत-प्रोत होकर प्रकट हुआ है। इनके अध्ययन से मन की सोयी परतो का बंधन टूट जाता है, एक नव्य स्वतः स्फुरित चेतना का आश्लेषित विराम दृष्टिगोचर होने लगता है, जो ध्यातव्य है। 'गीतिका' के इन गीतो मे एक ऐसे संन्यासी का आकुल-स्वर निवेदित होता दिखाई पड़ता है, जो स्वयं ही गैरिक वसन धारी नही है वरन् जिसकी वाणी भी गैरिक वसना बन गयी है। रामकृष्ण और विवेकानन्द की जो मूर्ति निराला के अचेतन मन मे रही, उसका प्रभाव 'गीतिका' के गीतो पर कभी-भी स्पष्ट दिखाई पड जाता है।

'गीतिका' के गीतो मे निराला का शास्त्रीय ज्ञान, नायिका के परम्परागत मनोभावो का भी दर्शन मिलता है। नायिकाओ मे असफलता, आकांक्षा का विवृति एवं आत्मतोष की परिकल्पना बड़ी ही मार्मिकता के साथ दी गयी है।

समासतः 'गीतिका' को निराला की गीति-कविता को अन्यतम उपलब्धि के साथ हिन्दी-कविता के श्रेष्ठतम गीत संग्रह के रूप में स्वीकार किया जायेगा।

—:o o:—

नये पत्ते

डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव

महाप्राण निराला अपने व्यक्तित्व के उद्दाम प्रवाह मे निरंतर गतिशील रहे। उस गति को अनेक आलोचकों की चट्टाने रोक तो न सकी परन्तु थोडा मोड देकर तीक्ष्णता अवश्य प्रदान कर सकी। १९३७ ई० में 'हिन्दी के सुमनो के प्रति' पत्र-कविता मे कवि ने लिखा था—

मैं जीर्ण-साज बहुछिद्र आज,
तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन,
मैं हूँ केवल पद-तल आसन
तुम सहज विराजे महाराज।
ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसंत का अग्रदूत,
ब्राह्मण समाज मे ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्व छवि।

अपने लिये उसने कहा—

मैं पढ़ा जा चुका पत्र न्यस्त,
तुम अलि के नव-रस रंग राग

उन सुमनों से 'फल प्राप्ति' की आशा रखते हुए कवि ने व्यंग किया—

फल सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज
या तुम बांध कर रंगा धागा,
फल के भी उर का, कटु त्यागा,
मेरा आलोचक एक बीज'

'राम की शक्ति पूजा' जैसी ओजस्वनी अर्थगर्भित कविता को 'झाड फूँक कर मन्त्र' बता कर उसकी उपहासात्मक आलोचना की जा चुकी थी। भाव, वस्तु, छन्द और भाषा सभी दृष्टियों से आलोचकों ने निराला पर मर्मवेधी बाण छोडे। यह उनकी प्राणवत्ता थी जिसने उनको व्यय कर दिया अन्दर ही अन्दर कवि की विद्रोहाग्नि सुलगती गई। वह अन्तरमुख होकर व्यक्तित्व के अहं को दमित करने का प्रयत्न करता रहा।

निराला की मानसिक प्रक्रिया का प्रारम्भ बहुत पहले हो चुका था। निराला 'पढ़ा जा चुका पत्र न्यस्त', न रह कर 'नये पत्ते' लेकर १९४६ में आये। आजकल के प्रयोगवाद या नयी कविता के मार्ग पर निराला ने १९४२ में ही 'कुकुरमुत्ता' कविता लिखकर कदम रख दिया था।

उसको रूपायित करने या प्रशंसा करने का श्रेय अवश्य अज्ञेय को है। 'नये पत्ते' निराला की पूर्ववर्ती रचनाओं की तुलना मे सर्वथा नवीन प्रयोग है। उन्होने प्रस्तावना मे लिखा—'नये पत्ते' इधर के पद्यों का संग्रह है। सभी तरह के आधुनिक पद्य है, छन्द कई, मात्रिक सम और असम। हास्य की भी प्रचुरता। भाषा अधिकाश मे बोलचाल वाली। पढने पर काव्य कुन्जो के अलावा ऊँचे-नीचे फारस क जैसे टीले। अधिक मनोरंजन और बोधन की निगाह रक्खी गई है कि पाठको का श्रम सार्थक हो और ज्ञान बढे। वे अपनी भाषा की रूप रेखाएँ देखें। इस वक्तव्य को हम निम्न शीर्षको मे विभाजित कर सकते है—

१—अपनी भाषा की रूप रेखाएँ, जो अधिकाश मे बोलचाल वाली है।

२—विविध आधुनिक पद्य

३—हास्य की प्रचुरता

४—अनेक मात्रिक सम और असम छन्द

५—मनोरंजन और बोधन

भाषा, वस्तु, रस-भाव, शैली (छन्द) और प्रयोजन की दृष्टि से 'नये पत्ते' के विवेचन का आधार स्वयं निराला ने उपस्थित कर दिया है।

भाषा

हिन्दी की प्रकृति भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विभक्ति प्रधान है। उसमें पद और परसर्ग गुम्फित और संश्लिष्ट न होकर पृथक और विश्लिष्ट होते हैं। तद्भव और देशी उसकी प्रधान शब्द सम्पदा हैं जिसे संस्कृत तत्सम तथा अन्य फारसी, अंग्रेजी इत्यादि स्त्रोतो के प्राप्त शब्द समृद्ध करते हैं। बोलचाल के मुहावरे उसकी जान हैं। लोकभाषा के प्रवाह से वह अविच्छन्न और गतिशील है। शिष्टता और आभिजात्य के फेरे में पड़ कर वह विरुद्ध नही हो जाती। अपनी भाषा की इन रूप रेखाओ को निराला ने 'नये पत्ते' में अच्छी तरह उभारा।

'राम की शक्ति पूजा' (१९३६) और 'कुत्ता भौंकने लगा' से कुछ पंक्तियाँ तुलनार्थ उद्धृत की जाती हैं—

आज का, तीक्ष्ण-शर विधृत-क्षिप्र-कर, वेग प्रखर
शत-शेल सम्वरण-शील, नील-नभ गर्जित-स्वर,
प्रति-पल परिवर्त्तित व्यूह, भद कौशल समूह
राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह, क्रुद्ध-कपि-विषय-हूह
विच्छुरित-वह्नि-राजीवन नयन-हत-लक्ष्य-बाण
लोहित-लोचन-रावण-वारण-गत युग्म प्रहार,
उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपि-दल बल विस्तर, इत्यादि
(राम की शक्ति पूजा)

यह समस्त पदावली संस्कृत के कवि बाण और सुबन्धु को गौडी रति की याद दिलाती है। यदि हाइफन से उसे विश्लिष्ट न किया जाय तो हिन्दी के विद्यार्थी के लिए अबोध हो जाय।

नये पत्ते

डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव

महाप्राण निराला अपने व्यक्तित्व के उद्दाम प्रवाह मे निरंतर गतिशील रहे। उस गति को अनेक आलोचकों की चट्टाने रोक तो न सकी परन्तु थोडा मोड देकर तीक्ष्णता अवश्य प्रदान कर सकीं। १९३७ ई० में 'हिन्दी के सुमनो के प्रति' पत्र-कविता म कवि ने लिखा था—

मै जीर्ण-साज बहुछिद्र आज,
तुम सुदल सुरग सुवास सुमन,
मैं हूँ केवल पद-तल आसन
तुम सहज विराजे महाराज।
ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसन्त का अग्रदूत,
ब्राह्मण समाज मे ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्व छवि।

अपने लिय उसने कहा—

मै पढा जा चुका पत्र न्यस्त,
तुम अलि के नव-रस रग राग

उन सुमनों से 'फल प्राप्ति' की आशा रखते हुए कवि ने व्यंग्य किया—

फल सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज
या तुम बांध कर रगा धागा,
फल के भी उर का, कटु त्यागा,
मेरा आलोचक एक बीज

'राम की शक्ति पूजा' जैसी ओजस्वनी अर्थगर्भित कविता को 'झाड फूंक कर मन्त्र' बता कर उसकी उपहासात्मक आलोचना की जा चुकी थी। भाव, वस्तु, छन्द और भाषा सभी दृष्टियों से आलोचकों ने निराला पर मर्मवेधी बाण छोडे। यह उनकी प्राणवत्ता थी जिसने उनको व्यय कर दिया अन्दर ही अन्दर कवि की विद्रोहाग्नि सुलगती गई। वह अन्तरमुख होकर व्यक्तित्व के अहं को दमित करने का प्रयत्न करता रहा।

निराला की मानसिक प्रक्रिया का प्रारम्भ बहुत पहले हो चुका था। निराला 'पढ़ा जा चुका पत्र न्यस्त', न रह कर 'नये पत्ते' लेकर १९४६ में आये। आजकल के प्रयोगवाद या नयी कविता के मार्ग पर निराला ने १९४२ में ही 'कुकुरमुत्ता' कविता लिखकर कदम रख दिया था।

इसी सहिति प्रधानता से चिढ़ कर पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इसकी कटु आलोचना की थी। सम्पूर्ण कविता संस्कृत तत्सम पदावली की शिष्टता से उदात्त है। अन्य पूर्ववर्ती कविताओं मे इतनी समास प्रचुरता तो नहीं परन्तु संस्कृत तत्सम की योजना भरपूर है—

आज ठंडक अधिक है!
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हफ्ते पहले पाला पडा था—
अरहर कुल-की कुल भर चुकी थी,
हवा होड तक बेध जाती है,
गेहूँ के पेड़ ऐंठे खड़े हैं,
खेतिहारों मे जान नहीं,
मन मारे खरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए,
कुहरा छाया हुआ।
(कुत्ता भौंकने लगा)

एक-एक पद अलग अलग। बोलचाल की भाषा। तद्भव और देशी शब्द प्रचलित उर्दू फारसी के शब्दों का उपयोग। इसी तरह की भाषा सम्पूर्ण काव्य मे है। 'देवी सरस्वती' में अवश्य संस्कृत तत्सम शब्दों की योजना है पर विश्लिष्ट रूप म ही। 'प्रार्थना गीतों' का यह प्रभाव है। 'खुश खबरी', 'झींगुर डट कर बोला', 'आँख आँख का काँप हो गई' मे प्रचलित उर्दू-फारसी के शब्दों का अच्छा प्रयोग है। संक्षेप में 'नये पत्ते' की हिंदी हिंदुस्तानी के समीप है।

वस्तु

छायावाद ने स्थूलता के प्रति विद्रोह किया और सूक्ष्मता को प्रश्रय दिया। रीतिकाल का स्थूल मांसल प्रेम छायावादियों को नही भाया। उनके प्रेम मे सूक्ष्मता और आध्यात्मिकता ने पैठ की। निराला ने 'प्रेम के प्रति' मे कहा था—

प्रेम, सदा ही तुम असूत्र हो
उर-उर के हीरों के हार,
गूँथे हुए प्राणियों को भी
गुँथे न कभी, सदा ही सार।

वासनाजन्य प्रेम को वह 'प्रेम की छाया' स्वीकार करते हैं। 'प्रिया से प्रागल्भ प्रेम' 'प्रेयसी' इत्यादि में आध्यात्मिकता का समावेश है। कवि को काव्य-क्षेत्र में प्रसिद्ध देने वाली १९१६ में लिखी गई 'जूही की कली' कविता, जब कि उनकी प्रियतमा उनके जीवन मे रस सवार कर रही थी, में 'जूही की कली' और मलयनिल की अप्रस्तुत योजना के आवरण म उद्भूत लौकिक प्रेम की ही अभिव्यक्ति है—'नायक ने चूमे कपोल' और अन्त में 'मैं चौंक पडी युवती'—

चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास

नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग,

में प्रस्तुत स्वयं बोल रहा है। 'नये पत्ते' में 'प्रेम संगीत' सर्वथा पार्थिव बन गया है। छायावाद के कल्पनालोक से प्रेम धरती पर उतर आया। 'बम्हन का लड़का कहारिन के पीछे मरता है।' 'स्फटिक शिला' में सद्यः स्नाता युवती के—

वर्तुल उठे हुए उरोजों पर खड़ी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और,
कैसे अर दिव्य, स्तन हैं ये कितने कठोर

सर्वथा प्रेम का कायिक धरातल है। प्रतीत होता है कवि ने लोकाचार से दमित भावना को खुलकर निकल जाने का अवसर दिया है। तनाव की स्थिति को पूरा आराम दिया है— 'कुण्ठा सब टूटी'।

प्रकृति वर्णन यथातथ्य रूप धारण कर गया है। वर्षा की कुछ पंक्तियां निम्न है—

कने-कने बादल हैं,
एक ओर गड़गड़ाते;
पुरवाई चलती है;
जुही फूलों से भरी,
दूर तक हरियाली ज्वार की, अरहर के,
सन, मूग, उड़द और
धानों के हरे खेत;
नदी नाले बहते हुए
नदिया तराई लिये,
घने कास उगे हुए।

इसी प्रकार 'देवी सरस्वती' के षड़ ऋतु वर्णन में वसन्त की शोभा—

बौरे आमों की सुगन्ध
धरती पर छाई,
नये वर्ष की हर्ष भरा,
चाँदनी सुहाई।
रब्बी कटी आम के तले
खलिहान लगाया
चना, मटर, जौ, गेंहू, सरसों
कटकर आया।

सामयिक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश का चित्रण पृष्ठभूमि के रूप में या

व्यग्यात्मक रूप मे 'योगी के पेटो मे बहुतो को आना पडा' 'दगा की' 'कुत्ता भौंकने लगा, 'झींगुर डट कर बोला, 'तिमञ्जिले छलाग मारता चला गया' 'डिप्टी साहब आये', और 'महगू महगा रहा' म किया गया है।

जमींदार का सिपाही लट्ठा कान्धे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
'डेरे पर थानेदार आये हैं,
डिप्टी साहब ने चन्दा लगाया है,
एक हफ्ते के अन्दर देना है।
चलो बात दे आओ।'

डिप्टी साहब आये हैं और जमीदार का गोडइत बदलू अहीर के दरवाजे पर भीड के सामने कह रहा है—

'अहिर के मूसर, ये दर्द के दूसर हैं,
इनके एक घाट में भेंड और भेडिये
बिना वैर भाव के पानी पी रहे हैं।
इनके साथ और अफसरात हैं,
जैसे दरोगा जी,
बीस सेर दूध दोनों घडों में जल्द भर।'

परन्तु जनता कुछ प्रबुद्ध हो गई है। बदलू ने उस बदमाश को देखा फिर उठा। क्रोध से घटकर और एक घूसा तान कर नाक पर दिया। तब तक बदलू के कुछ तरफदार आ गये और 'कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ' होने लगा। सब लोग सत्य कहने के लिए तुल गये। थानेदार के सिपाही आये और दाम दे देकर माल ले गये। सारा गाँव लछिमन के बाग की गवाही मे बदल गया और रही-सही बात कही। जमीदार के सिपाही की लाठी का गुला, लोहा बँधा, बडा आतक रखता है। उसके सामने सामाजिक और राजनीतिक सहारे कुल छँटकर भाग जाते हैं।

१९४२ के आन्दोलन के बाद म कुछ शिथिलता थी। निराला स्वतन्त्रता के प्रेमी थे, पर उनके ख्याल में गांधीवादियों के प्रति थोडी अनास्था आ गई थी और यह समझा जाने लगा था कि वे समझौतावादी हैं और कभी-कभी किसान सभा के मददगारों पर जमींदार से मिलकर गोली चलवा देते हैं। 'झींगुर डट कर बोला' में इसी भाव की अभिव्यक्ति है। 'महगू महगा रहा' में पडित जवाहर लाल नेहरू के कांग्रेस चुनाव के दौरे का व्यग्यात्मक वर्णन है। आज प्रधान मन्त्री इस लोक में नहीं। निराला जी के शब्दों में य बोल—

'आजादी लेते हैं, एक साल और है,
आततायियों से देश पिस-पिस कर मिट गया
हमको यद आता है,
चैन नहीं लेना है जब तक विजयी न हो।'

और सचमुच एक वर्ष बाद १९४७ में आजादी मिल भी गई। यह निराला जी ने भी देख लिया होगा। पंडित जी के भाषण में 'जनता मन्त्रमुग्ध हुई।' उनका व्यक्तित्व इतना आकर्षक था कि गाँव और शहर के सब आदमी जुट जाते थे। किसान और जमीदार, गरीब और अमीर, जनता और ओहदेदार सब उनका अदब करते थे। निराला जी के लिए पहेली थी। वे अपने को उनसे कुछ कुछ न समझते थे। उसी का परिणाम यह व्यंग्य है जो कविता का प्रारंभ है। उसे व्यंजना से न पढ़कर यदि अभिधा से पढ़ा जाय तो वह सचाई हैं। उनके सम्पति मे कांग्रेस-मैन जमीदार को बाजू से लगाये हुए है और उसके रुपये से चलते है और कभी-कभी लाखों पर हाथ सफा करते हैं। उनसे देश के आजाद होने की आशा नही। निराला जी को उस समय मंहगू के शब्दों में आशा थी—

'एक उड़ी खबर सुनी है,
हमारे अपने हैं यहाँ बहुत छिपे लोग,
मगर चूँकि अभी ढीला-पोली है देश देश में
अखबार व्यापारियों की सम्पत्ति हैं,
राजनीति कड़ी से कड़ी चल रही है,
वे सब जन मौन हैं इन्हें देखते हुए,
जब ये कुछ उठेंगे,
और बड़े त्याग के निमित्त कमर बाधेंगे;
आयेंगे वे जभी देश के धरातल पर,
अभी अखबार उनके नाम नहीं छापते
ऐसा ही पटका है।'

वे छिपे लोग कौन है जिन पर आशा लगी थी कवि ने स्पष्ट नही कहा। शायद कोई क्रान्तिकारी हों, सुभाष बोस के आदमी हो या जयप्रकाश बाबू जैसे हो या कवि की तरह हो। जो हो, अब तो बस अतीत की घटना हो गई है। निराला जी पं० मोतीलाल नेहरू जवाहरलाल नेहरू, विजयलक्ष्मी पंडित, आर० एस० पंडित सभी के प्रति आदर का भाव रखते थे। जवाहरलाल जी के प्रति भी जो व्यंग्य कहे है उनसे उनके प्रति आदर मे कमी न आई। आर० एस० पंडित के निघन पर उन्होंने लिखा—

कहे कौन, वह सत्य
कहाँ से कहाँ गया क्या,
और जवाहर का रिश्ता
दृढ़ कहाँ रहा क्या ?

क्या आज पंडित जवाहार लाल की मृत्यु पर सारा देश उनके विषय में यही शोकोद्गार नही कर सकता ?

पुरानी कविता की छाया में स्वामी विवेकान्द की अंग्रेजी कविताओ के अनुवाद 'चौथी जुलाई के प्रति' और 'काली माता' या रूपविरचित 'युगावतार परमहंस श्री रामकृष्णदेव के प्रति' इत्यादि रचनायें हैं। भाषा का परिवर्तन नवीन है। 'इस प्रकार 'नये पत्ते' में यथार्थ की भूमि पर समयानुकूल विषयो का प्रवर्त्तन है।

'नये पत्ते' की भाव दिशा सर्वथा नवीन है। 'मतवाला' के सम्पादक निराला ने महादेवी की छत्रछाया में जो हास्य का प्रसार पाया उसका प्रसार फिर इस काव्य संग्रह में हुआ है। पहली ही कविता 'रानी और कानी' में चेचक के दाग, काली, नकचिपटी गंजा सर, एक आँख कानी पर 'मा उसको कहती है रानी' हास्य की प्राचीन परिपाटी का आलम्बन उपस्थित कर देती है। परन्तु इस हास्य के पीछे मा के हृदय में बहती करुणा की धारा है। वह कानी की शादी की बात सोचती है और मनमसोस कर रह जाती है। कानी की दाईं आँख कानी। कानी की शादी न होगी यह सुन माँ दुःख से आँसू बहाती है।

लेकिन वह बाईं आँख कानी
ज्यों की त्यों रह गई रखती निगरानी।

दूसरी कविता 'खजोहरा में ग्राम्य वातावरण में सरोवर में स्नान करने वाली नैहर में आई बुआ का हास्य वर्णन है। कवि के दिल में जैसे बचपन की शरारत जगती है और नहाती हुई बुआ पर आम्रवृक्ष से खजोहरा को गिरा देता है। वह विचारी उस कीड़े के रगड़ से सारी देह में खुजलाहट लिये सुध-बुध बिसारे अंधेरे में 'अम्मा अम्मा की' आवाजें लगाती माँ के पास पहुँचती है। यह ग्राम्य-परिहास दिल के बोझ को हल्का कर देती है।

'व्यंग्यात्मक हास्य 'मास्को डायेलाग्स' में है। सुभाष बाबू ने जेल में मंगाकर बहुत बड़े सोश्यलिस्ट गिडवानी जी को मास्को डायेलाग्स की एक प्रति भेंट की थी। उसे ले वे मिलने आये हैं और फिर फरमाते हैं—'वक्त नहीं मिलता है, बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है, देखभाल करता हूँ।' फिर अपने समाज के बड़े-बड़े मूर्ख आदमियों को फँसाने के लिए लिखे उपन्यास को देखने के लिए कहते हैं। जिससे उल्लू के पट्ठों पर प्रभाव डाल मनमाना रुपया ले सकें और बंगले में प्रेस खोल सकें। उपन्यास मास्को डायेलाग्स और सोश्यलिस्ट गिडवानी के सहारे सम-सामयिक सोश्यलिस्टों पर अच्छे-अच्छे व्यंग्य के छींटे कसे गये हैं। इसी प्रकार 'खुदा खबरी में—

कैद पास पोर्ट की नहीं तो कभी
देश आधा खाली हो गया होता,
देविका रानी और उदयशंकर के
पीछे लगे लोग चले गये होते।

इस समापन से सिनेमा तारक और तारिकाओं के पीछे भागने वालों पर व्यंग्य है।

'दगा की' में देश की सभ्यता ने कैसे दगा की इसका व्यंग्यात्मक चित्रण है। कवि के शब्दों में—

बड़े-बड़े ऋषि आये, मुनि आये, कवि आये,
तरह तरह की वाणी जनता को दे गये।

और—

लोगों ने कहा कि धन्य हो गये।

लोग भ्रान्ति में पड़े रह गये और कुछ न कह सके। 'चर्खा चला' में कवि ने बताया कि वेदो के काल से जो चर्खा चला वह अब तक चलता रहा और गुफाओ से घर बने, वैदिक से संवर संस्कृत भाषा हुई, नियम बने या जंगली सभ्य हुए, सुख के साधन बढ़े-जैसे उबटन से साबुन, वेदों के बाद जाति चार भागों में बँटी, यही रामराज है। कृष्ण ने जमी पकड़ी और बलदेव ने हल; खेती हरी-भरी हुई। इस जमीन तक पहुँचते अभी दुनिया को देर है।

'गर्म पकौड़ी' जिह्वा लौल्य पर हास्य तो है ही, जात-पात के ऊँच-नीच भाव पर अच्छा व्यंग्य का तमाचा है। जीभ जलते, सिसकियाँ निकलते भी तेल की भुनी नमक मिर्च की मिली गर्म पकौड़ी को दाढ तले दबाकर ही खाने वाले रखे रहते है। उस पकौड़ी को लक्ष्य कर कवि कहता है—

> 'पहले तूने मुझको खींचा,
> दिल लेकर फिर कपड़े-सा फींचा,
> अरी, तेरे लिए छोड़ी
> बाम्हन की पकाई
> मैंने घी की कचौड़ी।'

'बम्हन' शब्द मे कितना गहरा व्यंग्य है। ब्राह्मण नही बाम्हन। यह हीनता का बोधक शब्द बताता है कि अध्ययन और अध्यापन के उद्दाम कार्य को छोड़ कर ब्राह्मण महाराज का रसोइया हो गया है। उनके हाथ की बनी कचौड़ी में वह मजा कहाँ जो अज्ञात कुल शील के हाथों तली पकौड़ी मे है। कबीर के जात-पात पर किये सीधे व्यंग्यो से यह अधिक गूढ़ और सहृदय संवेद्य है।

'कुत्ता भौंकने लगा' मे जमीदार के सिपाही की डाँट-डपट का जवाब खेतिहर नही दे पाता, पर कुत्ते से न रहा गया। और वह भौंकने लगा। करुणा से बन्धु खेतिहर को देख कर। 'छलांग मारता चला गया' मे जमीदार के सिपाही के गुले के रोबदाब और खून चूसने पर जब आदमी प्रतिदिन नही कर पाता है तो पास का मेढ़क थाले के पानी से उठ कर, मूत-मूत कर छलांग मारता चला गया।' आतायियों पर कुत्ता भौंकता है, और मेढक मूतता है, क्या यह आदमी के लिये शर्म की बात नही ?

हास्य-व्यंग्य ही 'नये पत्ते' का विशेष रस और भाव है। उसके अतिरिक्त 'खून की होली जो खेली' मे १९४६ के विद्यार्थियो के देश प्रेम का भाव वर्णित है। प्रेम और श्रद्धा के भाव 'युगावतार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति, और 'काली माता' मे हैं।

शैली (छन्द)

छन्द तुकान्त अतुकान्त दोनो प्रकार के है। 'खजोहरा' और 'देवी सरस्वती' तुकान्त के अच्छे उदाहरण हैं और 'छलाग मारता चला गया' और 'वर्षा' अतुकान्त के। पहले सम-मात्रिक छन्द मे है और दूसरे असम मात्रिक मे। निराला के छन्दो मे प्राचीन परिभाषानुसार पूरी मात्राओं को सर्वत्र शुद्ध रूप में प्राप्ति कठिन है। खजोहरा कविता मुख्यतः १९ मात्राओ की पीयूषवर्षा छन्द पर आधारित है परन्तु पहली पंक्ति मे २१ मात्राएँ हैं। अन्यत्र भी गणना मे न्यूनाधिकता है।

वस्तुतः इन्हें समयानुसार उच्चरित करना पड़ता है। निराला के छन्द ताल वृत्त या मुक्त छन्दों मे अधिक है। इनका छन्द संगीत समान ताल मात्राओं वाले बलाघातपूर्ण तालगणों या इकाइयों की निरन्तर आवृत्ति पर आधारित है। 'पांचक' के पांच पद्य उर्दू के शेर की तरह हैं।

भाषा के निर्माण में शैली का भी आभास हो ही जाता है। कवि की विचारधारा और भावधारा के अनुसार ही भाषा की सरणि कहती है। छोटे छोटे वाक्यों मे और सरल शब्दों में कवि ने अपनी बात कही है। अलंकारों का कवि को मोह नहीं। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति आदि का प्रवेश है। नई अप्रस्तुत योजनाएँ 'नई कविता' का मार्ग निर्देश करती हैं जैसी —

दौड़ते हैं बादल ये काले-काले
हाई कोर्ट के वकील मतवाले।
फिर भी यह बस्ती है मोद पर
नातिन जैसे नानी की गोद पर।
नाम है हिलगी, बनी है भूचुम्बी
जैसी लौकी, की लम्बी-तुम्बी।
क्षमा मांगने को मदन जैसा बैठा,
डाल पर बड़ा सा खजोहरा था,
रोया हर एक उसका तीरशूल का था,
सुन्दरी की ओर को तना हुआ।
मेढक एक बोलता है जैसे सुकरात
दूसरा फलातू सुन रहा है बात।
कुआ ताल में बैठी जैसी हथनी
डर के मारे कांपने लगा पानी।
किरनों का जाल फैला।
दिशाओं के होंठ रंगे।
दिन में वेश्याएं जैसे रात में।
कितना विहार किया कानूनी पानी पर,
पथे भी खुले रहे।
नाड़ी आई
ख्ययाम की जैसी हो रुबाई।
पयस्विनी नदी पड़ी
जैसे लाज से गड़ी।

प्रयोजन

भारतीय काव्यशास्त्र काव्य का प्रयोजन परनिर्वतित (परमानन्द) और कान्तासम्मित उपदेश बताते हैं। इसी को दूसरे शब्दो मे मनोरंजन और बोध कहा गया है। हास्य और व्यंग्य की भावभूमि में कवि ने आनन्द और मनोरंजन की सृष्टि की है और साथ ही साथ बोध भी दिया है। अन्य कविताओं मे ज्ञानलोक विकीर्ण हुआ है।

> नये पत्ते
> पैरों की धरती आकाश को भी चली जाय,
> मैं कभी न बदलूँगा, इतना महंगा।

इस तरह कवि शाश्वत से व्यामुग्ध अपरिवर्तनशील रूढ़िवादी न बनकर इस परिवर्तनशील धरती पर पहुँच गया जहां तक पहुँचते अभी दुनिया को देर है।

बेला

प्रो० सीताराम दीन

'बेला' निराला के नये गीतों का संग्रह है। गीत—जिसे ध्वनिमय ओंकार कहा गया है। गीतिकार वही हो सकता है जो संगीत-कला और पिंगलशास्त्र दोनों का पारखी है। निराला की 'गीतिका', 'अर्चना', 'आराधना' आदि के गीत इसके आदर्श उदाहरण हैं। इनमें संगीतात्मकता का माधुर्य और छन्द, भाव, कल्पना भाषा आदि का ऐश्वर्य अपने उच्चतम उत्कर्ष पर पहुँचे हुए हैं। और हिन्दी जगत में एक मात्र क्रान्तिकारी कवि निराला ही हुआ है जिसने गीत के इस उत्कर्षपूर्ण नये रूप को हिन्दी पाठकों के समक्ष समुपस्थित किया है। अर्थात् निराला के गीतों में संगीतात्मक, लय, ताल स्वरादि का प्राचुर्य तो है ही, साथ ही काव्यात्म ऐश्वर्य शुद्ध, भाषा, रस, अलंकार छन्द, विषय वैभिन्य आदि आदर्श रूप में अभिव्यक्त हुए हैं।

स्वयं निराला की आस्था है कि गीत ऐसे हों जिनमे चित्त को निर्मल करने और देह-मन को शीतल करने की शक्ति हो।[1] गीत-सृष्टि की दृष्टि से निराला विद्यापति, सूर और मीरा की श्रेणी में आते हैं।[2] निराला के गीतों में विराट की सजीवन कल्पना की गई है और साथ ही स्थूल सौन्दर्य की सूक्ष्म भावभूमि। इनके गीतों में दार्शनिक विचारधारा स्वाभाविक रूप से उतर आती है। अपने समस्त गीतों में क्रान्तिकारी कवि निराला ने जीवन-जगत का दिग्दर्शन व्यापक रूप में किया है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैयक्तिक एवं मानवीय सभी दिशाओं में समान रूप से व्याप्त जीवन-जाल को देखा है और उनको बड़ी निर्भीकता के साथ अभिव्यक्त किया है। गीतों में इस प्रकार का कठिन प्रयोग सर्वप्रथम निराला ने ही किया है। विविधता और प्रयोग की दृष्टि से निराला जी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं।

> शुभ्र आनन्द आकाश पर छा गया,
> रवि गा गया किरण गीत।
> श्वेत शतदल कमल के अमल खुल गए,
> विहग-कुल कण्ठ उपवीत।[3]

प्रकृति का दिव्य चित्रण निश्चय ही कवि की शुभ्र अन्तरात्मा का परिचायक है। साथ ही कवि के काव्यगत दृष्टिकोण को भी इंगित करता है। जीवन का कैसा आनन्दपूर्ण तथा प्रेरणा

---

१ अणिमा, पृ० १५।

२ आलोचना–२८, पृ० ५० आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का निबन्ध 'निराला का काव्य'।

३ बेला, पृष्ठ १७ निराला।

समृद्ध वर्णन है। यही पर जीवन की अवशता और मनुष्य की दुर्बलता की ओर संकेत करने वाले कातर भाव—

> 'रूप की धारा के उस पार
> कभी धंसने भी दोगे मुझे ?
> विश्व की श्यामल स्नेह संवार,
> हंसी-हंसने भी दोगे मुझे' ?१

छन्द की परिवर्तनशीलता तथा भावों का वैभिन्य निराला-काव्य की विशेषता है।

> 'आंखे वे देखी हैं जब से।
> और नहीं देखा कुछ तब से' ।२

प्रेयसी को देख लेने के बाद फिर देखना शेष ही क्या रह जाता साधक अपने साध्य की एक झलक पर सर्वस्व अर्पण कर देता है और उसी झलक के झूले मे आजीवन झूलता रहता है। यही निराला ने लौकिक उपकरण को अलौकिक भूमिका पर संवारा है।

निराला छायावाद के एक सबल स्तम्भ है। व्यष्टि से समष्टि और लौकिक से पारलौकिक भावनाओं की अभिव्यंजना छायावादियो की विशेषता रही है। वैसे तो युगानुकूल असन्तोष और प्रतिरोध कवियों का मूल स्वर ही रहा है। पर कवियो के साथ आध्यात्मिक स्तर पर अधिक उतरे फिर भी मानवीय मूल्यों की कोई कमी नही आ पाई। क्रान्तिकारी कवि अपने युग को नया परिवेश और नया जीवन देता है। निराला जो के काव्य मे पूरे समाज का चित्रण दिखाता है। जीवन और जगत में परिवर्तन का अभिलाषकु कवि अपनी प्राचीन संस्कृति और मानवीय भावनाओं के गीत गाना कभी नही भूलता। कविता मे नयापन मात्र निराला का उद्देश्य नही था बल्कि नया जीवन को नया परिवेश प्राप्त हो, नये दर्शन और नई सृष्टि प्रगतिमय हो। 'नई कविता में जीवन की अभिव्यंजना को अव्याहत रूप मे स्वीकार किया गया है।'३ निराला को काव्य-दृष्टि जहाँ से मिली थी वहाँ साहित्य मे नई दृष्टि काफी दूर तक फैल चुकी है। बंगला के महान कवि रवि, ठाकुर ने निराला की क्रान्तिकारी भावना को अत्यधिक रूप मे प्रभावित किया है। असंख्य वर्णों, चरणों, वन्दों और छन्दों मे जीवन की वही सरस साधना है। वह सत्य और सुन्दर साथ-साथ है। कविता के माध्यम से कवि ने जीवन मे मुक्त भाव और आनन्द के नये विधान को उपस्थित करने का सफल कवि-कर्म सम्पादित किया है। कविता-सृजन के सम्बन्ध मे कवि का अपना सम्पुष्ट मत है। जहाँ हरबर्ट रीड का कहना है कि अपनी काव्य प्रक्रिया मे वे दैवो प्रेरणा का संयोग ही मानते है। जहाँ कीट्स को शेक्सपियर की आत्मा से प्रेरणा मिलती है वहाँ रवि बाबू कहते है—

> अन्तर माझे बोलि अहरह
> मुख हते तुमि भाषा के ढे लेह

---

१. वही, पृष्ठ १८ निराला।
२. वही, पृष्ठ १९ निराला।
३. निराला : काव्य और व्यक्तित्व पृष्ठ ७२, धनंजय वर्मा।

मोर कथा लये तुमि कथा कह
मिशा ये आपन सुरे ।१

निराला कहते हैं—

तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान
भावना रग दी तुमने प्राण
छन्द ब दों मे निज आह्वान ।२

कवि का हृदय कोमल और सहानुभूतिशील होता है। वह अपने आवेष्टन के प्रति सजग रहता है। जो भी प्रभाव उसे प्राप्त होता है उसी की सहज अभिव्यक्ति से हमें जीवन के सत्य, सौन्दय और शिव का दशन कराता है। अग्रेजी का कवि शली काव्य की निर्माण-प्रक्रिया को कल्पना की प्रक्रिया मानता है। निराला का दृष्टिकोण कि कलाकार सौन्दय के माध्यम से भाव को ग्रहण करता है जिसमे कल्पना का सहयोग रहता है। निराला की कल्पना गत्यात्मक प्रकिया है जो समस्त वस्तुओ मे एकत्व स्थापित करती है। अग्रेजी के कवि वडसवथ और कालिरज समन्वित रूप मे निराला में देखे जा सकते हैं।

सबसे बडी विशेषता निराला की यह है कि उनका काव्य समस्त मानवता के लिये महत्व-पूर्ण होते हुए उपेक्षितों का काव्य है। मनुष्य का बधनों में जकडा जीवन कवि को न तो ग्राह्य था और न सह्य। इसीलिये उसकी क्रान्तिकारी भावना सवत्र परिलक्षित है। जिस प्रकार निराला जी को छन्द के बधन अरुचिकर है, उसी प्रकार सामाजिक बधन भी। इसी से सम्राट अष्टम एडवड की एक प्रशस्ति लिख कर उन्होने एक वीर के रूप मे सामने रखा है जिसने प्रेम के निमित्त साहस पूवक पद-मर्यादा के सामाजिक बधन को दूर फेंका है।३

स्वय कवि ने बेला के 'आवेदन' मे कहा है कि 'बेला' मेरे नये गीतों का सग्रह है। प्राय सभी तरह के गेय गीत उसमे हैं।४ गीतातत्व काव्य और सगीत का और सगीत का योगफल है। हिन्दी के गीतों की प्रेरणा जसा लक्ष्मीनारायण सुधाशु मानते हैं, ग्रामगीत है। साथ ही अगरेजी साहित्य के लिरिक्स' बेलेडस आदि का प्रभाव भी कम नहीं है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल जी ने अपने इतिहास म कहा भी है कि अग्रेजी साहित्य का सवप्रथम प्रभाव बगला साहित्य पर पडा और उसी की नकल पर हिन्दी की नई काव्य-परम्परा चली। इसमें अग्रणी निराला हैं, जो रवि बाबू के अत्यत निकट रहे हैं।५

'बेला' में नय गीत इसलिये कि जीवन की नई दिशा खुल रही है। जीने की नई कला

१ चित्रा—रवीन्द्र।
२ गीतिका - निराला, पृ० ४६ और ७६।
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ७१८ रामचन्द्र शुक्ल।
४ बेला, आरम्भ निराला।
५ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०७१५ रामचन्द्र शुक्ल।

नई सृष्टि और नई दृष्टि चाहिये। जीवन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आ रहा है। जन-जीवन को नया परिवेश मिल रहा है। भाक भाषा काव्यात्मक मूल्य भी नये सांचे में ढल कर आ रहे है। प्रशस्ति-गान, भक्ति तथा अनुरक्ति गान की अब वह रूढिग्रस्त परम्परा न रही जिसमें मनुष्य बंधी-बंधाई लीक पर चलता आ उपलब्धियाँ नई दिशाओ मे हमें आकर्षित कर रही थी। स्वभावतः आज की कविताओं की भाव-भूमि परिवर्तनशील तथा नूतन तत्वो से पूर्ण होगी। 'बेला' की भूमिका निश्चय ही नवीन और परम्पराहीन है। इसमे दिये गये नये प्रयोग इस तथ्य के समर्थक हैं।

नया प्रयोग

'बेला' का काव्य-क्षेत्र जीवन का प्रशस्त और व्यापक क्षेत्र है। जीवन के जितने विविध रूप और उसकी सर्जनात्मक दिशाएँ है, बेला मे सर्वत्र द्रष्टव्य है। मानव-मन के सौन्दर्य तथा रसात्मकता जो कला का सत्य है—उनकी उपेक्षा निराला-काव्य मे कही भी नही हुई है।

'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' की रचना समाज की अतियथार्थ भूमि पर हुई है। कवि की विद्रोही भावना व्यंग्य के माध्यम से फूटी है जिसमे हास्य भी सरल ढग से परिलक्षित हो गया है। जिस प्रकार वालटेयर ने समाज मे नये सिद्धान्त और जीवन मूल्यों की स्थापना के लिये नये स्वर बुलन्द किये थे, निराला ने प्रायः वही हिन्दी में किया। निराला का विद्रोही स्वर अत्यन्त सशक्त होकर हिन्दी काव्य में उतरा है 'नये पत्ते' मे निराला ने सामान्य जीवन का चित्रण तो किया ही है; परन्तु उस जीवन का चित्रण विशेष रूप से हुआ जिसमे संघर्ष है, मानवता की उपेक्षा है और है मानवीय मूल्यो से उदासीनता। निराला ने ही वस्तुतः इन प्रयोगो से जीवन के नये मानदण्डों का उपस्थित किया है; जीवन की यथार्थता काव्य मे उपस्थित की है। 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का आरम्भ कदाचित इसीलिये नये पत्रे से माना जाता है।'[1] 'बेला' मे कवि का प्रयोग कई दृष्टियो से उत्कर्ष की ओर बहुत दूर तक पहुँचा है। नया प्रयोग काव्य के प्रायः हर क्षेत्र-भाव, भाषा, छन्द, विषय, सगीत आदि मे सफल सिद्ध हुआ है—

१—केश-रूखे, अधर सूखे,
पेट-भूखे, आज आए।
हीन-जीवन, दीन चितवन,
क्षीण आलम्बन बनाए।[2]

२ किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं।
दिखाने को दर्शन दिए जा रहे है।

खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो,
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं।[3]

---

१. निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ० १८१ धनजंय वर्मा।
२. बेला, पृ० ६२ निराला।
३. वही, पृ० ६८ निराला।

प्रयोग इसलिये भी कि हिन्दी जगत को साहित्य सृजन के क्षेत्र में एक नया आलोक मिले और जीवन को देखन की नई दृष्टि मिले। निराला की बहुत बडी सफलता इस क्रान्तिकारी परिवतन के लिये मानी जायेगी।

हिन्दी म छायावाद के मुख्य स्तम्भों मे निराला जी हैं। इन्होने अंग्रेजी साहित्य के कतिपय प्रभावों, स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि को बगला साहित्य के माध्यम से ग्रहण करके हिन्दी को समृद्ध किया है। चाहे जो भाव, दिशा, छन्द कलेवर और भाषा, ही निराला जी ने जीवन की व्याप्ति को चित्रित करने का सफल प्रयोग किया है। एक मात्र निराला-काव्य हमारे जीवन का सांगोपाग विवेचन करके जीवन के प्रति नये मूल्यो को उद्घाटित करता है। जहाँ स्वछन्दतावादी कवि हिन्दी में कोई नही हैं।[१]

गोत होते हुए भी रहस्यमय भावो से परिपूर्ण निराला की पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कुन्द हास मे अम द
श्वेत गध छाई।
तान तरल तारक-तनु
की अति सुघराई।
तिमिर गहे हुए छोर,
खिंची हुई कुहन कोर,
बदी हैं भानु भोर,
किरण मुस्कराई।[२]

× ×

नाथ, तुमने कहा हाथ, वीणा बजी,
शिर यह हो गया माथ द्विविधा लजी।[३]

उर्दू शैली पर लिखी यह—

हँसी के तार होते हैं ये वहार के दिन।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।

नवीनता की आखें चार जो हुई उनसे
कहा कि प्यार के होते हैं ये बहार के दिन।[४]

नई कविताएँ नये परिवतन का साक्षात्कार कराती है।

भाव वैभिन्य

बेला एकमात्र ऐसी रचना है जिसमें हमें भावों की अनेकरूपता के मिलते हैं। 'ब्रज भाषा

---

१ हिन्दी साहित्य ४६८ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।
२ बेला, पृ० २७ निराला।
३ बेला, पृ० २३ निराला।
४ " " ३१ निराला।

के प्रभाव के कारण अधिकांश जन तुतलाते हैं ।'१ बेला मे 'प्रायः सभो दृष्टियों से उनको फायदा पहुँचाने का विचार रखा गया है ।'२ शैली एक भाषा की दृष्टि से तो बेला का अन्यतम प्रभाव हम पर पड़ता ही है साथ ही इन कविताओं मे जीवन के प्रति अनेक भाव दृष्टियाँ भी हमे प्राप्त होती हैं। कही प्रेम-श्रृंगार कही क्रान्तिकारी भावनाएँ, कही व्यग्य, कही प्रगति-गान कही उद्बोधन कहीं शान्ति और भक्ति परक गीत निराला के विविध किंवा व्यापक दृष्टिकोण को उपस्थित करते हैं। प्रकृति का सहारा लेकर निराला ने मानव-मन को उद्बुद्ध किया है—

> बीन की झंकार कैसी बस गई मन मे हमारे।
> धुल गई आंखें जगत की, खुल गए रवि-चन्द्र-तारे।३

भाषा

'बेला' मे निराला जी की भाषा बहुत ही सरल परन्तु सरस है। खडी बोली और उर्दू का सम्मिश्रण मणि-कांचन-संयोग का अनुपम सौन्दर्य उपस्थित करता है। यह जो कहा जाता रहा है कि उर्दू की भाव-भंगिमा साथ ही उसकी ऋजुता हिन्दी मे कहाँ प्राप्त है। निराला जी ने भाषा के क्षेत्र में भी नया प्रयोग करके यह दिखला दिया है कि खडी बोली मे भी प्रभाव को किस प्रकार सीधे अन्तर में उतारा जा सकता है और उसी मात्रा मे जिसमे उर्दू उतरती है। यह तो मानना ही होगा कि उर्दू भाषा के माध्यम से जो भी काव्यात्मक रचनाएँ उपस्थित हुई हैं उनमें भाव-विचार गाम्भीर्य कहां। गालिब, इकबाल, नजरुल आदि कुछ शायरो ने अवश्य ही उर्दू शायरी में जीवन के गम्भीर विचारों को अभिव्यक्त किया।

हाँ, यह भी शिकायत रही है कि उर्दू की तरह हिन्दी मे यह लज्जत कहां! और न वह विदग्ध ही है जो अन्तर-मन को सीधे छेदे। उर्दू भाषा इतनी हल्की फुल्की रही है कि उसमे विचारों का गाम्भीर्य प्रकट नही किया जा सकता था। संस्कृत को गुरुता को, दार्शनिक व्याप्ति को अवश्य ही उर्दू नही प्रेषित कर सकती थो; यह भी कारण हुआ कि हिन्दी कुछ बोझिल रही है और होगी। उर्दू शायरी अपनी उक्तियो के लिए है मशहूर है। 'निराला ने हिन्दी के विषय मे उर्दू की शिकायत को दूर करने का प्रयत्न बेला मे किया है।'४ बेला की गजलें आदर्श प्रमाण है। साधारण भाषा-शैली में ऊँचे भाव भी व्यक्त किए जा सकते हैं, निराजा ने बेला के गीतो के द्वारा सिद्ध कर दिखाया है।

छन्द

एक काव्य-पुस्तक बेला मे निराला जी ने छन्द योजना के विविध प्रयोगो को सफलतापूर्वक हमारे सामने उपस्थित किया है। निराला जी को ही प्रतिभा थी कि ऐसे कठिन प्रयोगो में भी सफल-छाम हुई। बेला के पहले हिन्दी जगत मे इस प्रकार का प्रयोग कभी नही हुआ। बेला का, इस दृष्टि से बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। बेला मे, कुछ परम्परागत छन्द प्रयोग भी हुए है

१—बेला आवेदन निराला।
२—वही " निराला।
३—वही " पृष्ठ २२ निराला।
४—निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृष्ठ १८६-धनंजय वर्मा।

परन्तु अधिकांशत नए प्रयोग ही हुए हैं। इनमे उर्दू शैली बहुत है। मुक्त छन्द का भी प्रयोग हुआ है। छन्दो का वैविध्य—

माया का सुन्दर बिछा जाल,
जो सरल वही देखा अराल।
जग की मिथ्या से छुटने को
सत्य भी सदा भ्रम है परिचय।१
कैसे गाते हो? मेरे प्राणो मे
आते हो, जाते हो।२
खिला कमल, किरण पडी।
निखर निखर गयी घडी।३

संगीत

कहा जाता है कि निराला जी एक कुशल संगीतज्ञ भी रहे हैं। यही कारण है कि उनका एक-एक पद गेय है। उन्होंने बेला के आवेदन में कहा भी है कि व्रज भाषा की तुतलाहट के कारण जो गा नहीं पाते, उन्हें बेला के गीत गाने को प्रेरित करेंगे। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का मत है कि बेला के कुछ गीत गीतिका की परम्परा के है जिनमें रस्यानुभूति कुछ दुरूह हो गई है। परन्तु गेयता की दृष्टि से प्राय सभी गीत सुन्दर बन पडे हैं। बेला के गीत और उनमें प्रकट भाव को लेकर लोगों का कहना है कि निराला जी एक जन कवि हैं। जन कवि कोई कवि तभी बनता है जब वह जनता के भावों को जन रुचि के साँचे में ढालकर उपस्थित करता है। जिसे जनता सहर्ष ग्रहण कर लेती है शृंगार, दर्शन प्रगति और आक्रोश सभी भाव गीत मे प्रीतिकर बन कर अभिव्यक्त हुए हैं। चाहे मुक्त छन्द की अन्य रचनाएँ-'तोडती पत्थर अथवा भिक्षुक 'राम की शक्ति पूजा' आदि ही क्यों न हो, सबमे गीतितत्व एवं प्रवाह अक्षुण्ण है। विभिन्न राग रागिनियों के साँचे मे ढाल कर निराला जी ने गीतो की रचना की है। बेला' में सांगीतिक प्रयोग भी सफलतापूर्वक निभाए गए हैं।

उपसंहार

बेला उच्च भावों की सरल अभिव्यक्ति है। यहाँ तक कि इस सरल मार्ग से अत्यंत सशक्त क्रान्तिकारी भाव भी व्यक्त हुए हैं। निराला इतने स्वच्छन्द और निर्भीक रहे हैं कि कभी-कभी उन्हें लोगों ने गलत भी समझ लिया है। 'निराला क्रान्तिकारी कवि थे। उनकी क्रान्ति का लक्ष्य था ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति जाति, वर्ण धर्म आदि की सीमाएं तोडकर मानव-समानता के आधार रखा हुआ समाज। इसीलिए कवियों और साहित्यकारों के अलावा राष्ट्रीय नेता भी उनसे चौंकते रहते थे। स्वाधीन भारत के एक ऐसे ही नेता ने निराला को सरकारी सहायता देने से इनकार किया था क्योंकि उनकी समझ में वह कम्युनिस्ट थे।' ४ निराला जी ने सरकारी तथा गैरसरकारी

१ बेला पृ० ६६—निराला।
२ वही पृ० २१—निराला।
३ वही, पृ० २४—निराला।
४ निराला, पृ० २०६—डा० रामविलास शर्मा।

उपेक्षाओं को सहते हुए राष्ट्रभारती की जो उत्कर्षपूर्ण सेवा की है वह आदर्श है। बेला में व्यंग्य का बहुत ही परिष्कृत रूप उतरा है। 'कुकुरमुत्ता' मे जहाँ कुछ कर्कशता मिलेगी वहाँ बेला में मृदुलता और प्रांजलता। 'बेला' उपयोग की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रचना है। प्रयोग की दृष्टि से यह एक सफल प्रयोगवादी रचना तो है ही। वैसा प्रयोग नही जैसा तारसप्तक मे हुआ है। अथवा प्रयोग नाम पर प्रभावपूर्ण या अज्ञानतापूर्ण शुद्ध जाल फैलाए जाते है।

लोग-बाग कहते सुने गए है कि निरालाजी विक्षिप्त थे। उनके व्यवहारादि में कोई संतुलन नही था; परन्तु उनके गीतों की मार्मिक को देखकर उक्त कथन एकदम भ्रांतिपूर्ण प्रतीत होता है। इनके गीतों में व्यंग्य के साथ-साथ जन-जीवन का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है। सरलपन और सीधापन का प्रभाव अवश्य ही पूर्ववर्ती उर्दू शायरो का पडा होगा। किस प्रकार निराला ने उर्दू के इन प्रभावों को आत्म साथ करके प्रभावो को आत्मसात करके हिन्दी मे वे गुण प्रकट किए हैं। जिस प्रकार निरालाजी ने बंगला का प्रभाव प्राप्त करके हिन्दी से उसका मेल कराया उसी प्रकार उर्दू का। बेला के गीतो मे प्रकृति का चित्रण बडा ही सजीवन और गतिमय बन पड़ा है। सबसे बड़ी खूबी निराला की कविताओं की मैं यह जानता हूँ कि वे भाव या रूप चित्रण मे बड़े ही तटस्थ कवि हैं। यह सहज गुण नही जो हिन्दी के अन्य कवियों मे दिखे।

> पंकज के ईक्षण शरद हंसी;
> भू-भाल शालि की बाल फंसी।
> वह चला सलिल, खुद चली नसी;
> सोंके दल इधर पसीजे फल।१

इन पंक्तियों में साफ और निष्पक्ष प्रकृति चित्रण के अलावा मानव-मन का सम्बन्ध किसी प्रकार नही दिया गया है। यह अलग बात है कि प्रकृति चित्रण को पढकर पाठक अपने ही किसी पर्व निरूपित चित्र को पढ़ ले, देख ले।

इसी प्रकार शृंगार के वर्णन मे भी निराला जी अपनी महिमा प्रगट करते है। वहाँ वे प्रकृति का सहारा लेकर मन के सुपृत भावों को सहज-स्पदन के द्वारा स्फुरित कर देते है। कई गीत ऐसे भी हैं जो अध्यात्मक की ओर हमे ले जाते है।

> नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा बजी,
> विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।२

इस प्रकार के आध्यात्म-परक भाव रविबाबू की 'गीताजल' मे भरे पड़े है; और निराला जी इसके प्रभाव से विलग नही कहे जा सकते। आध्यात्मि गीतो मे निराला जी ने अध्यात्म के महत्व को भी दिखाया है—माधुर्य, दर्शन तथा वेदांतिक अद्वैतवाद आदि। कहीं-कही निराला जी के आध्यात्मिक गीतों को देखकर कैथोलिक प्रभाव भी नही दिख जाते है—

---

१. बेला पृ० ३० निराला।
२. वही, पृ० २३ निराला।

बुराई छोड़, किसी की
भलाई कर या न कर,
जमीं रहने दे, जा रहने दे,
जान रहने दे।[1]

सर्वोपरि निरालाजी जन-जीवन के गायक हैं। उन्होंने बेला के अधिकांश गीतों में जीवन की विषमता का चित्रण किया है। निराशा, क्षोभ, दैन्य, विरोध, मुक्त, नव निर्माण, उदबोधन आदि मुख्य रूप से 'बेला' में चित्रित हुए हैं।

'बेला' एक प्रकार से निराला जी की काव्य प्रयोगशाला है। हिन्दी छन्दों के अलावा उन्होंने छन्दों-बहार, गजल, किता, रुबाई आदि को अपनाया है और कहीं-कहीं छन्द के बंध से एकदम मुक्त भी है। निरालाजी के इस प्रयोग को सफल हम इसलिए मानते हैं कि खड़ी बोली के माध्यम से उर्दू शैली का सहारा लेते हुए जन जीवन का सरल चित्रण उपस्थित किया गया है। 'बेला' का वैविध्य आकर्षक है। 'बेला' एक महत्वपूर्ण काव्य रचना है जिसमें नया प्रयोग तो है, निराला का नया-बोध भी है।

—०—०—

१ बेला पृ० ६१ निराला।

आराधना

श्री सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर

आधुनिक हिन्दी-काव्यधारा के युग प्रवर्तक कवि-मनीषि और प्रगीत की अनेक शैलियो के आविष्यकारक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कृत 'आराधना' (साहित्यकार संसद प्रयाग द्वारा संवत् २०१० वि० में प्रकाशित) उनके ६६ गीतो का कलात्मक संकलन है। 'आराधना' की सारी कविताएँ महाप्राण निराला के अन्तःकरण से निःसृत भक्ति भावना को सांगीतक अभिव्यंजना है। इसकी दार्शनिक पीठिका और आध्यात्मि भाव-भूमि कवि के गम्भीर एव स्वस्थ जीवन-दर्शन की परिचायिका है। इस संग्रह का मूल्याकन करते हुए राष्ट्रभारती की प्रख्यात कवयित्री महादेवी ने इस प्रकार कहा है—'जीवन मे जो कुछ सत्य, सुन्दर और मंगलमय है, वही निराला का आराध्य रहा है। 'आराधना' उसी जीवन व्यापी अर्चन की कडी है। अविश्वास के इस अन्धकार युग मे 'आराधना' के स्वर दीपक राग को भांति सगोत और आलोक की समन्वित सृष्टि करने मे समर्थ होगे।'

वस्तुतः 'आराधना' के गीतो मे निराला का सूक्ष्म काव्यानुचिन्तन जीवन अनुभूतियो से रूप, कल्पना से रंग और भावनाओ से सौन्दर्यग्रहण करके जीवित हो उठा है। कवि के इस आध्यात्मिक मर्म का प्रेरणास्थल है भक्ति दर्शन, जिसकी सजीवन अभिव्यक्ति सग्रह के अधिकाश गीतो मे हुई है। उदाहरणार्थ —

> पद्मा से पद को पाकर हो, सविते, कविता को यह वर दो।
> चूण उर्मि-चेतन जीवन रख हृदय निकेतन स्वरमय कर दो।

उपरोक्त गीत मे विद्या को अधिष्ठात्री देवी वीणापाणि शारदा के प्रति कवि की सहज अर्चना निवोदित है। दूसरे गीत 'दुख के सुख जियो, पियो ज्वाला शकर की स्मर शर की हाला' मे सघर्ष का विष पान सहर्ष करने का सकेत मिलता है। तीसरा गीत 'धाये धाराधर धावन है, गगन-गगन वाजे सावन हैं'—कविवर निराला के ओजस्वी एवं पौरुप स्वर का सूचक है। आठवां गीत रग-रंग से गागर भर दो, संग्रह का अताव भाव प्रवण और मधुर गीत है। इसमे कवि ने भगवती सरस्वती के चरणो मे अपनी असीम श्रद्धा के फूल चढाये हे और मानस के सित शतदल को पल्लवित करने की कामना प्रकट की है। प्रतीकात्मक ढग से उभरे कवि के भाव अत्यन्त निखरे से लगते हैं :—

> तरु को तरुण पत्र-मर्मर दो, रेणु-गन्ध के पंख खिला दो।
> खग को ज्योति-पंज प्रात दो, जग ठग को प्रेयसी रात दो,
> मुझको कविता का प्रपात दो अविरत मारण मरण हाथ दो
> बँधे परों के उड़ते पर दो, निष्प्राणों को रसमय कर दो।

(पृष्ठ ८)

१२ वें गीत 'कृष्ण-कृष्ण राम राम, जपे हैं हजार नाम' और ५१ वें गीत 'हरि भजन करो भू भार हरो' में भक्ति-भारती के अमर गायक सूरदास की पद-शैली एवं भक्ति भावना का स्पष्ट आभास मिलता है। कवि ने भौतिकता से ग्रस्त मानव-जाति को आध्यात्मिकता ही मनुष्य को संघर्षों, दुखों, आज्ञानांधकारों से हटाने का उपक्रम सुझाती है तथा उसे ऐसे समरस स्थल पर ले जाती है, जहाँ मानव को अनिर्वचनीय आनन्द का बोध होता है। अत अविश्वास, रीति-रूढ़ि और स्वार्थ जकड़े मनुष्य से कवि का यही विनम्र निवेदन है —

हरि-भजन करो भू-भार हरो, भव सागर निज उद्धार करो।
गुरु जन की आशिष सीस धरो, स मार्ग अभय होकर विचार।

जीवन सत्य और मानव मूल्य का यथार्थ बोध करना ही 'आराधना' के स्रष्टा कवि का महत् ध्येय है। निराला मस्तिष्क से भले अद्वैतवादी हों किन्तु हृदय से भक्ति और प्रेम-मार्गी ही दृष्टिगत होते हैं। अत उन्होंने औपनिषदिक और वेदांती चिन्तन से जो अनुभूति पाई, उसी का सरस अंकन आराधना में हुआ है। ठीक इसी प्रकार की वैष्णवी भावना 'अणिमा', 'अर्चना', 'गीत गुंज' आदि संग्रहों में मिलती है। ४६ वें गीत 'जीकर जो प्राण न मार सकें, मर कर क्या जीतोगे जीवन' और ५० वें गीत 'तुमसे लाग लगी जो मन की, जग की हुई वासना बासी, गंगा की निर्मल धारा की, मिली मुक्ति, मानस की काशी' जैसी रचनाओं में कवि की भक्ति चेतना का ही स्वर झंकृत है। 'भगवत चिन्तन' में कवि का विशेष अनुराग है। इस सन्दर्भ में ३५ वां गीत अवलोकनीय है —

'सत्य पाया जहा जगने वान तेरा ही रहा है,
जहाँ भी पूजा बढ़ी है, मान तेरा ही वहाँ है।
तूलि के रंग खुली कलियां, गूँजती षटपदावलियां,
महकती गलियां, सुरभि का गान तेरा ही यहां है।'

आत्मोल्लास का पर्व मनाना ही कवि को अभीष्ट है। चूंकि वह जानता है कि भक्ति भावना मानव हृदय में सात्विक चेतना और ज्ञान रश्मि उदित करती है। २० वें गीत 'राम के हुए तो बने काम, संवरे सारे धन धान धाम' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के जीवनादर्श के प्रति कवि की चरम आस्था व्यंजित है।

निःसंदेह निराला राष्ट्रभाषा हिंदी के सन्त और सांस्कृतिक कवि विभूति हैं। साथ ही भारतीय दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित, साहित्य में वेदांती धारा के जनक भी जिसका प्रमाण 'आराधना' में मिल ही जाता है। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की दृष्टि में 'व्यष्टि निराला लघु गुरु गीतों का समष्टि नहीं, जीवन की समग्रता के रस भावों से भरा हुआ महाभारत सा महाकाव्य है।' दूसरी ओर सुधाकर पाण्डेय की धारणा है—"अर्चना और 'आराधना' के गीतों में भावना की जिस तन्मयता के दर्शन होते हैं वह आधुनिक हिन्दी गीतकारों में गम्भीरता की दृष्टि से किसी भी कवि में नहीं मिला। काव्य की आराधिका देवी भारती की अटल निष्ठा में जहाँ एक ओर तुलसी की

भाँति हृदय निवेदन की असीम विनम्रता है, वही सूर और मीरा के गीतों की टीस भरी रसमयता भी।'

निराला जी उस महान जीवन साधना के पथिक हैं, जो भारतीय कवियों एवं चिन्तकों की साधना का एकमात्र पाथेय रहा है। उनका सम्पूर्ण जीवन आलोक सृष्टि के निर्माण में रत आराधना का जीवन्त रूप है तथा मंगलकारी विश्व के निर्माण हेतु सदैव उत्सर्ग करता रहा है। २८ वाँ गीत में कवि की दीनबन्धु ईश्वर से यही प्रार्थना है :—

> 'दुख हर दे, जल शीतल सर दे, वर दे ! पावन उर कर दे !
> शून्य कोष ओसों से भर दे, तरु को रश्मि, पत्र मर्मर दे !

८८ वें गीत में कवि की यही अनुनयभरी विनयशीलता प्रकटित है—

> जीवन के मधु से भर दो मन, गन्ध विधुर कर दो नश्वर तन।
> मोह मन्दिर चितवन को चेतन, आत्मा को प्रकाश से पावन।'

'आराधना' आत्मद्रष्ठा कवि द्वारा निरीक्षित जीवन की महती साधना का सांगीतिक स्वर है। इसके गीतो क आध्यात्मिक पीठिका कवि की भक्तिपरक भावानुभूति के सहजोद्‌गार है। इन गीतो में कवि की भव्य सास्कृतिक चेतना का उन्मेष मिलता है। छायावादी काव्य दृष्टि के अनुकूल कुछ गीतो मे प्रकृति सौन्दर्य का छवि का मोहक अंकन हुआ है—

(१) वन-उपवन खिल आई कलियाँ, रवि छवि दर्शन की आकलियाँ।
(६३वाँ गीत)

(२) मुख की महिमा की छवि, अभिनव, महकी आम की झर झर मधुवन—
(८१वाँ गीत)

(३) कुंजों की रात प्रभात हुई, कूंजित अलसाई गात हुई।
(५८वाँ गीत)

'आराधना' मे कवि के हृदय मे कल्लोलित नील कमल ज्योति प्रात की तरह निर्झर-गान प्रवाहित है। निराला जीवन की स्वर लहरियो मे हृदय को अनुभूतियो के मर्म-द्रष्टा रहे हैं। छन्दों की मुखरित वाणी उनके अन्तस्तल से स्त्रोतस्वनी वन कर फूटी है। इन गीतो में साधना की जो अनुगूंज है, वह काल व सीमा से परे हैं। क्योकि आत्म-साधना की व्यापक भारतीय भावमित्त नये रूप मे मूर्त्त है। कवि को उत्सर्ग मुक्त स्नेह मे ही निष्ठा है। यही सकल्पात्मक स्नेह स्निोद्धृत तीत मे व्यक्त है—

> पार पारावार जो है, स्नेह से मुझको दिखा दो,
> रति क्या, कैसे नियम, निर्देश कर करके सिखा दो।

४१ वां गीत ६३ वां गीत अतीव मधुर और सरस है, जिसमें कवि का प्राकृतिक सौन्दर्य विलोकन चित्रित है—

ओस पड़ी, शरद आई, हरसिंगार मुस्काई,
मालती खिली निखरी, शीत हवा सरसाई।

इस प्रकार निराला ने 'आराधना' द्वारा आज के मानव मन में आध्यात्मिकता और भक्ति की किरणें छिटकाने का प्रयास किया है। इन गीतों के पठन एवं स्वर गायन से एक प्रकार का स्वास्थ्य भाव दिलो दिमाग मे उतरता है। तथा भगवत भजन में मिजाज रमता है। चूंकि कवि को पूर्ण विश्वास है कि पावन मन्दाकिनी में मानव का सारा कल्मष धुल जाता है और उसकी स्थिति ठीक खोले नयन आँसुओं धोकर चेतन परम दिशे अविनाशी जैसी हो जाती है। 'नाचो हे रुद्रताल' गीत कवि का ओज भरा शुभगान है।

पद-शैली

हिन्दी काव्य साहित्य मे निराला की काव्य शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। शब्द विन्यास, छन्द विधान, अलंकार छटा, भाव गाम्भीर्य और अर्थ सूक्ष्मता आदि शैलीगत विशेषताओं की दृष्टि से उनका काव्य हिन्दी गौरव स्तम्भ है। आलोच्य संग्रह में भी निराला का संगीत एवं कविता को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास दृष्टिगत होता है। इस अमर काव्य शिल्पी के गीतों में सामाजिक पद-शैली की झलक मिलती है। उनके गीतों में कल्पना से लेकर नव प्रयोगों तक गम्भीरता के साथ ही स्वच्छन्दता दृष्टिगोचर होती है। उनके गीत 'ऊर्मिल मृदु गन्ध हास है' जो सारी अवनि में प्रकाशित है—'गगन वीणा बजी, किरण के तार पर, रागिनी जो सजी।' निराला का कवि हृदय ज्ञानान्वेषण के हेतु सत्य की नित्य आराधना में तन्मय है—'निर्मल हो धुलकर मन खोले ज्ञान के दिव्य दो नयन।' निम्नांकित गीत में चित्रण कला की झांकी मिलती है—

कुम्हलाई डाली हरियाई, खुल-खुलकर तरु कोयल गाई,
चलखाती विपुल हवा आई, सौरभ सौरभ धरती कसकी।'

जहाँ एक ओर निराला के गीतों में कोमल शब्द विन्यास है, तो दूसरी ओर पटा, सटा, चटा, हटा, आटे, भाटे, जैसे क्रूर शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। 'धाये धराधर हे, गगन-गगन गाजे सावन हे' गीत मे अनुप्रास एवं वीप्सा अलंकार की योजना हुई है। गीत मे शब्द-लाघव की दृष्टि से निराला का प्रयोग अकेला है—'रमणी न रमणीय, कामना कमनीय उसकी हंसी किरणों के रजत-सन।' शब्द लाघवता में विशेष अर्थ भरने की प्रकृति है। यत्र तत्र निराला के गीतों मे बौद्धिक उत्कर्ष अपनी पराकाष्ठा पर रहा है। उनकी वाणी मे तेजस्विता और ओजस्विता है। ज्वालामुखी भाषा की साहित्यिक क्षमता प्रदान की गई है। लेकिन संगीत-कला एवं शिल्पचारुता की अपेक्षा निराला के इन गीतों मे जीवन की प्राणशक्ति और भक्ति की चेतना सर्वाधिक मुखर है। इस प्रकार आराधना के गीतों में निराला के उज्ज्वल भक्ति दर्शन और सशक्त पदशैली का कलात्मक संस्पर्श तथा मणिकांचन संयोग दीख पड़ता है।

गीत-कुन्ज

डा० गोपाल जी 'स्वर्णकिरण'

"गीत-गुंज" सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के कुछ वैसे गीतो का सग्रह है जिसमे उनके भोगे हुए क्षणो और अनुभवो का चूडान्त निदर्शन है। ये गीत, प्रकाशकीय सकेत के अनुसार, सन् १९५३-५४ के रचित है, जो इस बात के सूचक है कि निराला जी इन्हे जीवन के प्रायः अन्तिम दिनो मे लिखा है। निराला सास्कृतिक चेतना के अग्रदूत के रूप मे विख्यात रहे है। जो इन्हे रवीन्द्र के भावनापुत्र; स्वामी राम-कृष्ण तथा विवेकानन्द के प्रजापुत्र के रूप मे समझते रहे है उन्हे भी इस बात से आपत्ति नही हो सकती है निराला भारतीय संस्कृत की उपज थे। यों पाश्चात्य संस्कृति, नही, विश्व संस्कृति के अच्छे गुणो को सात् करने मे यह कभी भी पीछे नहीं रहे। यह निराला के व्यक्तित्व की विशेषता कही जा सकती हे कि उन्होने सास्कृतिक चिन्तन की ओर विशेष ध्यान दिया। 'स्व' 'पर' आदि की अनुभूति के क्रम मे, कभी 'स्व' 'तथा पर' के समन्वय पर विचार करते रहे। यह प्रसन्नता की बात है कि यह 'आत्मन्येव आत्मनः तुष्टः' के कायल कभी भी नही रहे। जहाँ पर आत्मतुष्टि का भाव इनकी कविताओ में, रचनाओ मे दिखाई भी पडता है वहाँ मात्र आत्मतोष ही नही है। आत्म के माध्यम से अनात्म, बल्कि यह कहा जाय कि आत्म के विकास, परिष्कार तथा जागरण के द्वारा आत्मेतर के विकास, परिष्कार तथा जागरण पर यह बराबर ध्यान देते रहे है। यह सीमित अर्थों मे आत्मवाद के पुजारी नही कहे जा सकते। यो स्वामी रामकृष्ण तथा विवेकानन्द ने भी आत्मवाद के सामित अर्थ का समर्थन नही किया और समय पड़ने पर 'धर्म' के पहले 'रोटी' पर जोर दिया। इस प्रसंग मे, स्वामी रामकृष्ण का वह उद्धरण ध्यान देने योग्य है जिस का प्रयोग उन्होने एक प्रश्नकर्ता के सन्देह के निवारण के लिए आत्मवाद को प्रचारित करने वाले वेदान्त से स्पष्टीकरण के क्रम मे किया था।

'आत्मवाद को महत्वपूर्ण माननेवाला तथा संन्यास पर जोर देने वाला वेदान्त दर्शन यह कभी नहीं बतलाता कि जंगल में भाग जाना संन्यास है, सन्यास को, स्थान से कुछ भी मतलब नहीं, शारीरिक कार्य-कलाप से भी नही। इसे, इन सबसे कोई तात्पर्य नहीं। सन्यास मनुष्य को मात्र सर्वोत्तम रूप में रखता है, असली जमीन पर प्रतिष्ठित करता है। सन्यास अन्चल को वद्धित करता है और ईश्वर को अपना बना देता है। यह सभी दुःखो को, सभी चिन्ताओ को, सभी भयों को हर लेता है। तथा मनुष्य भयरहित एवं प्रसन्न अर्थात् सुखी बन जाता है।' निराला ने 'परिमल' की 'अधिवास' शीर्षक कविता के माध्यम से संसार से पलायन नही कर यही अधिवास बनाकर, 'स्व' की साधना पर जोर दिया है। 'स्व' की साधन के पश्चात् ही एक आलोक की प्राप्ति होती है जिसके द्वारा संसार की विपन्नता, युग की मलिनता को साधक मनुष्य देख पाता है, उसके उपचार के

लिए सन्नद्ध होता है। उत्सग मूलक भारतीय सस्कृति साधक को 'स्व' का आहुति की प्रेरणा देती है और साधक कभी-कभी 'स्व' को होमकर, 'पर' की पीडा को हटाने की चेष्टा करता है। 'गीतगुज' के गीत निराला के इसी साधक की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। ये गीत, भारत के सांस्कृतिक उत्सग के आलोक से ओत प्रोत है।

गीत शब्द अमरकोष के अनुसार, गान का समानार्थी है (गीत गानमिम समे) जब कि हेमचन्द्र ने गीत को 'शब्दित गान' कहकर पुकारा है (गीत शब्दित गानयों) अर्थात गान शब्द गीत से व्यापक प्रभाव वाला कहकर पुकरा जाए। वास्तव म, अमरकोषकार भी गीत को गान का समानार्थ, कह कर यही बात कहना चाहता है। गान और गीत 'गै' धातु से विनिर्मित होने पर भी व्यवहार की दृष्टि से पूर्वा पर क्रम के द्योतक हैं गान, गीत के वक्तव्य रूप का बोधक है और श्रोता की सभी चितवत्तियाँ इसके आलाप को सुनकर, विलीन हो जाती है। प्रसिद्ध आलोचक एव विचारक डा० रामखेलावन पाण्डे ने गान और गीत पर विचार करते हुए ठीक ही कहा है कि यद्यपि दोनों के सम्बन्ध सगीत शास्त्र से है और दोना के जनक भगवान शकर हैं तथापि गान शब्द बडा व्यापक है, गीत का सबध जहा रचना विशेष है वहाँ गान का सम्बन्ध गेयता की पद्धति अर्थात सगीतत्व के, प्रयोगात्मक रूप से है। कहने का मतलब यह कि गीत शब्द गान के सुष्ठुरूप द्योतक है तथा अत्यधिक प्रभाववाला है। इसके उद्गम या उत्पत्ति किया पर ध्यान देने से, इसके लक्ष्य का भी बोध हो जा सकता है। सगीत शास्त्र मे कहा गया है कि भगवान शकर को दुखाक्रान्त देखकर, सांसारिकों के दुख निवारणार्थ गीत और वाद्य को प्रकाशित किया। यानी गीत, दुख से विनिस्सृत होते तथा दुख का निदूरित करते हैं। गीत की उत्पत्ति का मूल कारण व्यापक रूप से दुख है, यों यह दुख वैयक्तिक भी हो सकता है और अवैयक्तिक भी। निराला की सहवर्ती एव विचारिका महादेवी ने गीतों की प्रकृति पर विचार करते हुए कहा है कि सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों मे स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमें कवि को सयम की परिधि में बँधे हुए जिस भावातिरेक का आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नही, कारण, हम प्राय भाव की अतिशयता मे कला की सीमा लाघ जाते हैं और उसके उपरात भाव के सस्कार मात्र मे मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति मे गीत के स्थान मे अगीत की उत्पत्ति हो सकती है, साधनात्मक सयम के अभाव म भावावेश क्रन्दन या हाहाकार अथवा अश्रुपात के रूप में दृष्टिगोचर हो सकता है और यही कारण है गीतो के प्रजनन मे हमे सयम पर भी ध्यान देना पडता है—साधनात्मक और कलात्मक दोनों प्रकार के सयम पर। महादेवी का सुख और दुख शब्द यहाँ भ्रम उत्पन्न कर सकता है और हम यह समझ सकते हैं कि गीत का आविर्भाव सुख की अवस्था म भी हो सकता है पर यहाँ विचार्य है कि सुख के मूल में मर्मस्पर्शी वेदना अवस्थित हैं। वेदना के अभाव म सुख की स्थिति म गीत की उत्पत्ति सम्भव नही है। इस सिलसिले में निराला के ही सहवर्ती कवि पत का वह कथन भी याद आता है जहाँ उन्होने वियोग और तज्जन्य आह को गान अथवा गीत का मूल कारण माना है (वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान) और इसी से कविता की धारा का फूटना बतलाया है। कहने का मतलब यह कि गीतों का मूल कारण वेदना है जिससे गायक अथवा साधक प्रभावित होता है। 'गीत गुज' के गीत इस बात के प्रमाण हैं कि साधक का आत्मिक विषाद ही गीत के शाब्दिक कटघरों म प्राय आबद्ध होता है।

साधक (व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त, कलाकार मनुष्य) 'स्व' के साधना-क्रम में प्रायः वासनाओं से परिचालित होता है। वासना की तीव्रता के अनुसार ही, उसकी साधना मे तीव्रता होती है। वासना की सृष्टि की प्रजनन-प्रक्रिया है यही, साधक मनुष्य के शरीर मे व्याप्त पंचकोषो अर्थात् पंचचेतनाओं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय नाम से अभिहित कोषों अथवा चेतनाओ मे क्रमशः उन्मुख होती चलती है और भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुभूतियो, वेदनाओं और उनसे उत्पन्न गीतो को जन्म देती है। कहते हैं, अन्नमय कोष अथवा चेतना मे व्याप्त रहने पर यह वासना आकर्पण कहलाती है और इस स्तर पर साधक मनुष्य मांसलता से आक्रान्त रहता है, उसके भीतर का पशु प्रवल रहता है, अतः स्वार्थपरक भाव ही हृदय-प्रदेश मे अधिक उठ पाते हैं। ऐसे में जो भी गीत बन पाते हैं, निकल पाते है छिछले ढंग के होते है। प्राणमय कोष अथवा चेतना मे व्याप्त रहने पर यही वासना दार्शनिक भावो को जन्म देती है। यही से प्रेम का उदय होता है और साधक मनुष्य पाने के साथ-साथ देने पर भी ध्यान देने लगता है। यहां पर वासना ज्योंही संक्रमित होती है साधक मनुष्य के पशुत्व का परिहार होने लगता है, उसका मनुष्यत्व प्रवल होने लगता है, 'स्व' मे और 'स्व' के बाहर भी एक विराट चेतना के दर्शन होते हैं और साधक मनुष्य मन ही मन उसके प्रति प्रणय भावना अर्पित करने लगता है। ऐसी स्थिति मे जो गीत फूट पाते है वे प्रायः दार्शनिक तत्वों से वोझिल होते हैं। मनोमय कोष अथवा चेतना मे पहुँचने पर वासना अधिक परिष्कृत हो जाती है, कामना दवने लगती है, आत्म-समर्पण का भाव जाग्रत होने लगता है। ऐसे मे ही साधक मनुष्य भक्तिपरक गीतों का सृजन करता है। भक्ति सामान्यतः द्वैतमूलक होती है। द्वैतभाव ही विरह अथवा वियोग का जनक होता है। साधक मनुष्य की वासना मनोमय कोष अथवा चेतना मे संक्रमित होने पर द्वैत की अनुभूति कराती है पर विज्ञानमय कोष अथवा चेतना की ओर ज्यों-ज्यों वढने लगती हैं त्यों-त्यों द्वैत भाव दवने लगता है और 'स्व' तथा 'पर' मे एकत्व की अनुभूति होने लगती है, एक की वेदना में दूसरे की वेदना दिखलाई पड़ती है। ऐसे मे ही जनमंगल की भावना पनपती है। साधक मनुष्य इस स्थिति मे ऐसे गीत उत्पन्न करता या लिखता है जो कि जनमंगल की भावनाओ से ओतप्रोत होते हैं। किन्तु आनन्दमय कोष अथवा चेतना पर जब वासना केन्द्रित होती है तब साधक मनुष्य के अहं का पूर्ण विसर्जन हो जाता है और द्वैत मे अद्वैत, अद्वैत मे द्वैत की अनुभूति के साथ-साथ वह अपनी चेतना को विश्व चेतना मे परिणत कर देता। आनन्दमय कोष अथवा चेतना प्रेम की अन्तिम परिणति है और ऐसे मे जो वेदना-जन्य गीत, निस्सृत होते हैं वे वड़े ही प्रभावक एवं सारगर्भित होते हैं। गीत गुंज मे साधक निराला के साधना-क्रम की विविध स्थितियो के चित्र दिखलाई पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि निराला जी की वासना साधना-क्रम में अन्नमय कोष अथवा चेतना को नजरअन्दाज करती है और प्राणमय कोष अथवा चेतना से अपनी साधना आरम्भ करती है और मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोषों अथवा चेतनाओ पर रमती चलती है।

गीतो की सृजन प्रक्रिया के क्रम में ऐसा नही समझना चाहिये कि केवल हृदय ही क्रियाशील रहता है। हृदय की क्रियाशीलता के साथ बुद्धि की भी क्रियाशीलता रह सकती है। वल्कि अधिक ठीक से देखने पर यह प्रतीत होता है कि हृदय और बुद्धि का जब समन्वय होता है तभी प्रायः अच्छे गीत निकल पाते है। अच्छे गीत का मतलव 'गीति' से नही है जिसका अंग्रेजी पर्याय 'लिरिक'

होता है। वस्तुत 'गीति' वैयक्तिक सुख-दुखो का व्यजक होती है और इसमे आत्मपरक सुख दु ख ही गलीभूत होकर निकलते हैं जिनकी उपयोगिता दूसरों की दृष्टि म कदाचित कदाचित ही हो पाती है। अच्छे गीत का मतलब है ऐसे गीत से जो 'स्व' के साथ-साथ 'पर' की सुखात्मक अथवा दु खात्मक अनुभूतियो से परिचित कराये। निराला के गीत (विशेषत 'गीतगु ज' क) प्राय वैयक्तिक दु खो से सम्बलित होने पर भी अवैयक्तिक दु ख के छोरो को भी छूते हैं। बात यह है कि ये गीत हृदय से विनिगत होने पर भी प्राय बुद्धि के द्वारा अनुशासित हैं। मात्र हृदय स विनिगत होने पर गीतो मे अस्त-व्यस्तता का भय बना रहता है जो बुद्धि के द्वारा अनुशासित होने पर प्राय श्रृ खलित हो जाते हैं। उदाहरणाय, 'गीत गु ज' का पहला गीत ध्यातव्य है—

वरद हुई शारदा जो हमारो,
पहनी वस त की माला सँवारी।
लोक विशोक हुए, आँखो से,
उमडे गगन लाखों पाखों स,
कोयलें मजरी का शाखों मे,
गाई सुमगल होली तुम्हारी।
नाचे मयूर प्रात के फूटे
पात के मेघ तले, सुख लूटे,
कामिनी के मन मूठ स
मिलने खिलने को ललकी निवारी।

यहा वरदान देने वाली शारदा, माँ सरस्वती की प्रसन्नता के कारण, वसन्त का चित्र प्रस्तुत किया गया है। वसन्त की सवारी हुई माला धारण करते ही लोक विशोक अर्थात शोकरहित हो जाता है, आँखो के बहाने आकाश, लाखो पांखो के दशन कराने लगते हैं यानी आखें हर्षातिरेक से उमड आती है। कोयलें मजरियो पर बठी बैठी, होली गाने लगती हैं। कदाचित प्रात काल का समय है और प्रात कालीन पत्तो के नीचे मयूर नाचने लगते हैं तथा कामिनी मालिन के मन रूपी मूठ से मिलने के लिये, निवारी (जुही को जाति का एक पौधा) ललक उठती है। यहाँ वसन्त में कवि द्वारा कराये गये मयूरो का नतन कुछ आलोचको की दृष्टि मे मानसिक अस्त-व्यस्तता कह कर, पुकारा जा सकता है, पर नही यह गीत निराला के हृदय प्रदेश से विनिगत होने पर भी बुद्धि के द्वारा अनुशासित है अत अस्तव्यस्तता के दोष से रहित है। कवि वसन्त मे, वर्षा की अवतारणा कर अपने कौशल का परिचय देता है। ऐसी अवतारणा हमे सोचने के लिये बाध्य करती है और इसके कारण की गहराई में जब उतरते हैं और यह पाते हैं कि जहर के प्रतीक हरे रग के पत्तो रूपी मेघ को देखकर विपन्न मन मयूरों का वसन्त म भी नाचना विलष्ट कल्पना नही, तो हम प्रसन्नता से भर जाते हैं। वस्तुत प्रस्तुत गीत की ऐसी सार्थकता साधक निराला की लम्बी साधना का सूचक है। यही नहीं, 'गीत गु ज' के अधिकांश गीत ऐसी ही साधना के बोधक हैं। 'गीतगु ज' के समीक्षक सुधाकर पाडेय का ऐसा कहना कि 'गीत गु ज' साधना परम्परा का वह स्वर है जिसे आत्म-द्रष्टा न जीवन के प्रांगण में देखा है—ठीक ही मालूम पडता है।

आलोचकों का अभिमत है कि निराला के गीत प्रायः हृदय से विनिर्गत होते है और 'गीत-गुंज' हृदय-साधना का प्रतीक है पर मुझे ऐसा लगता है कि 'गीत-गुंज' मे हृदय की साधना के साथ-साथ यत्र-तत्र बुद्धि की भी साधना प्रतिबिम्बित है। यह बात दूसरी है कि तुलसी, सूर, मीरा के गीतों में जो रंजन गुण है वे यहाँ भी है। असल मे निराला के ये गीत, वैयक्तिक दुःखों के साथ-साथ सामूहिक दुःखो को भी प्रकाशित करते है और ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब कि बुद्धि का थोड़ा भी हस्तक्षेप हो। यह तो संयोग की बात है कि तुलसी का आत्म निवेदन शरणागत वत्सलता, उपालम्भ आदि यहाँ भी प्रकारान्तर से उपलब्ध है और दोनो के दोनो अधिक प्रभावक है।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से 'गीत-गुंज' के गीतो के चार प्रकार कहे जा सकते है, भक्तिपरक शृंगारपरक, प्रकृतिपरक तथा व्यंग्यपरक, पर भक्तिपरक तथा प्रकृतिपरक गीतो का ही यहाँ प्राधान्य है। ये गीत भक्ति प्रधान रहस्यवादी गीतो के अच्छे उदाहरण है :—

> शाप तुम्हारा: गरज उठे सौ-सौ बादल...... (पृ० ४३)
>
> × ×
>
> सीधी राह मुझे चलने दो...... (पृ० ४९)
>
> × ×
>
> पार पारावार है स्नेह से मुझको दिखा दो......(पृ० ६३)

प्रकृतिपरक गीतो मे, प्राकृतिक परिवेश के साथ-साथ निराला ने अपनी वेदना को भी प्रतिभासित कराने की चेष्टा की है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृतिक जगत मे भो चाचल्य औत्सुक्य तथा विषाद भाव व्याप्त है। इस प्रसंग मे 'गीत गुंज' के ये गीत-चर्चेय है, 'बौरे आम कि भौरे बोले'......(पृ० ४१) और 'बढ-बढ़ कर बहती पुरवाई'......(पृ० ५४)। विशुद्ध प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से यह गीत ध्यान देने योग्य है :—

> श्याम-गगन नव-धन मंडलाये।
> कानन-गिरि वन आनन छाये।
> लदे बाग आमों के पर से,
> धानों के खेतों पर बरसे;
> युवती निकलती अपने घर से
> पुरवाई के झोंके खाये।
> कमल ताल के जल बल खाये,
> नाले उमड़-उमड़ कर आये।
> नव जल के मद आकुल धाये,
> तट के नीम हिंडोले आये।

यहाँ श्यामवर्णी आकाश मे नये बादलो के मँडराने, छाने, बरसने तथा उनसे प्रकृति जगत मे प्रतिक्रियाओं का वर्णन स्पष्ट है।

कवि निराला का जन्म महिषादल (बंगाल) मे हुआ है जहाँ बादलो का गर्जन-तर्जन सुन सकना सहज स्वाभाविक है। सम्भवतः यही कारण है, निराला की कविताओं मे बादलो के प्रति,

मेघों के प्रति सहज अनुराग दिखाई पड़ता है। केवल 'गीतगुंज' की संकीर्ण परिधि में ही निराला के बादल अनुरागजन्य संस्कार को स्पष्ट रूप से सिद्ध किया जा सकता है। यह बात दूसरी है कि बादलों के गर्जन के माध्यम से अपने आक्रोश को भली भाँति व्यक्त किया जा सकता है, यानी बादल परुष अनुभव की अभिव्यक्ति के लिये उचित वस्तुनिष्ठ पर्याय है। 'परिमल' की 'बादल राग' शीर्षक कविताएँ निराला के निर्भीक व्यक्तित्व की सूचना देती हैं, बादल यहाँ विद्रोह के रूप में प्रतीत होते हैं। निराला इनके माध्यम से रूढ़ियों पर व्याघात करना चाहते हैं, सामाजिक अन्याय को दूर करने के लिये ललकारते हैं, नैतिक कुरीतियों को हटाने के लिये चुनौती देते हैं। पर 'गीतगुंज' तक आते आते बादल के रूप कुछ बदलते से दीख पड़ते हैं। यहाँ बादल विद्रोही नहीं होकर शुभ-चिंतक अथवा आराध्य के प्रतिरूप है। विद्रोही रूप और शुभचिन्तक रूप में तत्वत प्राय विरोध नहीं होने पर भी दोनों दो रूपों के बाधक हैं और ये दोनों रूप निराला की दो स्थितियों की साधना के परिद्योतक हैं।

धनंजय वर्मा ने निराला के गीतों की प्रकृति पर विचार करते हुए कहा है कि जिन स्वरों और प्रवृत्तियों की प्रधानता 'गीत गुंज' में मिलती है उनका सूत्र 'अणिमा' से ही प्रारम्भ होता है। वस्तुत 'गीत गुंज' के स्वरों और प्रवृत्तियों के दर्शन 'अणिमा' नहीं, निराला की प्रथम काव्यकृति 'अनामिका' से ही होने लगते हैं। 'अनामिका' का एक गीत है —

> पथ पर मेरा जीवन भर दो,
> बादल हे अनन्त अम्बर के,
> बरस सलिल, गति ऊर्मिल कर दो!
>
> ('विनय' शीर्षक कविता, पृ० ८१)

फिर इसी संग्रह का 'उत्साह' शीर्षक गीत 'बादल, गरजो! तप्त धरा जल से फिर शीतल कर दो' निराला के लाक्षिक एकत्व की ओर ही हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। 'परिमल', 'गीतिका', 'अणिमा', 'अर्चना' तथा 'आराधना' से भी गीतों को उद्धृत कर इस बात को सिद्ध किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह कि 'गीत गुंज' के गीतों के स्वर आकस्मिक और सर्वथा नवीन नहीं हैं।

साधना, भक्ति तथा सम समय अथवा अति समय के सहयोग के माध्यम से, साधक कलाकार सामान्य समाज-बोध और समय-बोध को परिष्कृत करना चाहता है। उसे असामाजिक और पारस्परिक अथवा युग दौड़ में पीछे रहकर अनाहत नहीं कर सकते। निराला परिवर्तित गतिविधि, सामाजिक अन्याय, नैतिक कुरीति, धार्मिक अत्याचार, सांस्कृतिक स्खलन आदि से विक्षुब्ध होने के कारण ही व्यंग्य का सहारा लेते हैं। 'गीत गुंज' का यह व्यंग्य-गीत इस प्रसंग में दर्शनीय है —

> मानव जहाँ बैल घोड़ा है
> कैसा तन मन का जोड़ा है?
> किस साधन का स्वाँग रचा यह,
> किस बाधा की बनी त्वचा यह,

देख रहा है विज्ञ आधुनिक
वन्य भाव का यह् कोड़ा है।
इस पर से विश्वास उठ गया।
।वधर से जल मैल छूट गया।
पक पक कर ऐसा फूटा है,
जैसा सावन ा फोड़ा है।......(पृष्ठ ५१)

मानव के साथ अमानवीय, पशुवत् व्यवहार, उसका पाशविक कार्य-कलाप, उसका विश्वास-घात उसकी अज्ञानता, उसका घिनौना स्वरूप कवि का आचर्श्यचकित होने का मौका देता है, यह व्यंग्य की भाषा का प्रयोग करता है, सहज इसलिए कि मानव-मात्र को व्यंग्यवादी अंग्रेज कवि ड्राइडेन और हापकिन्स के भी व्यंग्य इनसे होड नही ले सकते।

प्रयोग की दृष्टि से 'गीत गुंज' के गीतो मे नवीनता के बहुत दर्शन नही हो पाते। 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'अणिमा', 'अर्चना', 'अराधना' के गीतो की परम्परा मे ही इनको स्थान दिया जा सकता है। निराला नवीन शब्दो, नवीन मुहावारो, नवोन उपमानो, नवीन बिम्बों, नवीन चित्रो आदि के सशक्त प्रयोगकर्त्ता माने जाते है पर शब्दो का तोड मरोड़ अधिक मनमाना प्रयोग, संगतराशी अधिक नवीनीकरण आदि इनकी रचनाओ मे नही दिखलाई पडता। यो कलापक्ष पर इनका विशेष ध्यान रहता ही है और इन शब्द चयन शब्दो का संतुलन-क्रम, आकर्षण गुण, स्थितिकरण आदि अधिक श्लाघनीय हुआ करता है। 'गीत-गुंज' के गीतो के कुछ प्रयोग यहाँ ध्यातव्य है।

कमरख की आँखे भर आई।
वन वर का सौदा कर आई।
नयनों की नाव चढ़ा कोई,
यह खाली पॉव बढ़ा कोई,
सागर से भँवर उतर आई।
ये भय या परिणय के फूटे,
आँख से जो आँसू टूटे?
पूछें किससे, संशय छूटे,
ऐ हर लाई या हर आई। (......पृष्ठ ४५)

प्रतीकात्मक ढङ्ग से, अप्रस्तुत प्रशसा अलंकार का सहारा लेते हुए कवि यहाँ कमरख (एक वृक्ष या उसका फल जो फाकदार और कुछ खट्टा होता है) को आंखो के भरने का चित्र प्रस्तुत कर, अपनी विपन्नता का अपनी आँखों के भरने की ओर संकेत करते हैं। कमरख की आँखों को जो भ्रम हो रहा है, जो द्वन्द्व दिखलाई पडता है वह वस्तुतः कवि की आंखो के भ्रम, कवि के हृदय के द्वन्द्व का सूचक है।

प्राण तुम पावन-सावन गत,
जलज जीवन-यौवन अवदात।

हरी ज्वार की परियाँ झूमी
अरहर अन्न चूमी तव चूमी,
उड़द बदल कर फैली घूमी।
लिए मूँग ने पात, प्राण तुम। (पृ० ५२)

वर्षाकालीन चित्र के माध्यम से कवि यहाँ अपने आराध्य का रूप प्रस्तुत करना चाहता है। साथ ही वह ज्वार, अरहर, उड़द मूँग मे प्रणय चिन्ह दिखा कर उनको जीवन्त बतला कर छायावादी संवेदना तथा चेतना की ओर भी हमारा ध्यान खींचता है।

गगन मेघ छये,
नए नयन नये।

यहा गगन के मेघ को नये नेत्र के रूप मे चित्रित कर कवि नवीन उपमान के प्रयोग की ओर हमे इङ्गित करता है।

रूपक के रथ रूप तुम्हारा,
शारद विभावरी, नभ, तारा।

रूपक का प्रयोग चादी के अर्थ मे करके यहा कवि ने रूढि विद्रोह परम्परा विच्छेद का ही परिचय दिया है, न कि अप्रचलितत्व दोष अनवधानतावश हो गया है।

वास्तव मे, कवि प्रारम्भ से ही संगीत प्रेमी रहा है। बंगला और अंग्रेजी दोनों संगीतो की ओर कवि की अभिरुचि ने हिन्दी मे रचित गीतो के साथ यत्र-तत्र हस्तक्षेप किया है जो एक दृष्टि से दोष माना जा सकता है तो दूसरी दृष्टि से गुण भी कहा जा सकता है। संगीत शास्त्र के अनुसार गीत लेखन अथवा गायन मे स्वर, ताल, राग, अक्षर, अलंकार और प्रमाण पर ध्यान दिया जाता है।[1] पर व्यवहार की दृष्टि से स्वर, ताल और राग के ही प्रयोग पर विशेष ध्यान रहता है। यह प्रसन्नता की बात है कि 'गीतगुंज' के गीत इस दृष्टि से रचित नही हैं। 'गीतिका' मे कवि ने सर्वप्रथम, सशक्तरूप से सङ्गीत का सहारा लिया है और भूमिका मे निवेदन भी किया है, (धम्मार, रूपक, झपताल, चौताल, तीन ताल आदि के लक्षण और उदाहरण भी अपने गीतो से ही) दिये हैं, पर ऐसा कुछ आग्रह और निवेदन यहाँ पर नही है। यहा पर समाज एवं राष्ट्रजन्य अपमान से विक्षुप्त कवि का आयतन भाव मुखर है, फिर भी सांगीतिक हस्तक्षेप के कारण कहीं कहीं वह कलात्मक सौष्ठव नही है जैसा होना चाहिए। सम्भव है, इसका कारण नवीनता के प्रति मोह भाव रहा हो। भातखंडे स्कूल के गायक निराला के ऐसे गीतों को ठीक ठीक गा भी नही सकते। उनकी दृष्टि से निराला के गीत प्राय त्रुटिपूर्ण हुआ करते हैं, 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' के आधार पर निराला चाहे अपने गीतों की जो प्रशंसा करें। मेरा विचार है, संगीत शास्त्र से अपरिचित मनुष्य निराला के बहुत से गीतो का अच्छा नहा समझेगा। 'गीत गुंज' के प्रथम गीत 'वर दुई शारदा जो हमारी' (पृ० ३६) षष्ठ गीत 'बुझी दिल की न लगी मेरी' (पृ० ४४) की दृष्टि

---

[1] सुस्वरं सरस चैव सरागं मधुराक्षरम्।
सालंकारं प्रमाणं च षड्विधं गीतलक्षणम्॥

पेथ में रखने पर यह बात साफ हो जा सकती है । सङ्गीत के हस्ताक्षेप के ही कारण कुछ आलोचक निराला के कला को 'आहृत' समझते हैं ।

निराला के गीत के गीत संक्षेपतः सांस्कृतिक गरिमा से भरे पूरे हैं । कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के गीतों से इन गीतो का कोई विरोध नही है, यद्यपि स्वयं निराला इन गीतों से अपने गीतों को नवीन मानते हैं । संभव है इसका कारण काव्य परिष्कार रहा हो । कबीर के गीत तो काव्य परिष्कार से प्रायः वंचित, सूर, तुलसी और मीरा के गीतों में अलबत्ता काव्य-परिष्कार का अभाव नही दिखाई पड़ता । निराला सैद्धांतिक और व्यवहारिक सङ्गीत के साधक रहने के कारण, अपेक्षाकृत अधिक पौढ़ गीत लिखने का दावा करते है, यह तो ठीक है, स्वाभाविक भी है । निराला के गीत अनावश्यक शब्द से बोझिल नही होते यह इनके गीतो की विशेषता है । स्वच्छन्दतावाद का पूर्ण विस्तार भी इन गीतो में दिखलाई पड़ता है, ऐसा विस्तार प्रसाद, पत, महादेवी मे नही दीखता । यह निराला की कलागत जागरूकता का परिणाम है । साधनागत जाग-रूकता के कारण 'गीतगुंज' के गीतो मे मानव जीवन को स्वभानिस्सृत तथा परिस्थिति एवम् स्थान जन्य दर्द, क्षोभ आदि के दर्शन होते है ।

अतः रवीन्द्र के मन्त्र— वाक्य 'भारते-चाइना आमि सुन्दर भुवने' की अन्तर्धारा 'गीत गुंज' के गीतो मे बहती हुई दिखाई पडती है । साधक कवि दर्द और क्षोभ को झेलते हुए यहाँ रहना चाहता है, और दूसरों को रखना चाहता है । आत्मनिवेदन, उपालंभ, प्रार्थना, शरण गतत्व आदि के माध्यम से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के आत्मगत, समाजगत, राष्ट्रगत, असन्तोष ही गीत के रूप मे साधारणतः फूटते है और कवि निराला के 'गीत गुंज' के गीत भी इसी पृष्ठभूमि मे फूटे हुए दीख पड़ते है । लगता है कि कवि रवीन्द्रनाथ का यह वाक्य प्रायः पथ प्रदर्शित करता रहा है--'शत शत असन्तोष महागीतेलभिवे निर्वाण' । 'गीतगुंज' के गीत शतशत असन्तोषो (असन्तोषी मनुष्यो) को निर्वाण (सन्तोष) लाभ कराने मे सहायक सिद्ध हो सकते हैं, ऐसा अनुमेय है । यो निराला से ये गीत उन्हे 'सर्जक मनीषा' कहकर पुकारने को बाध्य करते है ।

अर्चना

श्री नरेश मेहता

निरालाजी सही मानो रोमैंटिक कवि हैं। क्योंकि वे दूसरे छायावादियों की तरह अपनी ही व्यक्तिगत शैलियों या युग विशेष के विशिष्ट अभिधानों, अलंकारों, रूपकों में बँधकर नहीं रहे। इसलिए उनका रोमैंण्टिक-तत्व अपनी अभिव्यक्ति के लिए सदा नयी भाषा, नयी शैली एवं नये प्रयोग खोजता हुआ आज 'अर्चना' की सृष्टि कर सका है। निराला का कवि प्रमुखतः इन तीन विभाजनों में रखकर देखा जा सकता है भाषा, भाव, और छन्द।

भाषा निराला की भाषा कोई सीमा नहीं जानती। उन्हें भावों की अभिव्यक्ति के लिए जब जिस शब्द की आवश्यकता हुई वह बोलियों, संस्कृत, उर्दू से लेना अच्छा लगा, इसलिए निराला के साहित्य में शब्दों का भण्डार है। संस्कृत-बहुल भाषी कवि ने व्रज के भाषा, या बोलियों के बहुत ही ठेठ प्रयोग किये हैं। कई गीत तत्सम संज्ञा तथा विशेषण के होने पर संस्कृत के पद लगते हैं, क्योंकि उनमें क्रियापद का लोप रहता है। कहीं पर 'अट नहीं रही है' 'बे-पर की बातें न पटेंगी' जैसे प्रयोग भी साफ तरीके पर किये हुए मिलते हैं। 'अर्चना' में सर्वनाम के बहुवचन से सम्बन्ध कारक का काम लिया गया है और यह हिन्दी की अभिव्यंजना शैली को बढ़ाता है। जैसे 'हिंस्र पशुओं भरी।'

भाव निरालाजी उन 'प्यूरिटन' कवियों से नहीं है जिन्हें एक विशेष सौन्दर्य, या मुद्रा, क्षेत्र परिस्थिति ही काव्य प्रेरणा देती है। हिन्दी जगत् उनकी इस व्यापकता को पहचानता ही है। 'बादल राग' 'जूही की कली' 'शक्ति-पूजा' 'कुकुरमुत्ता' से लेकर 'आराधना' तक आते आते कवि भक्त कवियों के संगीत या पद गाने लगता है।

छन्द छन्दों के जो दो भेद हैं 'मोटे रूप से' मात्रिक तथा वर्णिक, निरालाजी ने इनका उपयोग तो किया ही है, और हिन्दी वाले, स्यानी आलोचकों द्वारा दिये गये नाम 'केंचुआ छन्द' को भी भूले नहीं होंगे, जिसका शुरू करने का सेहरा भी इनके सिर पर ही बाँधा गया है। पर क्या निरालाजी के वे 'केंचुआ छन्द' सचमुच ही किसी मछली के काँटे जैसे ही हैं जो कि हमारे गले में अटकते हैं? ये सभी छन्द थोड़ी सी कठिनाई के बाद हमारी समझ में आ जाते हैं कि जिनमें से कुछ में उर्दू की बाहर की टुकड़ों में रखा गया है, या कभी गाने के स्थान से दो मात्राएं बढ़ा दी गयी हैं या घटा दी गयी हैं। निराला के मुक्त छन्द एक सुनिश्चित तान-क्रम के प्रयोग में गुँथे हुए मिलेंगे। मैं उनकी चर्चा ही नहीं करता जो 'कनौजिया छन्द' में 'दारागंजी रामायण' दक्षिण भारत में प्रचाराय छपाते हैं। क्योंकि काव्य न तो ब्राह्मण है न शूद्र। निराला ने ठुमरी, दादरा ताल (द्रुत विलम्बित) से अपने छन्दों को गढ़ा है। 'गीतिका' की भूमिका में उन्माद की गलबाजी के कारण 'मैलेंकॉलिक' हो जाने पर जो रोष प्रकट किया है, उसी के फलस्वरूप उस संकलन में उन्होंने

आरोहावरोहों के आधार पर स्वर विस्तार तथा भाव-गाम्भीर्य की परिपुष्टि किया है। 'अर्चना' में यह प्रभाव स्पष्ट रूप से उभरा है, जिसकी चर्चा आगे होगी।

'अर्चना' पर कुछ कहने के पूर्व की यह चर्चा थी। निराला छायावाद के प्रवर्तकों में से है, फिर भी क्या कारण है कि आज वे दूसरे प्रवर्तकों की भांति चुप न होकर 'वेला' 'नये पत्ते' और 'अर्चना' लिखते रहे ? ऐतिहासिक क्रमिकता में छायावाद भी विद्रोही लगता है : सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह या अन्तर का वाह्य के प्रति विद्रोह – ये छायावाद दर्शन के लिये सूत्र हमे दिये गये थे, पर यह सुन्दर वेल ड्राइंग रूम के गमलों मे जाकर सूख गयी। क्योंकि धरती का सम्पर्क इस बेल को नही मिला। पन्त जी की बौद्धिक चेतना ने युग को वाणी दी, 'ग्राम्या' को संवारा, पर बुद्धि से तो कविता नही की जाती है न ? कांग्रेस का 'जन-आन्दोलन' कलाकारो को किसी सीमा तक धोखा दे सका कि, 'स्वतंत्रता' (आजादी बनाम गुलामी) के बाद जन-जन के लिये स्वर्ग स्थापित होगा। जिन कलाकारों के पास वैज्ञानिक दृष्टिकोण था वे तो सन् १९२५ मे व्यांग द्वारा दिये गये ऐसे ही आश्वासनो का मूल्य पहचानते थे, पर जो मात्र-कवि थे वे फिर से भटक गये।

निराला जी स्वयं से जूझ रहे थे। 'बंगाल का अकाल', 'शरणार्थी समस्या', 'हिन्दू मुसलिम हत्याकाण्ड', 'तेलंगाना में गोलियाँ', 'वलिया के किसान' जैसे सब के सब निराला के व्यक्तिगत जीवन में घनीभूत हो उठे थे। उनके व्यक्तिगत जीवन के चारो ओर दरिद्रता और विषम परिस्थितियों की ऐसी कंटीली मेड लगी हुई थी (है, का भी प्रयोग किया जायेगा) कि वे मूर्तिमान हिन्दुस्तान के प्रतीक के रूप मे हमारे सामने आये हैं। जैसे-जैसे कांग्रेस की नकाब उतरती गयी हिन्दुस्तान की जनता वैसे ही वैसे निराश होती गयी। मुझे क्षमा करें; हिन्दुस्तान जैसे एक बहुत बडा निराला हो, जो कि विक्षिप्त 'भूखा' परन्तु अपनी सारी ऊँचाइयो के साथ घिरा है। कांग्रेस किस मुँह से जनता के पास पशमीने की अचकन और सफेद टोपी पहने वोट लेने जा रही है, क्योंकि उस पर महाकवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के खून के आँसू, भूख, विक्षिप्तता लिपटी हुई है। जनता आज निराला है, और निराला ही वह जनता है जो कि 'अर्चना' के इन ११२ छन्दो में फूटकर बिखरी है।

इस विषय-क्षेप के लिये क्षमा चाहूँगा, पर यह आवश्यक भी था, क्योंकि जिन परिस्थितियो मे निराला के इस संग्रह का प्रणयन हुआ, मैं उनके बारे मे लिख रहा हूँ। उनको साफ-साफ समझना भी साहित्य की एक प्रमुख मांग है।

जीवन बिना अन्न के है विस्राव'

'अर्चना' की सारी भक्ति के बीच मे यह पंक्ति हुकूमत को इस कुतुबमीनार को चुनौती दे रही है।

'अर्चना' एकदम सरसरी तौर पर देखने पर हमे निराला की 'विनय-गीतिका' का संग्रह लगता है। निराला छायावादी कवि के स्थान पर भक्त-कवि से लगते हैं। पर क्या यह सच है ? आज के युग मे भक्ति काव्य की सर्जना क्या सम्भव है ? नही, क्योंकि प्रत्येक युग की एक विशेष मांग हुआ करती है। इसलिये 'अर्चना' के भक्ति पदो में भक्ति की तन्मयता नही, वरन् सच्चे कवि का आक्रोश है। इसलिये ये भक्ति काव्य के अन्तर्गत नही हैं।

'अर्चना' में प्रत्यूष-बेला की ज्योतिष्मयी 'उषस' का आह्वान है। आज का जीवन तिमिराच्छन्न हो रहा है और कवि आलोक के देवता की अर्चना कर रहा है कि 'हुई असित जीवन की सरिता' और इसीलिये 'नव जीवन का सूर्योदय हो।' अर्थ का अनर्थ कभी नहीं चाहूँगा इसलिये स्पष्ट कर दूँ कि कवि ने इस सूर्योदय को स्पष्ट नहीं किया है कि इस अरुण तिमिर दारुण मिहिर से क्या अर्थ है? ये मात्र शब्द के लिये शब्द हैं, या फिर इनके पीछे कोई व्यंजना भी है? अन्य अर्थ की निष्पत्ति, कदाचित कवि के साथ अन्याय हो, इसलिये हम इसमें कोई रूपक न खोज कर चित्र मात्र मान लेंगे।

इस संकलन की विशेषता जो देखने पर लगती है—सहसा, वह है इसकी गेयता। निरालाजी छन्द के प्रयोग के लिये अद्वितीय हैं ही, पर इस संकलन में यह गेयता एक और दृष्टि से महत्वपूर्ण हो गयी है—यह जन गीतात्मकता के करीब लगती है। जैसे यह गीत है—

> गवना न करा।
> खाली पैरों रास्ता न चला।
> कंकरीली राहें न कटेंगी
> बेपर की बातें न पटेंगी
> काली मेघनिया न फटेंगी,
> ऐसे-ऐसे तू डग न भरा।

हमारे सामने एक मधुर चित्र आ जाता है उस ग्राम्या का जिसका द्विरागमन होने को है। और उसकी मुहावरेदार भाषा दरिद्रता, स्वयं के कोमल होने की व्यंजना एकदम साफ होने लगती है। बहुत कम शब्दों का प्रयोग करते हुए भी चित्र एकदम साफ कर देना निराला की उच्चता सिद्ध करती है। चित्र है—

> बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु!
> पूछेगा सारा गाँव, बन्धु।
> यह घाट वही जिस पर हँसकर,
> वह कभी नहाती थी धँसकर,
> आँखें रह जाती थीं फँसकर,
> कँपते थे दोनों पाँव बन्धु!

'धँसकर' शब्द की ध्वनि स्पष्ट ही है।

इस संग्रह में होली से सम्बन्धित कई गीत हैं और जो अनुपम हैं। कई गीत तो रीतिकालीन मस्त कवियों की होली के चित्रों के साथ साथ हमें वृन्दावन की वैष्णवी शैली का भी स्मरण कराते हैं—

> राग-पराग कपोल किये हैं
> लाल-गुलाल अमोल लिये हैं

गाये खग-कुल कण्ठ गीत शत,
संग मृदंग तरंग तीर-हत
भंजन मनोरंजन रत अवरित,
राग-राग को फललित किया री
विकल अंग कल गगन-विहारी।
केशर की कलि की पिचकारी।

पर होली के गीतों मे 'खेलूँगी कभी न होली' वाला गीत उन्हे जनता के बहुत करीब ले जाता है; और ऐसे ही गीतो मे वे सर्वश्रेष्ठ लगने लगते हैं। 'फूटे है आमो मे बौर' होली के सारे गीतो मे सर्वोत्तम है, जिनमे रंग और रूप चित्रो को कला निखरी हुई हमे मिलती है। 'अर्चना' के बहुत से ऐसे गीत हैं जो हमें बाँध लेते हैं, जिसकी भाषा की रवानी, अभिव्यंजना की सरल वक्रता, एक पंक्ति में इस मार्मिक परिस्थिति का चित्रण बताता है कि निराला गीतो के कला कौशल मे कितने सिद्धहस्त हो गये हैं। उदाहरण के लिये कुछ गीतो की पहली पंक्तियो को रूप, रग, ध्वनि, परिस्थिति के हिसाब से देखिये—

१—खेलूँगी कभी न होली
उससे जो नहीं हम जोली —रूप

२—नय नहाये
जबसे उनकी छवि में रूप बहाये । —रंग
३—अली गूंज चली द्रुम कुंजों —ध्वनि
४—प्रिय के हाथ लगाये जागी।
ऐसी में सो गयी अभागी ।—परिस्थिति

गीतो की कला को निराला जी ने जितना सशक्त बनाया है उतना हिन्दी मे दूसरे किसी ने नही किया है। 'अर्चना' मे अजीब मनोभावों को सुन्दर, मुहावरेदार, सस्कृत-निष्ठ भाषा मे प्रस्तुत किया गया है। एक बात जो विशेष ध्यान देने की है वह यह कि एक ही दिन मे कई-कई गीतों का प्रणयन किया गया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि रूप और भक्ति, ये दो ही प्रस्तुत संग्रह के प्रिय विषय है।

इस संग्रह के निर्माण मे निराला जी के दारागंज मे एकान्त निवास का बहुत बडा हाथ दिखाई देता है। धार्मिक वातावरण, भजन-कीर्तन का वायुमण्डल, गंगा स्नान के लिये आयी हुई धार्मिक जनता इन सब का प्रभाव 'अर्चना' में स्पष्ट है। अधिकतर गीतो मे धर्म उभर कर आया है, बल्कि एक गीत मे तो यह जोश दर्शनीय भी हो सकता है—

तू चला जब तक न तनकर,
धर्म का ध्वज कर न लेगा।

'पतित पावनी गंगे', 'भजन कर हरि के चरण, हरि का मन से गुण-गान करो' ऐसे ही गीत है जिनमें निराला का कवि दब जाता है।

निराला जी चलती हुई भजन की धुनें, दादरा, ठुमरी बन्दिशें सब ही अपनायी हैं। जैसे—

ये कह जो गये कल आने को,
सखि, बीत गये कितने कल्पों।
(धुन बजरंग बली मेरी नाव चली)
हरि का मन से गुण गान करो,
तुम और गुमान करो न करो।
जिनकी नहीं मानी कान
रही उनकी भी जी की
(ठुमरी की बन्दिश दूसरी पंक्ति म)

पर ये स्थल इतने कम हैं कि सकलन की पूर्णता म खलते नहीं है।

निराला जी ने गीतो में जितनी महान इमेजरीज' दी है वे बतलाती हैं कि गीत में भी कवि की सामर्थ्य सम्भव है।

कैसे हुई हार, तेरी निराकार,
गगन के तारकों बन्द हैं कुल द्वार?
दुर्ग दुर्धर्ष यह तोड़ता है कौन?
प्रश्न के पत्र उत्तर प्रकृति है मौन,
पवन इंगित कर रहा है—निकल पार।
सलिल की ऊर्मियां हथेली मार कर
सरिता तुझे कह रही है कि कायर
विपत से पार कर नव पकड़ पतवार।
साड़ी के खिले मोर, (इमेज)
रेशम के हिले छोर-
तरगों टूटता सिन्धु—
शत सहस्र आवर्त-निवर्तों
जल पछाड़ खाता है पर्तों,
उठते हैं पहाड़ फिर गर्तों
धसते हैं, मारण-सजनी है।
भक्तों के आशुतोष,
नभ नभ के तार हैं।
तुमने जो गही बांह
वारिद की हुई छांह,
अन्धकार के द्वढ कर
चधा जा रहा जर्जर
तन उन्मोलन नि स्वर,

पनायी हैं। जैसे—

मन्द्र चरण मरण ताल।
सुरतरु वर शाखा। --आदि
खिली पुष्प भाषा

निराला जी इधर सरल होते जा रहे थे जो कि उनकी प्रगति का चिन्ह था। हिन्दी-काव्य की भाषा विशेषकर गीतों की, इधर जितनी निराला जी ने मांजी थी वह उन्हें उपयुक्त युग-प्रवर्तक के स्थान पर बिठाती है।

दो-तीन गीत तो हमें सूरदास की गोपियों का स्मरण कराते है जब वे उद्धव से कृष्ण की शिकायत करती है, 'तूने हरिण नयन हरि ने छीने हैं' कुछ गीतों में जो नैराश्य, या अधिक स्पष्ट कहूँ तो पराजय का स्वर सुनाई पडता है, वह जैसे हम सब का स्वर हो। इसका मुख्य कारण यह है कि जिस समाज के पास मार्क्सवादी सामाजिक एवं वैज्ञानिक दर्शन नहीं हुआ करता उस जाति (या व्यक्ति) का विद्रोह या रूप प्रतिक्रियात्मक होने लगता है और तब धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न होती है, एक संज्ञा (शरीरी या अशरीरी) ही नियन्ता है, की चेतना का बोध करवाया जाता है। इस प्रकार बोध करवान मे राजनीति पूंजीवादी) का हाथ हुआ करता है। इसलिये 'अर्चना' मे निराला के दूसरे रूप का भी दर्शन होता है वह केवल उनका ही नहीं है हमारा रूप है, हमारे पूरे समाज का रूप है। हमारी राजनीति का जहर है, तभी तो राजनीतिक आस्ट्रेलियन वोमर्स की बग्घी पर 'ऐडीसियो' से घिरी 'सलाम' लेती है और साहित्य विक्षिप्त-सा होकर गंगा की रेती मे फटी बिवाइयो के रक्त-चिन्ह छोड़ता हुआ दम तोड़ रहा है—

ये दु:ख के दिन
कांटे हैं जिसने
गिन-गिनकर
पल-छिह, तिन-तिन
आंसू की लड़ के मोती के
ह'र पिरोये,
गले डालकर प्रियतम के
लखने की शशि मुख
दुख निशा में
उज्जल अमिलन।

'अर्चना' आज के इस 'तुलसीदास' की विनय गीतिका है। निराला नये युग की 'अरुणा' को अर्चना कर रहे हैं। वे हमारे युग के नेता है, हम उनके शब्दो का, उनकी व्यंजना को खूब पहचानते हैं कि उनका अर्थ 'अरुणा' से क्या है :—

काटे कटी नहीं जो धारा
उसकी हुई मुक्ति की धारा
बार-बार से जो जन हारा
उसकी सहज साधिका अरुणा।

—०*०—

निरुपमा

श्री सत्येन्द्र कुमार

अब यह निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए कि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के व्यक्तित्व एव साहित्य पर बगला साहित्य का गहरा प्रभाव था। उनकी कविता के स्वरूप एव कथ्य पर रवीन्द्र की रहस्यानुभूति, प्राकृतिक सौन्दर्य, भाषा शैली का लालित्य एव कोमलकांत पदावली का पुष्ट स्पर्श मिलता है। ऐसा लगता है कि निराला के किशोर एव पूर्वाग्रहहीन मानस पर तत्कालीन समृद्ध एव श्रेष्ठ बगला साहित्य अपनी अमिट रेखाए छोड गया। इसलिए वे आजीवन बगला साहित्य से अनुप्राणित रहे। उनके उपन्यास भी इसके अपवाद नही हैं।

इसमे कोई सन्देह नहीं कि 'निरुपमा' निराला का प्रसिद्ध एव लोकप्रिय उपन्यास है। वह 'निरुपमा सौन्दर्य और सस्कृति' विकीर्ण कर सका परन्तु यह उपन्यास कलकत्ता की मनोभूमि से विकसित 'काव्य प्रसून' है। इसीलिए उसका वातावरण पात्र बगाली है। उसकी 'सुषमा' मे शरत् के उपन्यास 'दत्ता' का सूक्ष्म प्रभाव अन्तर्व्याप्त है। 'दत्ता' और 'निरुपमा' की कथावस्तु, पात्रो तथा उद्देश्य मे विस्मयकारी साम्य मिला है। निश्चय ही निराला शरत के इस उपन्यास से विशेष रूप से अनुप्राणित थे। दोनों उपन्यासों के अनुशीलन से इस निष्कर्ष की पुष्टि हो जाएगी।

'दत्ता' और 'निरुपमा' का कथा-पटल समान है। 'दत्ता' की कथा का विकास इस प्रकार हुआ है—रासविहारी अपने बालसखा बनमाली की एक मात्र सन्तान विजया का अभिभावक ही नहीं, उसकी विशाल सम्पत्ति का सरक्षक भी है। इस सेवा-कार्य मे उस अनुभवों एव चतुरवृद्ध की कुशल एव गुढ़ दृष्टि बाल सखा की सम्पत्ति पर है। वह अपने पुत्र विलासविहारी को जमीदारी के काम काज में साथ रखता है ताकि वह विजया का साहचर्य पा सके और इसी तरल आधार पर विजया और उसकी विशाल सम्पत्ति ग्रहण कर सके। विजया सरल एव भावप्रवण है। वह रासविहारी को पिता के समान समझती है—जाने-अनजाने विलास विहारी की भी उपेक्षा नहीं कर पाती। इसी बीच रास विहारी के अन्य घनिष्ठ बालसखा जगदीश के पुत्र नरेन्द्र के आने से परिस्थितियाँ नई करवट लेती हैं। वह इग्लैण्ड से डाक्टर बन कर आया। जगदीश की सारी सम्पत्ति बनमाली के यहाँ गिरवीं पडी थी। रासविहारी कुशलता से इसे हथियाना चाहता था। नरेन्द्र के गमन एव निश्छल आचरण ने विजया को उद्वेलित किया। नरेन्द्र की सरलता एव निरीहता की पृष्ठभूमि मे रासविहारी और विलास विहारी की सकीर्ण एव स्वार्थपरक दृष्टि छिपी न रही। वास्तव मे यह सिद्ध हो गया कि धन-लोलुप वृत्ति के कारण रास-विलास का सम्पत्ति पर इतना अधिक अधिकार जम चुका है कि वे अपने स्वेच्छापूर्ण व्यवहार में उचित अनुचित का भेद भूल गए हैं। इसी बीच पुराने पत्रों से एक नए सत्य का उद्घाटन हुआ। बनमाली ने जगदीश को स्पष्ट लिखा था कि विजया का विवाह नरेन्द्र से हो किया जाए और मेरी सारी सम्पत्ति यौतुक (दहेज) मे नरेन्द्र को दी जाए। नई वस्तु स्थिति

के मालूम होने पर भी नरेन्द्र ने कोई विरोध प्रकट नही किया । इधर विजया नरेन्द्र में सहज निष्ठा, सहिष्णुता एवं उत्सर्ग का परिचय पाती है और अनायास उसको आसक्ति बढती जाती है। नरेन्द्र के उदात्त आचरण के प्रति सहज ईर्ष्यालु होने के कारण पिता-पुत्र ने उसकी निंदा और तिरस्कार किया एवं तरह-तरह के कष्ट दिए । यही नही, विजया मे नई स्नेह संवेदना का परिचय पाकर पिता-पुत्र ने उसे भी लांछित एवं अपमानित किया। अन्त में पिता-पुत्र की लोभ-कपट स्पष्ट हो गई और विजया ने साहस करके नरेन्द्र को स्वीकार कर लिया !

कलकत्ता में नौकरी मिल जाने के बाद भी नरेन्द्र दयाल और उसकी पत्नी को देखने के लिए गांव आता रहता था। दयाल ने सेवा-सुश्रूषा के लिए अपनी भाजी नलिनी को बुला रखा था। वह कलकत्ता में बी० ए० मे पढती थी। नरेन्द्र उसे पढाता एवं उत्साहित भी करता रहता था। नलिनी नरेन्द्र की योग्यता एवं स्निग्ध व्यवहार से प्रभावित थी। ऐसी स्थिति मे विजया की ईर्ष्या स्वाभाविक थी। बाद मे भ्रम दूर होने पर विजया के मन मे नरेन्द्र के प्रति प्यार बढ गया।

लगभग समान कथा-भूमि पर 'निरुपमा' की घटनाओ का नियोजन किया गया है। विजया की तरह निरुपमा के माता-पिता जीवित नही है, वह विपुल-सम्पत्ति की स्वामिनी है और योगेश-बाबू उसके साथ उसकी सम्पत्ति के संरक्षक है। योगेश बाबू स्वभाव से चतुर लोभी एवं अवसरवादी हैं। उनकी गूढ दृष्टि निरुपमा से कही अधिक उसकी विशाल जमीदारी पर है। उनका पुत्र सुरेश इस कार्य मे सहयोगी है। वे यामिनी बाबू को दामाद बनाना चाहते है ताकि उसकी ओट मे सम्पत्ति कब्जे मे ली जा सके। निरुपमा निश्छल एवं भावुक है। वह योगेश-बाबू और सुरेश का हृदय से आदर करती है। पिता-पुत्र यामिनी बाबू को ऋण देकर निरुपमा की सारी सम्पत्ति अधिकार में लेने का षड्यन्त्र रचते हैं।

नरेन्द्र की तरह यहाँ कुमार के आने से परिस्थितियो मे नया मोड आता है। कुमार भी इंगलैण्ड मे पढने के लिए गया था। उसकी सम्पत्ति पर योगेश बाबू की नजर है। कुमार का समान रूप से अपमान एवं तिरस्कार किया जाता है। उसके परिवार के सदस्यो को कई प्रकार की यातनाएं सहनी पड़ती हैं। कुमार चुपचाप सहता है। उसके स्वभाव मे सहनशीलता एवं उदारता है। निरुपमा गाँव में जाकर कुमार-परिवार पर हो रहे निर्मम अत्याचारों को स्वयं देख आती है। वह द्रवीभूत होकर उस परिवार की सहायता ही नही करना चाहती, कुमार के छोटे भाई की छात्रवृत्ति (२० रु०) नियत कर देती है। इसी तरह विजया ने भी नरेन्द्र का माइक्रोस्कोप लेकर उसकी सहायता करनी चाही थी। विजया की तरह निरुपमा भी इस कृपा के द्वारा अपनी भावना व्यक्त करती है। 'रास-विलास' की तरह सुरेश से यह रहस्य छिपा नही रहता और वह विरोध करता है। इससे उसका संकुचित एवं स्वार्थपरक रूप प्रकट हुआ।

इसी बीच योगेश बाबू की धन-लोलुप अन्तरदृष्टि का और उद्घाटन हुआ। वे यामिनी बाबू को ऋण देकर कुमार के कानपुर वाले मकान को हथियाना चाहते हैं। इस प्रकार निरुपमा को स्पष्ट हो गया कि योगेश बाबू—सुरेश तथा यामिनी बाबू छल-कपट से उसकी सम्पत्ति ही नही, स्वयं उसे भी ग्रहण करने के लिये व्यग्र है। निश्चय ही ऐसी मनःस्थिति में उसे कुमार का निश्छल एवं निस्पृही व्यक्तित्व और भी उदात्त लगा।

कुमार निरुपमा की सखी कमल को पढ़ाता है। कमल कुमार की असाधारण योग्यता तथा

सतृष्ण दृष्टि सरक्षित कन्याओ की विपुल सम्पत्ति पर है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये दोनों में सयम और धैर्य है। दोनो इस अनुष्ठान मे अपने पुत्रो का सहयोग लेते हैं। दोनो को सन्देह होता है कि कही उनके पुत्र युवावस्था के भावावेश मे सम्पत्ति के प्रति उदासीन न हो जाए। सम्पत्ति-अधिकार म लेने के लिये दोनो समान साधनो का प्रयोग करते हैं अर्थात स्वनिश्चित व्यक्ति के साथ विवाह ताकि बिना उलझाव के सम्पत्ति मिल जाये। इस ध्येय की प्राप्ति के लिये व दोना मगेतरों (विलास तथा यामिनी बाबू) को समझाते-बुझाते रहते हैं, विजया निरूपमा के सदा पास रहने के लिये आदेश देते रहते हैं। दोनों समय असमय विवाह की चर्चा करते रहते हैं ताकि विजया एव निरूपमा मे सामाजिक प्रचार तथा मान्यता के विरुद्ध जाने का साहस न रहे। इस विषय म दोनों लिखा पढी चाहते हैं। दोनो अपनी षडयन्त्र-योजनाओ म विफल रहते हैं। दोनों नरेन्द्र और कुमार की निन्दा करते हैं परन्तु अन्त म सुरक्षित कन्याओं का विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध हुआ और सम्पत्ति का षभत्वपूर्ण मोह जाल बिखर गया।

विलास बिहारी के कठोर, द्वेषपूर्ण एव दम्भी स्वभाव का परिचय सुरेश एव यामिनी म प्रकट हुआ है। विलास और यामिनी अपनी भावी पत्नियों को कम नहीं चाहते थे। परन्तु अपने सकुचित एव असयत आचरण के कारण उनके हृदय मे स्थान न पा सके। नरेन्द्र एव कुमार की शालीन एव सौम्य प्रकृति की पृष्ठभूमि मे इनकी ईर्ष्या, उद्दण्डता एव पाखण्डी-वृत्ति और भी उग्र लगी। जमीदारी के मामलो में विलास और सुरेश अपना कपट-जाल बिछाये रखते हैं। भोले किसानो के साथ अन्याय या अत्याचार करने मे सकोच नहीं करते। नरेन्द्र एव कुमार के सम्बन्ध म दोनो ईर्ष्यालु एव निमम हैं। इस प्रकार विलास का व्यक्तित्व दो पात्रों के माध्यम से प्रकट हुआ।

नलिनी और कमल म अन्तर होते हुए भी उल्लेखनीय साम्य हैं। नरेन्द्र और कुमार नलिनी और कमल को पढ़ाते थे। नलिनी और कमल क्रमश नरेन्द्र और कुमार के प्रति आकर्षित हुई। इसका मूल कारण परिस्थितिजन्य साहचर्य था परन्तु इस प्रेम भावना का पता दोनों पात्रो को नही था। नरेन्द्र और कुमार इस आसक्ति के प्रति लगभग उदासीन से थे। दोनो उपन्यासकारो ने इससे दो लाभ उठाये। विजया और निरूपमा के मन में सन्देह और ईर्ष्या उत्पन्न हुई जिससे निराशा का हल्का अन्धकार छा गया। दोनो प्रतिक्रियावश मगेतरो के प्रति फिर झुकी परन्तु यह भ्रम दूर होना ही था। इससे इनके मन म प्रिय के प्रति नई आस्था एव निष्ठा उत्पन्न हुई। दूसरे, नलिनी और कमल दोनो नरेन्द्र विजया तथा कुमार निरूपमा के मिलन मे महत्वपूर्ण सहायता करती हैं। स्पष्ट है, कमल का व्यक्तित्व नलिनी के अनुरूप ढाला गया है।

कथावस्तु तथा पात्रो के अतिरिक्त दोनों उपन्यासो का मूल उद्देश्य समान है। दोनों जीवन के वृहत् मूल्यो की स्थापना करना चाहते हैं। छली और लालची व्यक्ति चाहे सासारिक दृष्टि से सुखी हो समाज म अपनी सत्ता और अधिकार का दुरुपयोग भी करता रहे परन्तु यह कुटिल जाल सदा छिपा नहीं रह सकता। इनके प्रकाश में आने से उस व्यक्ति के प्रति निश्चय ही वितृष्णा एव घृणा होगी। रामबिहारी विलसबिहारी तथा योगेश व बू, सुरेश, यामिनी बाबू के साथ यही हुआ। इनके सामाजिक गौरव एव वैभव आदि का ठुकरा कर विजया और निरूपमा ने निस्पृह एव

निराश्रित व्यक्तियों को ग्रहण किया। इन दोनों ने समाज के रूढ़ एवं परम्परागत मूल्यों की उपेक्षा कर चिरंतन मानवीय मूल्यों से विभूषित नरेन्द्र तथा कुमार को अपनाया।

उपर्युक्त अध्ययन को दृष्टि मे रखते हुए यह सहज ही स्वीकारा जा सकता है कि निराला कृत 'निरूपमा' एक मौलिक रचना नही है। लेखक ने शरत् के 'दत्ता' उपन्यास से केवल सृजन-प्रेरणा ही नही ली, उसके बहुमुखी गम्भीर प्रभावो को भी ग्रहण किया है। अपने प्रदेश मे लौट कर भी निराला अपने पात्रो के चुनाव, उनके आचार-व्यवहार तथा दृष्टिकोण मे बंगला-जीवन को प्रकट किये विना न रह सके। यह सब अनायास नही हुआ। निराला का प्रतिभा और क्षमता का परिचय 'निरूपमा' मे अवश्य मिलता है तथा शरत् के व्यक्तित्व एवं साहित्य की चिर-परिचित तथा स्थायी विशेषताएँ 'दत्ता' मे मिलती है। दोनो की अपनी सीमाएँ है 'दत्ता' एक सफल एवं सशक्त रचना है। 'निरूपमा' कोई असाधारण उपन्यास नही है। परन्तु इससे इस निष्कर्ष मे कोई अन्तर नही आता कि 'निरूपमा' की रेखाओ पर 'दत्ता' के रगो की गहरी छाप है। वास्तव मे निराला बगला-साहित्य से बहुत अनुप्राणित थे जिसका परिचय उनके अन्य उपन्यासो मे भी देखा जा सकता है।
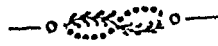
कुकुरमुत्ता और जीवनाभिव्याख्या

श्री वरीन्द्र कुमार वर्मा

निराला की अति प्रसिद्ध कविता 'कुकुरमुत्ता' की सप्रयोजनाशीलता या सोद्देश्यता के संबंध मे लेखकों तथा आलोचको के बीच बडा मतभेद है। कविता का व्यंग्य किनके लिए है, और क्यो है, यह विवादास्पद हो सकता है। व्यंग की शक्ति और उनके स्वरूप की चर्चा भी अलग से की जा सकती है। किन्तु एक बात तय है कि सारी कविता मे शक्तिवान विद्रोह व्यक्तित्व की अहमन्यता जो परिस्थिति की हर विषमता को चुनौती दे सकने मे समर्थ है, बराबर व्यक्त होती आई है। कुकुरमुत्ता, गुलाबो से भरे साफ-सुथरे बाग मे अपने आप एक गन्दे भू-भाग पर उग आया। वह अपने से उगा है। किसी के उगाए न तो वह उग सकेगा और न किसी के सँवारे वह सँवर सकेगा। उसे किसी की हिफाजत की जरूरत नही, किसी की नियामत की जरूरत नही। खाद और दाने की भी उसको कोई आवश्यकता नही। वह अपने से उग सकता है, अपने से बढ सकता है, अपनी शक्ति सामर्थ्य को वह पहचानता है और वातावरण के सारे विरोधो के बावजूद भी अपनी शक्ति का उपभोग कर, अपना ही रस पी-कर पूरी ऊंचाई तक बढ सकता है, अपनी सारी अहमन्यता लेकर हवा मे लहराता, मदमाता झूल सकता है और अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्णता मे गुलाब पर तथाकथित बडी से बडी हस्तियो पर चोट व्यंग्य कर सकता है। वह जहां है, वही ठीक है। विकसित होने का और अपनी आंतरिक शक्ति-सामर्थ्य के अनुपात में बराबर ऊंचे बढते रहने का तरीका उसे खूब अच्छी तरह मालूम है। इसलिए वह अद्वितीय है, उसका कोई सानी नही हो सकता है। वह सचमुच 'निराला' है, और उसे इस बात पूरा अहसास भी है, कि वह ऐसा ही है

"देख मुझको, मैं बढा
डेढ बलिश्त और ऊँचे पर चढा,
और अपने से उगा मैं
नहीं दाना, पर चुगा मैं,
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता,
तू है नकली, मैं हूँ मौलिक,
तू रंगा और मैं धुला,
पानी मैं, तू बुलबुला
तूने दुनिया को बिगाडा,
मैंने गिरते से उभाडा,
तूने जनखा बनाया, रोटिया छीनीं,
मैंने उनको एक की दो तीन दीं।" ('कुकुरमुत्ता' से)

समाज की जमीन पर कुलीन, सम्भ्रान्त, सुविधा सम्पन्न वर्ग मे उद्यान की सजी सँवारी गई किसी क्यारी में 'निराला' नहीं उगा। लेकिन जिस जगह उगा उसने अपनी शक्ति-सामर्थ्य से सतह की पर्तों को तोडकर अपने लिए रस-ग्रहण किया और बढता रहा। उसकी अहमन्यता उसके चरित्र का केन्द्र-बीज बनी रही। इसीलिए वह सारी उम्र नही झुका। विवशता और विफलता के बोझ से दबकर भी वह नही दबा। शक्ति की अति सक्रिय तेजवन्त इकाई की तरह उसका व्यक्तित्व कायम रहा। पथरीली चट्टानो की चुनौती को स्वीकारने वाली निर्झरिणी का तुमुल नाद, अम्बर की रिक्तता को भरने वाला बादल का कठिन-राग, विद्रोह का स्वर, और व्यंग्य की तटस्थता सभी निराला के व्यक्तितत्व मे समाहित थी। व्यंग की तटस्थता का तात्पर्य परिस्थिति के प्रति किसी प्रकार उदासीनता से नही है, अपितु उसका अर्थ की विषमताओं को भोगकर उनके ऊपर इस तरह उठ जाना है कि सारी की सारी परिस्थिति अपने विरोधो और चुनौतियो के बावजूद एकदम क्षुद्र और तुच्छ लगने लगे। संघर्षमय स्थितियो के बीच से गुजरने पर व्यक्तितत्व जब चुनौतियो को स्वीकार करते हुए अपना रास्ता बनाता है, उसे अपनी विद्रोह-शक्ति का प्रदर्शन करना पडता है। जहाँ भी विद्रोह की शक्ति का रूप व्यक्त होता हुआ दिखलाई देगा वहाँ व्यक्ति और परिस्थिति के बीच का तनाव करीब-करीब दो समान शक्ति-बिन्दुओ के बीच तनाव होगा। परन्तु जहाँ व्यक्तित्व इस तरह की तनाव की स्थिति के ऊपर अपनी अतुलनीय शक्ति के कारण उठ जाता है, वहाँ वह सारे कशमकश की दिशाओं से मुक्त होकर भी निष्क्रिय नही रहता, किन्तु निरपेक्ष-दृष्टिवाल हो जाता है। सारे विरोधो को, 'ऊँह, भला इनमे भी कोई दम है।' कहकर वह ठुकरा सकता है और विद्रोही की अपनी उस स्थिति से जब वह बराबर कहता आया कि 'आ, तेरी चुनौतियां स्वीकार है,' अधिक ऊपर उठ सकता है। तभी वह निर्लिप्त, तटस्थ होकर कठिन से कठिन व्यंग्य कर सकता है। विद्रोह का स्वर और व्यंग्य की तटस्थता दोनो ही निराला मे थी, और ये ही 'कुकुरमुत्ता' के वास्तविक स्वर भी हैं।

कविता मे व्यक्त होने वाले स्वरों और कवि-व्यक्तितत्व की चरित्र-संरचना मे सामञ्जस्य किस रूप मे और किस अनुपात में पाया जाता है, या संभव हो सकता है, यह निश्चित कर पाना बड़ा मुश्किल-सा है। जो कवि काव्य को आत्माभिव्यक्ति मानते है, उनके लिए भी काव्य के आधार पर व्यक्तित्व के स्वरूप का निर्धारण सभव नही है। इनके दो मुख्य कारण है एक तो व्यक्तित्व का किसी गतिशील प्रक्रिया में निरन्तर विकसित होते रहना है जिससे व्यक्तत्व की सारी दशाओं, प्रक्रियाओं और तत्वों की किसी भी समय किसी भी रूप मे बाँधकर रखना तो दूर रहा, अंगुलि-मात्र से निश्चिता के साथ लक्ष्य कर पाना भी सभव नही है। दूसरी कठिनाई अभिव्यक्ति की अपनी विविध सीमाओं के कारण उत्पन्न होती है। काव्य मे व्यक्त जीवन-दर्शन कवि की अपनी जिन्दगी या उसकी व्यवहारिक जीवन-दृष्टि से भिन्न हो सकता है। बहुत से उदाहरणो मे यह इसलिए होता है कि कवि अपनी समस्याओं का जो समाधान कल्पना के धरातल पर ढूंढ लेता है उसे अपने वास्तविक जीवन मे अपनी चारित्रिक-शक्ति की पर्याप्त दृढता के अभाव मे नही अपना पाता। कई उदाहरण तो ऐसे भी देखे जा सकते है जहाँ कवि-व्यक्तित्व अपनी किसी रिक्तता को अभिव्यक्ति की किसी रीति में भर भी लेते हैं। यह भी आत्माभिव्यक्ति का ही एक तरीका है यद्यपि यह कवि-

व्यक्तित्व में पाए जाने वाले तत्वों का अभिव्यक्ति की दशाओं में भिन्न है। परन्तु जहाँ तक निराला का सवाल है उनमें पर्याप्त चारित्रिक दृढ़ता थी, और इस लए उनके कवि-व्यक्ति की इकाई खंडित नहीं हो सकी, न उनके संबंध में क्षति-पूर्ति का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त कभी लागू हो सका, और न जीवन-दर्शन के संबंध में उपयुक्त अर्थ में कभी दोहरी दृष्टि ही उनमें पनप पाई। निराला के जीवन और उनके काव्य के बीच जो संबंध है वह अभिन्न एवं समरस है, किन्तु फिर भी अपने पर नियमित है। इसलिए कविता अथवा उनके मूल स्वरों को सापेक्षता में निराला के जीवन दर्शन का ढाँचा तैयार किया जा सकता है, अथवा व्यक्तित्व शक्ति के आधार पर जीवन के पथ की व्याख्या की जा सकती है।

साधारणतः जब कभी भी साहित्य में कवि कर्म तथा व्यक्तित्व के मध्य की चर्चाएं होती हैं, उनकी व्याख्याएँ व उनके रूप काव्य की सहानुभूति अभिव्यक्ति के आधार पर निश्चित कर दिये जाते हैं, या फिर काव्य की आन्तरिक योजना तथा संरचना में वे विशेष पक्षों या चारित्रिक रूपों के माध्यम किसी अन्वेषणात्मक विधा में व्यक्त होते हुए बतलाये जाते हैं। किन्तु इस तरह की चर्चाएं कभी भी सन्तोषप्रद परिणामों तक नहीं पहुँच सकती जब तक कवि-व्यक्तित्व की एक निश्चित गत्यात्मक स्थिरता का सत्य हम किसी सन्दर्भ में पूरी तरह से न पा लें। व्यक्तित्व के स्वरूप की पकड़ के साथ ही साथ विशेष कवि व्यक्तित्व की क्रियाशीलता का भी पकड़ना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा और उसकी काव्य सम्बन्धी सृजन प्रक्रिया दोनों को ही समझना आवश्यक है, तभी व्यक्तित्व और काव्य के बीच उचित संगति बिठाई जा सकती है अथवा काव्य के विविध रूपों के माध्यम व्यक्तित्व के विश्लेषण की क्रिया में कवि का जीवन-दर्शन ढूंढा जा सकता है। जहाँ तक साहित्य एवं कला के सृजन का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि अलग अलग व्यक्तियों की अपनी विशिष्ट जीवन प्रणालियों अथवा जीवन की दशाओं को भोगने या उनके सन्दर्भ निश्चित करने की रीतियों की विभिन्नता के कारण ही उनमें 'सृजनात्मक विभेद', अर्थात् काव्य में व्यक्त दर्शन, रूप और शैली के भेद पाये जाते हैं। रचनाकार के व्यक्तित्व की चारित्रिक शक्ति के स्वरूप और उसकी मात्रा के आधार पर ही काव्य रूप और काव्य में व्यक्त उसके जीवन दर्शन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं। उसके चारित्रिक बिन्दु की गत्यात्मकता परिस्थिति की अनुकूल या प्रतिकूल दशाओं पर विशेष तरीके से प्रतिक्रिया करती हुई उसके व्यक्तित्व के रूप को अधिकाधिक निश्चयात्मक बनाने में सफल होती है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब कवि व्यक्तित्व के परिस्थिति-विशेष से सम्पर्क हो जाने पर मात्र आवेगात्मक प्रतिक्रियाएं ही उसकी उपलब्धि बन कर न रह जाएं। सशक्त भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं, और जब होती हैं तब उनका आधार निश्चित कर पाना सम्भव भी हो सकना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि और भावना को न्यायोचित संगति और सक्रियता में विविध सन्दर्भों के अर्थों को व्यक्तित्व की शक्ति द्वारा निश्चित कर पाना कवि के लिये आवश्यक सा है, और जहाँ कहीं भी आवेगात्मक उद्रेक सहसा अभिव्यक्ति में निकल आये वहाँ दो तरह की परिणतियाँ देखी जा सकती हैं। पहली स्थिति में व्यक्तित्व की सम्पूर्ण शक्ति का प्रकाशन तीव्र आवेगात्मक अभिव्यक्ति में होता है। परन्तु दूसरी स्थिति में किसी सन्दर्भ में तात्कालिक तीव्र प्रतिक्रिया का प्रकाशन होता है और यह तीव्रानुभूति

कवि की प्रतिभा की सर्जनात्मक प्रक्रिया से किसी तरह सयुक्त नही हो पाती। इसलिये इसके आधार पर व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे निष्कर्ष निकालना कठिन हो जाता है। वास्तव मे व्यक्तित्व की शक्ति या चारित्रिक शक्ति की क्रियात्मक रीतियो के विभिन्न व्यक्त-रूप जहाँ भी नही समझ पाते, वहाँ हमे कवि-व्यक्तित्व मे अथवा कवि की जीवन-दृष्टि मे विरोध दिखलाई देने लगता है। काव्य के रूपों मे आवश्यक परिणाम के रूप मे जो भेद कायम हो जाते हैं, उनका भी सम्भवतः इसीलिये उचित मूल्यांकन नही हो पाता। हम अपनी पर्याप्त समझ के अभाव मे कवि-व्यक्तित्व और काव्य दोनो के साथ न्याय नही कर पाते। निराला भी हमारे इस अन्याय के शिकार बन गये थे।

वास्तव मे निराला के व्यक्तित्व की दृढता प्रतिकूल परिस्थिति की चुनौतियो को सहज रूप से स्वीकार कर पाने की क्षमता रखती है। न केवल इतना ही, उनकी अपनी चारित्रिक अहमन्यता अपनी शक्ति के कारण ही सारी की सारी चुनौतियो को नगण्य या तुच्छ मान सकती है। संघर्ष और विरोध के बीच अपने को पाकर वह अहमन्यता और भी अधिक कठोर बन पाती है। कवि-व्यक्तित्व की चारित्रिक दृढता मे एक निर्लिप्तता जागती है, एक तटस्थ दृष्टि स्वयमेव पनपती है, और वही जीवन की सबसे अधिक व्यंग्यात्मक दृष्टि प्रखर होती है। उस स्थिति मे सशक्त होने की चेतना और आत्म-गर्व के अतिरिक्त कुछ भी नही होता। किन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि कवि परिस्थिति-जन्य रागात्मक दशाओ से पूरी तरह मुक्त हो गया। एक अर्थ मे वह मुक्त अवश्य है। क्योंकि ये परिणामात्मक दशाएँ उसके जीवन दर्शन की अन्तिम परिणति नही बन पायी। फिर भी उनका सम्बन्ध कवि को जीवन-दृष्टि के साथ इस तरह अधिक है कि उनको भोगकर ही वह और व्यापक, सम्यक और उचित बन पाई है। इसलिये परिस्थिति-जन्य दुःख, निराशा, असफलता आदि की परिणामात्मक दशाओ मे कवि सचेत होकर भोगता अवश्य है, लेकिन उन्हे जीवन का सत्य कदापि नही मान सकता। निराशा व असफलता को मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ कभी भी उसका जीवन दर्शन नही बन सकती। 'सरोज-स्मृति' मे अगर निराला ने अपने सम्बन्ध मे यह कह भी डाला कि, "दुःख ही (उनके अपने) जीवन की कथा रही", तो इसका मतलब यह नही समझना चाहिये कि विवशता के अर्थ मे उन्होने जीवन को स्वीकार लिया। जो अशक्त होते हैं या जीवन की संघर्षमय स्थितियो मे बिखर जाते हैं, सिर्फ उनके लिये ही वेदना, विफलता और विवशता जीवन को अन्तिम परिणति हो सकती है। इसलिये निराला के सम्बन्ध मे, जिसने हर विरोधी परिस्थिति मे अपने अहं को प्रस्थापित करते रहने का बराबर प्रयास किया, इस तरह का निष्कर्ष निकालना उचित नही है। जीवन का अर्थ आत्म-संस्थापन की वृत्ति एव उसकी गतिशील प्रक्रिया मे ही निश्चित किया जाना चाहिये। निराला अपनी शक्ति और परिस्थिति की प्रतिक्रिया को पूरी तरह से पहचानते थे, किन्तु किसी भी तरह हार मान जाने या परिस्थिति से किसी प्रकार समझौता कर लेने की कायरता उनमे नही थी। 'सरोज स्मृति' मे ही हिन्दी साहित्य के विद्वानो व दिग्गजो की ओर लक्ष्य कर उन्होने यह बात कही कि यद्यपि उन लोगो ने निराला को अपने तीर का निशाना बनाया और शर-क्षेप मे अपना रण-कौशल भी प्रदर्शित किया, तथापि वह हत-प्राण नही हुआ, घायल नही हुआ। इसके विपरीत उसका जीवन और भी प्राणवन्त बनता गया और उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा और भी प्रखर होती गई। तभी उन्होने कहा—

"व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कण्ठ फल।
और भी फलित होगी वह छवि,
जागे जीवन-जीवन का रवि,
लेकर कर तूलिका कला,
देखो क्या रंग भरती विमला,
वांछित उस किस लांछित छवि पर
फेरती स्नेह की कूची भर।"

और सचमुच ही जीवन-जीवन का रवि 'जागा' और निराला 'अबाध गति मुक्त छन्द' लिखते रहे। शक्ति का स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है कि उसको बाँध कर नहीं रखा जा सकता बल्कि जितना अधिक प्रयास उसको बाँधने का किया जायेगा, उतना ही अधिक दायरे को तोड़ देने का वेग उसमे प्रचण्ड होता जायेगा। परम्परा की लीक पर भी बँधकर चलना निराला को सह्य नही था। जीवन मे परम्परा और लोक गीतो की गरिमा हो सकती है, परन्तु वह कभी भी एक ऐसी लीक नही बन सकती जिस पर चलने की बाध्यता हमे स्वीकार करना पड़े। संस्कारिता से व्यक्तित्व बँधा अवश्य रहता है, किन्तु एक बहुत ही सीमित अर्थ मे ही। व्यक्तित्व की क्रियावाही शक्तियो के कारण उसमे संशोधन, परिवर्तन आदि सम्भव है, और इन सब बातों का पर्याप्त भान स्वयं निराला को था भी।

यह लोक रीति
कर दूँ पूरी, गो नहीं भीति
कुछ मुझे तोड़ते गत विचार,
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मे हूँ अक्षम, निश्चय
आएगी मुझमे नहीं विनय
उतनी जो रेखा कर पार
सौहार्द्र-बन्ध की निराधार।

('सरोज स्मृति' से)

इसलिए बेटी का विवाह एकदम नए ढङ्ग से, सीधे-सादे से बिना किसी रस्म का बोझ ढोए अथवा किसी दूसरे का अहसान लिए पूरा कर दिया गया। अपनी आर्थिक विपन्नता की हालत मे निराला अपनी बेटी का उत्तम पोषण उस अल्पकाल मे भी नही कर सके जब वह नानी के घर पल बढ़कर उनके साथ रहने आई। यद्यपि 'कुछ दिन को' वह उनके साथ रही तथापि 'अपने गौरव से झुका माथ' उसका पोषण वह नहीं कर सकते थे। अपने आग्रह और सम्मान का सौदा उनके लिए असम्भव था। वह हर प्रकार का विरोध स्वीकार कर सकते थे, हर तरह की तकलीफ बर्दाश्त कर सकते थे, पर जीवन मे परिस्थिति से समझौता नही कर सकते थे। इसीलिए सारे जीवन भर दुःख और निराशा उनको मिलती रही। पिता होने के नाते बेटी के लिए कुछ भी न कर

पाने का दुःख उसमें स्वाभाविक था। वह चाह कर भी उसके लिए कुछ नही कर सकते थे। यहां उनकी मानवीय संवेदना का उद्रेक उनकी अह्मन्यता को ढंक अवश्य लेता है, किन्तु वह जीवानभि व्याख्या का आवश्यक संदर्भ कदापि नही है। अपने को भाग्यहीन कहने और अपने जीवन मे अधिका धिक दुख की अभिप्राप्त की बात करने मे विवशता का भाव अवश्य है; परन्तु वह विवशता अपने पराजित होने की चेतना से उद्भूत नही है। इसीलिए वह जीवन का स्थायी सत्य नही हो सकती।

सच पूछा जाए तो निराला की काव्य साधना मे निराशा, अनास्था जैसी चीजो के लिए कोई भी स्थान नही है, क्योकि इन सबका मतलब केवल जीवन और जीवन्त-शक्ति का खंडन होता है। उनका काव्य उनके जीवन की अह्मन्यता तथा उनकी जीवन-दृष्टि की अभिव्यक्ति भर है। व्यक्ति शक्ति का केन्द्र है और स्वतन्त्रता उसका आत्मगत स्वभाव और सत्य है। इसीलिए उनकी मान्यता थी कि शक्ति की क्रिया-प्रक्रिया और उसके विविध रूपो को लेकर ही जीवन सम्पूर्ति पा सकता है। तभी व्यक्तित्व का व्यक्तित्व भी विकसित हो सकता है। काव्य अगर आत्माभिव्यक्ति है तो उसके स्वरूप और उसकी शैली मे व्यक्तित्व के स्वभाव के कारण एक तरह की बाध्यता अवश्यंभावी है इसीलिए तो मानव-मुक्ति की तरह कविता मे भी मुक्ति की बात निराला किया करते थे। उनका कहना था : "मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दो के शासन से अलग हो जाना।...' मुक्त काव्य कभी भी साहित्य के लिए अनर्थकारी नही होता, प्रत्युत उससे साहित्य मे हर प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की मूल होती है।" "मुक्ति छन्द की अपनी विषम गति मे एक ही सत्य का अपार सौंदर्य होता है, जैसे एक ही अनन्त महासमुद्र के हृदय की सब छोटी-बडी तरगे हों, दूर-प्रसरित दृष्टि मे एकाकार, एक ही गति मे उठती और गिरती हुई।' ('परिमल' की भूमिका से)

निराला के इस प्रकार के तर्कों के पीछे एक तरह का दर्शन-संबंधी पूर्वाग्रह अवश्य है। दर्शन की अद्वैत-वेदान्त की परम्परा से वह बुरी तरह प्रभावित थे और उनकी जीवन व काव्य के प्रति दृष्टि उनकी अद्वैत-निष्ठा से आलोकित रही। अहं ब्रह्माअस्मि' का 'दार्शनिक सत्य' जब भी उनके निकट एक आनुभूतिक सत्य के रूप मे व्यक्त हो पाया, उनका व्यक्ति जैसे सम्पूर्ण शक्तिवान की सत्ता से विभासित होकर तटस्थ बन गया। संघर्ष और विरोध की भौतिक दशाओं तथा उनकी परिणामात्मक मनस्थितियो के ऊपर निराला की स्थिति कायम हो गई। राग-विराग के प्याले मे जो भी आया, उसे उसने खूब छककर पिया। तटस्थता का एक उदाहरण देखिए—

> "दुःख के सुख जियो, पियो ज्वाला,
> शङ्कर की स्मर-शर की हाला।
>
> शशि के लांछन हो सुन्दरतर,
> अभिशाप समुत्कल जीवन-वर,
> वाणी कल्याणी अविनश्वर
> शरणों की जीवन-पण-माला।

उद्वेल हो उठो भाटे से
बढे जाओ घाटे घाटे से
ऐंठों फस आटे आटे से
भर दो जीकर छाला छाला।" ('आराधना' से)

वास्तव मे इस तरह की तटस्थता ने निराला के व्यगों की चुभन को तीखा किया है। विरोध और सघर्ष की स्थितियो को सह पाने की अपनी एक विचित्र गरिमा है। वहाँ उन्हें सहने की विवशता किसी प्रकार भी नही है। विवशता तो इन स्थितियों के विपरीत अपनी सारी शक्ति का प्रयोग कर लेने के बाद अपनी इच्छा के विपरीत इनके स्वीकार किए जाने की साध्यता के कारण हुती है। लेकिन तटस्थता की स्थिति मे इन कथित स्थितियों को इतना महत्व ही नहीं दिया जाता कि इनको तोडने के लिए भी अपनी शक्ति का किञ्चित क्षय भी किया जाना उचित समझा जाए। इसके विपरीत, निरपेक्ष दृष्टि से, मात्र 'साक्षी' के तौर पर सब कुछ सह जाने और उसकी सत्यता को समझ लेने मे ही जीवन की सार्थकता है। शङ्कराचार्य ने अपने अद्वैत-दर्शन मे आत्मा या ब्रह्म के चित-स्वरूप की चर्चा की है, जो मात्र 'साक्षी' है और 'अन्त करण' की सभी वृत्तियों से मुक्त है। साक्षी का स्वरूप ही वास्तविक सत्य है, और, मेरा ध्यान है कि व्यग जहाँ भी अत्यधिक प्रखर हो सके हैं अपनी तटस्था के कारण ही हो सके तथा इस तरह की तटस्थता को ग्रहण कर पाने का पाने का कारण उनकी अद्वैत निष्ठा ही थी। किन्तु इस तरह की तटस्थता समान-रूप से सभी स्थितियों मे उनमें रही हो, ऐसी बात नहीं है। इसीलिए सघर्ष को स्थितियों में निराला में चुनौती का स्वर भी मुखरित होता हुआ मिल जायगा

"तोडो, तोडो तोडो कारा
पत्थर की, निकले फिर
गगा जल धारा।" ('अनामिका' से)

अपनी दार्शनिकता के फलस्वरूप जो सत्य उनको मिला उसने उनकी शक्ति और अहमन्यता को केवल बढाया है। उनका विचार भी था कि अपनी शक्ति को पहचान कर महत्ता को समझना और उसे खुल कर कहना जरूरी भी होती है। स्यात् इसीलिये निराला का जीवन एक खुला हुआ पृष्ठ बन गया, उन्होने अपने को सीधे-सच्चे तौर पर बराबर व्यक्त किया—कहीं किसी तरह का छिपाव नही, कही किसी तरह का दुराव नहीं। स्यात् इसीलिये निराला का काव्य भी उस निर्झरणी की तरह बह निकला जो सारे अवरोधों को तोडकर स्वय अपना रास्ता बना लेती है। और, मुझे तो लगता है कि यही एक कारण है कि निराला छायावादी कवियो की परम्परा से अपने 'व्यक्तित्व' और 'दृष्टि' को अनिवार्यताओ के अनुरूप शीघ्र ही विलग हो सके। छायावादी कवियो मे परम्परा स विच्छिन्न होने ाले अन्य कवि पन्त भी हैं, किन्तु पन्त न तो इतनी शीघ्रता से परम्परा से हट पाये और न अपने दम पर अपना अलग लीक ही कायम कर पाये। निराला को नित नये धरातल तोडने की सजा भुगतनी पडी, परन्तु अपनी आन्तरिक आवश्यकता से वह मजबूर थे। 'धारा' का सत्य ही उनका अभिप्रेत लक्ष्य बना रहा

"बहने दो
रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है
यौवन-मद की बाढ़ नदी की
"गरज-गरज वह क्या कहती है, कहने दो—
अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो।"
"अगर हठ-वश आओगे
दुर्दशा करवाओगे, वह जाओगे।"

('परिमल' से)

'व्यंग की तटस्थता' के धरातल के नीचे 'चुनौती की सम्पूर्ण स्वीकृति' का धरातल है। पहले कहा जा चुका है कि व्यंग की तटस्थता मे समस्त विरोधी परिस्थितियो के ऊपर व्यक्ति अपने को प्रतिष्ठापित कर पाता है, और अपनी सारी शक्ति की असलियत को 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूप मे पहचानता है। लेकिन दूसरे धरातल पर परिस्थिति से एक तरह का बराबरी का मुकाबला होता है। व्यक्ति, जो शक्ति की इकाई है, अकर्मण्य बनकर नही रह सकता, उसकी क्रिया, योजना मे एक निश्चयात्मकता व्यक्त होती है :

"क्यों अकर्मण्य सोचता बैठ
गिनता समर्थ हो व्यर्थ लहर;
आए कितने ले गए अर्थ,
वह विषय बाड़वानल-जल तर।
बहती अनुकूल पवन, निश्चय
जय जीवन की है जीवन पर
निरभ्र नभ ऊषा के मुख पर
स्मित किरणों की फटी सुँदर।
अपने ही जल से जो व्याकुल;
ले शक्ति शान्ति तर वह सागर;
तू तूर्ण और हो पूर्ण सफल;
नव नवोर्मियों के पार उतर।"

('गीतिका' से)

शक्ति का स्वरूप ही ऐसा है कि वह घेरे मे बँधकर नही रह सकती। वह अभिव्यक्ति चाहती है। वह आजमाइश चाहती है, और वही संघर्ष की विभिन्न रीतियों में व्यक्त होती है। परन्तु ऐसे भी अवसर आते हैं जब व्यक्ति की शक्ति संघर्षमय परिस्थिति के मुकाबले बराबर जम नही पाती और ऐसी दशा मे निराशा, विफलताबोध की मानसिक परिणामात्मक दशाएँ व्यक्ति मे जन्म लेती है। यदि इन परिणामात्मक दशाओ को एकत्रित कर 'जीवन के सत्य' की संज्ञा दी जाये, तो वह विकृति है। असल मे इनका मूल्य व्यक्ति की अहमन्यता को और भी जगाने और संघर्षरत

बनाने के लिये है। तभी व्यक्तित्व की इकाई सुरक्षित रह पाती है। लेकिन जहाँ इन परिस्थितियो म व्यक्ति हार कर अपनी असली सामर्थ्य को न पहचान पाने की गलती करता है, वह अन्तरद्वन्द्व की स्थिति का शिकार बन जाता है। सघर्ष और अन्तरद्वन्द्व की स्थितियो में बहुत अन्तर है। सघर्ष की स्थिति मे व्यक्तित्व की सम्पूर्ण शक्ति एक इकाई के रूप मे सगठित होकर विरोधी परिस्थिति के मुकाबले खडी हो जाती है। परन्तु अन्तरद्वन्द्व की स्थिति व्यक्तित्व की शक्ति वातावरण के विरोध का मुकाबला न कर व्यक्ति के भीतर ही विभाजित और खण्डित हो जाती है। एक अर्थ मे परिस्थिति से पलायन का धरातल इसे माना चाहिये। यहाँ जीवन-दृष्टि सही मायने मे व्यक्त नही होती। निराला के अन्तिम दिनो मे जब उनके व्यक्तित्व की इकाई कही भीतर से टूट गई, वह विक्षिप्त के शिकार हुए और उन दिनो लिखी गई कविताओ म सघर्ष की जगह अन्तरद्वन्द्व ही ही बोलता हुआ मिलेगा। उनके काव्य सग्रह 'अणिमा' मे भी पर्याप्त निराशा और असफलता की गूँज है। किन्तु जीवन की व्याख्या इसके आधार पर नही की जा सकती क्योकि उनकी जीवन-दृष्टि के तारो को छूकर उनकी रागात्मक प्रतिक्रियाएँ नही लौटी। जब किसी परिस्थिति मे सघर्ष की स्थिति मे कोई सत्य मिलता है तो वह पहले विशेष तरीके से हमारी जीवन-दृष्टि के साथ जाकर सयुक्त होता है और फिर किसी अन्य रागात्मक अवसर पर जीवन दृष्टि को लेकर काव्य मे व्यक्त होता है। काव्य की सृजन प्रक्रिया का यह तरीका सही मूल्याकन के लिये आवश्यक है। परन्तु ऐसा लगता है कि अणिमा' के लिखे गये बहुत-से गीत निराला की आन्तरिक चेतना व जीवन-दृष्टि से सम्बन्धित और नियोजित होकर नही आये, सृजन प्रक्रिया की सम्पूर्ण गत्यात्मकता भोगकर वे नहीं लिखे गये। इसके कारण हो सकते हैं, लेकिन उनकी चर्चा हमे यहा नही करनी है। इसलिये, मेरा ख्याल है कि इन गीतो मे गद्यात्मकता है, नीरसता है, इतिवृत्तात्मकता और असम्बद्धता है। इनमे बिखराव शक्ति के सीमित अर्थ में विघटन के कारण है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि निराला का समूचा काव्य शक्ति के अभिव्यक्ति के सिद्धान्त पर समझाया जा सकता है। वास्तव में शक्ति की प्रक्रिया और अह के स्वरूप की व्याख्या के आधार पर निराला के विविध काव्य रूपो की समुचित चर्चा की जा सकती है। सम्भवत इसीलिये इस दिशा म कतिपय आलोचकों ने दृष्टि डाली और निराला के सम्बन्ध म 'अह' के अर्थ को स्पष्ट करने की कोशिश भी की। शक्ति की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध म तीन धरातलो की चर्चा मैंने की है और प्रत्येक धरातल पर अहमन्यता अपने विविध रूप गढ़ लेती है। व्यग की तटस्थता के धरातल पर अहमन्यता का एक सुसम्बद्ध, अविच्छिन्न रूप होता है, जहाँ सम्पूर्ण चेतना का ही भाव प्रमुख रूप से व्याप्त होता है। अद्वैतवेदान्त के पूर्वाग्रह में पोषित कवि की चेतना अपनी सामर्थ्य के सम्मुख किसी को कुछ भी नहीं समझती। इसीलिये ही शायद निराला अपनी पुस्तकों की भूमिकाओ म तमाम ऐसी बातें बडी आसानी से लिख सके जिन्हें पढ़कर कोई यह समझेगा कि वह बहुत 'दम्भी' थे। परन्तु अपनी आतरिक शक्ति की अभिव्यक्ति जैसे उनकी अपनी अनिवार्यता थी। जगत् के ऊपर के सत्य को पहचानकर व भोग कर जगत् म व्यावहारिक दृष्टि अपना लेना तटस्थता का ही एक नमूना है। 'अर्चना' की भूमिका म पुस्तिका के सम्बन्ध म अपने श्रम की सफलता की बात करते हुये उन्होंने 'पुस्तिका के बहिरग व्यावहारिक बात' की चर्चा की। पुस्तिका म, 'अन्तरग विषय,

यौवन से अतिक्रान्ति कवि के परलोक से सम्बद्ध है', यह कहकर जन-समीक्षा, आलोचना आदि से उन्होने उसे ऊपर उठा दिया ।

संघर्ष के धरातल पर अहमन्यता को एक सम्पूर्ण इकाई सक्रिय एवं गतिशील होती हुई, दिखलाई देगी । वहाँ बराबर आस्था के संगीत की ही अनुगूंज सुनाई पड़ेगी ।

"तू कभी न ले दूसरी आड़,
शत्रु को समर जीते पछाड़ ।
सैकड़ों फलेंगे, फूलेंगे
जीवन ही जीवन भर देंगे,
झरने फूटेंगे, उबलेंगे,
नर अगर कहीं तू बन पहाड़ ।"

('बेला' से)

परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि संघर्ष की स्थिति मे कठिन विरोधों के कारण अपनी चुकती हुई शक्ति को पुनः स्थापित करना आवश्यक हो जाता है । यह शक्ति कहां से आती है ? 'राम की शक्ति-पूजा' कविता का अगर विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जायगा कि शक्ति सच्ची निष्ठा से आती है । जब रावण के मुकाबले राम संशकित होकर हारे-हारे से थे कि तभी सीता का विचार उनके बाहुओं मे बल भर देता है :

ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।
सिहरा तन, क्षण भर भूला मन लहरा समस्त,
हर धनुर्भङ्ग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आई भर,

('अनामिका' से)

और इसी तरह, जब कवि ने राम की आंखों मे अश्रु देखे तो उनमें स्वामिभक्ति के कारण अनन्त शक्ति आ गई—

ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार
दो श्वसित पवन-उनचास, पिता-पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़
तोड़ता बन्ध .

('अनामिका' से)

और अन्त मे राम की सम्पूर्ण शक्ति जागी । जब शक्ति की मौलिक कल्पना कर, उसकी

पूजा कर राम सिद्ध हो गए। भक्ति में विश्वास जागता है और शक्ति मिलती है। किन्तु भक्ति म सदा द्वैत पलता है। सघष मे भी द्वैत सत्य प्रकट होता है। इसलिए इस धरातल पर द्वैत के सत्य को निराला ने न केवल स्वीकार किया, बल्कि उसकी प्रतिष्ठा भी की। सघष और भक्ति दोनों मे ही उन्होने शक्ति-सचयन की आवश्यकता को स्वीकारा। इसीलिए ही उनकी प्राथनाओ मे दैन्य भाव कही भी देखने को नही मिलता। 'शक्ति' और 'सरस्वती' की वन्दना निराला ने मुक्ति, स्वतन्त्रता और शक्ति-सामथ्य को विकसित करने के लिए ही की। इनको पाकर ही तो जीवन में उल्लास जागता है और शक्ति के आजमाइश की उमग पैदा होती है

उथल पुथल कर हृदय—
मचा हलचल—
चल रे चल
धँसता दल।
हँसता है नद खल-खल
बहता है कुलकुल कलकल कलकल।
देख-देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल बेकल
इस मरोर से - इसी शोर से—
सघन घोर गुरु गहन रोर से
मुझे—गगन का दिखा सघन वह छोर!
राग अमर! अम्बर मे भर निज रोर।

('बादल राग' 'परिमल' से)

इस तरह, सक्षेप म, यह कहा जा सकता है कि जीवन का अथ न तो विवशता है और न परिस्थिति से किसी प्रकार का समझौता ही, अपितु इसका तात्पय अपनी अहम्मता को प्रतिष्ठापित करने के लिए हमारे द्वारा किए जाने वाले सघष है। इसका अर्थ ऐसी स्थिति की अभिप्राप्ति से भी हो सकता है जहाँ सघष की सारी स्थितियो मे व्यक्त होनेवाले द्वैत भाव के ऊपर उठने का हमारा सतत प्रयास हो, और जहाँ अद्वैत-सत्य से सयुक्त होकर शक्तिमान सत्ता का स्वरूप भोगकर हमारे लिए सम्पूर्ण तटस्थता का निवहन सभव हो सके। बहरहाल, इन दोनो ही दशाओ मे जीवन शक्ति ही की अनन्त साधना है।

— ❧ —

चतुरी चमार

श्री मृत्युंजय उपाध्याय

'साहित्य संदेश' (कहानी—अंक—जनवरी—फरवरी १९५३) के 'मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी क्यों' में निराला ने लिखा है—'चतुरी चमार' ही मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। मेरी कहानियाँ सभी मौलिक है, जिनमें मैंने साहित्य का निखरा रूप रखने की चेष्टा करते हुए सत्य घटनाओं का ही चित्रण किया। व्यंग्य शैली एवं प्रवाह आदि का पूरा-पूरा उपक्रम 'चतुरी चमार' में वर्तमान है। निराला जी के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ही इस कहानी की विशिष्टता पर कुछ कहना उचित है।

'सन् ३३ के आस-पास गोर्की के अध्ययन और प्रगतिवाद के नये आन्दोलन ने उनके ग्रामीण जीवन के अनुभव को साहित्य-सर्जन के लिए एक अमूल्य निधि बना दिया।' 'गढाकोला में उसे कच्चे मकान मे रहकर उन्होने ने चार पाँच साल तक भयानक रोगों से लोहा लिया।' यह काल उनके लिए जीवन संक्रमण काल कहा जा सकता है। एक ओर साहित्य के ठेकेदारों का तीव्र विरोध तो दूसरी ओर उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य और आर्थिक परेशानियाँ समाज के वे लोग जो उच्च वर्ण और वर्ग से सम्बन्धित थे न खुद आगे बढते थे और न दूसरो को मौका ही देना चाहते थे। जमीदारों के अत्याचार बेगुनाह जनता पर बेबात हो रहे थे। राजनैतिक परिस्थियां भी कुछ कम विचित्र न थी, ऐसे ही समय मे निराला के जीवन में शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित ब्राह्मण आदर्श हिल उठा और वे यह सोचने के लिए मजबूर हो गये कि यह सब ब्राह्मण संस्कार की बातें हैं। 'चमार दबेंगे और ब्राह्मण दबायेंगे। दवा है दोनो की जड़े मार दी जायें।'

'चतुरी चमार' कहानी की रचना इन्ही परिस्थितियो मे हुई। हिन्दी साहित्य मे 'देवी' और 'चतुरी चमार' का यही महत्व है कि जब सुधारवाद का भरम बना हुआ था, तब निराला ने यथार्थ जीवन के चित्र देकर पाठको को झकझोर दिया। सन् ३३ मे इन रचनाओ की सृष्टि यह सिद्ध करती है कि हिन्दी साहित्य को नई दिशा की ओर गति देना ऐतिहासिक आवश्यकता थी। एक युग की भूमि पार करके निराला उसकी सीमा तक पहुँच गया, अब दूसरे युग का भूमि पर कदम उठाना जरूरी था। निराला ने यह कदम उठाया।

जीवन की विविधता से पूर्ण 'चतुरी चमार' मे लेखक समाज मे पैठ जाता है, जहाँ ठेकेदारी का वीभत्स रूप दिखाई देता है। 'चतुरी चमार' डाकखाना चमियानी, मौजा गढकोला, जिला उन्नाव का एक कदीमी वाशिन्दा है। वह अपने 'उपानह साहित्य' मे 'अपरिवर्तनवादी' है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार तत्कालीन पत्रो के सम्पादक अपने विचारों मे इसके अतिरिक्त वह

'चतुर्वेदी आदिओ से सत साहित्य का अधिक ममज्ञ है।' वह भजन मडली म बैठकर अपने 'आचाय-कण्ठ' से लोगो को भूले पदो की याद दिलाती है। वह लेखक के लिय श्रद्धेय भी है, क्योंकि उसकी जूतियाँ पहन कर लोध, पासी, नाई किसान सभी अपने अपने काम बखूबी सम्पन्न कर लेते है। 'चतुरी' के जूते अपरिवतनवाद के चुस्त रूपक जैसे टस से मस नहीं होत हैं। वैसे तो बेचारा चतुरी खुद अनपढ है, कितु अपने पुत्र को अवश्य पढ़ा लिखा कर बडा बनाना चाहता है। इसलिये एक दिन जब वह सुबह ही लेखक के घर (उसके रात को भजन मण्डली से जल्दी ही उठ आने के कारण) निगुण पदो का समझाने पहुँचता है तब लेखक से अपने पुत्र को पढ़ाने के लिय कहता है और बदले म बाजार से गोश्त लाना म जूर करता है। बातो के ही सिलसिले मे जमीदार के सिपाही उस पर चमडे की बरबादी का आरोप लगाते हुए 'पचमा' और 'भगवता' से जूते लेने की बात बताता है जब कि अकेले उसके ही जूते दो साल चलते हैं। अन्ततोगत्वा 'वाजिब उल अज' मे पता लगाने की सलाह वह लेखक से पाता है।

'अर्जुन' की पढ़ाई शुरू हो गई। बाजार से गोश्त आने लगा और उसम लोध, पासी, धोबी, चमार सभी शरीक होने लगे। इधर लेखक के सुपुत्र भी आम खाने के लिये नानी के घर से यहाँ पहुँचे। वे अपने ब्राह्मण सस्कारों के कारण अर्जुन को पढ़ाने लगे, उसकी गलतियाँ निकालने लगे। हालाकि प० रामकृष्ण, अर्जुन से उम्र मे बहुत छोटे थे मगर अपना रोब उस पर बराबर जमाये रहते थे। एक बार लेखक द्वारा डाँटने पर नानी के घर चले जाते हैं। इसी बीच लेखक लखनऊ चला जाता है कि गाँव मे किसान आदोलन की शुरुआत होने पर गाँव की सेवा मे फिर हाजिर हो जाता है। किसानो पर जमीदार की डिगरी हो गई। जब चतुरी की बारी आई तो वह भी अपना सब कुछ बेच कर, कुछ गवाह ले उन्नाव जाकर मुकदमा लडता है मगर इतने से ही उसे सन्तोष करना पडता है कि—'जूता और पुर वाली बात वाजिबुल अज म दज नहीं है।'

वैसे चतुरी चमार म कोई असाधारण बात नहीं। अनेको चमारो की तरह वह भी सन्तो क पद गाता, जमीदार के अत्याचार सहन करता, जिन्दगी काट रहा है। उसकी भी इच्छा है कि उसका बेटा पढ़े लिखे। देश मे राष्ट्रीय आदोलन की शुरूआत होने पर—उसमे भी चेतना आती है और वह जमींदार के विरुद्ध मुकदमा लडने खडा हो जाता है। अपने मनुष्यत्व और अधिकार का भान उसे होते ही उसमें असाधारण शक्ति आ जाती है और उसके शूद्रत्व का अन्त दिखाई देता। वाजिबुल अज में जूतों के दजन होने की बात से जो खुशी व सतोष उसे हुआ है वह उसकी दास भावना के मिटने का प्रारम्भ है।

कहानी के एक सीधे चरित्र के रूप मे चतुरी तत्कालीन सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है। अछूतोद्धार गाधीवाद की एक खास बात थी—जो उस समय जोरों पर थी। आज कल इसके प्रोपेगैण्डा का रूप जितना प्रैक्टिकल हो गया है उस समय उतना ही आदर्शात्मक तथा सैद्धान्तिक था। उद्धार का सिद्धात चतुरी के व्यक्तित्व मे घुस कर उसे जागरूक बना गया है, यद्यपि वह अन्त तक काम जूते का ही करता है और लेखक का गोश्त खरीद कर बाजार से ला देता है। निराला का अक्खड़पन केवल गाधीवाद की अहिंसा से सन्तुष्ट नही रह सका, अत

चतुरी मार्क्सवादी चमार के रूप में विद्रोह करता है और मुकदमा भी लडता है। इसे आप समाजवाद कहिये या मार्क्सवाद-इसी साहित्यकारिता से निराला यहाँ परिचित दीखते हैं। समाज सुधारक के लिये सुधारक को स्वयं खुल कर आना चाहिये, वह स्वयं लेखक के व्यक्तित्व में, कहानी मे, साफ है। बाजार में उन पर और उनके दुहरे व्यक्तित्व पर अँगुलियाँ उठती हैं, एक तरफ इतने बड़े आदमी, दूसरी तरफ गोश्त खाना और चमारो से दोस्ती। निराला ने अपने कुल्ली तथा चतुरी आदि भाटों, चमारों के लिये सर्वत्र सम्मानार्थक सर्वनामो का ही प्रयोग किया है। चतुरी के व्यक्तित्व मे स्वयं के प्रति एक जबरदस्त आस्था है, जो उसकी सामाजिक हीनता से ऊपर उठी हुई है, लेकिन यही चतुरी के चरित्र के प्रतिकात्मक अर्थ मे घोर व्यंग्य बन गई। एक तरफ साहित्य के चतुरी चमारों की छीछालेदर है और उन पर जूते बाजी है, तो दूसरी ओर समाज के और राष्ट्र के नये जागरण के सन्दर्भ मे चतुरी एक योग्य चरित्र है। चतुरी, चतुरी के बेटे, और अपने बेटे के बीच बैठे हुए लेखक मे गांधीवादियों जैसी आस्था और शक्ति है। चतुरी का बेटा अर्जुन और लेखक के चिरजीव दोनो समाज के निम्न तथा उच्चवर्गीय संस्कारो के प्रतीक है। उच्चवर्गीय संस्कार को दस बार कान पकडकर उठने बैठने का आदेश दिया गया है और निम्नवर्गीय संस्कार गणेश को 'गड़ेस' पढता नजर आता है। लेखक को विश्वास है कि दोनों सस्कारो की जड़ें मार देने से सब ठीक हो जायगा, समत्व आ जायेगा। निम्नवर्ग के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिये, उसके संस्कारो को बदलने के लिये सुधारको को कितने त्याग परिश्रम मनोयोग और सहिष्णुता का प्रयोग करना आवश्यक है—यह स्वयं लेखक के व्यक्तित्व मे मिलता है। अपने 'उपानह साहित्य' मे गम्भीर आस्था रखने वाला चतुरी अपने जूते के काम और ज्ञान मे योग्य है इसमें सन्देह नही, पर उसके संस्कारो को बदल कर 'मार्डन' करना है—यह एक राष्ट्रीय आवश्यकता है और साथ ही साहित्य की दिशा मे नये साहित्य को प्रश्रय न देनेवाले बुजुंग आलोचको का अच्छा खासा मजाक है।

लेखक की यह शैलीगत विशेषता है कि कहानी का एक व्यक्तिगत पहलू रख कर तथा व्यंग के तीरों को कुछ खास दिशाओ की ओर अभिमुख करके भी वह कहानी को युगीन चेतना से भरपूर बना पाया है। भारत का तत्कालीन ग्राम्य जीवन, उसमे अछूतोद्धार, तिरंगा झण्डा, साक्षरता, जमीदारो के प्रति विद्रोह आदि की लहर फैलना सब अंकित है।

लेखक ने कहानी का प्रारम्भ करते ही चतुरी के साहित्य की चर्चा मे बनारसी दास चतुर्वेदी तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी की चर्चा करके इंगित किया है कि उसका व्यंग्य साहित्य जगत में किसकी दिशा मे होगा। लेखक 'आचार्य-कण्ठ' का स्वयं भुक्तभोगी रह चुका है, उसे साहित्य जगत मे स्थान-प्राप्ति मे ऐसी कहानियो का काफी योगदान है। तत्कालीन सम्पादको तथा कुछ वे लोग जो मुक्तछन्द के विरोधी थे, कुछ वे जिन्हे सन्त साहित्य से विशेष प्रेम था, कुछ वे जो अपने 'आचार्य-कण्ठ' से सिर्फ दूसरो की गलतियाँ निकाला करते आदि पर इसमें विशेष व्यंग्य हुआ है।

श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि के लिये ही 'चतुर्वेदी आदिको' का व्यवहार लेखक ने निःधड़त होकर किया है। आचार्य द्विवेदी के लिये, 'आचार्य-कण्ठ' पर विशेष जोर है, किन्तु निराला जी का हास्य व्यंग कई ढंग का है, कही निराला जी शुद्ध सस्कृतनिष्ठ भाषा में व्यंग्य करते है तो कही उर्दू मे तो कही बैसवाडी में। हास्य अत्यन्त स्फुट है और उनमे निहित व्यंग इतने तेज हैं कि लक्ष्य चारों खाने चित्त नजर आता है और पाठक का हँसते-हँसते पेट फूल

जाता है। साथ ही यथार्थ का धरातल बहुत ठोस होकर पाठक के पाँवों के नीचे खड़ा रहता है। परिस्थितियों का कड़वापन पाठक के मुँह के स्वाद को बिगाड़ने नहीं पाता, क्योंकि उस सीमा तक पहुँचते-पहुँचते वह जोर से ठहाका मारकर हँस देता है, और खुले हुए मुख से यथार्थ भीतर पेट मे प्रविष्ट हो जाता है—ताकि वह सोचे और समझे भी। और स्वय के वर्गीय सस्कारों को भूलकर आप निराला की कोई कहानी नही पढ़ सकते। प्रेमचन्द की कहानियों की तरह ग्राम्य जीवन की वास्तविकता तो है ही, साथ ही हास्य और व्यग का भी आनन्द लीजिये। कहानी कहने का दुहरापन देखिये, विचार भी कीजिये, स्वय और अपने समाज को पहचानिये और जानिये कि समाज के मामले मे लेखक कितना आगे और ऊँचा है। बैसवाड़े के गांव और उनकी चमरौह, और गोश्त बाजार, निगुण सुनती हुई चमारो की मण्डली और लेखक के घर की नई पाठशाला—यही 'चतुरी चमार' कहानी का वातावरण है, जिसमे निम्न वर्गीय जीवन की तमाम कुण्ठाए, उत्कण्ठाएँ, निरीहता आदि के चित्र अकित हैं। युगो से पीड़ित ये चेहरे और उनके बीच बैठकर अट्टहास करता हुआ लेखक बिलकुल यथार्थ पर खड़ा होकर नये जागरण का मन्त्र फूंकता हुआ—हमारी परतन्त्रता कालीन स्थितियो के बाद भी समस्यायें हैं जो अब तक वैसी की वैसी ही पड़ी हुई हैं। निराला जी उन अग्रेज हिन्दुस्तानी साहित्यकारो मे नही जो नेक्टाई लगा कर लिखने बैठे। वे भारतीय जीवन के सच्चे शिल्पी हैं और हृदय उनका इतना विशाल है कि सारे विषों को हँसकर पीते और कुछ इस तरह कहते हैं कि विधाता स्वय समझे कि वह स्वय कितना गलत है और युग उससे क्या मागता है।

कहानी-कला की दृष्टि से भी कहानी अपने आप मे पूर्ण। हाँ-हाँ—तो-तो—फिर औत्सुक्य ही कहानी की जान होती है। शुरू से अन्त तक पाठक इसे पढ़ने मे जरा भी नही ऊबता, वरन् उत्सुकता बढती ही जाती है। भाषा जनभाषा के चलते रूप मे है। शैली इस प्रकार की है कि लगता है—कोई सस्मरण है। वस्तुत यह कथामूलक रेखाचित्रात्मक सस्मरण ही है क्योकि कहानी मे कल्पना का आधिक्य होता है किन्तु उसको इसमे कमी है। इसे रेखाचित्र भी कहना मुश्किल का आधिक्य होता है किन्तु उसकी इसमे कमी है। इसे रेखाचित्र भी कहना मुश्किल ही है। रेखाचित्र मे रेखाचित्रकार दूर-दूर से वस्तुपरक दृष्टिकोण से ही किसी पात्र का रेखाचित्र खींच लेता है, उसका उस पात्र विशेष से अथवा जीवन कथा के साथ कोई व्यक्तिगत सम्पर्क अथवा सम्बन्ध नही होता। किन्तु इसमे 'चतुरी चमार') मे लेखक का चतुरी से व्यक्तिगत ही क्या घनिष्ट सम्बन्ध है। रेखाचित्रों में कलात्मकता होती है किन्तु आत्मीयता नहीं जो 'चतुरी चमार मे विद्यमान है। अत इसे रेखाचित्र कहना जैसा कि डा० रामविलास शर्मा का कहना है कि कुछ अधिक ठीक नही। हाँ सस्मरण इसे कहा जा सकता है क्योकि पात्रो और घटनाओ की स्मृति इसमें अकित है, परन्तु विषय प्रतिपादन मे कथात्मक तथा शैली मे किंचित चित्रात्मक होने के कारण इसमे रेखाचित्र और कहानी दोनों के तत्व निश्चित हैं। अत इस मिले जुले रूप को यदि कुछ नाम दिया जा सकता है तो वह है—'कथामूलक रेखा चित्रात्मक सस्मरण।'

कुल्ली भाट

श्री काली चरण गुप्त

जिस मन्दिर की चौखट पर आकर सारी दुनिया अपना सिर टेक दे, उसके देवता को श्रद्धा-अश्रद्धा की कसौटी पर कसने का दुःसाहस एक नास्तिक भी नही कर सकता, फिर मैं तो उन वुत-परस्तो मे हूँ, जो अनदेखी प्रतिमाओ पर ही अपने प्राण विसर्जित करते आये है। मेरे लिये तो निराला से भी अधिक प्रिय है 'जूही की कली' और अधिक महान् है 'कुल्ली भाट'। पर मेरे हृदय की अनुभूतियों को मेरा लेखक भी मान्यता दे, यह कोई आवश्यक नही। देखें लेखक की दृष्टि मे 'कुल्लीभाट' क्या है।

घाट-घाट का पानी पीने वाला कुल्ली भाट महान हो या न हो, पर अपने गांव मे वदनाम आदमी जरूर था। गाँव के लोग नही चाहते थे कि उसकी छाया भी उनके वच्चो पर पड़े। लेखक जब कुल्ली के इक्के पर वैठकर स्टेशन से गाव आता है, तो उसकी सासु, उसकी पत्नी इस बात का स्पष्ट आभास देती हैं कि कुल्ली अच्छा आदमी नही। यह वात और है कि लेखक अपने आगे किसी की न चलने दे और वही करे, जिसके न करने की सलाह दी जाय। लेखक के शब्दो 'मैं शुरू से ही विरोध के सीधे रास्ते चलता रहा हूँ।'

'कुल्ली भाट' मे अपने वारे मे ही लेखक ने ज्यादा लिखा है और कुल्ली भाट के वारे मे कम (यह बात मानी भी है) या यह समझिये कि कुल्ली भाट कही है ही नही, जहा है भी वह लेखक की पाकेट में फाउण्टेनपेन की तरह लगा है, जिसका होना लेखक को प्रकाश मे लाने के लिये जरूरी है। जब लेखक ही इस पुस्तक का प्रधान नायक है तो आइये पहले लेखक को ही पहचान लिया जाय वाद मे कुल्ली भाट को भी देख लेंगे।

यो तो आचार्य पं० परमानन्द शर्मा से सुने हुए संस्मरणों द्वारा यह धारणा बन गयी थी कि निराला जी की स्पष्टवादिता और व्यंगोक्ति को न समझने मे ही भलाई है, पर भलाई क्यो है, यह तब मालूम हुआ जब 'कुल्ली भाट' का 'समर्पण' देखा। 'इस पुस्तिका के समर्पण के योग्य कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्य मे नही मिला इसीलिये समर्पण स्थगित रखता हूँ।' पढने के साथ-साथ पुस्तक तो हाथ से छूट कर धरती पर जा गिरी और मस्तिष्क शून्य मे सहस्रो मील प्रति सेकेण्ड की रफ्तार से चक्कर लगाने लगा। तो क्या वास्तव मे लेखक इतना अहंकारी और दाम्भिक प्रकृति का है ? यह बात मालूम न थी, जिन दिनो लेखक ने यह पुस्तक लिखी थी उन दिनो वड़े-वड़े दिग्गज विद्वान, एक से एक विवेकशील, गुणी, ज्ञानी, साहित्यिक, लेखक और कवि तन-मन-धन से हिन्दी की सेवा कर रहे थे। आज भी उन मनीषियो के स्मरण मात्र से हमारा हृदय श्रद्धा से उमड़ पडता है, हमे जिनके कारण अपनी हिन्दी पर नाज है, उनमे से अधिकांश उसी युग की देन है। तो क्या उनमे से एक भी ऐसा व्यक्ति नही था जो कुल्लीभाट के मर्म को हृदयंगम कर सकता ? मैं यह मानने को तैयार

नही और शायद तब तक कोई भी यह मानने को तैयार नही होगा, जब तक वह इस पुस्तक को आद्योपान्त न पढ़ जाय। अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वास्तव मे इतना निर्भीक व्यक्ति हिन्दी साहित्य को इसके पहले नही मिला। समस्याए सबने समझी, अपने अपने ढग मे पेश की और समाधान भी उपस्थित किये, पर उतनी सच्चाई, सादगी और निर्भीकता के साथ किसी ने आवाज बुलन्द नही की, जितनी ईमानदारी के साथ कुल्लीभाट के रूप म लेखक ने की है। भारत को राजनीति को तो वैसा व्यक्ति बहुत पहले मिल चुका था जिसका नाम था मोहनदास कर्मचन्द्र गान्धी, पर भारत के साहित्य को ऐसा व्यक्ति जरा देर से मिला, जिसका नाम है श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।'

भाषा की दृष्टि से माना कि लेखक आज से २१-२२ वर्ष लिखी हुई पुस्तक की भाषा मे वर्तमान प्रगतिशील लेखको की तरह शिल्पी के सधे हाथो से तराशी गयी अर्ध नग्न वलेस गल की खुली जघाओं वाले पाँवो की-सी गति तो न भर सका, पर गगा-यमुना की पवित्र धारा के हृदय-स्पर्शी प्रवाह को उसने कही रुकने भी नही दिया। जहाँ तक शैली की व्यग्यात्मकता का प्रश्न है, शायद ही किसी भाषा को ऐसी शैली आज तक नसीब हुई हो। हसने की बात कह कर हँसाते तो सभी हैं, पर यह लेखक रुलाता है। शायद ही कोई ऐसा वाक्य आपको समस्त पुस्तक म मिल सके, जो किसी न किसी गहरे अर्थ की ओर सकेत न करता हो। कही जाने वाली बात जितनी मुश्किल है, कहने का ढग उतना ही सरल। समझने के लिये बुद्धिमान होने की आवश्यकता नही, बुद्धिमान लोग समझ भी नही सकते, समझना चाहें तो भी नही।

देश परतन्त्रता की बेडी मे जकडा हुआ था। सहस्रो वर्षो की पराधीनता ने मानव हृदय की समस्त सात्विक प्रवृत्तियो पर विजय पा ली थी। अशिक्षा, कुसस्कार, अस्पृश्यता, विद्याभिमान, जातिभेद, वर्गभेद इत्यादि के विषाक्त कीटाणु हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक बिखरे हुए थे। रूढ़िग्रस्त समाज के अन्धविश्वासी ठेकेदार एव धर्म की ओट म अत्याचार करने वाले व्यभिचारी व्यवसायी देव रूप धारी दानवो की तरह निगल रहे थे जगत गुरु भारतवर्ष की सारी सभ्यता और सस्कृति को। उँगलियो पर गिने जाने वाले कुछ लोग ही ऐसे थे, जो इन अवाछनीय तत्त्वो को नष्ट कर देश को बचा लेना चाहते थे। यह लेखक भी उनमे से एक था, पर अपने स्वभाव के कारण यह युग-प्रवर्तक कवि इस बात को अपनी जबान पर लाने म अपनी हेठी समझता था कि वह इन गरीब भूखी और सीधी-साधी जनता पर होने वाले अत्याचारो को बर्दाश्त नही कर सकता, वह सच्चाई की तरफ से आँखें नही मूँद सकता, वह अपने ही देशवासियो के हाथो अपनी आँखो के सामने बरबाद होते नही देख सकता, तभी तो इतना बडा स्वाभिमान लेकर उसे दुनिया के सामने आना पडा, तभी तो विरोध के सीधे रास्ते पर जीवन भर चलना पडा, तभी तो कुल्लीभाट के साथ मित्रता जोडनी पडी। अपराजेय क्षमता और असीम सहनशीलता भर दो कुल्ली के प्राणो मे और धैर्य तथा निर्भीकता का सजीव चित्र बनाकर प्लेटफार्म पर खडा कर दिया और स्वयम् दूर खडा देखता रहा—हँसता रहा—रोता रहा।

लेखक के बारे मे सिर्फ एक बात और कहनी है वह यह कि पुस्तक पढ़ते-पढ़ते कभी ऐसा भी मुझे लगा मानों लेखक जीवन में रोमांस का होना आवश्यक समझता था पर रोमास करने की कला उसे मालूम नहीं थी, नहीं तो उसको वह प्रेरणा इतनी जल्दी उससे सदा के लिये नही रूठ

जाती, जिसने एक बैसवाडी बोलने वाले को आज हिन्दी भाषा के रंग मंच का महान्तम कलाकार बना दिया है, पर यदि वह प्रेरणा रूटती नहीं तो पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कैसे बनते ?

कुल्ली भाट (पं० पथवारी दीन जी भट्ट) एक असाधारण व्यक्तित्व के साधारण व्यक्ति थे। उनकी रहन-महन, चाल-ढाल तथा बातचीत के ढंग कुछ ऐसे विचित्र थे जिनके कारण वे सदा गांव वालो की दृष्टि मे आलोचना के विषय बने रहे। यही उनकी विशेषता थी और इसीलिये आप उन्हे विशेष व्यक्ति भी कह सक्ते हैं। हर विशेष व्यक्ति मे एक विशेष कमजोरी पायी जाती है वह इनमें भी थी। यदि वह विशेष कमजोरी इनमे न होती तो न निराला जी ही उनकी मित्रता के योग्य थे और न हम पाठक ही कुल्लोभाट पढने योग्य।

कुल्ली विशेष पढ़े लिखे व्यक्ति नही थे इसीलिये पढे-लिखो की तरह उल्टे-सीधे हथकण्डे उन्हे आते नही थे। यही गनीमत थी। इसीलिये जिस काम को वह उचित समझते उसे कर डालते, कहते नहीं। कहने की कला उन्हे मालूम नही थी इसमे तो लेखक ही पारगत थे, कही-अनकही सब कुछ उनसे कहवा लीजिये और जिन्दगी भर काम ही क्या रहा, 'कहना और रूह की मालिश कराते रहना।

कुल्ली के हृदय ने जिस काम की गवाही दे दी, कुल्ली वही कर बैठे, न कभी दीन की परवाह की, न दुनिया की। इसीलिये उन्हे विधर्मिणी सहधर्मिणी मिली और विकलांग जीवन। उनका जीवन मरने पर ही सार्थक सिद्ध हुआ, इसीलिये आप उन्हे महान भी कह सकते है। बगैर मरे हमारे सामने कुल्ली आते तो कैसे ?

पूरी पुस्तक मे कही भी इस बात की चर्चा नहीं है कि किसकी प्रेरणा से कुल्ली का जीवन इतना सक्रिय हो उठा। किसने उन्हे अछूत-पाठशाला खोलने की सलाह दी, किसने उन्हे नीच-छुआछूत के भेदभाव को समूल नष्ट करने के प्रयास में अपना पूरा जीवन खपा देने के लिये कहा ? जिन दिनो अछूतो की छाया तक से लोग बचकर चलते, किसने उनसे कहा कि वह उन चमारों के घर जाकर उनकी सेवा करें, उनके लिये दवाई और डाक्टर का इन्तजाम करे ? कब से वह गरीब-दुखी सतायी हुई पददलित जनता की सेवा करने को भगवान की पूजा के समान समझने लगे थे ? कौन जाने ? क्या स्वतः ही ऐस भाव उनके हृदय मे उत्पन्न हुआ करते थे या पर्दे के पीछे कोई शक्ति थी उन्हे इस कण्टकाकीर्ण पथ पर चलने को सदा अनुप्रेरित करती रही। कुछ भी हो हम उस मृत्युन्जयी कुल्लीभाट को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते है, जिसने मृत्यु-शय्या पर भी हमारे लेखक का स्वागत सहज मुस्कान के साथ किया था, जिसे वरकर मौत भी सार्थक हुई। धन्य है वह, कुल्लीभाट और उसका चरित्र लेखक निराला।

रामायण

डा० शिवनाथ

निराला का 'रामायण' (विनयखण्ड) काशी मे 'श्री राष्ट्रभाषा विद्यालय' से स० २००५ वि० मे प्रकाशित हुआ था। यह तुलसीदास-कृत 'रामचरित मानस' के प्रारम्भिक अश ('मानस' के १२० दोहे तक) का खडी बोली का हिन्दी म रूपान्तर है। इस अनुवाद के मूल में हम दो कारण निहित दिखाई पडते हैं। एक, निराला की राम और तुलसीदास के प्रति भक्ति और दूसरा, 'मानस' को अधिक स अधिक लोगों के लिये सुलभ तथा बोधगम्य बनाने की चेष्टा। दूसरे कारण के सम्बन्ध म यह स्मरण रखना है कि हिन्दी को एक बोली अवधी म लिखे जाने के कारण 'मानस' उत्तर भारत के हिन्दी-भाषा प्रदेशों मे ही विशेष रूप से बोधगम्य है। भारत के अहिन्दीभाषी दक्षिण तथा अन्य प्रदेशो म इसे समझने मे पाठक तथा श्रोता को कठिनाई होती है। परन्तु खडी बोली हिन्दी का व्यवहार भारत व्यापी है और यह निखिल भारत में अल्पाधिक रूप में समझी जाती है। खडी बोली हिन्दी का जानकार भारत में कही भी जाकर अपनी बात को दूसरों पर प्रकट कर सकता है। ऐसी स्थिति 'रामचरित मानस' के खडी बोली हिन्दी मे रूपान्तरित हो जाने से उसके सारे भारत मे समझे जाने की सम्भावना है। दक्षिण भारत की, हिन्दी भाषा और साहित्य क अध्ययन की ओर विशेष रुचि है। वहाँ के लोग खडी बोली हिन्दी तो भली भाँति समझ लेते हैं, किन्तु अवधी और ब्रज को समझने मे उन्हे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता है। एक बार हिन्दी की एम० ए० कक्षा के, दक्षिण के एक छात्र ने मुझसे कहा था कि खडी बोली हिन्दी तो हम अच्छी तरह समझ लेते हैं, मगर अवधी और ब्रज को समझने मे हमें बहुत दिक्कत होता है। निराला का 'रामायण' ऐसे लोगों के लिये निस्सन्देह हो उपयोगी सिद्ध होगा।

इस रूपान्तर के पहले कारण की ओर भी हमने सकेत किया है। निराला म तुलसीदास क प्रति अगाढ श्रद्धा थी और राम के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने के लिये उन्होने 'राम की शक्ति-पूजा' लिखी, जो महाकाव्य न होते हुए भी महाकाव्य की प्रवृत्तियो से सम्पन्न छोटा काव्य है और जिसमें निराला ने राम को कर्त्तव्य की पूर्ति के लिये एक नवीन साधन म रत दिखाया है, जो साधन हिन्दी साहित्य के लिये सवदा मौलिक है। उनका 'तुलसीदास' नामक काव्यग्रन्थ भी इसी कोटि का है, जो तुलसीदास के प्रति श्रद्धा के कारण ही लिखा गया था।

एक बार 'रामायण' की पाडुलिपि दिखलाते हुए निराला ने मुझसे कहा था—'स्पिरिट और ढग वही है, भाषा अपनी है।' 'वही' से उनका तात्पर्य तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' से था। इसमें सन्देह नही कि इसमें भाषा निराला की है और सब कुछ तुलसीदास का ही है। निराला ने पदावली भी प्राय तुलसीदास की ही रखी है—विशेषत वहाँ जहाँ सामाजिक पदावली है। इस प्रकार निराला का 'रामायण' अधिकांश स्थलो पर तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का-सा ही है—

मगलकारा कलिमलहरा तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कुटिल कविता-सरित की जो परम पावन पाथ की।

प्रभु-सुयश संगति भणित-कलि होगी सुजन-मन-भावनी,
भव-अंग-भूति श्मशान की सुमरे सुहावन-पावनी ।
(रामायण)
मंगल करनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पवन पाथ की ।।
प्रभु-सुजस-संगति भनिति भलि होइहि सुजन-जन-भावनी ।
भव अंग भूति मसान की सुमिरति सोहावनि पावनी ।।
(रामचरित मानस)

इन उद्धरणों को देखने से ज्ञात होता है कि निराला के रूपान्तर मे तुलसीदास की 'स्पीरिट' और उनके 'ढंग', दोनो की रक्षा की गई है। तुलसीदास तथा निराला, दोनो के काव्यों मे भाषा तथा शैलीगत समान प्रवाह है।

इसका भी स्मरण रखना आवश्यक है कि अनुवाद—सम्बन्धी वैसी ही कठिनाइयाँ निराला के सम्मुख भी थी जैसी अन्यो के सामने रहती है। काव्य का रूपान्तर काव्य में—और एक पंक्ति का रूपान्तर प्रायः एक ही पक्ति में—होने के कारण कठिनाई और भी बढ जाती है। रूपान्तर में ऐसी कठिनाई उपस्थित होने पर निराला ने अपनी बुद्धि के अनुसार श्रेष्ठ के संग्रह और सामान्य के त्याग पर दृष्टि रखी है। निम्नलिखित उद्धरणो मे निराला ने एक ही उदाहरण दिया है, 'मानस' मे दो उदाहरण हैं—

नहीं निबाह उभरने पर। कालनेमि जैसे करि के घर।
(रामायण)
उघरहिं अंत न होई निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू।
(रामचरित मानस)
बक हँस को, कुजात जात को। हंसे मलिन खल विकल बात को।
(रामायण)
हंसहिं बक दादुर चातक ही। हंसहि मलिन खल बिमल बतकही।
(रामचरित मानस)

इसमें निराला ने 'दादुर, चातक' की जगह 'कुजात, जात' कर दिया है। इससे तात्पर्य तो आ गया, मगर वे ही शब्द नही आ पाये। निम्नलिखित उद्धरण में भी तात्पर्य पर ही दृष्टि रखी रखी गई है—

भाषा-भणित, अल्पमति मेरी। हंसने योग्य, नहीं त्रुटि तेरी।
(रामायण)
भाषा भनित भोरि मति मोरी। हंसिबे जोग हंसे नहीं खोरी।
(रामचरित मानस)

रूपान्तर की कठिनाई एवं परिवर्तन पर दृष्टि के कारण मूल की अभिव्यक्ति से अपर अभिव्यक्ति भी यत्रयत्र हुई है। ऐसा करने से, मेरी दृष्टि से, कही-कही अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य बढ़ गया है—

हरि गुण-गाथा कहते-सुनते। शिव के दिन बीते सुख चुनते।
(रामायण)

कहत-सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहा रहे गिरिनाथा।
(रामचरित मानस)

कहना न होगा कि 'दिन बीते सुख चुनते' मे 'कछु दिन तहाँ रहे' की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य है, इसमे अभिव्यक्तिगत मार्मिकता है। इसी प्रकार एक स्थान पर निराला ने 'वर्णन करना लिए 'छदना'। 'छद' से नामधातु की क्रिया का प्रयोग किया है, जो 'वर्णन करना' का अर्थ देने के साथ ही 'छ दो मे वर्णन करना' का भी अर्थ देता है—

साधु असाधु चरण में वन्दूँ। दुखप्रद उभय, बीच कुछ छंदूँ।
(रामायण)

बदौं सत अ उजन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
रामचरित मानस)

ऐसे स्थलो पर निराला नवीन अभिव्यक्तियों के कर्तावाले अपने पुराने रूप में सामने आते हैं।

निराला ने 'वृहत् दोहा' के अतिरिक्त वे ही छन्द ग्रहण किय हैं जो 'रामचरित मानस' मे प्राप्त हैं, अर्थात दोहा, चौपाई, सोरठा और हरगीतिका छन्द अपने रूपान्तर म भी उन्होंन रखे है। तुलसीदास ने कुछ अ य छ दो का भी उपयोग किया है, किन्तु वहाँ तक 'रामायण' म अनुवाद हो नही है। 'वृहत दोहा' का उदाहरण दे रहा हूँ—

जो अपार नद, नृपों ने किए सेतु जिन पर सुघर।
पिपीलिका भी परम लघु उनसे पार हुई निडर।
पिता-भवन, उत्सव परम, यदि मुझको आदेश हो।
तो मैं जाऊ देखने, शत-शत वदन आपको॥

'रामायण' के 'निवेदन' मे निराला ने अपने द्वारा व्यवहरित छन्दो के सम्बन्ध मे कहते हुए यह भी कहा है—

'कही कुछ परिवर्तन भी है, भाषा मे न आ सकने के कारण जैसे वृहत दोहा एक नया हुआ है । इससे छन्द शास्त्र की एक वृद्धि हुई है।'

वृहत दोहे मे निराला ने प्राय लघु-गुरु का ही क्रम रखा है। यत्र तत्र ही लघु-लघु का विधान है, जैसा कि ऊपर के एक वृहत दोहे में है। यह भी स्मरण रखना है कि वृहत दोहा 'रामायण' में कम है। छन्दशास्त्र में 'वृहत दोहा' नाम का कोई छन्द नही मिलता। इस रूप का छन्द नहीं है। यह छन्द निराला की अपनी रचना है उदधरण से भी यह बात प्रमाणित है।

निवेदन' मे निराला कहते हैं

"आशा है, पाठक पढ कर राष्ट्रभाषा के विस्तार के प्रयत्न मे हमारा उत्साह बढ़ायेंगे।"

इसमे सन्देह नहीं कि इसके अनुवाद मे निराला का लक्ष्य 'रामचरित मानस' को-अहिन्दी भाषा प्रदेशों मे पहुँचाना था जिसकी ओर हमने आरम्भ मे ही सकेत किया है।

राम की शक्ति पूजा

डा० गोपालदत्त सारस्वत

स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के अन्तर्गत छायावाद के रूप मे हिन्दी कविता ने जिस नवोन्मेष के दर्शन किये, वह उसके इतिहास मे अत्यन्त गौरवास्पद है। खडी बोली की कविता की अभिह्व सुषमा प्रदान करने मे विशेषतः प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के नाम उल्लेखनीय है।

'राम की शक्ति पूजा' निराला जी की एक प्रख्यात व प्रतिनिधि रचना है।

'राम की शक्ति पूजा' का निराला के साहित्य मे अन्यतम स्थान है। देवी भागवत, शिव महिम्न स्तोत्र तथा कृतवास की बंगला रामायण से इसकी कथा-वस्तु का चयन किया गया है तथा अपनी नवनवोन्मेष शालिनी कल्पनाशक्ति का पुट देकर कवि ने इसको सर्वथा मौलिक रूप मे उपस्थित किया है। इसके वस्तु-संगठन में इतिवृत्त की अपेक्षा भावोत्कर्ष का प्राधान्य है। इसमे कथा-वस्तु का संकोच है, किन्तु भावो के उत्कर्षापकर्ष का चित्रण अधिक प्रभावोत्पादक है। कथा-वस्तु के मार्मिक स्थलो का ही चित्रण किया गया है, जिनमे राम-रावण-युद्ध की भीषणता, राम की पराजय, सीता विषयक राम की पूर्व कालीन स्मृति, राम की ग्लानि, हनुमान का उत्साह-प्रदर्शन, विभीषण का आख्यान, जाम्ववान का प्रवोधन, राम द्वारा महाशक्ति का पूजन तथा देवी का राम के लिये वरदान आदि प्रसंग मुख्य है।

रस-निष्पत्ति की दृष्टि से शक्ति-पूजा मे वीर और श्रृङ्गार का अच्छा परिपाक हुआ है। कविता का आरम्भ राम-रावण युद्ध से होता है। इसमे वीर-रस की प्रभूत सामग्री है। राम और रावण परस्पर आश्रय एवं आलम्बन, धनुष-वाण चलाना, गर्जन, तर्जनादि उद्दीपन, मूर्च्छित होना रुधिर-स्राव होना, अनुभाव, उग्रता, विषाद, उद्वेग आदि संचारियो मे सहयोग से कविता के पहले वेग मे वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार राम की जनकात्मजा विषयक पूर्वकालीन स्मृति के चित्र में श्रृङ्गार परिपुष्ट है। इस सन्दर्भ मे पृथिवी-तनया-कुमारिका-छवि आलम्बन, राम आश्रय, उपवन, लतान्तराल, प्रिय संभाषण, खगो का कल-कूजन, मलय पवन का उद्दीपन सामग्री है। नेत्र-भ्रू-विकार, अपलक निहारना, कम्पनादि अनुभाव हैं और हर्ष एवं औत्सुक्य संचारी हैं।

सम्पूर्ण कविता मे भावो का अभिव्यक्ति अत्यन्त सजीव है। राम के द्वारा शक्ति की आराधना के प्रसंग में शान्त रस की प्रतिष्ठा अत्यन्त हृदयावर्जक है। देवी के द्वारा इन्दीवर अपहृत होने पर दैन्य, चिन्ता, ग्लानि, उद्वेग आदि भावो को अभिव्यक्ति वड़ी मार्मिक है।

कथा मे अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण वहुत प्रभाव वर्धक वन पड़ा है। राम के हृदय मे विरोधी भावो का संघर्ष वड़ी कुशलता से दिखाया गया है। युद्ध मे रावण से पराजित होने पर राम का

हृदय दीनता से मापूण हो जाता है। किन्तु इस दैन्य को प्रियतमा का स्मृति जन्य आह्लाद दबा लेता है, फिर रावण के अट्टहास को स्मरण कर राम का हृदय विषाद से आकुल हो उठता है। इस प्रकार राम के अन्तस मे निरन्तर विरोधी भावो का सघष चलता रहता है। कवि ने इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने मे अद्भुत सफलता पाई है।

कवि ने इन घटनाओ के साथ प्रकृति का साम्य दिखलाया है। प्रकृति घटनाओं के साथ पूर्ण सहयोग करती हुई दिखाई देती है। राम रावण युद्ध के आरम्भ म 'रवि हुआ अस्त आदि।' इधर रवि अस्त होने जा रहा है और उधर युद्ध म राम की पराजय हो रही है। भावी घटना के परिणाम को रवि के अस्त होने से सूचित कर दिया गया है। इसी प्रकार युद्ध से विरत होकर राम के शिविर को लौटने पर—

> 'है अमा निशा,
> उगलता गगन घन अंधकार आदि।'

का वणन सक्षिप्त होने पर भी बडा सशक्त और व्यजक है। इसमें राम की पराजित अवस्था के साथ प्रकृति का कितना साम्य है। राम के हृदय का अवसाद विषाद 'अमानिशा' और 'घन अन्धकार' में प्रतिच्छायित हो रहा है। राम की भाव-दशा के साथ प्रकृति का पूर्ण तादात्म्य है। एक अन्य स्थल पर राम ध्यानावस्थित होने के पूव सब वानर भालुओं को विदा कर देते हैं। इस प्रसग में कवि ने प्रकृति का वणन इस प्रकार किया है—

> 'निशि हुई विगत
> नभ के ललाट पर प्रथम किरण
> फूटी रघुनदन के दृग-महिमा ज्योति हिरण आदि।'

यहाँ भी राम की भावी सफलता और विजय, 'नभ के ललाट पर प्रथम किरण' फूटने से सूचित हो रही है। प्रकृति सवत्र घटनाओ के साथ साथ चलती है। काय के प्रभाव की वृद्धि करने मे प्रकृति का उपयोग हुआ है। ये वणन लघु एवम् सक्षिप्त हैं, कि तु घटनाओ के प्रभाव की वृद्धि करने म पूण रूप से सहायता करते हैं। इससे पता चलता है कि कवि ने प्रकृति म अन्त पात किया है और उसके चित्रण मे कौशल का परिचय दिया है। इस रचना मे प्रकृति वणन के स्थल स्वल्प हैं, किन्तु उनसे पृष्ठ भूमि के निर्माण मे, घटनाओ के प्रभाव को बढ़ाने मे, भावोत्कष मे, आलकारिक चमत्कार उत्पन्न करने मे यथेष्ट सहायता मिलती है। इसी से ये प्रसग लघु होने पर भी अत्यन्त सजीव हैं, व्यजक हैं।

निराला का कला विधान भी अत्यन्त प्रभावक, मोहक एवम् हृदयावजक है। उन्होने विभिन्न अलकारो से कविता-कामिनी का शृगार किया है। इनम उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि की छटा दशनीय है। नये आलकारिक प्रयोगो में मानवी करण, विशेषण विपयय, एवम् ध्वन्यथ व्यजक प्रयोग वणन शैली को प्रभाव पूण बनाने मे पूण सहायक हैं।

'आकाश विकल', 'नवनीत चरण' एवम् 'भावित नयन म विशेषण विपर्यय और झक झक, सक-सक, खल-खल, टल-मल, छल-छल में ध्वन्यथ व्यजक प्रयोग दृष्ट य है।

निराला के विम्व-विधान वड़ा चित्ताकर्षक वन पड़ा है। इस कविता में कतिपय स्थल अपने चित्रात्मक सौन्दर्य के कारण सजीव हो उठे हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) विच्छुरित वह्नि ....महीयान मे दृश्य चित्र

(ख) याद आया..........प्रथम कम्पन तुरीव मे स्मृति चित्र

(ग) सुन पड़ता.........कोलाहल अपार मे श्रव्य चित्र

(घ) अप्रतिहत..........अम्बुधि विशाल में श्रव्य चित्र

(ङ) उद्वेल हो उठा... ... अट्टहास मे गति चित्र।

निराला की अनुभूति मे प्रगाढता है और कल्पना मे उड़ान भरने की अद्‌भुत शक्ति। उनकी अनुभूति एक ओर अतल स्पर्शी है तो दूसरी ओर उनकी कल्पना अखिल ब्रह्मांड के आर-पार दौड़ती है। राम की आंखो को अश्रु-पूर्ण देखकर वीर हनुमान के हृदय मे जो भावावेग उत्पन्न होता है, कवि ने उसका लोकोत्तर कल्पना-चित्र उपस्थित किया है। साहस एवम् उत्साह का ऐसा लोम-हर्षक सजीव चित्रण कवि की उद्‌भट कल्पना-शक्ति का परिचय देता है।

शक्ति की पूजा का राम के हृदय मे सं ल्प हो चुका है। यह मौलिक आराधन है। शत हरिततृण गुल्म वेष्टित गिरि पार्वती की प्रतिमूर्ति है, समुद्र सिंह का उपलक्षण है, दश दिशाएँ देवी के हाथ है और ऊपर आकाश में चन्द्रमौलि शकर का वास है। कितनी मौलिक एवम् अलौकिक कल्पना है। यह शक्ति के विराट रूप का दर्शन है।

'देखो बन्धुवर .. ..शशि शेखर।'

इसी प्रकार कविता के प्रारम्भ में राम-रावण युद्ध का ओजस्वी वर्णन कवि की उद्‌भट कल्पना-शक्ति का परिचायक है। सवसे वड़ी विशेषता यह है कि कवि की कल्पना ने जो चित्र वनाये हैं, उनमे गति है, दीप्ति है, और है अद्‌भुत चमत्कृति। ये चित्र जितने भव्य है, उतने ही उदात्त एवम् रमणीय भी।

निराला की प्रगल्भ-शैली मे एक ओर चित्रोपयता है तो दूसरी ओर नाट्य-शिल्प भी। जहाँ कवि ने नाट्य शैली का अवलम्वन किया है, वहाँ अपेक्षाकृत भाषा सरल, वाक्य लघु एवम् दृश्य विधान सुन्दर है—

'आये सब शिविर, सानु पर पर्वत के'—आदि पंक्तियो मे नाटकीय शैली दर्शनीय है।

यदि पन्त ने छायावाद को सरसता, कोमलता आदि गुण प्रदान किये हैं, तो निराला ने खड़ी वोली को ओज और पौरुष से विभूषित किया है। शक्ति-पूजा के पहले वन्ध मे भाषा संस्कृत-निष्ठ तत्सम शब्द प्रधान है। विभक्ति पदो का लोप है। समासान्त पदावली मे दृश्य-चित्रण अत्यत सफल है, स्तुत्य है। यह ऊपर से देखने मे कठिन, दुरूह एवं आयास पूर्ण प्रतीत होती है, किन्तु जो सहृदय सुधीजन हैं, उनके लिये यह ओजस्वी एवं उदात्त वर्णन शैली अत्यन्त रोचक तथा हृदयावर्जक है। इसकी पद-शैया गौरव से मंडित है, इसका शब्द-सौष्ठव गरिमामय है तथा इसमे एक प्रच्छन्न वाद-सौन्दर्य है, जो पाठको को अभिभूत करने मे समर्थ है।

किन्तु एक ओर जहाँ ऐसी कठिन भाषा का प्रयोग है, वहाँ दूसरी ओर —

खिल गई सभा। उत्तम निश्चय यह भल्ल नाथ
कह दिया वृद्ध को मान राम ने झुका माथ।

ऐसी सरल सुबोध शैली के उदाहरण भी हैं।

सीता की अतीत कालीन प्रणय कहानी का स्मृति चित्र अत्यन्त लालित्यपूर्ण है। विभीषण और जाम्ववान् की प्रबोधन शैली अत्यन्त सरल एवं प्रामादिक है। इससे सिद्ध है कि निराला ने सर्वत्र भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कुशल कवियों की भाषा में यही विशेषता होती है कि वे प्रसगानुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं तथा भावों के साथ-साथ भाषा का रूप भी परिवर्तित होता चलता है। शक्ति की पूजा मे भाषा सौन्दर्य सर्वत्र विद्यमान है। विषय, अनुबन्ध, भाव एवं सन्दर्भ के अनुकूल भाषा म भव्यता, औदार्य, ओजस्विता, एवम् सप्राणता का व्यवहार करने मे कवि असामान्य कौशल का परिचय दिया है। कहना न होगा कि शक्ति की पूजा की भाषा मे गति है, स्फूर्ति है, क्षिप्रता है और है चित्रात्मकता।

'है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार"

एक ही पंक्ति म सम्पूर्ण दृश्य साकार हो उठा है। इसी प्रकार—"पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन" म नवोढ़ा नायिका क नेत्रो की सलज्ज दशा का चित्रण कितना हृदय-स्पर्शी है।

निराला की भाषा-शैली मे प्रगल्भता मे साथ विदग्धता का गुण भी विद्यमान है। विभीषण और जाम्ववान् के वक्तव्य विदग्ध शैली के अनुपम निदर्शन हैं।

शक्ति की पूजा मे तीन अष्टकों का मुक्त छन्द है। छन्दशास्त्र म इसका कोई उदाहरण नहीं। यह निराला की मौलिक सृष्टि है। इस छन्द म एक प्रकार का औदार्य है, गरिमा है, भास्वरता है, जो अन्यत्र बहुत कम पाई जाती है। अन्तरवर्ती लय, सगीतमयता, शब्द-मैत्री एवं नाद-सौन्दर्य ने शक्ति की पूजा को विलक्षण सौन्दर्य से अभिमण्डित किया है।

'राघव-लाघव, रावण,-वारण गत युग्म प्रहर'

मे शब्द मैत्री—

'विच्छुरित वह्नि राजीव नयन, हत लक्ष्य बाण
लोहित लोचन रावण मद मोचन महीयान

में नाद सौन्दर्य—

काँपते हुए किसलय भरते पराग समुदय
गाते खग नव जीवन परिचय—तरु मलय वलय।

में अन्तरनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

निराला के काव्य में व्यग्य के प्रयोग विरल हैं। उनके काव्य म अधिकतर अभिधेयार्थ ही प्रधान है, फिर भी जहाँ व्यग्य आया है, वहाँ अत्यन्त सशक्त और मर्म-स्पर्शी है। राम को साहस और धैर्य दिलाते हुए विभीषण कहता है—

"मैं बना किन्तु लंकापति, धिक राघव धिक धिक !"

इस कथन में चिन्ता, व्यथा और नैराश्य की व्यंजना कितनी मार्मिक है। इसी प्रकार—जानकी, हाय उद्धार प्रिया का हो न सका।' विफल मनोरथ होने पर राम के मुँह से निकले हुए इस वाक्य में 'दैन्य' एवं 'नैराश्य' की व्यंजना कितनी आकर्षक है।

निराला के काव्य मे भाषा का सौन्दर्य शब्दों के अभिधेयार्थ पर आश्रित है। उनके काव्य मे वाच्यार्थ का चमत्कार ही प्रधान है, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ का वैचित्र्य अपेक्षाकृत न्यून है। किन्तु जहाँ है, वहाँ काव्य मे अद्भुत दीप्ति आ गई है। लाक्षणिक प्रयोग के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) 'विध महोल्लास से वार-वार आकाश विकल'
(२) 'उगलता गगन घन अन्धकार'
(३) 'खिल गई सभा'
(४) 'कांपा ब्रह्माण्ड'
(५) 'खिंच गये दृगों मे सीता के राम मय नयन। आदि।

निराला की कविता की भाषा क्लिष्ट और दुरूह बतलाई जाती है, पर लोकोक्ति और मुहावरों का चमत्कार सर्वत्र पाया जाता है। नीचे के उदाहरणों मे मुहावरों के प्रयोग से भाषा कितनी चमत्कृत हो उठी है।

'तुम फेर रहे हो पीठ', 'तुम खींच रहे हो हस्त', 'बँध गये हस्त', 'विचलित होना', 'टूटा वह तार ध्यान का', 'जल रात्रि राशि-जल पर चढता खाता पछाड़'। आदि

निराला ओज का कवि है, शक्ति का कवि है। उनकी शैली मे एक अपूर्व पौरुष है, जो कवि के ऊर्जस्वित व्यक्तित्व से आया है। शक्ति की पूजा मे कवि की कल्पना ने विराट सौन्दर्य के चित्र अंकित किये है। जनक-तनया का सौन्दर्यमय चित्रांकन, हनुमान का लोकोत्तर पुरुषार्थ वर्णन शक्ति के विराट स्वरूप का चित्रण कुछ ऐसे दृश्य चित्र है, जिनमे निराला की उदात्त एव गरिमामय कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है।

कवि क्रान्तदर्शी होता है। निराला के विषय मे यह कथन अक्षरशः चरितार्थ होता है। उनकी प्रखर कल्पना-शक्ति भव्य एवं उदात्त चित्रो की सर्जना करने मे सक्षम है। उनकी कल्पना का स्पर्श पाकर हर एक चित्र प्राणवन्त हो उठा है। उनकी कल्पना आकाश-पाताल, तल-अतल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाती है। इसी से उनका बिम्ब विधान भव्य, उदात्त एवं ऊर्जस्वित है। उनकी कल्पना-शक्ति इतनी उर्वरा है कि मौलिक सृजन एवं अभिनव बिम्ब विधान द्वारा पाठकों को आश्चर्य मे डाल देती है।

इसमें कोई सन्देह नही कि शक्ति-पूजा निराला की अद्वितीय काव्य कृति है। भावोत्कर्ष, सौन्दर्यमय चित्रांकन, प्रभावोत्पादक पद शैया, नाट्य शैली विधान, छन्द की अस्वरता एवं अन्तरद्वन्द्व के चित्रण ने इस काव्य को अभिनव सौन्दर्य प्रदान किया है। रावण की दुर्निवार अप्रतिहत शक्ति के ऊपर राम के अद्भुत पराक्रम की प्रतिष्ठा करके कवि ने अधर्म के ऊपर धर्म की सफलता की वैजयन्ती फहराई है। इससे सिद्ध है कि कला की दृष्टि से यह रचना जितनी श्रेष्ठ है, उतनी ही उद्देश्य की दृष्टि से भी महान है।
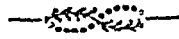
निराला का खंड काव्य 'तुलसीदास'

श्री रामसेवक पाडेण्य

महाकवि अनेक क्षेत्रो मे अपनी निराली कलात्मक सवेदना को समग्र और सफल अभिव्यक्ति दे पाते हैं जब अन्य कवि अपनी गहन अनुभूतियो की अभिव्यक्ति एक या दो क्षेत्रों म ही कर पाते हैं। महाकवि की तीव्र सवेदनशीलता किसी प्रकार के ब धन को भी अस्वीकार करती हुई स्वच्छ्द प्रवाहित होती है। यह स्वच्छ प्रवाह एक सुदृढ दार्शनिक तथा मानवीय आधार पर अवलम्बित होता है, जिसके युग चेतना कही तो मेल खाती है और किन्ही स्थलो पर तत्कालीन सामाजिक चेतना प्रतिकूल होते हुए भी उसे सवथा अस्वीकार नही कर पाती है। इसका कारण केवल यही हो सकता है कि महाकवि की रसात्मक अनुभूति की व्यापकता युग-जीवन मे असम्पृक्त होते हुए भी उसके मय की कभी उपेक्षा नही कर पाती। ऐसे ही सजग कलाकार की रसात्मक अनुभूति मे साधारणीकरण का सिद्धान्त भी किसी न किसी रूप मे समाहित हो जाता है।

महाकवि निराला एक ऐसे प्रबुद्ध कलाकार हैं जिन्होने अपनी कलात्मक सवेदना की अभिव्यक्ति विविध दिशा मे की है। जहा 'जूही की कली' जैसी सरस काल्पनिक रचनाएँ हैं वहां यथाथ कठोर धरती पर उगा हुआ 'कुकुरमुत्ता' तथा 'वह तोडती पत्थर' जैसी कृतियाँ भी हैं। जागो फिर एक बार जैसी श्रेष्ठ वीर-रचना है, उससे अधिक प्राणवान, उदात्त और सांस्कृतिक रचना 'राम की शक्ति पूजा' है। अपनी बौद्धिक और दार्शनिक कृतियों को स्वछ द छन्द शैली मे निराला ने बडी सफलता से अभिव्यक्त किया है। ऐसी ही विविधता की एक बडी ही सशक्त कडी है निराला का खण्डकाव्य—'तुलसीदास'।

इस खण्डकाव्य की कथा-वस्तु, आकार विस्तार मे बहुत ही लघु है। इसकी भूमिका में रायकृष्णदास ने लिखा है, "तुलसी का प्रथम अध्ययन पश्चात पूर्व सस्कारों का उदय, प्रकृति दर्शन और जिज्ञासा, नारी से मोह, मानसिक सघष और अन्त मे नारी द्वारा ही विजय आदि वे मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं जिन्हें लेकर कवि ने कथा को विस्तार दिया है।" मूल रूप म कथानक तो इतना ही है, पर इसकी अपनी विशेषता है। तुलसीदास की विभिन्न मानसिक स्थितियों का कलात्मक चित्रण। मनोवैज्ञानिकता का आधार लेकर एक छोटी-सी कथावस्तु को कवि ने सांचे मे ढाला है।

मुगलों के आक्रमण का वणन आरम्भ म किया गया है, जिससे भारत का सांस्कृतिक सूय निष्प्रभ हो गया है, मुसलमानो की सत्ता क्रमश स्थापित हो रही है। एक एक कर सभी प्रान्त विदेशियों की सगठित शक्ति के सामने नतमस्तक होते जा रहे हैं। आत्म-मर्यादा की रक्षा में अपने प्राणों की बलि देने वाले हिन्दू राजा एक-एक कर पददलित हो रहे हैं। हिन्दू राजाओं के पराजय का एक चित्र प्रस्तुत है—

रिपु के समक्ष जो था प्रचंड
आतप ज्यों तम कर करो दंड
निश्चल अब वही बुन्देलखंड आभागत,
निःशेष सुरभि कुर्वक समान,
संलग्न वृन्त पर, चिन्त्य-प्राण,
बीता उत्सव ज्यों चिन्ह म्लान, छाया श्लथ।

बुन्देले शत्रु पर वैसे ही आक्रमण करते थे, जैसे सूर्य की प्रखर किरणें अन्धकार पर आक्रमण करती हैं। वही आज बुन्देलखण्ड जड़ बन गया है, उसकी आभा नष्ट हो गयी है, वह गन्धहीन केतकी के समान वृन्त पर लगता है, प्राणो में मुर्दनी है, जैसे उत्सव बीत जाने पर वह स्थान दिखलाई पड़ता है मानों शिथिलता छा गई है। कवि ने निःशेष कुरवक, बीते उत्सव, उपमान देकर तत्कालीन भारत के हिन्दू राजाओं के शौर्य का ह्रास तथा उनकी दीन मलीन अवस्था का बड़ा ही मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। मुसलमानो का साम्राज्य स्थापित हो जाने पर हिन्दू अपना पूर्व गौरव, संस्कार भूलकर नवीन सभ्यता के मोह मे फँसते चले जा रहे हैं। कोई पराजित जाति विजेता की सभ्यता और संस्कृति को किस प्रकार अपनाती है, अपने को भूलकर उसमे आनन्द और उल्लास का अनुभव करती है। भारतीय संस्कृति के सूर्य के अस्त होने पर मुस्लिम संस्कृति का चन्द्रोदय हुआ है, जिसकी किरणें सूर्य के समान प्रखर और उद्दीप्त नही है, बल्कि इन किरणो मे कोमलता, माधुर्य और उन्माद है जिसमें सभी अपने स्वरूप को भूल कर निमग्न हैं। कवि के शब्दो में—

झरते हैं शशधर से क्षण-क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुँबन, संजीवन।

नवागत सभ्यता उस देश की प्राचीन परम्परागत संस्कारों को निगल जाने का सभी प्रयत्न करती है। इस नवीन चन्द्रमा की किरणो के समान शीतल भोग लिप्त वातावरण मे तुलसी का जन्म होता है। तुलसीदास के ओजस्वी स्वरूप का चित्रण दर्शनीय है। प्रसाद ने मनु का जैसा सशक्त चित्र 'कामायनी' में प्रस्तुत किया है—

अवयव की दृढ़ माँसपेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिराएँ स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार,

इससे निराला के तुलसी का चित्र अधिक सांस्कृतिक और ओजस्वी लगता है, वे कहते हैं।

युवकों में प्रमुख रत्न चेतन
समधीत शास्त्र काव्यालोचन
जो तुलसी दास, वही ब्राह्मण, कुल दीपक
आयत दृग पुष्ट देह, गत भय

अपने प्रकाश मे निस्सशय
प्रतिभा का मदस्मित परिचय, सस्मारक ।

सचेत युवक तुलसो ने सभी काव्य शास्त्रो का अध्ययन किया है । ब्राह्मण—कुल—श्रेष्ठ युवक के विशाल नेत्र हैं, वे शरीर से पुष्ट हैं, निर्भीक तथा अपने प्रकाश में नि शक हैं और प्रतिभा के परिचायक हैं । साथ ही वह दूसरो को स्मरण करने के योग्य बनाने वाला है ।

तुलसी अपने कुछ युवक मित्रो के साथ चित्रकूट पर प्रकृति को शोभा देखने जाते हैं, प्रकृति चेतना का स्पर्श न पाकर दु ी है, जसे ऋतुए परिवतन के साथ प्रकृति के जीवन को दु खी बनाती हैं, वैसे ही स्वार्थी लोग दूसरो को दु ख देते हैं—"केवल दु ख देकर उदर भरि जन जाते" यह सामाजिक जीवन की दुखद अवस्था है । प्रकृति से उन्हे ससार का मुक्ति का गान गाने का सदेश मिलता है । कवि के शब्दो म प्रकृति का सदेश—

गाओ विहग सद् ध्वनित गान
त्यागोज्जीवित वह उर्ध्व ध्यान, धारास्तव ।

जिमसे समाज के लोगो की निम्नगामिनी वृत्तियाँ उर्ध्वगामी बनें, लोग त्याग का जीवन अपनाएँ तथा सबमें नवजीवन का सचार हो । यह है वह पुनीत तथा उदात्त प्रकृति की प्रेरणा, जिसने तुलसी को तुलसीदास सा पवित्र बनाया । इस सदेश को पाकर तुलसी का मन भौतिकता की सीमा लाँघकर ऊपर उठता है । उनका मन सस्कारो के विभिन्न स्तरो को पार करता हुआ अगोचर सत्य की खोज म विकल हो उठता है । मन के ऊर्ध्वगामी होने पर किस प्रकार विभिन्न सस्कारो के धरातल को वह पार करता हुआ ऊपर उठता है, इस प्रक्रिया का विशद दर्शन कवि के ही शब्दों म—

दूर, दूरतर दूरतम, शेष,
कर रहा पार मन नभो देश
सजता सुवेश, फिर फिर सुवेश जीवन पर,
छोड़ता रग, फिर फिर सवार
उड़ती तरग ऊपर अपार
सध्या ज्योति ज्यों सुविस्तार अवरतर ।

तुलसी का मन विहग हृदयाकाश म ऊपर उठता है, सभी सस्कारो की तहो को पार कर वह ऊपर की ही ओर चलता जा रहा है । साधना की प्रक्रिया भी यही है समाधिस्थ मन ब्रह्म रन्ध्र म पहुँचता है । यहाँ सध्याकालीन प्रकाश से पश्चिमाकाश घिरा है । आध्यात्मिकता तथा काव्यात्मक अभिव्यजना का सयोग बड़ा ही मार्मिक बन पड़ा है । ज्ञान के इस नव प्रकाश म कवि देश की दुर्दशा देखता है, यवनों की मनमानी भी उनके सम्मुख आती है । यह कवि की इच्छा मे अपना विश्वास प्रकट करता है । तुलसी इस निराशा और पतन की अवस्था से निकल कर सत्य की खोज के लिए प्रतिज्ञा करते तथा वे उद्धार का आवाहन करने के लिए उद्यत होते हैं । वे कहते हैं—

करना होगा यह तिमिर पार,
देखना सत्य का मिहिरद्वार।

किन्तु उसी क्षण आकाश में तारीका-सी सुधर अपनी पत्नी की छाया तुलसीदास को दिखाई पड़ती है। वह वामा सरितोपम उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध कर देती है। तुलसी का मन नारी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। उनका मन उन आध्यात्मिक धरातल के नीचे उतरता है, सारी प्रकृति मे वे नारी रूप की मनोहरता देखते है। चित्रकूट के दर्शन के बाद घर लौटते है। वे नारी के सौन्दर्य मे इस प्रकार बंध गये है, मानो सारी प्रकृति ही उसी बंधन में बंधी है; वे इस बंधन को ही मुक्ति मानने लग जाते है, वे कहते है—

बंध के बिना कह कहाँ प्रगति,
गति हीन जीव को कहाँ सुरति।

कहीं-कही तुलसीदास मे बुद्धितत्व और कलात्मक परिणति के अति के भी दर्शन होते है—

मैं बंधा एक शुचि आलिंगन
आकृति में निराकार चुम्बन,
युक्त भी मुक्त हों आजीवन लघिमा में।

वे प्रिया से बंधे है, आकृति रहते हुए दोनो का चुम्बन निराकार है बन्धन की लघिमा के कारण प्रिया से युक्त रहते हुए भी वे मुक्त है। निराला जी की ऐसी रचना मे उनके अति विश्वास का परिणाम है।

इसके बाद ही रत्नावली का भाई उसे ले जाने के लिये वहाँ आ पहुँचता है। इस प्रकरण मे निराला ने अपने व्यवहारिक ज्ञान को बड़ी स्वाभाविकता से प्रदर्शित किया है। भाई रत्ना से कहता है—

हो गई रतन, कितनी दुर्बल
चिन्ता में बहन, गई तू गल
माँ बाबूजी, भाभियाँ सकल, पड़ोसी की।
कहती है वेंचा वर के कर, आ न सकी।

किसी स्त्री के ससुराल मे बहुत दिन रह जाने पर जैसे पीहर की उसकी सखियां उलाहना देती हैं, उसका यथावत चित्रण ऊपर पंक्तियो मे निराला जी ने किया हैं। वे व्यंग्य करती हैः— मालूम पडता है वर के हाथ आप लोगों ने वेच दिया है, इसलिये वह न आ सकी आदि। भाई बहन को लेकर अपने घर चला जाता है।

तुलसीदास बाजार से लौटकर अपने घर को शून्य-सा पाते हैं। घर और आंगन उन्हे निर्जीव, तथा दुखी लगते हैं, वह घर प्रिया के गीतो से गुंजरित नही हो रहा है, वह तान आज दूर हो गई है। वे चल पड़ते हैं अपनी ससुराल की ओर—

छूटा जग का व्यवहार-ज्ञान
पग उठे उसी मग को अजान

कुल-मान ध्यान-श्लथ, स्नेह-दान, सक्षम से ।

तुलसी जब ससुराल पहुँच जाते हैं, रत्नावली को भाभियों के व्यंग सुनने पड़ते हैं। वह जलभुन उठती है। वह मर्यादा पुरुषोत्तम से मानो लाज रखने के लिये प्रार्थना करती है। इस प्रसंग में निराला जी ने सामाजिक परिवेश और स्त्री की स्थिति का कलात्मक चित्र द्रष्टव्य है। उदाहरण स्वरूप आंधी उठने से पहले जैसे वातावरण शान्त हो जाता है, पुनः भयंकर आंधी उठती है, इस अवस्था का वर्णन कवि के शब्दों में—

कुछ काल रहा यों स्तब्ध भवन
ज्यों आँधी उठने का क्षण

आज रत्नावली प्रिय के लिए अपना सारा प्रेम, संयम और मर्यादा के बाँध को तोड़कर बोल पड़ती है—

धिक आये तुम यों अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाये
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम
वह नहीं और कुछ हाड़ चाम
कैसी शिक्षा, कैसे विराम, पर आये।

यह सुन तुलसी के प्राचीन संस्कार सहसा जग उठते हैं। काम जल कर राख हो जाता है, उनका मन उर्ध्वगामी बनता है, वे अपने में तल्लीन हो जाते हैं। आज उन्हें अपनी असीमता का बोध हो रहा है। चेतनता के लौट आने पर तुलसीदास वहाँ से उठ खड़े होते हैं, आज कोई ऐसी भौतिक शक्ति नहीं है जो उनकी गति को बाँध सके।

आत्मबोध का जैसा कलात्मक, साथ ही उदात्त और ओजस्वी चित्रण निराला जी ने किया है वह हिन्दी साहित्य की अप्रतिम निधि हैं—वे कहते हैं—

जागो जागो आया प्रभात
बाधो बाधो किरणें चेतन
तेजस्वी हे तमजिज्जीवन
आती भारत की ज्योर्तिर्धन महिमाबल

भारत की ज्ञान ज्योति की महिमा का बल संसार देखेगा। जड़ से चेतन का दुर्धर्ष संग्राम छिड़ेगा। एक तरफ दैवी शक्तियाँ हैं, दूसरी ओर माया दिखाने वाले दैत्य। दैवी और आसुरी शक्तियों का संघर्ष राम रावण युद्ध के रूप में होगा, जिसमें विजय होगी, दैवी संस्कृति की। तुलसी की कला सब को एक जगह संगठित करेगी, राग-द्वेष और छल प्रपंच की मधुर रागिनियों का अवसान होगा। तुलसी के प्राणों की साधना जगी। तुलसी ने अपनी अन्तिम बात जो रत्नावली से कही है, वह इस प्रकार है —

जो दिया मुझे तुमने प्रकाश
अब रहा नहीं लेशावकाश; रहने का
मेरा उससे गृह के भीतर
देखूंगा नहीं कभी फिर कर
लेता मैं, जो बर जीवन-भर बहने का ॥

प्रदीप्त चेतना का भार लेकर तुलसी अपनी प्रिया से सदा के लिये पृथक हो रहे हैं अपने चरम उद्देश्य की सिद्धि के लिये।

अवसर की मार्मिकता तथा उद्देश्य की जटिलता, ऐसा सफल संयोग केवल निराला जैसे श्रेष्ठ कलाकार ही कर सकते है।

दर्शन और काव्य का जैसा संयोग, तुलसी की मानसिक स्थिति का आरोह-अवरोह तथा मन के विभिन्न चेतना स्तरों का चित्रण इस काव्य की अपनी विशेपता है। उदात्त और सप्राण वर्णन के लिये यह कृति सदा अमर रहेगी। इस काव्य के वैशिष्ट्य के सम्मुख इसकी यत्र-तत्र दुरूहता और समस्त पदावली की कर्कशता गौण हो जाती है।

महाकवि निराला की कृतियाँ और तद्विषयक साहित्य

हरिमोहन मालवीय

महाकवि निराला ने साहित्य की विविध विधाओं मे रचनाओं का प्रणयन किया था। महाकवि के रूप मे आधुनिक हिन्दी के साहित्यकारो की शीर्ष पंक्ति में उनका स्थान सहज ही बन चुका है। मौलिक कृतियो के साथ ही प्रचुर परिमाण मे निराला द्वारा प्रस्तुत अनूदित साहित्य भी उपलब्ध है। काव्य, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र और जीवनी आदि के अतिरिक्त उत्कृष्ट समीक्षा-ग्रंथो के माध्यम से उन्होने हिन्दी के भाण्डार की अभिवृद्धि मे अपना योग दिया था।

१६२३ मे उनका काव्य-संकलन 'अनामिका' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। निराला के लोकप्रिय काव्य संकलन 'परिमल' (सन् १६३०) के सन् १६५६ तक ६ संस्करण निकल चुके थे। १६३६ मे 'गीतिका' और १६३८ में तुलसीदास का प्रकाशन हुआ। 'तुलसीदास' खडी बोली हिन्दी का उत्कृष्टतम प्रबन्ध काव्य है। साहित्य को नये आयाम देने वाला काव्य संग्रह 'कुकुरमुत्ता' १६४२ मे प्रकाशित हुआ और १६५३ में 'अणिमा', १६४६ मे 'अपरा' 'नये पत्ते', तथा 'बेला', १६५० मे 'अर्चना', १६५३ मे 'आराधना' १६५४ मे 'गीतगुंज' तथा १६५५ मे कवि श्री 'काव्य-संग्रह' प्रकाशित हुए।

निराला जी की बहुमुखी प्रतिभा के संस्पर्श से हिन्दी का उपन्यास साहित्य भी चमत्कृत हुआ है। निराला रचित उपन्यासों मे 'निरुपमा' (१६३६) को अत्यधिक लोकप्रियता भी प्राप्त हुई। निराला कृत अन्य उपन्यास है 'अप्सरा' (१६३१), 'अलका' (१६३३), 'प्रभावती' (१६३६) तथा काले कारनामे (१६५०)। इसी भाँति कहानी के क्षेत्र मे भी निराला जी की देन महत्वपूर्ण है। उनकी ८ कहानियाँ सन् १६३३ म सर्वप्रथम 'लिली' के नाम से प्रकाशित हुई। उसके ठीक १५ वर्ष बाद निराला का अन्तिम कहानी संग्रह 'देवी' १६४८ में प्रकाशित हुआ। निराला द्वारा लिखित अन्य कहानी संग्रह हैं—'सखी' (१६३५), 'सुकुल की बीबी' (१६४१) और 'चतुरी चमार' (१६४५)।

निराला के द्वारा प्रणीत मौलिक कृतियो मे उनकी पैनी और तीखी लेखनी की तिर्यक रेखाओं से खचित 'रेखाचित्रों' का विशिष्ट स्थान है। निराला जी ने समकालिक समाज के सजीव चरित्रों को अपने रेखाचित्रो में स्थान दिया है। रेखाचित्र विधा में लिखित कृतियाँ हैं 'कुल्लीभाट' (१६३६), और 'बिल्लेसुर बकरिहा' (१६४१)।

रेखाचित्रों के पूर्व ही निराला जी ने 'भक्त-ध्रुव' (१६२६), 'भक्त प्रह्लाद' (१६२६),

'भीष्म' (१९२७) तथा 'महाराणा प्रताप' आदि जीवनियों का भी प्रणयन और 'परिव्राजक' शीर्षक जीवनी का अनुवाद कार्य भी किया था।

श्रेष्ठ समालोचक और समीक्षक के रूप मे निराला जी को स्थापित करने वाली कृतियां है 'रवीन्द्र कविता कानन' (१९२८), 'पन्त और पल्लव' (१९४९), और 'चाबुक' (१९५१)। 'प्रबन्ध पद्म' (१९३४), 'प्रबन्ध प्रतिमा', (१९४०) तथा 'चयन' (१९५७) निराला लिखित प्रबन्धों के संकलन है जिनमे महाकवि के सुचिन्तित एवं युगान्तरकारी विचार लिपिबद्ध है।

निराला जी का सम्पर्क बहुत समय तक रामकृष्ण मिशन से भी था। अतएव रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द जी के साहित्य के अनुवाद का कार्य भी उन्होंने किया था। रामकृष्ण देव की आराध्य शक्ति काली का स्मरण करते हुए निराला जी का प्राणान्त भी हुआ था। निराला जी ने १९४२ मे 'श्री रामकृष्ण वचनामृत' तीन भाग तथा १९४५ मे 'भारत मे विवेकानन्द' ग्रन्थों का अनुवाद किया था। निराला द्वारा अनूदित जीवनी 'परिव्राजक' की चर्चा पहले ही कर चुका हूँ। स्वामी विवेकानन्द की कविताओं का अनुवाद भी निराला जी ने किया था जो 'कवितावली' के नाम से प्रकाशित है।

महाकवि तुलसीदास निराला जी के भी प्रेरणा स्रोत थे। निराला जी को न केवल 'तुलसीदास' शीर्षक से लघु प्रबन्ध-काव्य की रचना का श्रेय है वरन् उनके द्वारा खड़ी बोली मे अनूदित तुलसीदास कृत रामचरित मानस के कुछ अंशों का प्रस्तुतीकरण भी महत्वपूर्ण है। 'विनय खण्ड' (१९४८) इसी प्रकार की कृति है। निराला जी के अखंड अध्यवसाय से २० खण्डों मे तुलसी के महाकाव्य 'मानस' की टीका भी गंगा पुस्तक माला, लखनऊ से प्रकाश में आई थी। इसी भांति १९३९ में 'संक्षिप्त महाभारत' भी प्रकाशित हुआ था। गंगा पुस्तक माला से निराला द्वारा अनूदित रामायण का 'बाल काण्ड' भी प्रकाशित हुआ है।

बंगाल की धरती में पोषित महाकवि ने अपनी लेखनी से बंगला के लेखक बंकिम बाबू की श्रेष्ठ कृतियों को हिन्दी मे प्रस्तुत किया था। राष्ट्रगीत वन्देमातरम् के प्रणेता बकिम कृत 'आनन्द-मठ', 'कपाल-कुण्डला', 'चन्द्रशेखर', 'दुर्गेश नन्दिनी', 'कृष्णकान्त का विल', 'युगांगुलीय', 'रजनी', 'देवी चौधरानी', 'राजा रानी', 'विषवृक्ष' तथा 'राजसिंह' उपन्यास प्रयागस्थ इन्डियन प्रेस से प्रकाशित हुए है। उपन्यासों के अतिरिक्त 'वैदिक-साहित्य' एवं 'वात्स्यायन-कामसूत्र' ग्रन्थो के अनुवाद का श्रेय भी निराला जी को है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त निराला प्रणीत अप्रकाशित मौलिक नाटक है—समाज, शकुन्तला तथा 'उषा-अनिरुद्ध और उपन्यास है फुलवारी-लीला तथा सरकार का आंखें। उन्होने राजयोग, गीत-गोविन्ददास, तथा उच्छृंखल का भी अनुवाद किया था। अन्तिम कृति की भाषा व्रज-भाषा है।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ छात्रोपयोगी पुस्तकों का भी लेखन निराला ने किया था। जिनके नाम इस प्रकार है—रस अलंकार, हिन्दी बंगला शिक्षक (१९२८), चमेली (१९४१) तथा चोटी की पकड़ (१९४७)।

निराला जी के सम्पूर्ण कृतित्व को परखने और उद्घाटित करने का प्रयास अनेक लेखकों ने किया है। इस प्रकार के ग्रन्थों की संख्या प्रचुर है। निम्नलिखित तालिका मे कुछ ज्ञात ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करने का मैंने प्रयास किया है।

महाकवि निराला की कृतियाँ और तद्विषयक साहित्य

हरिमोहन मालवीय

महाकवि निराला ने साहित्य की विविध विधाओं मे रचनाओं का प्रणयन किया था। महाकवि के रूप मे आधुनिक हिन्दी के साहित्यकारो की शीर्ष पंक्ति में उनका स्थान सहज ही बन चुका है। मौलिक कृतियों के साथ ही प्रचुर परिमाण में निराला द्वारा प्रस्तुत अनूदित साहित्य भी उपलब्ध है। काव्य, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र और जीवनी आदि के अतिरिक्त उत्कृष्ट समीक्षा-ग्रन्थों के माध्यम से उन्होने हिन्दी के भाण्डार की अभिवृद्धि मे अपना योग दिया था।

१९२३ मे उनका काव्य-संकलन 'अनामिका' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। निराला के लोकप्रिय काव्य संकलन 'परिमल' (सन् १९३०) के सन् १९५६ तक ६ संस्करण निकल चुके थे। १९३६ में 'गीतिका' और १९३८ में तुलसीदास का प्रकाशन हुआ। 'तुलसीदास' खड़ी बोली हिन्दी का उत्कृष्टतम प्रबन्ध काव्य है। साहित्य को नये आयाम देने वाला काव्य संग्रह 'कुकुरमुत्ता' १९४२ मे प्रकाशित हुआ और १९४३ में 'अणिमा', १९४६ मे 'अपरा', 'नये पत्ते', तथा 'बेला', १९५० मे 'अर्चना', १९५३ मे 'आराधना' १९५४ मे 'गीतगुंज' तथा १९५५ म कवि श्री 'काव्य-संग्रह' प्रकाशित हुए।

निराला जी की बहुमुखी प्रतिभा के संस्पर्श से हिन्दी का उपन्यास साहित्य भी चमत्कृत हुआ है। निराला रचित उपन्यासो मे 'निरुपमा' (१९३६) को अत्यधिक लोकप्रियता भी प्राप्त हुई। निराला कृत अन्य उपन्यास है 'अप्सरा' (१९३१), 'अलका' (१९३३), 'प्रभावती' (१९३६) तथा काले कारनामे (१९५०)। इसी भाँति कहानी के क्षेत्र मे भी निराला जी की देन महत्वपूर्ण है। उनकी ८ कहानियाँ सन् १९३३ म सर्वप्रथम 'लिली' के नाम से प्रकाशित हुई। उसके ठीक १५ वर्ष बाद निराला का अन्तिम कहानी संग्रह 'देवी' १९४८ मे प्रकाशित हुआ। निराला द्वारा लिखित अन्य कहानी संग्रह हैं—'सखी' (१९३५), 'सुकुल की बीवी' (१९४१) और 'चतुरी चमार' (१९४५)।

निराला के द्वारा प्रणीत मौलिक कृतियो म उनकी पैनी और तीखी लेखनी की तियक रेखाओं से खचित 'रेखाचित्रों' का विशिष्ट स्थान है। निराला जी ने समकालिक समाज के सजीव चरित्रों को अपने रेखाचित्रों में स्थान दिया है। रेखाचित्र विधा में लिखित कृतियाँ हैं 'कुल्लीभाट' (१९३९), और 'बिल्लेसुर बकरिहा' (१९४१)।

रेखाचित्रों के पूर्व ही निराला जी ने 'भक्त-ध्रुव' (१९२६), 'भक्त प्रह्लाद' (१९२६),

'भीष्म' (१९२७) तथा 'महाराणा प्रताप' आदि जीवनियों का भी प्रणयन और 'परिव्राजक' शीर्षक जीवनी का अनुवाद कार्य भी किया था।

श्रेष्ठ समालोचक और समीक्षक के रूप मे निराला जी को स्थापित करने वाली कृतियाँ है 'रवीन्द्र कविता कानन' (१९२८), 'पन्त और पल्लव' (१९४९), और 'चाबुक' (१९५१)। 'प्रबन्ध पद्म' (१९३४), 'प्रबन्ध प्रतिमा', (१९४०) तथा 'चयन' (१९५७) निराला लिखित प्रबन्धों के संकलन है जिनमे महाकवि के सुचिन्तित एवं युगान्तरकारी विचार लिपिबद्ध है।

निराला जी का सम्पर्क बहुत समय तक रामकृष्ण मिशन से भी था। अतएव रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द जी के साहित्य के अनुवाद का कार्य भी उन्होने किया था। रामकृष्ण देव की आराध्य शक्ति काली का स्मरण करते हुए निराला जी का प्राणान्त भी हुआ था। निराला जी ने १९४२ मे 'श्री रामकृष्ण वचनामृत' तीन भाग तथा १९४८ मे 'भारत मे विवेकानन्द' ग्रन्थों का अनुवाद किया था। निराला द्वारा अनूदित जीवनी 'परिव्राजक' की चर्चा पहले ही कर चुका हूँ। स्वामी विवेकानन्द की कविताओं का अनुवाद भी निराला जी ने किया था जो 'कवितावली' के नाम से प्रकाशित है।

महाकवि तुलसीदास निराला जी के भी प्रेरणा स्रोत थे। निराला जी को न केवल 'तुलसीदास' शीर्षक से लघु प्रबन्ध-काव्य की रचना का श्रेय है वरन् उनके द्वारा खड़ी बोली में अनूदित तुलसीदास कृत रामचरित मानस के कुछ अंशों का प्रस्तुतीकरण भी महत्वपूर्ण है। 'विनय खण्ड' (१९४८) इसी प्रकार की कृति है। निराला जी के अखंड अध्यवसाय से २० खण्डों मे तुलसी के महाकाव्य 'मानस' की टीका भी गंगा पुस्तक माला, लखनऊ से प्रकाश में आई थी। इसी भाँति १९३९ मे 'संक्षिप्त महाभारत' भी प्रकाशित हुआ था। गंगा पुस्तक माला से निराला द्वारा अनूदित रामायण का 'बाल काण्ड' भी प्रकाशित हुआ है।

बंगाल की धरती में पोषित महाकवि ने अपनी लेखनी से बंगला के लेखक बंकिम बाबू की श्रेष्ठ कृतियों को हिन्दी मे प्रस्तुत किया था। राष्ट्रगीत वन्देमातरम् के प्रणेता बंकिम-कृत 'आनन्द-मठ', 'कपाल-कुण्डला', 'चन्द्रशेखर', 'दुर्गेश नन्दिनी', 'कृष्णकान्त का विल', 'युगांगुलीय', 'रजनी', 'देवी चौधरानी', 'राजा रानी', 'विषवृक्ष' तथा 'राजसिंह' उपन्यास प्रयागस्थ इन्डियन प्रेस से प्रकाशित हुए है। उपन्यासों के अतिरिक्त 'वैदिक-साहित्य' एवं 'वात्स्यायन-कामसूत्र' ग्रन्थो के अनुवाद का श्रेय भी निराला जी को है।

उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त निराला प्रणीत अप्रकाशित मौलिक नाटक है—समाज, शकुन्तला तथा 'उषा-अनिरुद्ध' और उपन्यास है फुलवारी-लीला तथा सरकार का आँखें। उन्होंने राजयोग, गीत-गोविन्ददास, तथा उच्छृंखल का भी अनुवाद किया था। अन्तिम कृति की भाषा व्रज-भाषा है।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ छात्रोपयोगी पुस्तको का भी लेखन निराला ने किया था। जिनके नाम इस प्रकार है—रस अलंकार, हिन्दी बंगला शिक्षक (१९२८), चमेली (१९४१) तथा चोटी की पकड (१९४७)।

निराला जी के सम्पूर्ण कृतित्व को परखने और उद्घाटित करने का प्रयास अनेक लेखकों ने किया है। इस प्रकार के ग्रन्थो की संख्या प्रचुर है। निम्नलिखित तालिका में कुछ ज्ञात ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करने का मैंने प्रयास किया है।

निराला विषयक आलोचनात्मक ग्रंथ-सूची

आलोचना

१—महाकवि निराला का निरालापन	उमाशंकर सिंह	आदर्श पुस्त० भवन, प्रयाग	१९५७
२—युगाराध्य निराला	गंगाधर मिश्र	काशी राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी	१९६७
३—कवि निराला और उनका काव्य साहित्य	गिरीशचन्द्र तिवारी	साहित्य भवन, प्रयाग	२०१३ वि०
४—महाकवि निराला कृत तुलसीदास	डॉ० जगदीश चन्द्र जोशी	राज पुस्तक मन्दिर, जयपुर	१९६७
५—राम की शक्ति पूजा और निराला	देवेन्द्र शर्मा	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, आगरा	१९६६
६—निराला काव्य और व्यक्तित्व	धनंजय वर्मा	विद्या प्रकाशन, दिल्ली	१९६०
७—कवि निराला	नन्ददुलारे वाजपेयी	वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी	१९६५
८—क्रांतिकारी कवि निराला	बच्चन सिंह	युगाश्रय, काशी	२००४ वि०
९—निराला	राम विलास शर्मा	शिवलाल एण्ड क०, आगरा	१९४६
१०—निराला व्यक्तित्व और कृतित्व	सपा० प्रेम नारायण टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ	१९६२
११—निराला काव्य का अध्ययन	डा० भगीरथ मिश्र	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९६७
१२—निराला का परवर्ती काव्य	रमेशचन्द्र मेहरा	अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर	१९६३
१३—निराला का साहित्य और साधना	विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९६५
१४—महाकवि निराला	" " "	" "	२०१० वि०
१५—काव्य का देवता निराला	विश्वम्भर मानव	नीलाभ प्रकाशन प्रयाग	१९५२
१६—निराला की काव्य साधना	मीरा शर्मा	हिन्दी साहित्य भंडार दिल्ली	१९५५

९—निराला	संपा० प्रेम नारायण टंडन	हिन्दी साहि...	
१०—निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व	डा० भगीरथ मिश्र	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९६३
११—निराला-काव्य का अध्ययन	रमेशचन्द्र मेहरा	अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर	१९६५
१२—निराला का परवर्ती काव्य	विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	२०१० वि०
१३—निराला का साहित्य और साधना	,, ,,	,,	
१४—महाकवि निराला			

१५—काव्य का देवता निराला	विश्वम्भर मानव	नीलाभ प्रकाशन, प्रयाग	१९६३
१६—निराला की काव्य साधना	वीणा शर्मा	हिन्दी साहित्य भंडार, दिल्ली	१९६५
१७—महामानव निराला: कृतित्व और व्यक्तित्व	सत्यनारायण दुबे	नवयुग पुस्तक भंडार, लखनऊ	१९६३
१८—निराला का निरालापन	उमाशंकर सिंह	अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन मण्डल, पटना	१९५५
१९—महाप्राण निराला	गंगा प्रसाद पाण्डेय	साहित्यकार संसद, प्रयाग	१९४९
२०—निराला	राजनाथ शर्मा	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५७
२१—कवि निराला	डा० रामरतन भटनागर	किताब महल, इलाहाबाद	१९४७
२२—निराला	,, ,, ,,	यूनिवर्सल प्रेस, प्रयाग	१९५२
२३—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला	डा० रामविलास शर्मा	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	१९५९
२४—कविवर निराला	श्री हरि	स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड्स	१९६०
२५—निराला और उनकी अपरा	डा० देशराजसिंह भाटी	अशोक प्रकाशन	
२६—निराला और नवजागरण	डा० रामरतन भटनागर	साथी प्रकाशन	
२७—निराला का कथा साहित्य	डा० कुसुम वार्ष्णेय	मित्र प्रकाशन, प्रयाग	
२८—निराला का गद्य-साहित्य	प्रमिला विल्ला	चैतन्य प्रकाशन	
२९—निराला का परवर्ती काव्य	रमेशचन्द्र मेहरा	अनुसन्धान प्रकाशन	
३०—महाकवि निराला	उमाशकर सिंह	आदर्श पुस्तक मंदिर, बलिया	
३१—महाकवि निराला	सं० राजकुमार शर्मा	त्रिवेणी प्रकाशन, प्रयाग	

३२—निराला—	तिलक	विक्रमशिला प्रकाशन	
३३—निराला और राम की शक्ति पूजा—	हरिशचरण शर्मा	चिन्मय प्रकाशन	
३४—निराला और राम की शक्ति पूजा—	देशराज सिंह भाटी	अशोक प्रकाशन	
३५—निराला काव्य पर बंगला का प्रभाव—	इन्द्रनाथ चौधरी	श्री भारत भारती प्रा० लि०	
३६—निराला की काव्य साधना—	देवेन्द्र कुमार जैन	कमलेश प्रकाशन	
३७—निराला जीवन और साहित्य—	तेजनारायण प्रसाद सिंह	राज प्रकाशन	

अन्य ग्रन्थ

१—निराला अभिनन्दन	स० ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ		१९५३
२—निराला स्मृति ग्रंथ	स० अमरनाथ	ज्ञानलोक	

शोध ग्रंथ

१—महाकवि सुब्रह्मण्य 'भारती' एवं महाकवि सूर्यकांत निराला'	डा० पी० जयरामन	हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ	१९६६
२—छायावादी काव्य और निराला	डा० शान्ति श्रीवास्तव	ग्रन्थम, कानपुर	१९६६

—००—

निराला का जीवन

श्री अंजनी कुमार 'दुगेश'

ज्योति का प्रस्फुटन जहां भी जिस परिस्थिति में हो उस से तम का विनाश अवश्यम्भावी है। तिमिर भय सूचक है और प्रकाश अभय का स्निग्ध स्नेहिल वरदान है। अज्ञान तम है और ज्ञान ही प्रकाश, है जिस की लौ का सहारा पा पथभ्रान्त मानव अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँचने में सक्षम होता है। ऐसी ही एक अमर ज्योति सन् १८९६ ई० मे वसन्तपंचमी को बङ्ग प्रान्त अन्तर्गत मेदिनीपुर राज्य में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिला निवासी एक साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में प्रस्फुटित हुई। ज्योति साधारण होते हुए भी असाधारण, ससीम होते हुए भी निस्सीम और एक व्यक्तित्व में समाविष्ट होते हुए भी स्वयम् में एक संस्थान थी। वह ज्योति निराली थी और उस का आकार-प्रकार निराला था। तप्त सूर्य की कान्ति थी। चन्द्रमा सदृश स्निग्ध स्नेहिल सरल व्यक्तित्व था और थी अदम्य साहसपूर्ण क्षमता एवं कर्मठता। यह असाधारण व्यक्तित्व कोई और न होकर पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" थे, जिनका शुभ नाम निराला था और जिन का हर काम निराला था।

निराला के पिता पं० रामसहाय बंगाल प्रदेश में मेदिनीपुर जिलान्तर्गत महिषादल राज्य में एक साधारण कर्मचारी थे। अपनी कार्य कुशलता एवं कर्तव्य निष्ठा के कारण महाराज के विश्वास पात्र बन गए थे और महाराज ने अपने कोष का संरक्षक नियुक्त किया था। 'निराला' के बाल्यकाल का नाम सूर्यकुमार था। ऐसा कहा जाता है कि रविवार के दिन उत्पन्न होने के कारण ही शायद उन का यह नाम पड़ा था। किन्तु कुछ लोगों का ऐसा भी कहना है उनकी माता जी सूर्य का व्रत विशेष रूप से रखती थीं इसलिए इन का नाम सूर्यकुमार पड़ा। आज भी उन के गाँव गढ़कोला (उन्नाव) के लोग सूर्यकुमार से ही सम्बोधित करते हैं। साहित्य-जगत में पदार्पण करने के पश्चात कवि ने स्वयं अपना नाम सूर्यकान्त कर दिया था; और 'मतवाला' पत्र से सम्बन्ध होते ही निराली प्रतिभा और अभूतपूर्व निराला व्यक्तित्व साहित्य जगत में 'निराला' हुआ।

जननी जीवनदायिनी होती है। जब मां का स्नेहिल वात्सल्य पूर्ण आंचल शिशु के माथे से सर्वदा उठ जाता है तो वह शिशु असहाय एवं निरीह हो जाता है। मां का अभाव एक ऐसा अभाव है जिस की पूर्ति कदापि सम्भव नहीं। 'निराला' के माता जी का स्वर्गवास इनके जन्म के तीन ही वर्ष बाद हो गया था। पं० रामसहाय जी इस दुर्घटना से बहुत दुखी और निराश से हो गए थे। पुत्र के समुज्ज्वल भविष्य की किस पिता की आकांक्षा नहीं होती है।

महाराज को पं० रामसहाय के अप्रत्याशित संकट से बड़ी सहानुभूति थी। उन्होंने बालक 'निराला' का भार अपने ऊपर ले लिया और उनका लालन पालन राजकुमारों के साथ होने लगा। निस्सन्देह यही कारण है कि 'निराला' में बादशाहत जैसी स्वच्छन्दता, निर्भीकता

तथा मस्ती मिलती थी। इस वातावरण का ही प्रभाव था कि उनका दृष्टिकोण बड़ा ही व्यापक और उन के विचारों में महानता थी। वह किसी बात का हीन स्तर से नहीं सोचते थे।

'निराला जी' को खेल कूद में अनुराग शैशवावस्था से ही था। क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, वालीबाल का उन्हें अच्छा अभ्यास था। कुश्ती में इन का कोई सानी नहीं था। वह महिषादल राजकीय अखाड़े में लड़ने जाया करते थे। इन के कुश्ती की प्रशंसा फतहपुर रायबरेली, गढ़कोला आदि आज भी करते हैं। निराला जी पंजा लड़ाने के बड़े शौकीन थे। उन के हाथ की अंगुलियाँ वज्र जैसी कठोर थीं।

जिला रायबरेली में डलमऊ एक स्थान है। वहाँ के एक ब्राह्मण परिवार में 'निराला जी का शुभ विवाह सन् १६११ ई० में हो गया। उस समय इन की आयु पन्द्रह वर्ष और पत्नी की आयु केवल बारह वर्ष थी। इन के श्वसुर पं० रामदयाल जी एक साधु प्रकृति के पुरुष थे जिस का बहुत कुछ प्रभाव उन के पुत्री के भी ऊपर था। सन् १६१४ ई० में निराला जी को एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ जो आज भी 'रामकृष्ण' त्रिपाठी की संज्ञा से जाने जाते हैं। कुछ ही दिनों पश्चात् सन् १६१७ ई० में एक पुत्री ने जन्म दिया जिस का नाम 'सरोज' था। अभी वह अपने मा के निधनान्तर दुख को भूल भी नहीं पाये थे कि क्रूर काल ने उनसे उनकी पत्नी और पुत्री 'सरोज' को भी छीन लिया। अकस्मात् हैजा फैल जाने से उन के चाचा चाची जी का भी देहान्त हो गया था और चाचा के बच्चो का भी भार इन्हीं के कन्धों पर आ गया।

महिषादल राज्य के एक हाइ स्कूल में 'निराला' जी का नाम लिखा दिया गया था। इन की शिक्षा का माध्यम बँगला था। बंगला, अंग्रेजी, संस्कृत, इतिहास तथा गणित आदि इनके अध्ययन के विषय थे। नवीं कक्षा तक ही उन की शिक्षा हो पाइ थी किन्तु स्वाध्याय के बल पर वह संस्कृत, उर्दू, फारसी, हिन्दी और बँगला के प्रकाण्ड पण्डित हो गए। इन का अध्ययन बड़ा ही गम्भीर एवं व्यापक था। भाषा के व्यवहार में उन का प्रकाण्ड पाण्डित्य स्थान स्थान पर परिलक्षित होता रहता था। निराला जी बड़े ही अध्ययनशील थे और आजीवन उन्होंने अपने अध्ययन को छोड़ा नहीं। वह शब्दों के उच्चारण पर बड़ा ध्यान देते थे और अशुद्ध उच्चारण उन्हें कदापि सहन नहीं था।

एक दिन मैं उन के दर्शन हेतु गया था। उन दिनों उनकी विक्षिप्तावस्था चल रही थी। वह अंग्रेजी का ही व्यवहार करते थे। बात करते समय मेरे मुँह से 'परसियन' शब्द निकल गया और उन्होंने मुझे तुरन्त टोक दिया और उस का उच्चारण 'परशन' बताया जो बिल्कुल सत्य था। इस प्रकार उन की विद्वता के अनेकानेक प्रमाण हैं।

निराला जी' स्वभावत स्वाभिमानी थे। वह आत्म सम्मान पर मर मिटने वालो में थे। उन्हें दुख सहना स्वीकार था किन्तु वह अपमान की ज्वाला में दहन होना कदापि पसद नहीं करते थे। वह एक साधारण सी बात पर महिषादल राज्य की नौकरी में लात मार कर चल दिये। उन दिनों इन की आर्थिक दशा बड़ी ही दयनीय था। महामारी में परिवार के अधिकांश सदस्य काल कवलित हो जाने के कारण इन के ऊपर परिवार का एक बहुत दायित्व आ गया था। उस समय महिषादल राज्य की नौकरी त्याग करना ठीक नहीं था, किन्तु उन्हें

आत्म सम्मान अपने जान से भी प्यारा था। १९२० ई० में राज्य की नौकरी त्याग कर उन्होंने अपने संकल्प निष्ठ साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया।

निरन्तर दुःख और अवसाद की छाया में पलने से निराला जी के अन्तस्तल में समाज के प्रति एक विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी। जीवन का कटु यथार्थ इन्हें अब काटने सा लगा था। घिसी पिटी मान्यताओं से इन्हें एक ऊब और घुटन होने लगी थी। विक्षुब्ध आत्मा अभावों की पूर्ति और निर्धारित लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ी। इतस्ततः विस्फारित नेत्रों से देखा। वीणावादिनि की वीणा के स्वर आह्वान करते हुए सुनाई पड़े। विक्षुब्ध विद्रोही साधक के रूप में आजीवन साहित्य सेवा का पावन व्रत ले द्वारे-द्वारे-मन्दिर-मन्दिर अलख जगाना प्रारम्भ कर दिया। मां शारदे ने अपने विक्षुब्ध पुत्र के माथे पर अपने स्निग्ध स्नेहिल आँचल डाल दिया मां का अभय वरदान प्राप्त कर पुत्र निहाल हो गया और वीणा की झंकार में साधक का वाना पहन सो गया।

निराला जी स्वभावतः भावुक एवं सरस थे। जिज्ञासा उन की प्रकृति थी। वाल्यकाल से ही उन्हे साहित्य के प्रति अगाध-श्रद्धा और साहित्य-सेवा के प्रति असीम अनुराग था। वह शैशवावस्था से ही बंगला भाषा में कहानिया लिखना प्रारम्भ कर दिये थे। नौकरी करते हुए भी वह कुछ लिखते पढ़ते रहते थे। "हिन्दी बंगला का तुलनात्मक व्याकरण" नामक निवन्ध 'सरस्वती मासिक' में सन् १९१९ ई० में प्रकाशित हो चुका था। जिस को साहित्य-जगत मे भूरि-भूरि प्रशंसा हुई।

सन् १९२० ई० में महिषादल राज्य की नौकरी छूट जाने से निराला जी के सम्मुख एक विशाल आर्थिक संकट था। परिवार का लालन पालन उनके लिए एक समस्या हो गई। साहित्य सेवा का व्रत समक्ष था इसलिए जीना-मरना सभी इसी क्षेत्र मे था। उन दिनों आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के सम्पादक और नवाङ्कुरित साहित्यकारो के संरक्षक तथा आश्रय दाता थे। द्विवेदी जी निराला जी से बहुत प्रभावित हुए और उनकी आर्थिक समस्याओं का निवारण तथा साहित्य सेवा कार्यरत करने के लिए उन्होंने निराला को कलकत्ता में "समन्वय" में नौकरी दिला दी। 'निराला' जी वहाँ कुछ दिनों तक सुचारु रूप से कार्य करते रहे और पुनः "मतवाला" पत्र के संचालक श्री महादेव प्रसाद सेठ से प्रभावित हो कर उन्होंने 'मतवाला' में कार्य करना प्रारम्भ किया। "मतवाला" में ही उन्होंने अपना उपनाम 'निराला' रक्खा, और शायद सूर्यकान्त नाम भी यहीं रक्खा। कलकत्ता मे आचार्य शिवपूजन सहाय, वेचन शर्मा 'उग्र' तथा नवजादिक लाल वर्मा आदि इन के मित्र थे।

कलकत्ते मे रहते रहते 'निराला' का जी ऊबने सा लगा था। उनका स्वास्थ्य भी कुछ खराब चलने लगा था। सन् १९२७ ई० में उन्होंने काशी प्रस्थान किया। काशी में उन्हे श्री जयशंकर 'प्रसाद' प्रेमचन्द तथा विनोदशंकर व्यास आदि साहित्यकारों का सम्पर्क प्राप्त हुआ। कुछ ही दिनों वाद वह लखनऊ आ गए। यहाँ उन्हें पं० श्री नारायण जी चतुर्वेदी, दुलारे लाल भार्गव, अमृतलाल नागर, सुमित्रानन्दन पंत तथा डा० रामविलास शर्मा आदि साहित्यकारो से परिचय प्राप्त हुआ। इधर धीरे-धीरे उनका सम्पर्क अब प्रयाग से भी बढ़ने लगा। यद्यपि वह १९२८ ई० से सन् १९४२ ई० तक लखनऊ में ही रहे किन्तु उनका आना जाना प्रयाग का लगा रहता था। प्रयाग में वह श्रीमती महादेवी वर्मा, नन्ददुलारे वाजपेयी,

डा० रामकुमार वर्मा आदि साहित्यकारों के सम्पर्क में आये और उन्होंने सन् १९४२ में ही प्रयाग चले आये। कुछ दिन इधर-उधर रहते हुए अन्त में उन्होंने अपना आसन दारागंज स्थित सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री कमलाशंकर सिंह के घर पर जमाया और जीवन पर्यन्त वहीं रहे। इस महान् आत्मा के निवास से वह साधारण स्थान तीर्थ बन गया, और इस तीर्थराज के माहात्म्य में इस युग पुरुष का भी एक बहुत बड़ा हाथ है।

निराला जी में एक महान् साहित्यकार के सभी गुण विद्यमान थे। स्वाभिमानी के अतिरिक्त वह बड़े ही उदार विचारों के थे। उन्हें मानव-मात्र से प्रेम था। किसी की पीड़ा को वह सहन नहीं कर सकते थे। किसी को दुखी देख कर वह अपनी अमूल्य वस्तु भी बिना संकोच दान कर देते थे। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी था और वह जीवमात्र में कोई भेद भाव नहीं मानते थे। कुत्तों को भी वह अपनी नई रजाई ओढ़ा कर अपने नंगे रह जाते थे। यह उनके चरित्र की सब से बड़ी विशेषता थी।

संगीत से उन्हें विशेष अनुराग था और शास्त्रीय संगीत का बहुत अच्छा ज्ञान था। कबीर, तुलसी, सूर मीरा, आदि के पद बड़े ही मनोयोग से गाते थे। संस्कृत, फारसी और उर्दू के गीत भी बड़े प्रेम से गाते थे। जब वह अंग्रेजी के गीत गाने लगते थे तो लोग मंत्र मुग्ध हो जाते थे। कभी कभी कवि सम्मेलनों में भी हारमोनियम पर गाने लगते थे।

आतिथ्य सत्कार में वह निपुण थे और इसे वह अपना परम धर्म समझते थे। कोई व्यक्ति किसी भी समय उनके यहाँ पहुँच जाये तो बिना कुछ खिलाए उसे वापिस नहीं आने देते थे। कभी-कभी वह अपना भोजन अतिथि को खिलाकर अपने भूखे रह जाते थे। भोजन वह स्वयं बहुत अच्छा पका लेते थे और खाते समय उस पर स्वयं नम्बर देते थे और साथ खाने वाले से भी उस पर नम्बर देने को कहते थे।

निरालाजी की स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। यदि एक साधारण छाया भी उनके मस्तिष्क में आ गई तो उन्हें वह आजीवन याद रहती थी। उन को अनेक भाषाओं के प्रतिनिधि कवियों की रचनायें कण्ठस्थ थीं। निराला जी एक युगद्रष्टा थे। वह अपनी प्राचीन परम्पराओं से निस्सन्देह प्रेम करते थे किन्तु वह युग के आह्वान तथा नवीन चेतना के प्रति उदासीन नहीं थे। गीति परम्परा में रहते हुए भी उन्होंने काव्यक्षेत्र में (केचुआ या, रबड़ छन्द) मुक्त छन्द प्रथम बार लिखा और बड़ी ही सफलता से उसका निर्वाह किया। वह अपनी आलोचनाओं पर कभी भी ध्यान नहीं देते थे। अपने धुन के पक्के थे। जिस बात को वह उचित समझते थे उसे वह अवश्य करते थे।

निराला जी सर्वाहारी थे। उन्हें खान पान में कोई विशेष संयम नहीं था। उनका वैदिकी भोजन अपना एक विशेष महत्व रखता था। वह आमिषाहारी थे और उसी को वह वैदिकी भोजन कहा करते थे। कोई कुछ भी भोज्य पदार्थ स्नेह से दे तो वह बड़ी श्रद्धा से ग्रहण करते थे।

कलाकार याचक नहीं दाता होता है, पथ भ्रष्ट नहीं पथ प्रदर्शक होता है और भोगी नहीं योगी होता है। रागी नहीं विरागी होता है। यह कथन निराला जी के जीवन से चरितार्थ होता है। वह किसी से कुछ लिए नहीं, अपितु कुछ दिया ही। उनके नाम पर दूसरे लोग लाभ उठाये, मौज उड़ाये किन्तु उस व्यक्ति ने किसी से कोई कामना नहीं की। उन का जीवन

एक सन्यासी तथा सिद्ध पुरुष का जीवन था, जो कि 'स्थित-प्रज्ञता' को प्राप्त हो गया था। उन्होंने 'स्व' को सर्वदा नगण्य रक्खा। परमार्थ ही उन के जीवन का लक्ष्य बन गया।

निराला जी निस्सन्देह एक सिद्ध पुरुष थे किन्तु उनकी मुखाकृति को देखने से ऐसा अवश्य लगता था कि महाकवि के जीवन में एक ऐसा अभाव रह गया है जिस की पूर्ति के लिए उसकी आत्मा विद्रोह करती रहती है जिस की रेखायें मुखाकृति पर बहुधा प्रकट हुआ करती है। उत्तरोत्तर शरीर क्षीण एवं जर्जर होता गया। शरीर व्याधि मन्दिर बन गया। पन्द्रह अक्टूबर सन् १९६१ को पूर्वान्ह नौ बजे यह नश्वर शरीर पञ्चतत्व में विलीन हो गया। दीपक निर्वाण को अवश्य प्राप्त हुआ किन्तु उस की लौ आज भी अजर और अमर है और कोई भी दुस्सह दुर्निवार झंझावात उस लौ को बुझाने में समर्थ नहीं है। उस की हर बात निराली थी क्योंकि वह निराला था।

—:o:—

काव्यात्मा निराला

—

साहित्यदेवता निराला